

संपादक भंडल

डॉ० दशरथ शर्मा

डॉ० मथुरालाल शर्मा

डॉ० गोपीनाथ शर्मा

श्री अगरचन्द नाहटा

डॉ० मोतीलाल मेनारिया

श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल

श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट

सहायक संपादक

उमाशंकर शुक्ल

देव कोठारी

महाराणा प्रताप  
स्मृति  
ग्रन्थ

सम्पादक  
डॉ० देवीलाल पालीवाल  
निदेशक, साहित्य संस्थान  
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर



प्रकाशक

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

**Maharana Pratap  
Smriti Granth**

Editor  
*Dr. D L Paliwal*

Publisher  
**Sahitya Sansthan**  
Rajasthan Vidyapeeth  
Udaipur

First edition, 1969  
Price Rs. 30 00

कापीराइट  
साहित्य संस्थान  
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

प्रथम संस्करण, २००० प्रतियां  
प्रताप जयन्ती  
ज्येष्ठ शुक्ला- ३, वि.सं २०२६  
१६ मई, १९६६

मूल्य-  
सजिल्द- ३० रुपये  
साधारण प्रति- २५ रुपये

मुद्रकः

साधना प्रिन्टिंग प्रेस, राजसमन्द  
जिला- उदयपुर ( राजस्थान )

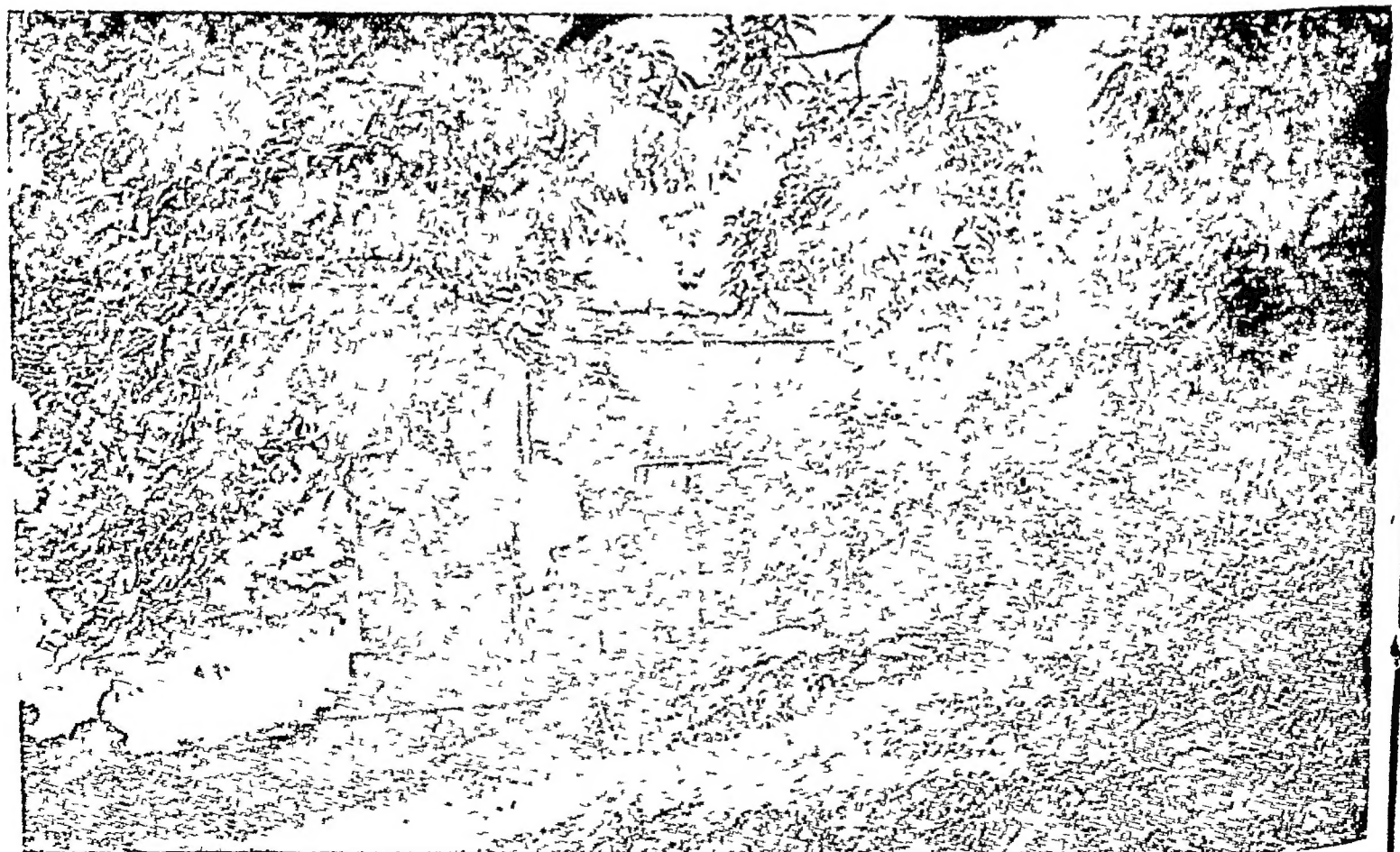


चेटक पर सवार प्रणवीर प्रताप





गोगून्दा स्थित महाराणा प्रताप का राजतिलक स्थान - छतरी



गोगून्दा व हल्दीघाटी के मध्य स्थित मायरा की गुफा जो प्रताप के शस्त्रागार व छापामार युद्ध का आश्रय स्थल रही (निकट के महल वाद के निर्मित है)



महाराणा प्रताप के अस्त्र-शस्त्र जो उदयपुर  
के राजमहल में सुरक्षित हैं



हल्दीघाटी युद्ध में प्रयाण से पूर्व प्रताप तथा उनके साथी  
राजपूत सरदार एवं भील

## समर्पण

मानव इतिहास  
की उन पुनीत  
व प्रेरणादायी  
आत्माओं को  
जिन्होंने मानव  
के विचार, एवं  
विश्वास की  
स्वतंत्रता और  
आत्म-गौरव की  
रक्षा में स्वयं का  
सर्वस्व अर्पित  
कर दिया ।



# कृतज्ञता

राजस्थान विद्यापीठ के उपकुलपति श्री जनार्दनराय नागर की सतत् प्रेरणा से यह ग्रन्थ इस रूप में तैयार हुआ है । साहित्य संस्थान माननीय उपकुलपतिजी के प्रति अपना आभार प्रकट करता है ।

ग्रन्थ की सामग्री, विषय, स्वरूप आदि की दृष्टि से श्रद्धेय डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव एवं डॉ० मथुरालाल शर्मा का अमूल्य मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ है । माननीय श्री अमरचन्द्र नाहुटा ने निरन्तर रुचि लेकर ग्रन्थ की सामग्री के संकलन कार्य में अपना मूल्यवान सहयोग दिया, है, साथ ही माननीय डॉ० दशरथ शर्मा, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल व श्री राजेन्द्र शर्कर भट्ट ने भी इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन में रुचि लेकर समय-समय पर मूल्यवान सुझाव दिये हैं । साहित्य संस्थान इन सभी विद्वानों का कृतज्ञ है ।

साहित्य संस्थान उन सभी विद्वानों का भी कृतज्ञ है, जिन्होंने ग्रन्थ के लिये अपने शोधपूर्ण निबन्ध तैयार किये और जिनके सहयोग के कारण ही ग्रन्थ इस रूप में तैयार हो सका है ।

संस्थान के इतिहास-पुरातत्त्व, हिन्दी-राजस्थानी एवं संस्कृत साहित्य विभागों में कार्यरत सहयोगी शोधकर्तियों के वर्षों के संयुक्त प्रयत्नों एवं अटूट परिश्रम के परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ की बहु-मूल्य-शोध सामग्री का संकलन एवं सम्पादन कार्य सम्पन्न हुआ है । सभी कार्यकर्त्तागण धन्यवाद के पात्र हैं ।

—सम्पादक

सन्देश

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप, महाराज छत्रपति शिवाजी और गुरुगोविन्दसिंह जैसी महान् विभूतियों के जीवन चरित्र से ही हम स्वाभिमान, वास्तविक स्वतन्त्रता व देश सेवा की प्रेरणा को जागृत रख सकते हैं।

क्षत्र धर्म के पुजारियों और रक्षकों की निष्ठा व लक्षण का एक दोहा रावत प्रतापसिंहजी, विजयपुर का बनाया हुआ, मैं नीचे प्रस्तुत कर रहा हूँ—

हरि भजण, हक् बोलना, मन राखण भजवत ।

बांट साणा, बढ बाढहणा, जे कीमे रजपूत ॥

इस पुस्तक के लेखकों, सम्पादक एवं प्रकाशक को इस प्रयास के लिए सहर्ष बधाई देते हुए विश्वास करना है कि यह पुस्तक भारतीय नागरिकों के हृदय में सदैव स्वतन्त्रता को जागृत रखेगी।

भगवतसिंह

महाराणा सेवाङ्क

*Prime Minister's Secretariate  
New Delhi-11*

*Dear Sir,*

The Prime Minister thanks you for your letter and wishes success to the Maharana Pratap commemoration volume which is being published next month

*—Deputy Information Adviser  
to the Prime Minister*



राजस्थान साहित्य-मंस्थान द्वारा महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन सम्बन्धी निरुपेय का मैं स्वागत करता हूँ । मध्ययुगीन इतिहास की दृष्टि से तो महाराणा स्मरणीय हैं ही, हमें आज उनके स्वदेश-प्रेम और उनकी बलिदान-भावना का विशेष आदर करना चाहिये । आजाद हिन्दुस्थान के लिए महाराणा प्रताप केवल एक स्वामिमानी नरेश या एक अनोखे रणवांकुरे ही नहीं, बल्कि देश पर मर मिटने की भावना के प्रतीक हैं ।

मैं इस अवसर पर महाराणा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर अर्पित करता हूँ ।

*—यशवन्तराव चव्हाण*



मुझे यह जानकारी प्रसन्नता हुई है कि उदयपुर में महाराणा प्रताप की मूर्ति के अनावरण के अवसर पर एक स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। महाराणा प्रताप का नाम जो ही हमारे देश के इतिहास के वे पृष्ठ उमर आते हैं जिनमें राजस्थान की आन, वान और मरिना की रक्षा के लिए युद्ध के मैदान में प्राणों की बाजी लगाकर परतन्त्रता से लोहा लाने वाले वीरों और शूर-वीरों की लोमहर्षक गाथा अस्मृत है।

मैं माना करता हूँ कि महाराणा प्रताप के कृतित्व और सघर्षमय-जीवन पर इस स्मृति-ग्रन्थ में अध्ययनपूर्ण प्रकाश डाला जायेगा और इतिहास के ज्ञाता-विद्वानों के विवेचनात्मक भेदों से इसके कनेक्टर को मजबूत किया जायेगा। महाराणा प्रताप द्वारा किये गये सघर्ष के विषय में इतिहासियों में मतभेद हो, यह आवश्यक नहीं है लेकिन मैं समझता हूँ, महाराणा प्रताप की कृतित्व की उन तान की राजनीतिक स्थिति के सदर्भ में रखकर ही देखना चाहिये। जिस समय विभिन्न विषयों वाले इस प्रदेश और देश भर के राजा महाराजा शनै, शनै, दिल्ली की पराजिता स्वीकार कर चुके थे, उस समय दिल्ली के कूटनीति-प्रवीण मुगल सम्राट अकबर के राज्य में ऐसा ही एक ऐसा राज्य बचा था जिसने दिल्ली की आधीनता को मानने से इस्तीफा कर दिया था। यही नहीं जब तक महाराणा प्रताप जीवित रहे, उन्होंने अपनी मान्यता को सधुआ रखा और उनके सघर्ष में हठोपाटी का घमासान युद्ध हुआ जो हमारे इतिहास के गौरवपूर्ण पृष्ठों में प्रमुख है। उस-पराजय में इस युद्ध का मूल्योत्पन्न नहीं हो सकता। इस युद्ध के बाद महाराणा, मध्यमयवन एवं देश प्रेम की जो ओजस्वी भावना थी उसी के कारण देश के इतिहास में महाराणा प्रताप का नाम इतनी प्रतिष्ठा और गौरव के साथ लिया जाता है।

महाराणा प्रताप द्वारा प्रकाशित किये जाने वाले स्मृति-ग्रन्थ की सफलता की कामना करता हूँ।

—मोहनलाल सुखाड़िया

Thank you for your letter of the 5th inst.

I am glad to know that you are bringing out Maharana Pratap Commemoration Volume.

I wish the publication all success.

—V. V. Giri.

---

The saga of Rajasthan has been a perennial source of inspiration to freedom fighters. Maharana Pratap, Durga Das and Meera Bai, to name only a few, have featured in our best known historical and devotional plays. They have always been among the finest illustrations of patriotism, valour, pride and glory in the name of the country, and of suffering, sacrifice and self-effacement in the devotion to God.

So much has been said about Maharana Pratap in fables and facts; in prose and verse, in history and literature; and yet, there is still so much to be revealed through further research and study of the annals of Rajasthan. Every attempt to rediscover and reinterpret his times and exploits ever so more reinforces our reverence and admiration of this legendary figure.

As in the past, so also in the future this period of history will continue to educate and inspire the people, and give them strength and confidence to face life in its various aspects; emotional and cultural integration, domestic progress and prosperity, social and moral integrity and national honour and freedom.

I join my countrymen in paying homage to the memory of this among our greatest national heroes.

—Ajoy Kumar Mukherji

---

I am happy to learn that you are bringing out 'Maharana Pratap Commemoration Volume' on the auspicious occasion of the ceremony of unveiling of the statue of Maharana Pratap to be performed by the President of India in the month of Oct. next.

Maharana Pratap Singh was one of the greatest of Rajput heroes and belonged to the gallant tribe of the Rajputs of Mewar. He symbolised the indomitable courage and spirit of resistance of the Rajputs who refused to surrender to Moguls and barter away their freedom for securing some sort of a 'Subedari' in the Mogul Darbar. What the great Shivaji did in Maharashtra, Rana Pratap Singh attempted to do in Rajasthan. Though unfortunately he did not succeed in establishing an independent kingdom of Rajputs, he fought to the last treating with scorn all the manoeuvres to win him over made at the behest of King Akbar.

Maharana Pratap would always remain a shining example of selfless and patriotic spirit that never surrenders to aggression and would thus remain a source of inspiration to generations to come.

I wish the function all success,

—R. K. Khadilkar.

I am glad to know that you are bringing out "Maharana Pratap Commemoration Volume" on the auspicious occasion of the ceremony of unveiling of the statue of Maharana Pratap. Since my childhood, I have heard the name and fame of Rana Pratap and as I grew old I came to appreciate the chivalry and spirit of independence which characterised him through out his life. The sacrifice and heroism which he displayed in his fight against the Mughals for maintaining the freedom of his country will ever remain a rich legacy and his memory will be cherished by generations of Indians yet unborn. He has secured a place in history along with Shivaji and will ever be looked up to as the greatest patriot that India has produced. I wish your function all success.

—R. C. Majumdar.

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि साहित्य-संस्थान राजस्थान-विद्यापीठ, उदयपुर में महाराणा प्रताप की मूर्ति के अनावरण के शुभावसर पर एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है ।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ में उस युगपुरुष एवं स्वतन्त्रता-संग्राम के अमर सेनानी के सिद्धांतों एवं उपलब्धियों पर इस प्रकार से प्रकाश डाला जायगा कि आने वाली पीढ़ियों के लिए वे आदर्श एवं अनुकरणीय होंगे । महाराणा प्रताप ने भारतीय इतिहास के उस युग में स्वतन्त्रता-संग्राम की वेदी में अपनी आहुति दी जिस समय विदेशियों ने भारत पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करली थी और उनकी प्रभुसत्ता दावानल के समान फैलती जा रही थी । महाराणा प्रताप ने उस बढ़ती हुई ज्वाला को रोका ही नहीं वरन् उसको समाप्त करने का भी प्रयास किया और उसमें काफी सफलता भी प्राप्त की । मैं उस युग-पुरुष को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ ।

मैं महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ की सफलता की शुभ कामना करता हूँ ।

—रामसुभग सिंह

‘महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ के विचार का स्वागत । योजना की सफलता के लिये शुभ कामनाएं ।’

जातकर अपने स्वामिमान की रक्षा करना सरल है परन्तु हार कर भी अपने स्वामिमान को बनाए रखना बड़ा कठिन है । महाराणा ने यह कठिन कार्य कर दिखाया । उनके सामने जो भुक्तता है उसका माथा ऊंचा उठ जाता है ।

—डा० हरिवंश राय बच्चन

प्रातः स्मरणीय स्व० महाराणा प्रतापसिंह की मूर्ति के उद्घाटन सम्बन्धी समाचार को पढ़कर बहुत हर्ष हुआ । उसकी पूर्ण सफलता के लिये मेरी हार्दिक विनम्र शुभकामनायें ।

—वृन्दावनलाल वर्मा

मह जान कर बड़ी खुशी हुई है कि आप महाराणा स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं । यह बहुत आनन्द की बात है । मैं ग्रन्थ की सब प्रकार से सफलता चाहता हूँ ।

—डा० ए० चन्द्रहासन

महाराणा प्रताप भारत के एक महान सपूत थे जिन्होंने स्वतन्त्रता की पताका को झुकने न देने के लिए अकथनीय कष्टों एवं कठिनाईयों का सामना किया । इस शहीद-शिरोमणि के अदम्य साहस, कृतसंकल्पता तथा मातृभूमिके हित दिए गए वलिदानों के वृत्तांत हमारे देश के इतिहास में सदा सर्वदा स्वर्णाक्षरों में लिखे रहेंगे । महाराणा प्रताप ने जिस निस्वार्थ-भावना से मुगलों का मुकाबिला किया और अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जो सघर्ष किया वह हम भारतीयों को युग-युगान्तरो तक अजय प्रेरणा देता रहेगा ।

यह जानकर हर्ष हुआ है कि साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह स्मृति-ग्रन्थ उस महापुरुष की स्मृति को भाववत बनाए रखने के प्रयत्नों में एक महत्वपूर्ण योग सिद्ध होगा ।

स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन की सफलता के लिए मेरी शुभ कामनाएं आपके साथ हैं ।

—राव वीरेन्द्रसिंह

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहा है । स्वतन्त्रता के पुजारी सिसौदिया वंश के उस वीर के के समान सम्भवतः कोई भी राजा भारत के इतिहास में नहीं हुआ । जीवन-पर्यन्त वह मुगलों से लड़ते रहे और मातृ-भूमि के लिए अनेक कष्ट सहे । वह त्याग और वलिदान की भावना एवं देशप्रेम अगर सभी राजाओं में होता तो भारत पराधीन नहीं हुआ होता । अतः यह सर्वथा उचित ही है कि आप ऐसे वीर-पुरुष की स्मृति में एक विशेषांक का प्रकाशन कर रहे हैं । मुझे आशा है, इसमें उपलब्ध सामग्री पाठकों को प्रोत्साहित करेगी । ग्रन्थ की सफलता के निम्ने मेरी शुभ कामनाएँ हैं ।

—सत्यनारायण सिंह

महाराणा प्रताप के संबंध में आप जो ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं वह तो मुन्दर होगा ही पर मेरा विश्वास है कि 'महाराणा प्रताप' के सम्मान में एक सौजन्यपूर्ण ग्रंथ ऐसा प्रकाशित हो जो उनके 'पराधीनता संग्राम' के एक समय सैनिकों के हृदय में गहरी सही अध्ययन प्रस्तुत करें । हमारी देश भक्ति की सामाजिक व्यक्त्य सभी प्रगट ही नहीं हुआ । उनका वलिदान अद्वितीय है ।

मेरी शुभ कामनाएँ स्वीकार करें ।

—विष्णु प्रभाकर

I am happy to note that you are bringing out a "Maharana Pratap Commemoration Volume". The bravery, patriotism and nobility of character of Maharana Pratap in the cause of the country are too well-known to need repetition. I congratulate the organisers in bringing out the Commemoration Volume and wish it every success. It should be a source of inspiration to the present generation of India.

—Dr. M. L. Roonwal.

---

The life of Maharana Pratap has a message for all of us at this time in the history of India. What happened in the 16th century is happening once over again. Indian unity is in great danger. States and sub-States, languages and sub-languages and regional interests are fighting with one another for their narrow and selfish ends. Exactly the same thing happened when Maharana Pratap tried to fight the Moghul Imperialism. That time it was against a foreign domination; now it is against internal conflicts. But the only way we can make India strong is to give up our very narrow selfish acts. To me this is the only lesson that is remembered once again. I hope only that this occasion will enable all the workers in Rajasthan and other parts of India to work for Indian unity.

I wish the volume all success.

—H. D. Sankalia.

---

Maharana Pratap symbolises the sacrifice and determination of freedom fighters in the history of this country. I am glad to know that a statue is being erected at Udaipur to commemorate this idol of heroism. May his memory continue to inspire all of us for years to come.

—K. K. Shah.

मुझे यह जान कर अत्यन्त प्रमन्नता हुई कि साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर स्वतन्त्रता प्रेमी महाराणा प्रताप की स्मृति में एक विशद ग्रंथ का प्रकाशन कर रहा है। महाराणा प्रताप के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है, विशेष कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध हमारे स्वाधीनता-संग्राम के सेनानियों के लिये महाराणा प्रताप का नाम सदा ही प्रेरणाश्रोत रहा। बंगाल से लेकर सिन्धु तक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक क्रान्ति-कारी सैनिकों ने देश भक्ति और स्वाधीनता के लिये जो अनवरत-संघर्ष किया, उसकी याद अभी ताजा ही है।

प्रायः प्रताप का नाम आते ही हमारा मस्तक गौरव से ऊंचा उठ जाता है और हमें अपने राष्ट्रीय आत्मसम्मान और स्वाभिमान के लिये मर मिटने और सर्वस्व त्याग करने की प्रेरणा मिलती है।

कुछ इतिहासकार और राजनीतिज्ञ वास्तविकता से मुंह मोड़कर प्रताप-अकबर के संघर्ष को अपने अपने नजरिये से देखने की चेष्टा करते रहे हैं। कुछ लोगों का विचार है कि अकबर और प्रताप मिल गये होते तो हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान हो गया होता। अकबर की उदारता और हिन्दुओं के प्रति सद्भावना की चर्चा करते हुए प्रताप के पक्ष को दुराग्रह एवं हिन्दुत्व का परिचायक बताया गया। जबकि वास्तविकता यह है कि अकबर विदेशी होते हुए भी अपनी जड़े भारतवर्ष में मजबूती से जमाने के लिये साम, दाम, दण्ड, भेद की नीतियाँ अपना कर भारत को अपने विस्तृत-साम्राज्य का आधार बनाना चाहता था। इस प्रायद्वीप पर पहले छोटे मोटे सभी राजाओं को अपने आधीन कर चक्रवर्ती सम्राट बनने की महत्वाकांक्षी कल्पना प्रताप का प्रश्न आते ही टूट जाती थी।

महापुरुषों के चरित्र का मूल्यांकन एवं चित्रण करते समय हमें उन्हें उनकी समकालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखकर ही निर्णय लेना होगा। वर्तमान आवश्यकताओं और आदर्शों के नाम पर इतिहास की तोड़ मरोड़ और तथ्यों का एकपक्षीय अवलोकन सही नहीं माना जा सकता। इसलिए महाराणा प्रताप के जीवन पर चर्चा करते समय हमें पुरानी तत्कालीन भावनाओं का ध्यान रखना ही होगा। स्वतन्त्रता की भावना और उसकी रक्षा के लिये बलिदान और त्याग को सफीर्ष सीमाओं में नहीं देना जा सकता। ये वे मानवीय मूल्य हैं जिनका विश्वव्यापी महत्व है। अतीत से लेकर आज तक जहाँ जहाँ भी इन मानवीय मूल्यों के लिये संघर्ष चलता आ रहा है और जिन्होंने इन मूल्यों के लिये अपनी आहुतिया दी है वे युग युग तक प्रेरणा-स्रोत बनी रहेंगी। महाराणा प्रताप का नाम भी ऐसे ही महामानवों में से एक है, जो देशभक्त और परिस्थितियों से ऊपर उठकर भी दुनियादी मानवीय मूल्यों के लिये अपने जीवन का सर्वस्व समर्पण कर रहे हैं।

कि साहित्य-संस्थान के पावन-प्रदान की मन्मत्ता चाहता हूँ।

—श्रीकारलाल जोहरा

आपके पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महाराणा प्रताप की मूर्ति के अनावरण के सुअवसर पर एक स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन की भी व्यवस्था की जा रही है । वधाइया और शुभ कामनाएं स्वीकार कीजिये ।

राणा प्रताप का नाम हमारे देश के इतिहास में सदैव अमर रहेगा । देश-प्रेम, शौर्य और वलिदान का जो ज्वलंत उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया था, वह आज भी इस देश के निवासियों को प्रेरणा देता है और आगे भी देता रहेगा । उनके जीवन व कार्यों से नई स्फूर्ति लेकर हम सब दृढ़ता के साथ अपने कर्तव्य का पालन करें— यही मेरी कामना है ।

—भक्त दर्शन

आप लोग महाराणा प्रताप-स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं, यह जानकारी हुई । आप लोगों का इस ओर का यह प्रयास सराहनीय है ।

मेरी शुभ कामनाएँ आप लोगों के साथ हैं ।

—प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आप महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं । महाराणा प्रताप की प्रतिमूर्ति न सिर्फ उदयपुर के लिये अपितु सम्पूर्ण भारत के लिये प्रेरणादायक सिद्ध होगी ।

भारत के इतिहास में महाराणा प्रताप का स्थान अनुपमेय है । इस प्राचीन देश के लम्बे इतिहास में वह अपने ढंग की अकेली मिसाल है । उन्होंने अपने जीवन के सम्पूर्ण सुख एक उच्च आदर्श के लिये वलिदान कर दिये । जब इस विशाल देश के शासक मुगल सम्राट की शक्ति, वाक्-चातुर्य और नीतिमत्ता के सम्मुख एक-एक करके सिर झुकाते चले गये, महाराणा प्रताप ने सभी तरह के कष्ट उठाकर अपनी और मेवाड़ की स्वाधीनता अक्षुण्ण रखी । अपनी पूरी शक्ति और चातुर्य लगाकर भी अकबर उन्हें अपने आदर्श से च्युत नहीं कर सका । निसंदेह उस युग में भारत में दो महापुरुष हुए । एक सम्राट अकबर, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को अपना कर उसे अपने रंग में रंगने का प्रयास किया । दूसरे महान् पुरुष महाराणा प्रताप थे, जिन्होंने देश की स्वाधीनता का झंडा नीचे नहीं झुकने दिया, जिन्होंने आजीवन उंचे आदर्शों की रक्षा की । इस तरह महाराणा प्रताप का स्थान अकबर से भी ऊँचा है । महाराणा प्रताप हमारे देश के अभ्रगण्य महान्-पुरुषों में हैं ।

—चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार



महाराणा प्रताप की स्मृति में स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कराने की योजना अनाधनीय है । राजस्थान विद्यापीठ ने जहाँ कितने ही महत्वपूर्ण कार्य किये हैं उनमें यह स्मृति-ग्रन्थ अपना एक अनोखा स्थान रखेगा । महाराणा प्रताप केवल मेवाड़ की ही नहीं अखिल भारतीय क्षेत्र की अभिनन्दनीय विभूति हैं, विश्व के गिने-चुने वीरों में गिने जाते हैं ।

प्रताप को शौर्य और उनकी दृढ़ता एवं उत्साह अन्धकार में विपत्तियों के घटाटोप में अन्तर्गत लटखड़ाते किमी भी मानव के लिये एक प्रकाशस्तम्भ की तरह रहे हैं और रहेंगे । महाराणा प्रताप का यश अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र और मुक्त रखने के लिए रक्त की अन्तिम वृन्द तक अर्पित करने के कारण ही नहीं, वरन् उनमें उर्जस्वित उस मानवीय दिव्यता के कारण है जिसमें गहिर्न दासत्व से जीवन को मुक्त रखने के लिये अनवरत सर्व्व किया और आपत्तियों के पर्व्वतो से भी भयभीत नहीं हुआ । इन्हीं मानवीय दिव्यताओं के कारण ही कवि और साहित्यकार ने महाराणा प्रताप को अना आलम्बन चुना । मुझे विश्वास है कि इस स्मृति-ग्रन्थ के द्वारा महाराणा प्रताप के सभी मानवीय पक्षों का उद्घाटन होगा और उनके आदर्श अधिकाधिक निखार पा सकेंगे ।

साहित्य संस्थान के इस प्रयत्न की मैं हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ ।

—डा० सत्येन्द्र

यह ज्ञान कर हादिक प्रमन्नता हुई कि राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन द्वारा महाराणा प्रताप की मूर्ति के अनावरण के अवसर पर साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ "महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ" का प्रकाशन कर रहा है । आपके इस आयोजन का मैं हादिक अभिनन्दन करता हूँ और आशा करता हूँ कि ग्रन्थ प्रेरणादायक सामग्री से परिपूर्ण होगा । उसकी सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाएं भेजता हूँ । भारतीय लोक जीवन को समृद्ध करने के लिए महाराणा प्रताप ने जो कृष्ट किया, उसमें प्रत्येक भारतवासी परिचित है । वस्तुतः उनका समूचा जीवन त्याग और तपस्या का ज्वलन उदाहरण है । उन्होंने कठोर से कठोर यातनाएं सह्य की, लेकिन अपने स्वाभिमान को धाय न धाने दी ।

यद्यपि आज समय बदल गया है, हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है, तथापि उनके मह-विर्ग-के लिए आज भी महाराणा प्रताप की जैसी साधना तथा भीरुता की आवश्यकता है ।

— यशपाल जैन

यह जान कर महान् हर्ष है कि साहित्य सम्स्थान, राजस्थान विद्यापीठ महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहा है ।

आज वास्तव में देश को ऐसे ही सच्चे देश-सेवी सैनानियों की जरूरत है । हमारी रंगों का रक्त वही शक्ति शौर्य तथा देश-प्रेम की उत्कट मनोवृत्ति चाहता है ।

महाराणा प्रताप का एक मात्र ध्येय था— देश की आजादी और उसकी सुरक्षा प्राणप्रण से करना जो हमारे लिये महान् आदर्श है । उस महान् मातृभूमि के सेवक के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि तो तभी पूर्ण होगी कि हम भारतवासी एकता, प्रेम, व भाई-चारे की भावना से ओतप्रोत होकर अपने राष्ट्र को बहुमुखी विकसित करते हुये उसे उन्नत पथ का पाथेय बनायें ।

आजादी के उस बलिदानी का जीवन, उसका अमर त्याग, सहिष्णुता तथा उसका आदर्य जिसका स्वयं इतिहास साक्षी है, सदैव भारतीयों के दिलों में अजस्र ज्योतिष रहेगा । हल्दीघाटी, चित्तौड़, उदयपुर जिसकी रज में आज भी उस सिंह-सपूत की यशोगाथा सजीव है, जो क्लीव में भी शक्ति का संचार करती है, उस महान् विभूति प्रताप के सम्मुख, जिसने देश के लिये जीना तथा देश के लिये मरना सीखा था, हम नम्र है तथा उसे बार २ नमन करते हैं ।

मे हृदय से आपके प्रकाशन की सफलता चाहता हूँ ।

—नन्दकुमार सोमानी

यह जानकर हर्ष हुआ कि माहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर द्वारा 'महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ' प्रकाशित किया जा रहा है। प्रातः-स्मरणीय महाराणा की स्मृति अपने आप ही प्रदीप्यमान है, उसमें हम किसी प्रकार का संभरण करने के लिए सक्षम नहीं हैं। यह ग्रन्थ उनके जीवन से प्रेरणा लेने के निमित्त एक लघु प्रयास मात्र ही हो सकता है।

विश्व के इतिहास में उच्च कोटि के वीर, त्यागी व बलिदानी कई हुए हैं। लेकिन इस तरह का महापुरुष जिसमें यह सारे गुण चरम सीमा पर मिलते हों, जिसका जीवन धर्म, आध्यात्म और नैतिकता से परिपूर्ण रहा हो, तथा जो वीरों में महावीर व देवताओं को भी लजाने वाला हो, अन्य क्वचित ही है। उनका जीवन कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी सिद्धान्तों के प्रति और लोक कल्याण के हितार्थ सदैव समर्पित रहा। यही उनके जीवन की परिपूर्णता व मय्यता है। उनका जीवन निष्कलक, सरल और सादा, परन्तु आदर्शों को निमाने में प्रभु और तेजस्वी, यद्यपि अपने प्रति कठोर पर दूसरों के प्रति अति दयालु रहा है। ऐसे महापुरुष के स्मरण में हम धन्य होने हैं और उनसे प्रेरणा पाकर जीवन को सार्थक कर सकते हैं।

भारत में आज नेतृत्व की कमी खलती है। देश के सामने जो विकट मसले हैं वे द्रुतने भयंकर नहीं हैं लेकिन उनका मुकाबला करने वाली शक्ति का अभाव खटकता है। विकट से विपट परिस्थिति और कठिन न कठिन मुसीबतों का मुकाबला जिस दृढ़ता, प्रसरता और तेजस्विता के साथ महाराणा ने अपने जीवन में किया, यदि उससे हम अपने आपको किंचित नाप भी प्रभावित कर सकें तो आज की सम्पूर्ण समस्याओं का मुकाबला करने में हम हर तरह से सक्षम हो सकेंगे इसमें कोई शक नहीं है।

महापुरुषों ने प्रेरणा मिली, और उनका प्रभाव कायम रहे तथा इसके लिए जो भी प्रयास किया जाय वह सही है, और उसका परिणाम सच्चा है ही।

—कमलनयन बजाज

I feel proud to be associated with the inauguration of the statue of Maharana Pratap at Udaipur. Maharana Pratap's footsteps in the sands of time can never be erased and his life of courage and dedication will continue to inspire countless generations of Indians.

I am glad that this occasion is being accompanied by the issue of a commemoration volume. I trust that it will be widely read and help to spread Maharana Pratap's message of courage, conviction, and persistence even in the face of overwhelming difficulties.

—V. K. R. V. Rao—

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरित्र हैं। महाराणा प्रताप सम्बन्धी मनन और अध्ययन भारतीय स्वतंत्रता की आराधना एवं वन्दना है। साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ ने भारत के इस तपोपूत नेता के सम्बन्ध में अनुसंधानपूर्ण इस विशद साहित्यिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथ का निर्माण करके निस्सन्देह देश की सल्लेखनीय सेवा की है।

लगभग ६०० पृष्ठ के इस मौलिक एवं खोजपूर्ण ग्रन्थ में न केवल महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में इतिहासियों के अभिमतों तथा प्रताप सम्बन्धी राष्ट्रीय काव्यों का संकलन ही प्रस्तुत किया गया है, अपितु योग्य विद्वानों के नव लेखों द्वारा महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं आदर्शों पर भी प्रकाश डाला गया है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य पर महाराणा प्रताप के तेजस्वी व्यक्तित्व के प्रभाव का भी मूल्यांकन किया गया है। ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत प्रताप सम्बन्धी प्राचीन मौलिक स्रोत संस्कृत काव्य, प्राचीन राजस्थानी काव्य, ख्यात, वात, वंशावली, ताम्र-पत्र, पट्ट एवं शिलालेखों का विवरणात्मक परिचय भी प्रस्तुत किया गया है। अतः इस उपयोगी कृति के प्रकाशन के लिए साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ बधार्द्र का पात्र है।

—निरञ्जननाथ आचार्य

जानकर प्रसन्नता हुई कि साहित्य सस्थान, उदयपुर महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहा है। महाराणा प्रताप का जीवन आज प्रत्येक भारतीय के लिए अनुकरणीय है। जिस त्याग व तपस्या से वे देश पर अपना सर्वस्व निछावर कर स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अन्तिम-क्षण तक लड़ते रहे, वह देशवासियों के लिए सदैव प्रेरणा-स्रोत रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि स्मृति-ग्रन्थ से महाराणा प्रताप के जीवन की प्रत्येक घटना सबके सामने आयेगी तथा उनका अधिक प्रचार व प्रसार होगा और उससे राष्ट्रीयता की बल मिलेगा। ऐसी मेरी मान्यता है।

मैं सफलता की कामना करता हूँ।

—होरालाल देवपुरा

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राजस्थान विद्यापीठ द्वारा महाराणा प्रताप के जीवन एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए एक ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

भारत के इतिहास में महाराणा प्रताप की वीरता एवं आदर्शों की जो छाप विद्यमान है वह सर्व विदित है। ऐसे महान् व्यक्ति की स्मृतियों का संग्रह न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण है अपितु नागरिकों के चरित्र-निर्माण में भी सहायक सिद्ध होगा।

मैं ग्रन्थ के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

—शिवचरण माथुर

मुझे यह ज्ञानकर प्रसन्नता हुई कि साहित्य संस्थान की ओर से आगामी प्रताप जयन्ती के अवसर पर "महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ" का प्रकाशन किया जा रहा है।

महाराणा प्रताप स्वतन्त्रता और बलिदान के अमर सेनानी थे। उनका त्यागमय जीवन सम्बन्धो-जितना साहित्य प्रकाशित किया जाय, कम ही है। मैं आशा करता हूँ कि यह प्रकाशन जन-साधारण तथा इतिहास-प्रेमियों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

—हरिदेव जोशी

यह ज्ञानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि आगामी प्रताप जयन्ती के अवसर पर साहित्य संस्थान की ओर से "महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ" प्रकाशित किया जा रहा है।

आज हमारे देश में महाराणा प्रताप जैसे महात्मा सेनानियों की आवश्यकता है, जिन्होंने देश-सेवा के लिए कठिन तपस्या, प्रदम्य संकल्प, आदर्श त्याग और महात्मा बलिदान का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। ऐसे ग्रन्थों से पाठकों के हृदय में त्याग, तपस्या एवं बलिदान की भावनाएं जागृत होंगी जो कि स्वतंत्र देश के प्रत्येक नागरिक में प्रचुर मात्रा में होनी चाहिये। मैं आशा करता हूँ कि ग्रन्थ सभी के लिये उपयुक्त सिद्ध होगा।

इस ग्रन्थ के लिये अपनी शुभ कामनाएं प्रकट करता हूँ।

—जगन्नाथ सिंह मेहता

# विषयानुक्रम

Foreword

Janardan Rai Nagar

1

Upkulpati, Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur

Preface

Dr D.L. Paliwal

III

## पुष्पाजलियाँ

- ☉ महात्मा गाँधी    ☉ जवाहरलाल नेहरू    ☉ डा० राजेन्द्र प्रसाद    ☉ काका कालेलकर  
☉ रामधारीसिंह 'दिनकर'    ☉ गणेश शंकर विद्यार्थी    ☉ खरवा ठाकुर राव गोपालसिंह

## प्रथम खराड

महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में इतिहासज्ञों के अभिमत

६

- ☉ James Tod-Noble Spirit    ☉ Vincent A Smith-Worthy of Remembrance  
☉ J. M. Shelat-Luminous Spirit of Freedom    ☉ A. L. Srivastava-Embodiment of  
Elemental Spirit of India    ☉ K K Datta- A Noble and Patriotic Leader  
☉ B P. Saxena- His Life a Saga of Rajput History    ☉ Sri Ram Sharma- A Great  
General    ☉ K M Pannikar- Evergreen Memory    ☉ V. K. R. V. Rao-  
A Valiant Freedom Fighter

- ☉ राहुल सांकृत्यायन-इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ    ☉ मुंशी देवी प्रसाद-मर्यादा पुरुषोत्तम    ☉ गोरीशंकर  
हीराचन्द श्रोक्ला-स्वतन्त्रता के पुजारी    ☉ श्रीपाद दा सातवलेकर-योगी एव तपस्वी

महाराणा प्रतापसम्बन्धी राष्ट्रीय काव्य

२३

- ☉ जनार्दनराय नागर- हल्दीघाटी से    ☉ सोहनलाल द्विवेदी-आह्वान    ☉ लोचनप्रसाद पाण्डेय-  
श्री प्रताप-स्तव    ☉ प. नागायणजी पुरुषोत्तम क्लान्त'-प्रतिज्ञा    ☉ श्यामनारायण पाण्डेय-हल्दीघाटी  
☉ कविराजा पं० हरनाथ-चेटक    ☉ राधाकृष्णदास-प्रताप-विसर्जन    ☉ कवि राव मोहनसिंह-प्रताप  
का रामराज्य    ☉ जयशंकर प्रसाद-महाराणा का महत्त्व    ☉ शोमालाल कीशिक-कवित्त    ☉ हरिकृष्ण  
'प्रेमी'-तुम्हीं    ☉ रामनरेश त्रिपाठी-प्रताप के वंशजों से    ☉ शान्तिप्रिय द्विवेदी-स्मृति-गान  
☉ द्विजेंद्रलाल राय-मेवाड़ से    ☉ केसरीसिंह बारइठ (कोटा)-चेतावणी रो चूंगट्यो    ☉ महाराज  
श्री विजयसिंहजी-प्रताप-यश    ☉ महाराज चतुरविहजी-मेवाड़ा मेवाड़ बग़ाई रजवट री पटशाला  
☉ सुपनेश जोशी-ए मेदपाट रा तू जाया चित्तौड़ा    ☉ केसरीसिंह बारइठ (सोन्याणा)-प्रताप प्रतिज्ञा-  
प्रताप-मान सम्वाद    ☉ सोभाग्यसिंह शेखावत-चेटक री टापा सूँ गूजी आ धरती मेवाड़ी    ☉ कन्हैया  
लाल सेठिया-पातल और पीथल    ☉ वृद्धिशंकर त्रिवेदी 'शिल्पी'-राणा प्रताप    ☉ H. S. Mordia-  
Pratap the Mighty    ☉ J. S Singhvi-The last Dialogue.



विविध लेख

## भारतीय भाषाओं के साहित्य में महाराणा प्रताप

मराठी साहित्य पर राजपूतो के इतिहास का प्रभाव

महाराणा प्रताप और कर्नाटक

गुजराती साहित्य में महाराणा प्रताप

Maharana Pratap and the Andhras

Maharana Pratap and Shivaji

Maharana Pratap and and Punjabi literature

Impact of Maharana Pratap on Oriya literature and national movement

Impect of Maharana Pratap on the literature and national movement of Bengal

महाराणा प्रताप तथा राष्ट्रीय कविता

महाराणा प्रताप और तम्रट श्रकवर

हिन्दी काव्य और महाराणा प्रताप

## महाराणा प्रताप का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं आदर्श

महाराणा प्रताप के आदर्श एवं सिद्धान्त

महाराणा प्रताप एवं व्यवस्थापक के रूप में

डा० मु० श्री० कानडे

मराठी विभाग पूना विश्वविद्यालय ७५

श्री नगेश हत्वार

भारतीय संस्कृति विद्यापीठ, बंगलोर ८१

डा० अमरलाल जोशी

स्वामिनारायण आर्ट्स कालेज

अहमदाबाद

२००

K V R Narasimham

Head of the Deptt, of Telugu  
Andhra University,

Waltair

१५३

Prof M J. Pathakji. १५६

Dr. Surinder Singh Kohli

Deptt. of Punjabi,

Chandigarh University १६१

Dr.Gopal Chandra Misra

Revenshaw college,

Cuttack.

१६४

Sukhamoy Mukho-

padhyay, Deptt. of

Bengali, Visva Bharati,

Santiniketan

१६७

डा० लक्ष्मीनारायण दुवे

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग सागर, वि०वि० ८४

डा० मत्स्यप्रकाश

निदेशक, राजस्थान पुरातत्व संग्रहालय ८८

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

हिन्दी विभाग,

उदयपुर विश्वविद्यालय

१२४

डा० देवीनाथ पामोवाल

निदेशक, साहित्य मन्थान, रा० वि०

उदयपुर

१८४

डा० गोपीनाथ शर्मा

रीटर्, इतिहास विभाग, राजस्थान

विश्वविद्यालय

६२

महाराणा प्रताप और तवर नरेश

महाराणा प्रताप : कुशल शासक, चतुर कूटनीतिज्ञ  
एवं योग्य सेनापति

कर्मवीर भामाशाह  
कुम्भलगढ का युद्ध

पातल और पीथल का पत्रव्यवहार

विरुद्ध छिहत्तरी

अरावली पहाड़ों का सामरिक महत्व

आचार्य हीरविजय सूरि की महाराणा प्रताप  
का दिया हुआ पत्र

महाराणा प्रताप सम्बन्धी नवीन ज्ञातव्य

वीर भावना के प्रमुख प्रेरक - महाराणा प्रताप

अकबर के चित्तौड़ आक्रमण का कवि  
ऋषभदास कृत वर्णन  
महाराणा प्रताप और मानप्रकाश

The Battle of Haldighati

Is Maharana Pratap to blame  
for resisting Akbar

महाराणा प्रताप सम्बन्धी कतिपय जनश्रुतियां

महाराणा प्रताप सम्बन्धी कतिपय ऐतिहासिक स्थान

श्री रतनचन्द्र अग्रवाल

अधीक्षक, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ६८

डा० देवीलाल पालीवाल

निदेशक साहित्य संस्थान, राजस्थान २०८

विद्यापीठ, उदयपुर

श्री बलवन्तसिंह महता, उदयपुर ११३

श्री रामवल्लभ सोमानी

जयपुर १०१

डा० मनोहर शर्मा

सम्पादक, 'वरदा', बिसाऊ १०५

डा० मोतीलाल मेनारिया

परामर्शदाता, साहित्य संस्थान

रा० वि०, उदयपुर १०६

श्री जमनालाल दशोरा

अध्यक्ष, भूगोल विभाग

श्रमजीवी महाविद्यालय,

रा० वि० उदयपुर ११६

श्री अग्रचन्द नाहटा

बीकानेर १३०

डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

निदेशक, राजस्थान सा० अकादमी १३४

डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया

अलीगढ़

श्री अग्रचन्द नाहटा

बीकानेर १३६

डा० प्रभाकर शास्त्री

संस्कृत विभाग,

राजकीय महाविद्यालय, सोकर १४४

Dr A L Srivastava

Agra १७५

Dr. Dashrath Sharma

Head of the Deptt. of

History, Jodhpur University

१८२

श्री देव कोठारी

शोध अधिकारी, साहित्य संस्थान, रा० वि०

उदयपुर

१६६

श्री देव कोठारी

शोध अधिकारी, साहित्य संस्थान, रा० वि०

उदयपुर

# द्वितीय-खण्ड

## प्राचीन मौलिक स्रोत

### [क] संस्कृत काव्य

अमरसार	जीवधर	३
राजरत्नाकर	सदाशिव	८
राजप्रशस्ति	रणछोड़ भट्ट	१६
अमरकाव्य	रणछोड़ भट्ट	२६

### [ख] प्राचीन राजस्थानी काव्य

भूलणा महाराणा प्रतापसिंहजी रा	माला सांदू	५३
विरुद-छिहत्तरो	दुरसा आढा	७१
भामा धावनी	विदुर वायवक	८१
राणारामो	दयालदास	८५
राजप्रकाश	किशोरदास	११३
सगवरासो	गिरधर आसिया	११६
खुमाणरामो	दलपतविजय	१३१
पतायण	अज्ञात	१४१
वंशभास्कर	सूर्यमल मिश्रण	१५१
प्रताप सम्बन्धी राजस्थानी फुटकर काव्य	प्रकीर्ण	१६५

(लगभग ६० गीत, कवित्त, छप्पय आदि)

### [ग] ख्यात, वात, वंशावली

मुहता नेणसो रो ख्यात	३
बांकीदाम रो ख्यात	४
उदयपुर रो ख्यात	६
रावल राणा रो वात	७
राणा प्रताप रो वात	१०
बहादुरशाही	१२

### [घ] ताम्रपत्र, पट्टे, शिलालेख

२३

# Foreword

Sahitya Sansthan, Rajasthan Vidyapeeth is presenting a comprehensive volume on the great hero and patriot of Indian history, Maharana Pratap. My colleagues of Sahitya Sansthan have been engaged in collecting, compiling and editing the old non-Persian record and literature concerning Pratap for the last few years and it is highly creditable that their strenuous labour has produced immensely satisfactory results. Much remains to be done, I feel, before a real, if not a final, word can be said about the history of Rajasthan. The present venture is an effort in that direction.

Since Sahitya Sansthan took its present shape in 1942, about 26 years ago, Rajasthan Vidyapeeth has desired it to develop as an agency surveying, collecting and preserving rich Rajasthani literature, including folk literature, rapidly vanishing under the onslaught of times. Nobody is unaware of the richness of the literature created and preserved in Rajasthan, considering the variety of theme and composition, elegance of style, abundance of sentiment and rhetorics and proficiency of craft that it contains. During last several hundred years Rajasthan has also produced many a brilliant literateur not only in Rajasthani language but also in Sanskrit, Prakrit, Apabhraṃś and Hindi languages. Composition in Sanskrit has continued as late as recent times. It is an acknowledged fact that the initial Hindi literature took its roots in this part of the country and the first sapling came into being here. This consideration enhanced, still more, the significance of our efforts in this direction. Pioneering efforts of Sahitya Sansthan followed by other agencies have, as is well known, produced highly valuable results in discovering several writers and writings, hitherto unknown, thereby serving immensely the cause of Hindi, Sanskrit and Rajasthani literature. But for the indifference, lack of perspective and sufficient cooperation on the part of the government and other similar agencies, the magnitude of the work done would have been far greater. The same state of affairs continues today and none can say what and where several more treasures are lying hidden and unknown. Only a sustained and pervasive effort engaging all necessary

and possible means and resources can still discover and save many a jewel, several of which have been moth-eaten and the rest are also going to meet the same fate with the passing of time. Would the Rajasthan Government and other agencies rise to the occasion.

Sahitya Sansthan has attained its initial objectives and the services rendered by it are known to all. It is now going to take the shape of a higher Indological research institute, catering to the needs and requirements of developing and expanding research work in various disciplines in Rajasthan and I wish godspeed to my zealous colleagues working in the Institute

I congratulate the Sahitya Sansthan workers for the stupendous task they have performed in preparing the present volume and I hope it would be received with appreciation and goodwill by scholars and people everywhere in the country.

*Janardan Rai Nagar*

Upkulpati,

Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur

# Preface

Actual efforts are now being made to sketch the history of Rajasthan by some of our eminent historians. Indeed these efforts are the first attempts to prepare the real history of Rajasthan, as no such work covering all its aspects has so far been prepared. The laudable efforts of Col. James Tod, Shyamaldas, G. H. Ojha and others prepared no doubt a basic framework providing useful material for its scientific treatment. Previous histories have been more or less dynastic and hence their scope and dimension were limited. Efforts being made to prepare a comprehensive regional history of Rajasthan phasing it in proper stages and periods and sifting and testing all the available data are therefore to be welcomed and the scholars engaging their talents in performing this stupendous task, and the Government and other agencies assisting and cooperating with such a noble endeavour deserve warm congratulations.

A welcome and encouraging development in the educational field in Rajasthan, in recent years, has been the growth of vivid realisation, keen inclination and spirited endeavour for learning and research in the scholars of various disciplines. Universities and voluntary institutions devoted to research work are playing their just part in attaining this object. Several doctors have been produced in various disciplines under the able guidance of learned supervisors during last few years and that process continues with speed and scope. It is a very healthy and beneficial feature in view of development and expansion of learning and knowledge in this state of the country.

Attention may be drawn to some primary difficulties which come in the way of each and every entrant to this field in Rajasthan which invariably dampens the spirit of an enthusiast at the very beginning. These difficulties are the lack of comprehensive survey of the research data by competent agencies, want of resourceful efforts to collect and preserve research material at suitable centres and absence of coordinated, systematic and persistent efforts for compilation and publication of valuable data for the use of research scholars. If these deficiencies are not immediately overcome, the noble cause of research

in Rajasthan is going to suffer terribly. The scope of research shall remain limited with lesser avenues being opened. In absence of the accumulation of data and provision of proper facilities for research, the scholars have to waste a great part of their energy and time. In such circumstances, the work being done would be lacking in richness of content and wide treatment of subject as a result of which the scholar would find difficulty in proper comprehension of the subject and arriving at the correct judgement.

The idea of preparing this volume has been to collect, compile and publish entire old Rajasthani, Sanskrit and Hindi literature concerning Maharana Pratap, most of which has hitherto been either unknown or unused. As is known the primary attempts of our historians have been to prepare history of our country as a whole, as a consequence of which the scope of the treatment of regional history therein remained limited and hence generally partial and superficial. Another result of that emphasis has been the use of only such literature in the main, as was easily available at various centres and which had direct concern with their scheme. Most of such literature concerning medieval history is in Arabic and Persian. During last few years the historians devoted to preparing regional histories have opened new horizons of knowledge in historical research, as they, in course of their studies, have laid greater emphasis on the critical study of such historical evidences as are available, though mostly scattered and fragmentary, in the concerned region itself. Most of such material is found written either in Sanskrit or regional languages, though in that process certain new Persian and Arabic works also come to light. Rajasthan in this respect is lagging behind almost all other States of India. In spite of the fact that various Research Institutes have been working in this State for last several years, not much has been achieved in this field. It is the responsibility of the Government of Rajasthan to realise and see that the government institutions in general and voluntary agencies in particular are assisted adequately and directed to reorient and devote their activities towards the critical study of Rajasthani literature.

Maharana Pratap is one of those historical figures of this country who has influenced the course of historical deve-

lopment and who has been an ideal hero of the posterity. He has been remembered as a man of great ideals representing elemental spirit of India. His heroism, asceticism and sacrifice have been regarded as unique in the entire world history. His tenacity of purpose and undaunted dedication to his pledge to safeguard the liberty of his country at all costs find few parallels in history. It appears, though, amazing yet the history records that Pratap a possessor of a tiny island in the vast ocean of the Mughal empire, not only sustained and survived the ceaseless onslaughts of fierce waves of Mughal invasions but continued to stand erect with crimson banner flying aloft unlowered and unyielded, and succeeded in reconquering most of his land in the end. Akbar's victorious forces swept the entire country up to south subjugating various kingdoms and even wiping off some of the traditional Indian states with centuries old lineage and history. However, an affliction always troubled the great emperor that all his personal, diplomatic and military resources and the might of the great, the greatest in the contemporary world, empire failed to subdue Mewar.

Such a magnificent feat of Rana Pratap, his adherents and his people has not been justly and properly assessed by the historians, and most of them, while lauding his heroism and sacrifice, have rejected him as an obstinate, narrow-minded and reckless fellow lacking sagacity and state manship. Some even go to the extent of suggesting that he harmed the cause of national unity and integrity thereby indirectly insinuating him for unpatriotic and unnationalistic attitude. It is a great irony that the scholars who, on the one hand, perceive elemental spirit of India in Maharana Pratap, at the same time make light of his objectives, purposes and performance when comparing him with Akbar. Such an attitude generates great confusion. The real error lies in the fact that while assessing the personalities, the contemporary conditions, social tendencies and trends of thought are over-sighted on account of subjective approach and modern trends of thought and beliefs are mechanically applied. The objective approach of a historian requires of him not only to collect, sift and study the data but test them methodically and critically. The critical and methodical study of the data would require primarily the clear understanding of the times, he is working on. Preconceived notions or political and utilitarian motives of a historian lead to distortion,



misinterpretation and misrepresentation doing great injustice to historical truth.

It has been widely felt that the historical role of Maharana Pratap has not been justly and properly projected on account of obvious factors. It is high time that such an attempt is made. The publication of this volume is an humble effort in that direction.

The contents of the volume have been arranged in two parts. First part contains views and articles of present-day scholars and historians on Maharana Pratap's life and accomplishments, his impact on Indian national movement as a whole and his role as a freedom-fighter in Indian history. It also contains a collection of poems in Hindi and Rajasthani by some of the prominent poets. The second part contains the collection of old Rajasthani, Sanskrit and Hindi literature and a few copper-plates, parwanas and inscriptions concerning Pratap. They are important from research point of view and bring into light several aspects of Pratap's work and outlook.

The contents of the volume would help the scholars and thinkers to view the role of Maharana Pratap in true perspective and would perhaps persuade some of those historians to revise their judgement who have viewed Pratap as only a zamindar, narrow-minded clan-leader, an obstinate fighter, a short-sighted ruler and a man harming the interests of the Indian nation as a whole.

×

×

×

### **National legacy of Maharana Pratap**

It is in the habit of a nation to bring out, during the times of its adversity, those jewels from its treasury of the past which would guide, rouse and inspire its people to stand united, work together and struggle valiantly to attain its objectives. The contents of this volume present Pratap as one of the jewels of Indian history whose memory has been cherished by Indian masses through generations. A great calamity befell Indian nation in the middle of the eighteenth century when it was enslaved by the British. As the anti-British national movement grew in momentum, Maharana Pratap became an inspiring

name for the Indian people. He was remembered and portrayed as an ideal freedom-fighter of Indian history in almost all nationalities of India. From Punjab to Bengal and from U. P. to Karnatak, Pratap has figured in all regional literature as a great national hero bequeathing precious heritage of selfless struggle for freedom against foreign domination. It is characteristic that we don't find Indian people remembering Akbar, the Pratap's great adversary, in the same spirit. How the history sometimes refutes and repudiates the historians who, on account of subjective factors, try to misinfer the past events, is amply proved in the case of the assessment of two great adversaries of the sixteenth century India, Pratap and Akbar. Dazzled by Akbar's successes in territorial conquests and subjugation of the great part of India and his liberal policies, the historians, in general, have tended to portray Akbar as a great national monarch and unifier of the country, in consequence of which Pratap was considered, on account of his resistance to Akbar, to have acted as an obstacle in the way of Akbar's efforts for national welfare. Such historians view Pratap as a fighter for narrow, petty ideals. This approach of the English and Indian historians was influenced mostly by the subtleties of the British Imperial thinkers. Throughout the nineteenth century and in the beginning of the present century the British were craftily trying to present themselves as the great saviours, unifiers and builders of modern India. But the Indian people saw in Pratap, despite his being a ruler of a small territory of Mewar vis-à-vis Akbar's gigantic empire, a worthy representative and perpetuator of great traditions of Indian culture and a great national hero and freedom-fighter. Pratap was again remembered recently, along with other national heroes, when India had to wage war on its borders against the aggressive operations of Pakistan and China,

### **Defender of Kshatriya Values**

The study of entire Rajasthani, Sanskrit and Hindi literatures produced in Rajasthan during 16th, 17th and 18th centuries show that Rajput heroes like Pratap and Durgadas remained ideal personalities for the people and the literateurs. No literary work is found written in Rajasthan since the time of Pratap which has denounced or challenged him on the ground of principles and objectives, though there are a few contemporary

or later works glorifying Man Singh Kachhawaha's valour and victory against Pratap. The contemporary and later works depict Maharana Pratap as a man, having all qualities of a real Kshatriya, their ideal character, i.e., a valiant and courageous fighter, a person of high principles and moral standards, an irrepressible freedom-lover, a staunch believer in Rajput glory and an indomitable defender of their faith and beliefs, but at the same time liberal and tolerant towards other beliefs. In brief, Maharana Pratap struggled not only for autonomy and independence of Rajasthan but for the defence and survival of traditional cultural values (क्षात्र-धर्म), characteristically found in the Rajputs. India has always been a land of diversities. Its unity has survived in due recognition of its diversities, a stream formed out of various streamlets joining together, i.e., nationalities of India. Pratap faced valiantly the onslaughts of an autocratic and wily power on the cultural identity of this region. His struggle was therefore for the defence of Rajput individuality as well as the basic values of Indian culture.

A major distinction between the histories of Europe and India is seen in the fact that while the former emerged as a continent of several nations despite several efforts for unity from time to time in its history, the latter stood, in spite of periodic interruptions of dismemberment, as one cultural entity, a united nation of various nationalities. It has been possible, primarily, on account of the spirit of tolerance and catholicity in the Indian thought. In India, as also elsewhere, unity apparently brought about by force and autocracy always proved unstable and soon disappeared. Akbar was no exception to it. Despite his liberal policies and toleration, he could not rise above his basic desire of founding a dynastic empire of the Mughals in India. Much has been said by Dr. R. P. Tripathi and others about the so-called imperial confederation of Akbar and his national monarchy, but the truth remains that his was an autocratic personal rule and had nothing in common with the institution of Rajput fraternity or confederation. Those who accepted Mughal supremacy had to surrender everything including self-respect to the Emperor. They, indeed, turned into faithful servants of Akbar engaging their personal talent and military strength for consolidation and expansion of the empire of the Mughals, the foreign invaders.

Pratap was neither fanatic nor faddish as some thinkers have tried to portray him and thereby damage his historical role and disqualify him of the noble spirit he possessed. In respect of catholicity of thought, nobility of character and purity of principles he far surpassed Akbar. He represented, as Dr. A. L. Srivastava opines, the elemental spirit of India. Though Pratap visibly fought a defensive war in a small territory of Mewar, yet his struggle contained those elements which have been traditionally the source of real national unity and integrity of this country.

### Struggle against foreign domination

Fundamentally Pratap's struggle was a struggle against foreign domination. The Mughals, like the Turks and Pathans, were foreigners who came to India as invaders from central Asia and subjugated India in order to establish their tribal hegemony and dynastic empire. The Turks and Pathans had failed to crush the power of Rajputs, who being united in a fraternity under the leadership of the Sisodia rulers of Mewar waged interminable war against the foreign aggressors and contributed a great deal to the instability of the foreign rule at Delhi. Akbar, the sagacious leader of the Mughals gave a new direction to the policies followed by the Delhi sultans. He, having risen above the tendencies of religious tyranny, social oppression and political predominance, befriended with Indian martial races like Rajputs offering them high posts, mansabs and jagirs and turning them into useful instruments for stabilisation and expansion of the Mughal rule in India. It may be said that the succeeding foreign power, the British also followed almost the same policies in course of subjugating India in 18th and 19th centuries. Akbar emerged as a great wily statesman in sowing seeds of disruption in Rajput fraternity, fanning up clan-rivalries among them interfering in the succession disputes in Rajput states, tempting the disputants for Mughal support and Mughal mansabs, devoiding Rajputs of their honour, self-respect, national instincts, and sense of Rajputs fraternity and engaging their martial talent and military strength in conquering India including their homeland, Rajasthan, for the Mughals.

The Rajputs did not yield all at once to Akbar's craftiness. It was Amber-Mughal alliance in 1562 that shook the entire

Rajput fraternity. However other Rajputs still resisted. Rathors fought valiantly and Akbar had to use force in conquering Ajmer, Jetaran, Nagor and Jodhpur with Kachhawaha assistance. Chitor was as yet regarded as the central seat of Rajput confederation and, therefore, the Mughal blow, assisted by his Rajput allies, fell on Chitor in 1567--68. The conquest of Chitor was eventually followed by almost non-violent subjugation of the major part of Rajputana leaving the hilly parts of Mewar and adjoining states in the south, Bundi, Idar, Dungarpur and Banswara. Here Akbar's clever diplomacy did not work and he despatched Mughal armies to conquer Mewar but with little success. He was never able to establish stable peace and control in this area on account of undeterred and undeviating resistance of Maharana Pratap and his allies.

### **Maharana Pratap and other Rajput rulers**

It would be wrong historically to assume that the Rajput rulers, who accepted Mughal domination, were guided by the sincere spirit of national unity and social fusion. The fact is that the Rajput confederation had weakened since the battle of Khanua (1527 A. D.), clan-rivalries had erupted in Rajputs throughout this region and almost every Rajput state was engulfed in civil-strife. Akbar, craftily, fanned their rivalries and feuds and interfered in the internal affairs of Rajput states with stratagem and force, eventually bringing into the Mughal fold one Rajput state after another. The helpless and desperate Rajputs having fallen prey to the factious and revengeful feelings and fear of losing their possessions and being tempted by the luxuries of the Mughal court, vied with each other in their flight to Agra in order to gain the favour of the Emperor. They were motivated by this desire in all their actions and attitudes. They surrendered their honour, principles and power to Akbar. It is not true to say, as Dr. R. P. Tripathi, Dr. G. N. Sharma and others do, that Pratap, in his strenuous struggle against Akbar, was actuated by his clan-interests or feelings of self preservation. The truth remains that it was the Rajput allies of Akbar who were carried by such narrow and petty interests. The contemporary public opinion in Rajputana and elsewhere in the country viewed their actions in this spirit. In the words of contemporary poets:

सुख हित स्याल समाज हीन अकबर बस हुआ ।

रोसीलो मृगराज पज न राण प्रतापसी ॥

—दुरसा आढा

[ Hindu jackals submitted to Akbar for pleasure and comfort but Pratap, the lion would not do it ]

हाथी बघ घणों घणों हैमर बघ कसूं हजारो गरब करी ।

पातल राण हसै त्या पुरसा, भाडै महला पेट मरी ॥

—जाडा मेहडू

[ Those who have become mansabdars of Akbar, enjoy all means of pleasure and comfort but Rana Pratap disdains such a life, which is acquired by joining Akbar's service ]

जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार ।

रह राखियो खत्री धर्म राणी, सारा ले वरतै संसार ॥

—पृथ्वीराज राठीड़

[ Akbar, his power and craftiness all would perish, but Pratap's name would live for ever who kept his pledge and protected Kshatriya Dharma ]

### Mughal Confederation or autocracy

Dr R. P. Tripathi's view of the Mughal empire under Akbar being the imperial confederation is misleading and cannot be justified by sober facts of history. As a matter of fact in spite of his liberal and benevolent measures, Akbar's was a dynastic and autocratic rule. He enjoyed unlimited powers. All his grantees were in fact his servile servants and the Rajput rulers, who joined Mughal service had, in theory, surrendered their patrimonies as the jagirs of the Mughal empire. The Mughal Emperor issued sanads of succession on the death of the rulers, interfered in the succession, sometimes overruling the strict line. He several times resumed the parts of their states at his will and handed them over to other ones. The rulers, falling into disfavour of the Emperor on account of their independent attitude or any other reason always feared the loss of their possessions. The Rajput rulers undoubtedly led a very luxurious and easy life at the Mughal court but at the cost of their self-res-

pect, independence and traditional status. Several instances to this effect may be cited from the Persian and other sources. A Rajasthan contemporary chronicle, **Dalpat Vilas** provides interesting information as to how the self-respect and dignity of the Rajputs, the so-called pillars of the Mughal empire, were abused by the whims and fads of the Emperor. He himself whipped a Rajput noble on a slight and got another respected noble whipped in presence of other courtiers who, later, out of such unbearable humiliation and indignity, committed suicide by stabbing himself. It may, therefore,<sup>b</sup> concluded that neither in theory nor in practice the Rajput rulers at the court of Akbar were something like the confederates of the Mughal empire.

Much has been said about Pratap's error, nay fault for not accepting Mughal alliance ( Mughal service ! ) How could Maharana Pratap be expected to brook the ignominious and servile conditions of the Mughal court in the name of alliance and how could he be expected to use his strength and means in subjugating his own homeland for a foreign power. He had the courage and daring of his forefathers. He was fully conscious of his ancestral glory. His ancestors like Kumbha and Sanga had led the Rajput fraternity in defence of their homeland and Kshatriya Dharma and had always held aloft the crimson banner of freedom, never submitting to a foreign rule Pratap's predecessors, like other brave Rajputs, had performed unequivalled sacrifices in course of their struggle. A proud and courageous Pratap, inheriting such a glorious legacy, could not follow other Rajput rulers. Abul Fazl himself says "The Rana's arrogance was swollen by the fact of the glory of his line of ancestors who were in ancient times rulers of India. The strength of his position, the extent of his territory and the large number of Rajputs who would sacrifice life for honour, cast a veil over his vision. He paid no heed to the fortune which was conjured with eternity and regarded Man Singh, leader of the victorious [ Mughal ] army as a landholder subordinate to himself". The contemporary Indian view regarded Maharana Pratap, the ruler of Mewar, as राव होंदवाँ, रायाँ तिरख होंदवाँ or होंदूनाय. The ruler of Mewar, in medieval times, was always respected as the symbol of liberty and security of the people.

#### Constructive genius

Dr. Raghubir Singh's view about Pratap is not justified

when he says that Maharana Pratap's role, considered from a dispassionate point of view, was negative and was entirely devoid of constructive approach. This is a superficial analysis of Pratap's role and policies. It is true that the interminable struggle against Akbar did not permit Pratap to engage himself a good deal in the social welfare activities for his country. But this fact can not devoid him of his other achievements and contributions. He mastered the art of guerrilla warfare, which, in spite of his meagre means and resources, was responsible for his ultimate success against Akbar and which was successfully followed by Shivaji in his struggle against Aurangzeb. He reorganised the administration of Mewar on war-footing so well that it withstood all strains and stresses of Mughal invasions and diplomatic efforts. His diplomatic genius, despite his weak position, kept Rajputana constantly in ferment and in greater part of this region Akbar could never win stable allies and faithful followers. He managed the war-economy of Mewar so successfully that never a noble or a soldier revolted against him or deserted him. No instance of betrayal is found and, on the other hand, the masses at large, who are generally found, in those times, playing a disinterested and indifferent part in politics, followed and assisted Pratap as active partners in his long-drawn struggle. It was by no means a small achievement of Maharana Pratap's genius as a great organiser and ruler. No last word can be said about his patronage of art and literature as, of late, Chavand School of painting has been brought to light and a few Sanskrit works as *विश्ववल्गुः*, *राज्याभिषेक पद्धतिः* and *मुहुर्तमालाः* by Chakrani Misra have been discovered, prepared under the patronage of Pratap. The greatest success of his genius lies in the fact that at the end of his long struggle against mighty Akbar, Pratap succeeded and reconquered most of his territory.

### Responsibility for war

Dr G. N. Sharma and some other scholars hold Maharana Pratap responsible for the war between Mewar and Mughal empire which could be avoided if Pratap had the sagacity to accept the terms of Akbar. Had Pratap done so, Mewar would have enjoyed peace and the devastation and resultant backwardness of Mewar could have been avoided. This is sheer subjectivism which prevents one to study real trends of thought, in



vogue, in a particular period. It is an incorrect historical approach to read the ideas and institutions of modern age in the times of the 16th century India. It was the age of monarchy and feudal institutions. The entire period witnesses interminable big and small wars between empires and kingdoms for land and power. Even if we leave apart Mewar, Akbar, throughout his reign, fought wars against big and small Indian powers to establish his dynastic empire in India. Let us see what was Akbar's own view of the institution of war. Abul Fazl writes, "A monarch should ever be intent on conquest, otherwise his neighbours rise in arms against him. The army should be exercised in warfare, lest from want of training they become self-indulgent." This was a typical view of the times. True peace, in the history of nations, has always been maintained by military preparedness, the least indulgence in that regard resulted in the subjugation of one country by another. The purchase of peace with Akbar on the part of Pratap would have meant submission and loss of independence of his land. If Mewar suffered ruin and devastation on account of war, Akbar carried them with his conquest every where in India. As regards backwardness of Mewar the conditions in Mewar, subsequent to Pratap's period, do not support the view.

The most valuable legacy Pratap bequeathed to his posterities is that nothing is more precious in human life than the liberty and that one should stake and sacrifice everything to preserve it.

India has produced many a great man and woman in its centuries long history. Maharana Pratap occupies an honourable place among them. He may be considered as the greatest of great personalities of medieval India on account of his noble character, high ideals, unequalled heroism and chivalry and unique sacrifice. As a ruler, organiser and general he was, objectively viewed, no less capable than Akbar or Shivaji. History placed Shivaji in more favourable and advantageous conditions in comparison to Pratap. In the decadent period of the Mughal empire, when the pitcher of Aurangzeb's fanaticism and oppression was filled to the brim, the genius of Shivaji carved out a nation of the Marathas. Maharana Pratap's task was even harder. The sun of the Mughal empire was then rising high in the

Indian skies with all its lustre and power and the entire Rajput fraternity was in a great disarray. Most of the Rajput rulers had already bowed before the rising sun and Mewar had lost a great part of its territory, men and means. It was Pratap's great achievement that he kept the Rajput fraternity constantly in ferment and not only kept Mewar independent, but enabled Akbar to bring entire Rajputana under his total and stable control. If Rana Sanga led the forces of Rajput confederation against Baber's invasion, his descendant, Pratap led it in its struggle for survival, and he succeeded.

In respect of moral conduct, nobility of character and scrupulousness of principles Maharana Pratap stands higher than any other personality of the age. A Gujarati writer, D. R. Mehta gives an excellent expression when he says, "Pratap had an important quality in himself that his heroism did not suffer from baseness . 'प्रतापसिंह मां एक महत्व नो, गुण एहत्तो के तेमनां वीरत्व मा नीचता नु चिन्ह जणातु नथी'.

D. L. Paliwal  
Director,  
Sahitya Sansthan,  
Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur.

Riches I hold in light esteem  
And love I laugh to scorn,  
And best of fame was but a dream  
That vanished with a morn,  
And if I pray, thy only prayer,  
That moves my lips for me,  
Is, 'leave the heart that now I bear  
And give me liberty'

—Emile Brontë

# महाराणा प्रताप के परिजन

पिता—महाराणा उदयसिंह

माता—जेवन्तीबाई सोनगरी

विमाताएं—संध्याबाई सोलंकरा, जेवंताबाई मोदडेची, लालबाई परमार, धारबाई भट्ट्याणी (जगमाल की मा) गणेशदे चहुवान, वीरबाई भाली, लखाबाई राठोड [?], कनकबाई महेची, .....खीचण ।

भ्राता—शक्तिसिंह, कान्ह, जेतसिंह (जयसिंह), वीरमदेव, रायसिंह (रायमल), जगमाल, सगर, अमर, पंचायण, सीया, सुजाण, लूणकरण, महेशदास, सार्दूल, रुद्रसिंह, [इन्द्रसिंह?] नेतसिंह, नगराज, सुरताण, भोजराज, गोपालदास, साहवखान ।।

वहिनें—हरकुंवरबाई तथा १६ अन्य ।

पत्नियाँ—अजवादे परमार [महाराणा अमरसिंह की मां] पुरवाई सोलंकरा, चंपाबाई भाली, जसोदाबाई चहुवान, फूलबाई राठोड़, सेमताबाई हाड़ी, आसबाई खीचण, आलमदे चहुवान, अमरबाई राठोड़, लखाबाई राठोड़, रतनावती परमार ।

पुत्र—महाराणा अमरसिंह, सीहो, कचरो, कल्याणदास, सहसो [सहसमल], पुरो [पूरणमल], गोपाल, कल्याणदास, भगवानदास, सावलदास, दुरजणसिंह, चावो [चन्द्रसिंह], सुखो [सेखो] हाथी, रायसिंह, मानसिंह, नार्थसिंह, रायमाण, जसवन्तसिंह ।<sup>2</sup>

---

1 श्री गो. ही. ओझा के अनुसार महाराणा उदयसिंह के २० रानियां, २५ कुंवर और २० कन्याएं थीं । श्री ओझा ने रानियों के नाम नहीं दिये हैं । पुत्रियों में एक के अतिरिक्त अन्य का उल्लेख नहीं मिलता । विभिन्न वंशावलियों में दिये गये नामों में फर्क मिलता है ।

2 श्री ओझा के अनुसार महाराणा प्रताप के ११ रानियां और १७ कुंवर थे । प्रताप की कन्याओं के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं मिलता ।

# महाराणा प्रताप के जीवन का प्रमुख घटना-क्रम

१	महाराणा प्रताप का जन्म	६ मई, १५४०
२	अकबर द्वारा मेवात; अजमेर, नागौर एवं जेतारण विजय	१५५६; १५५७
३	कुंवर अमरसिंह का जन्म	१६ मार्च, १५५६
४	महाराणा उदयसिंह द्वारा उदयपुर वसना	१५५६
५	सिरोही के देवडा राव मानसिंह का मेवाड़ में शरण लेना	१५६२
६	मालवा के वाजवहादुर का मेवाड़ में शरण लेना	१५६२
७	अकबर की आमेर से सन्धि	१५६२
८	अकबर द्वारा मेड़ता विजय और जयमल का चित्तौड़ आगमन	१५६२
९	उदयसिंह की मोमट के राठोड़ों पर विजय	१५६३
१०	अकबर का जोधपुर पर आक्रमण एवं विजय	१५६३
११	महाराणा उदयसिंह द्वारा चित्तौड़ त्याग	१५६७
१२	अकबर द्वारा चित्तौड़ विजय	२५ फरवरी, १५६८
१३	अकबर द्वारा रणथम्भौर विजय	२४ मार्च, १५६९
१४	अकबर का नागौर दरबार तथा जोधपुर, बीकानेर, जयमलमेर का मुगल प्राधीनता स्वीकार करना	५ नवम्बर से २५ दिसम्बर, १५७०
१५	उदयसिंह की मृत्यु और प्रताप का गोखूदा में राजतिलक	२८ फरवरी, १५७२
१६	मुगलदूत जलालखा कोरवी का मेवाड़ घाना	अगस्त-सितम्बर १५७२
१७	कुंवर मानसिंह कछवाहा का अकबर के दूत की तरह मेवाड़ आकर प्रताप से मिलना	अप्रैल, १५७३
१८	अकबर के तीसरे दूत नगवन्तदाम का प्रताप से मिलना	सितम्बर-अक्टूबर, १५७३
१९	टोडरमल का प्रताप से मिलना	दिसम्बर, १५७३
२०	दुन्दीघाटी का युद्ध	१८ जून, १५७६
२१	ईदर के नारायणदाम, सिरोही के नुरताण, जामोर के ताजगा, जोधपुर के सन्तमेन, खूंदी के गूदा द्वारा मुगल विरोधी कार्यवाहियाँ	जून-अक्टूबर, १५७६
२२	प्रताप द्वारा गोखूदा गायम सेना छोड़ गाही घाटों पर आक्रमण	अगस्त-नवम्बर, १५७६
२३	मुगल सेनाओं द्वारा जामोर, सिरोही एवं ईदर विजय करना	अक्टूबर, १५७६

२४	अकबर की मेवाड पर चढ़ाई	अक्टूबर १५७६
२५	ईडर के नारायणदास, सिरोही के राव सुरताण की पुनः मुगल विरोधी कार्यवाहिया	जनवरी-फरवरी, १५७७
२६	मुगल सेना द्वारा पुन. ईडर विजय करना	१६ फरवरी, १५७७
२७	मुगल सेना द्वारा बूंदी विजय करना	मार्च, १५७७
२८	प्रताप द्वारा मोही तथा अन्य मुगल थानों पर आक्रमण तथा विजय	अक्टूबर, १५७७
२९	शाहबाजखा की मेवाड पर चढ़ाई	१५ अक्टूबर, १५७७
३०	शाहबाजखा द्वारा कुम्भलगढ़ विजय	३ अप्रैल, १५७८
३१	प्रताप का छप्पन के राठोड़ों के विद्रोह को दबाना और चावड राजधानी बनाना	१५७८
३२	भामाशाह का मालवा पर आक्रमण और प्रताप को लूट का घन भेंट	१५७८
३३	प्रताप की सेना का हजरपुर-वासवाडा पर आक्रमण	१५७८
३४	शाहबाजखा का द्वितीय आक्रमण	१५ दिसम्बर १५७८
३५	शाहबाजखा का तृतीय आक्रमण	६ नवम्बर, १५७९
३६	प्रताप का मेवाड के मैदानी भाग से मुगल थाने उठाना और मांडलगढ़, चित्तौड़गढ़ तक आक्रमण करना	१५८०-१५८४
३७	प्रताप के मुगल सेवक भाई जगमाल का सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध युद्ध में मारा जाना	१५ अक्टूबर, १५८३
३८	मुगल सेनापति जगन्नाथ कछवाहा की मेवाड पर चढ़ाई	दिसम्बर, १५८४
३९	जगन्नाथ कछवाहा का प्रताप के निवास स्थान (चावड?) पर आक्रमण	सितम्बर, १५८५
४०	खानखाना के परिवार के स्त्री-बच्चों को सादर लौटाना	१५८५
४१	प्रताप द्वारा मांडलगढ़, चित्तौड़गढ़ छोड़ कर समस्त मेवाड पर पुनर्विजय	१५८६
४२	महाराणा प्रताप की चावड में मृत्यु	१६ जनवरी, १५९०



सम्राट अकबर के जीवन-कार्य के विषय में भिन्न मत हो सकते हैं पर राणा प्रताप के जीवन की भव्यता के विषय में हृदय में एक ही वृत्ति जग सकती है-आदर और भक्ति । अकबर का साम्राज्य नष्ट हो गया । आज हम लोग अकबर और प्रताप दोनों महान विरोधियों से अविरोधी प्रेरणा पा सकते हैं । तो भी हृदय कहता है कि राणा प्रताप की विभूति उज्ज्वलतर है । दोष दोनों में थे । लोकोत्तर गुण दोनों ने दिखाये हैं लेकिन प्रताप की विभूति दिव्य है ।

—काका कालेलकर

- इतिहासज्ञों के अभिमत
- राष्ट्रीय कवि-वाणी
- विविध लेख

भारतीय भाषाओं के साहित्य में  
महाराणा प्रताप

महाराणा प्रताप का व्यक्तित्व  
कृतित्व एवं आदर्श



So, when a good man dies,  
For years beyond his ken  
The light he leaves behind him  
Lies upon the paths of men.

- *Longfellow*

अभिमत

विविध इतिहासज्ञ  
एवं विद्वान्

# पुष्पांजलियां

If we would remember Pratap, we must copy Pratap's sacrifice and heroism.

—Mahatma Gandhi

May the memory of splendid deeds of Rana Pratap inspire India's Youth to gallant effort and high endeavour.

—Jawaharlal Nehru

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण बनाये रखना है और उसके प्रतिफल की जनता के लिए पूर्ण करना है। इस कठिन कार्य को पूरा करने में राणा प्रताप के जीवन से मिलने वाली जो प्रेरणा है वह हमारे लिए सहायक होगी।

—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

राणा प्रताप ने जिन्दगी भर कोशिश की राजपूताने को एक बनाने के लिए। संयुक्त-राजपूताने का एकीकरण करने के लिये जितना कार्य और कोशिश राणा प्रताप ने की, उतनी किसी ने नहीं की।

उनका संकल्प आज परिपूर्ण करने का सीमाग्य हम लोगों को प्राप्त हुआ है। जो संकल्प उन्होंने किया था और वह संकल्प जिस मतलब से किया था वही मतलब से हम उसको परिपूर्ण करें।

—बल्लभभाई पटेल

# Noble Spirit

—Col James Tod

Pratap succeeded to the titles and renown of an illustrious house, but without a capital, without resources, his kindred and clans dispirited by reverses; yet possessed of the noble spirit of his race. He meditated the recovery of cheetore, the vindication of the honour of his house, and the restoration of its power. Elevated with this design, he hurried into conflict with his powerful antagonist, nor stopped to calculate the means which were opposed to him, Accustomed to read in his country's annals the splendid deeds of his forefathers, and that Cheetore had more than once been the prison of their foes, he trusted that the revolutions of fortune might co-operate with his own efforts to overturn the unstable throne of Delhi. The reasoning was as just as it was noble, but whilst he gave loose to those lofty aspirations which meditated liberty to Mewar, his crafty opponent was counteracting his views by a scheme of policy which, when disclosed, filled his heart with anguish. The wily Mogul arrayed against Pratap his kindred in faith as well as blood. The Princes of Marwar, Amber, Bikaner, and even Boondi, late his firm ally, took part with Akbar and upheld despotism. Nay, even his brother, Sagari, deserted him, and received, as the price of his treachery the ancient capital of his race, and the title which that possession conferred.

But the magnitude of the peril confirmed the fortitude of Pratap, who vowed, in the words of the bard, 'to make his mother's milk resplendent', and he amply redeemed his pledge. Single-handed, for a quarter of a century did he withstand the combined effort of the empire, at one time carrying destruction into the plains, at another flying from rock to rock, feeding his family from the fruits of his native hills, and rearing the nursing hero Umra amidst savage beasts and scarce less savage men, a fit heir to his prowess and revenge. The bare idea that son of Bappa Rawal should bow the head to mortal man was insupportable, and he spurned every overture which had submission for its basis, or the degradation of uniting his family by marriage with the Tatar, though lord of countless multitudes.

The brilliant acts he achieved during that period live in every true Rajpoot, and many are recorded in the annals of the conquerors. To recount them all or relate the hardships he sustained would be to pen what they would pronounce a romance who had not traversed the country where tradition is yet eloquent with his exploits, or conversed with the descendants of his chiefs, who cherish a recollection of the deeds of their forefathers and melt, as they recite them, into manly tears.

Had Mewar possessed her Thucydides or her Xenophon, neither the wars of the peloponnesus nor the retreat of the 'ten thousand' would have yielded more diversified incidents for the historic muse than the deeds of this brilliant reign amid the vicissitudes of Mewar. Undaunted heroism, inflexible fortitude; that which "keeps honour bright," perseverance, with fidelity such as no nation can boast, were the materials opposed to a soaring ambition, commanding talents, unlimited means, and the fervour of religious zeal, all, however, insufficient to contend with one unconquerable mind. There is not a pass in the alpine Aravulli that is not sanctified by some deed of Pratap some brilliant victory or oftener, more glorious defeat. Huldighati is the Thermopylae of Mewar; the field of Dewair her Marathon:

---

# His life a Saga of Rajput history

Dr. B.P. Saksena

Much has been written on and about Maharana Pratap , the hero of Mewar , the saviour of the independence of his kingdom and the ideal of succeeding generations of patriot and warriors . He stands forth as a beacon-star of singleminded determination and selfless sacrifice. His life of unending trials and tribulations which he suffered for a noble cause ; has become a saga of Rajput history . His indefatigable activities bring into bold relief not only the nobility of his character , but also what a single individual fired with higher purpose can achieve even if pitted against the heaviest odds . That he was a born leader of men admits of no doubt . He carried with him the untainted cooperation and voluntary support of the masses and classes alike.

Haldi Ghati remains an enduring memorial of his unshakable faith and unflinching resistance . True he lost the battle but he won the war, Every drop of Rajput blood which fell on the field during the frightful struggle and the subsequent carnage blossomed forth into living hatred and rancour against the aggressor . The entire Rajput land was stirred emotionally and though the existing conditions did not warrant general upheaval the tragedy created an indelible impression on the mind of the people at large . And as for Pratap , he did not know to bow even before the storm . He suffered defeat but resisted humiliation up to the last breath of his life .



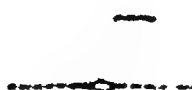
# A Great general

Sri Ram Sharma

Maharana Pratap occupies a very high place in the galaxy of the Hindu leaders who inaugurated a reaction against Muslim domination in India ..... Pratap belonged to—we should rather say he was the precursor of—the series that produced Shivaji in the Deccan and Ranjit Singh in the Punjab . He not only opposed Akbar's design in Mewar , he organised opposition thereto . Unlike the usual run of Rajput princes , he was always most happy , not in evading the Mughal invader , but in building coalitions to stem the tide of Mughal conquest in Rajputana..... . But more than anything else , he must be honoured for beginning that system of warfare for which credit has hitherto gone to Shivaji and the Maharattas alone , the system of guerrilla warfare, i.e., fighting and running away , so that he could fight another day . ' Pratap did not only inaugurate this system of warfare but carried it through as well successfully . The Mughal troops could overrun the country (Mewar) but could not conquer it .

Sanga was great but Pratap must be considered greater still who taught the Rajputs that it was as heroic to fight and run away , if one could succeed ultimately thereby , as to fight and die on the battlefield, who organised coalition after coalition thus teaching the Rajputs the lesson of unity in which they so much lacked .

Pratap was no fanatic . The personal honour of his enemies was as safe in his hands as in their own . A great general , a brave warrior , a successful organizer a prince among men, a generous foe , Pratap's name is sure to be honoured wherever these virtues are respected.



# योगी एवं तपस्वी

—पं० श्रीपाद दा० सातवलेकर

राजपूताने का प्रदेश अपनी आन पर मर मिटने के लिए सदा से इतिहास में प्रसिद्ध रहा है। भारतीय इतिहास में राजपूतों की वीरता स्वयं में एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसको लिखे बिना इतिहास अधूरा ही रहेगा।

स्वयं की भी आहुति देकर स्वातंत्र्य दीप को सतत प्रज्ज्वलित रखने वाले उन स्वातंत्र्य दीप के शाही परवानों में वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप का नाम अग्रगण्य है। महाराणा की वीरता, अोजस्विता, त्याग, तपस्या एवं हृदय में स्वातंत्र्य प्राप्ति की लालसा कायरों के भी रग रग में वीरता प्रवाहित कर देती है। जंगलों की छाक छानते हुए, घासों की रोटियां खाते हुए, जमीन पर सोते हुए भी उस नर व्याघ्र ने स्वयं को शहंशाह, जहापनाह आदि उपाधियों से विभूषित करने वाले आत्मप्रशंसी, मोना बाजार की आड़ में अपने विलासी कामनाओं की पूर्ति करने वाले अकबर को जो पाठ पढ़ाया और अपनी तलवार की जो घार दिखाई, वह क्या कमो भुलाई जा सकती हैं? मैं तो यह कहूंगा, कि महाराणा का जीवन एक योगी का, एक तपस्वी का, एक स्वातंत्र्य वीर का और सबसे बढ़कर स्वातंत्र्य समर के सेनानी का जीवन था।

## Evergreen memory

—K. M. Panikkar

The descendant of Mokal, Kumbha and Sanga who had for centuries fought against Muslim domination, was unlikely to accept the Mughal supremacy and in Rana Pratap this unbending resistance to the foreigner found a champion and a leader whose memory is still green in the minds of all Hindus. The alliance with Amber broke Rajput unity. The rulers of marwar, Bikaner and Bundi hastened to the Moghul court and were received with honour and given appointments. The Rana was isolated and in successive campaigns made to feel the power of the empire. Akbar himself took the field against him and conquered Chitor, but though deserted by the great body of the Rajputs and reduced to extremities, Pratap held out to the last and the honour of Mewar was upheld.



# मर्यादा पुरुषोत्तम

## —मुन्शी देवीप्रसाद

हमारी समझ में महाराणा प्रतापसिंह बड़े बहादुर और मजबूत राजपूत थे। जो जो बातें राजपूतों में होनी चाहिए वे सब उनमें थी। लियाकत और बहादुरी के अखाड़े में वे अकबर के जोड़ के थे।

देखो वे कैसे धीर, वीर और गम्भीर थे कि लगातार विपदाओं के और लगातार लड़ाई जारी रहने पर भी बात के घनी बने रहे और हजारों फौज खप गईं तो भी घबराये नहीं। उनका वर्ताव कैसा अच्छा था कि जब उनके पास कुछ नहीं होता तो सिर्फ मिलनसारों से अपना काम निकाल लेते थे वे लोगों को ऐसे प्यारे थे कि जब चाहते हजारों आदमियों को जान देने के लिए तैयार कर लेते थे उनकी खेरखाही में बहुत से आदमी मर खप गये थे तो भी उनकी रैयत उनको वैसा ही चाहती थी।

मर्यादा पुरुषोत्तम ऐसे थे जो अपने मुल्क के कातूनों दरबार के कायदों और बाप दादों के तरीकों को कि जिनका बरताव अमन चैन के दिनों में भी बहुत कम लोगों से हो सकता है वे विपत्तियों में भी बहुत अच्छी तरह से बरतते थे।

बतन की दोस्ती और आजादी को चाह उनके ऊपर खतम हो चुकी थी और ऐसे ही महनत उठाने का हाल था फाँके करते थे। तखत की जगह पत्थर के ऊपर बैठते थे। छत्र के बदले रुखों की छांव और आराम के नाम से पूरी ठंडी हवा भी नहीं मिलती थी, तो भी अपनी बापों की जंगल और पहाड़ दुश्मन को नहीं देना चाहते थे।

आखिर इन सारी महनतों का यह फल मिला कि उन्होंने अपना गया हुआ मुक्त शेर की दाढ़ में से निकाल लिया और बाकी उमर आराम से काटी।

## इतिहास के स्वरिणाम पृष्ठ

### —राहुल सांकृत्यायन

उद्यमिह को राणा प्रताप जैसा सुयोग्य पुत्र मिला, जो १५७२ ई० में मिमोदियों की गद्दी पर बैठा। पूर्वाग्रहों की वीरता के पंवाड़े और सम्मान को छोड़ कर उसे और क्या मिला? . . . . . प्रताप की वीरता और त्याग इतिहास के पन्नों में मोने से लिखा गया है। . . . . . प्रायः चौदाई जनवरी (१५७०-६७ ई०) तक प्रताप ने जबरदस्त शक्ति का मुकाबला किया। . . . . . आठवैन की घाटियों में मारे-मारे फिरते प्रताप और उनके बच्चे जंगल के नद-सून पर गुजारा करते थे। प्रताप अटिग रहा . . . . . प्रताप ने १५६७ ई० में एक परम पनम्बी धीर के तौर पर अपने शरीर को छोड़ा। अपने उत्तराधिकारी पुत्र अमरसिंह को उसने यही नसीबन दी कि मिमोदियों के गंदे को मोने न गिन्ने देना। सुगम इतिहासकार प्रताप की वीरता को निरन्धर की दृष्टि में देखते हैं, पर प्रिसेन्ट स्मिथ के लब्धों में— “वे गजनारी भी मरगु करने योग्य हैं, बलि पशुविश विज्ञान से भी महान् हैं।”

# Worthy of Remembrance

---

—Vincent A. Smith

It is not necessary to adduce any particular incident as supplying a motive for the attack on the Rana , who is represented by Abul Fazl as deserving of chastisement by reason of his alleged arrogance, presumption , disobedience , deceit , and dissimulation . His patriotism was his offence . Akbar had won over most of the Rajput chieftains by his astute policy and could not endure the independent attitude assumed by the Rana who must be broken if he would not bend like his fellows .... The failure of the effort caused deep disappointment to Akbar... .. The Emperor desired the death of the Rana and the absorption of his territory in the imperial dominions , The Rana , while fully prepared to sacrifice his life, if necessary, was resolved that his country should remain a land of freemen . After much tribulation he succeeded , and Akbar failed .

The historians of Akbar , dazzled by the commanding talents and unlimited means which enabled him to gratify his soaring ambition , seldom have a word of sympathy to spare for the gallant foes whose misery made his triumph possible . Yet they too , men and women , are worthy of remembrance. The vanquished , it may be , were greater than the Victor .

---

# *Luminous spirit of freedom*

— J. M. Shelat

... For a little more than quarter of a century, Rana Pratap had dared to defy the wrath and might of the grand Mughal. During this long period, the Rana had to witness with a sad heart the tragedy of his beloved lands being trampled under the feet of his foes and devastated during a series of expeditions. Yet, unlike his other contemporaries, he chose a life of adversity, so that he would not have to acknowledge a master and tarnish the name of the family founded by his great ancestor, Bappa Raval. Unlike the other Rajputs, he never evaded fighting the Mughals. He not only fought them but built up around him coalition after coalition to stem the tide of the Mughal power in Rajputana. At one time he formed a grand alliance with Sirohi, Idar, Dungarpur, Bundi and Chandrasen Rathor [of Jodhpur] and his nephew Kalla, thus teaching the lesson of strength in unity which the Rajputs failed to learn.

If Akbar broke one alliance, Pratap soon sprang another on him. In spite of Idar, Sirohi, Dungarpur and Banswara being run over time and again by the Mughal hordes, he continued by his own precept to inspire their chiefs to remain uncowed. It is to his credit that he perfected the strategy of guerilla warfare, exploiting in full the geographical advantage of the hills and ravines. It was from him that later on Shivaji learnt that strategy which foiled all attempts of Aurangzeb to subdue the Deccan. Time after time the Mughals overran Mewar but they never succeeded in conquering it.

The conflict in Mewar was a contest between two minds, one establishing an empire pervading the length and breadth of India and the other on preservation of the freedom of a patrimony, which though small, had so far remained unsullied by even a semblance of subjugation. The conflict was inevitable. The issue was fought with the greatest of intensity and vehemence because the two sides were represented by two of the grandest personalities of the 16th century. Yet, even though Akbar brought to its resolution all the vast resources and the best military talent he had at his command, the issue remained unresolved till the end of his life.

.. .. Pratap was heroic glowing with the luminous spirit of freedom which refused to permit his talents to be exploited in the service of any man. Endowed with only a small and impoverished inheritance, he proved himself, in face of insurmountable difficulties, a great leader of men, a generous enemy and, above all, a prince among men. His name will ever have a permanent and prominent niche in the valhalla of valour, patriotism and heroism.

---

## *A noble and patriotic leader*

—Dr. Kalikinkar Datta

Mewar found a true patriot and leader in his son Pratap, who being in every respect faithful to the traditions of his country, offered uncompromising resistance to the invaders. The magnitude of his task can be well understood when we note that without a capital, and with only slender resources, he had to oppose the organised strength of the Mughal Emperor, who was then "immeasurably the richest monarch on the face of the earth". Further, his fellow chiefs and neighbours and even his own brother, devoid of the high Rajput ideals of chivalry and independence, had allied themselves with the Mughuls. But no obstacle was too alarming for this national hero of Rajputana, who was made of nobler stuff than his relatives.

Pratap's is indeed an inspiring personality in Indian history. The Rajputs have produced abler generals and more astute statesmen than Pratap, but not more brave and noble patriotic leaders than he.

---

# EMBODIMENT OF ELEMENTAL SPIRIT OF INDIA

---

—Dr. A. L. Srivastava

For 25 years Akbar and Pratap had looked each other in the face. In this great contest the Emperor's object, though noble, was offensive, whereas that of the Rana defensive. Akbar failed, Pratap succeeded. He refused to be enslaved in spite of the fact that all the might of a great empire and of a great ruler, the mightiest of his age, was arrayed against him. In this total war the great Rana was sustained by his all-absorbing passion of the maintenance of the liberty of his state and the honour of his house. He neither stooped nor faltered in the face of persuasion and force alike. The story, that having been tormented by the misery and want in the inhospitable ravines for once at least did he swerve from his idealism and wrote out a letter of submission to Akbar, and that he revoked it immediately on having been reminded of the noble mission of his life by Prithvi Raj Rathor, the poet-warrior of Bikaner, is a myth and finds no confirmation in sober history. There has, of late, been a controversy whether Pratap did not really err in refusing to join Akbar in the great task of forging the unity of India. The answer to this cannot be given in a simple yes, or no. The idea seems to be the result of a hurried acquaintance with the contemporary literature on the subject and of a desire to read in the past the ideas and institutions of the modern age. The fact is that for the so-called non-co-operation, Pratap is less to blame than Akbar. Akbar insisted throughout on the Rana's personal attendance at his court. Mewar's stand at the siege of Chitor in 1567-68 and during the four missions to Rana Pratap was that her ruler should be exempted from attending the court. Abul Fazl admits that Pratap received all the envoys courteously, entertained them, put on the royal khillat and once even sent his eldest son to Agra. An interminable war followed because of Akbar's intransigence, and it ended in the time of Amar Singh only after Jahangir had accepted this important demand of Mewar. The posterity would certainly have dubbed the Rana a reactionary and a stumbling block to India's unity, if Akbar's policy of secularism with equal status and opportunities for all communities in this land had come to stay throughout the Mughal period. Unfortunately that was not to be. Jahangir followed it half-hea-

rtedly, Shahjahan showed the tendency to revert to pre-Akbar days, and Aurangzeb subverted its very foundations and re-established an Islamic state based on the principles of supremacy of Islam and persecution of Hinduism. In short, Akbar's secularism lasted hardly for 80 years and the sources of inspiration of the Hindus and the Musalmans continued to be different even in the time of Akbar. Most of the Hindu states that had joined Akbar had to revert to Pratap's policy of opposition in the time of Aurangzeb. In view of the uncertainty of the future of Akbar's policy contemporary Hindu opinion throughout the country, barring that at the Mughal court, supported Rana Pratap's stand in his life-time, as is clear from the copious literature in Sanskrit, Hindi and possibly in Gujarati also. And the posterity has always looked upon Pratap not only as a great hero, but also as a successful upholder of Hindu prestige and honour. The contention that after all Mewar lost her independence in the time of Pratap Singh's son Amar Singh and that it would have saved immense sacrifices, if Pratap had done the same in 1572, seems to be based on a misunderstanding. The honourable terms secured by Amar Singh in 1615 at the hands of Jahangir were due to the long and stubborn resistance put up by Pratap and for eighteen years by Amar Singh himself. Without these sacrifices Mewar could hardly have hoped for a preferential treatment, treatment different from the one meted out by the Emperor to Amber, Jodhpur, Bikaner, Jaisalmer and Dungarpur. It is because of his successful defiance of Akbar the Great without reckoning the sacrifices that Pratap has been rightly called the embodiment of "the elemental spirit of India" that upholds her traditional glory and defies everything that tarnishes that glory.

---

# A Valiant Freedom-fighter

—V. K. R. V. Rao

Maharana Pratap occupies a unique place in the history of India because of the indomitable way in which he fought foreign rule. He was thus a Maharana not merely by designation but also in the true sense of the word.

Stories of his brave deeds and of his many human qualities have gone into folk lore and are narrated even today with the same zeal and listened to with the same enthusiasm as when they originated. Maharana Pratap amply illustrated to the country the duties that a Rajput must fulfil in his capacity as protector and left the rare example of a hardy warrior who went on fighting against heavy odds rather than comfortably own a foreign master. He was the father of the unequalled strategy in warfare which the later Maratha rulers like Chatrapathi Shivaji picked up to undermine the might of the mighty Mughal empire. Instead of getting lost in internal feuds and local machinations, he marshalled all his power and built coalitions to stem the tide of Mughal conquest in Rajputana,

Pratap was, however, no fanatic. His generosity came to be regarded as an essential prerequisite of a Rajput warrior. While he hated his enemies cordially, the personal honour of his enemy was as safe in his hands as in their own. One hears of no cruelties practised by his orders on any one who happened to have the misfortune of being his opponent. So far was he from depending on an appeal to religion alone in his determination to keep safe the liberty of his motherland that he was able to lead Muslim commanders and Muslim soldiers even against Akbar's might.

In his acts of hospitality he was unequalled whoever flocked to his court, deprived and forlorn, found a welcome home. Many an exhausted warrior or prince found a welcome refuge with him.

A great general, a brave warrior, a successful organizer, a prince among men, a generous foe, Pratap's name will continue to shine in the history of India for his qualities of head and heart. He stands for all that is usually associated with that romantic word, Rajput. If courage was the distinguishing badge of the

Rajputs, Pratap had more than his share of it, if unflinching resolution and indomitable will ever made a hero of a man, Pratap was one, if ever a man fought against fearful odds and pulled through them, it was he. Men have shrunk back from the very thought of adversity but Rana Pratap invited it. He scorned comfort and luxury when they had to be exchanged for his independence. Generations of Rajputs have sworn by his name and even today, Pratap's is the name to rouse the disheartened. In the collective memory of the Hindus he has got a place along with Shivaji and Ranjit Singh, and along with them he proved that not even centuries of Mohammedan domination could kill the spirit out of a proud race.

The worst of his enemies, Emperor Akbar had to bow down to his memory together with his own bard when at Pratap's death the bard could contain himself no more and burst saying "Oh Pratap, you kept your horses unbranded, your head unbowed, your fame untarnished. You were strong enough to carry on your work against heavy odds .. .. You attained a very high place in this world..... ."

The relevance of Maharana Pratap's life to our day and age lies in the fact that no adversary is too strong and no tribulation too heavy for the preservation of one's conviction and independence. The country will always remain grateful for the unique example that Maharana Pratap left for the future generations to obtain their inspiration from and to emulate.



# स्वतन्त्रता का पुजारी

—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

प्रातः स्मरणीय वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह का नाम राजपूताने के इतिहास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और गौरवास्पद है। राजपूताने के इतिहास को इतना उज्ज्वल और गौरवमय बनाने का अधिक श्रेय उसी को है। वह स्वदेशाभिमान, स्वतन्त्रता का पुजारी, रणकुशल, स्वार्थत्यागी, नीतिज्ञ, सच्चा वीर और उदार क्षत्रिय तथा कवि था। उसका आदर्श था कि बापा रावल का वंशज किसी के प्रागे सिर नहीं झुकायेगा। स्वदेश प्रेम, स्वतन्त्रता और स्वदेशाभिमान उसके मूल मन्त्र थे। उसको अपने वीर पूर्वजों के गौरव का गर्व था। वह ऐसे समय मेवाड़ की गद्दी पर बैठा जबकि उसकी राजधानी चित्तौड़ और प्रायः सारी मैदानी भूमि पर मुसलमानों का अधिकार होगया था। मेवाड़ के बड़े बड़े सरदार भी पहले की सढाहियों में मारे जा चुके थे। ऐसी स्थिति में उसके विरुद्ध बादशाह अकबर ने उसको विध्वंस करने के लिये अपने सम्पूर्ण साम्राज्य का बुद्धिबल, बाहुबल और धनबल लगा दिया था। बहुत से राजपूत राजा भी अकबर के ही सहायक बने हुए थे। यदि महाराणा चाहता तो वह भी उनकी तरह अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेता तथा अपने वंश की पुत्री उसको देकर साम्राज्य में एक प्रतिष्ठित पद पर धाराप से रह सकता था, परन्तु वह स्वतन्त्रता का पुजारी केवल धोड़े से स्वदेशमत्त और कर्तव्यपरायण राजपूतों और भीलों की सहायता से अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये कटिबद्ध हो गया। उसकी वीरता, रणकुशलता, कष्टसहिष्णुता और नीतिमत्ता अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय थी। इन्हीं गुणों के कारण वह अकबर को, जो उस समय संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली तथा ऐश्वर्यसम्पन्न सम्राट था, अपने छोटे से राज्य के बल पर वहाँ तक हैरान करता रहा और फिर भी अधीन न हुआ। ..... वह केवल वीर और रणकुशल ही नहीं किन्तु धर्म को समझने वाला सच्चा क्षत्रिय था। ... .. प्रलीनन देकर राजपूत राजाओं और सरदारों को सेवक बनाने वाली अकबर की मूढनीति का यदि कोई उत्तर देने चाहा था तो महाराणा प्रताप ही।

वीरश्रेष्ठ महाराणा प्रताप के कार्य आज भी मेवाड़ की पृथग् तपस्या में वर्तमान समय के ही जान पड़ते हैं। महाराणा का नाम न केवल राजपूताने में किन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष में अत्यन्त आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। जब तक संसार में वीरों की पूजा होती रहेगी, तब तक महाराणा प्रताप का उज्ज्वल और अमर नाम लोगों की स्मृत्युग्ता और देनाभिमान का साठ पाता रहेगा।

# राष्ट्रीय काव्य

आधुनिक हिन्दी-राजस्थानी कवि

# हल्दीघाटी से

पं. जनार्दनराय नागर

वीर मेरुवाला की बिखरी, मांग अरी हल्दीघाटी,  
मेदपाट के वक्ष-स्थल की, रोमावलि हल्दीघाटी ।

अड़ावड़ा की जंघाओं पर, बैठी जरगा की बेटी,  
याद कर रही वरवीरों की, हर-हर क्या हल्दीघाटी ?

वृक्ष-घटाओं की अलकों में, तेरा चन्द्रानन हसता,  
पीत उरोजों से है भरता, रस-निर्भर, हल्दीघाटी ।

निर्भर जिसने थे धोये, अमिट चिन्ह के घनी चरण,  
साधे प्यास बुझा वीरों के, जिसने अन्तिम अमर मरण ।

निर्भर सीचे थे जिससे, पूत सलीनों के खेवे,  
जिसमें धोये थे असियों ने पराधीनता के खेये ।

निर्भर, जिसके तीर बंठ, रो कितनी ही रातें काटी,  
हल्दीघाटी, बता मुझे तू कितने मर्दों की माटी ।

पीकर वीरवरो का शोणित पीली तू पड़ गई, बता ?  
चेटर के लोहू की बिन्दी दे, हल्दीघाटी बनी बता ?

हे पीली माटी की घाटी, हर-हर के कितनी प्रतिध्वनियाँ,  
टापों की ठोकर टकरा कर, है बतला कितने गीत बनी ?

रवि-शशि के तेरे नयनों से विपदा के कितने घन वरसे ?  
बलिदानों के कितने प्रमग, बिजली बनकर तुझमें चमके ?

कितने कलंक हल्दी घाटी ! धोये द्याती का गून बहा ?  
जीवन के कितने क्षण पाने, पीले आचल का दूध पिला ?

तेरे आगन में एक दिवस, मर-मिटने का था फाग जगा,  
तेरे जनाट पर एक दिवस, फुट मर्दों ने इतिहास लिखा ।

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक, बन गये आज ही वैरागी ।  
उत्फुल्ल मधु-मदिर सरसिज में, यह कैसी तरुण-अरुण आगी ?  
क्या कहा, कि 'तब' तक तुम न कभी वैभव-सिंचित शृंगार करो ।'  
क्या कहा, कि 'जब' तक तुम न दिगंत-गौरव, स्वदेश-उद्धार करो ।'

माणिक मणिमय सिंहासन को, कंकड़-पत्थर के फोनो पर ।  
सोने-चांदी के पात्रों को, पत्तों के पीले दोनो पर ।  
वैभव से विव्हल महलों को, कांटो की कटु भोपड़ियों पर ।  
मधु से मतवाली बेलायें, भूखी बिलखाती घड़ियों पर ।  
'रानी' 'कुमार'—सी निधियो को, मां के आंसू की लड़ियों पर ।  
तुमने 'अपने' को लुटा दिया, 'आजादी' की फुलझड़ियों पर ।

निर्वासन के निष्ठुर प्रण में, धुधुवाती रक्त-चिता रण में ।  
बाणों के भीषण धर्षण में, फौशार से बहते व्रण में ।  
'बेटा' की प्यासी-दाहो में, 'बेटो' की भूखी-आहों में ।  
तुमने पाया 'आजादी' का, मरने की कड़वी चाहो में ।

किस अमर शक्ति-आराधन में, किस मुक्ति-युक्ति के साधन में ।  
मेरे वैरागी वीर ! व्यग, किस तप-बल के उत्पादन में ।  
हम कसे कवच, सज अस्त्र-शस्त्र, हैं व्याकुल रण मे जाने को ।  
मेरे सेनापति ! कहा छिपे ? तुम, आश्रो शख बजाने को ।

जागो प्रताप ! मेवाड भूमि के लक्ष्य भेद हैं जगा रहे ।  
जागो प्रताप ! मा-बहनो के अपमान छेद हैं जगा रहे ।  
जागो प्रताप ! मदवालो के मतवालों सेना सजा रहे ।  
जागो प्रताप ! हल्दीघाटी पर बैरी मेरी वजा रहे ।

मेरे प्रताप ! तुम पड़ो, मेरे आंसू की धारों से ।  
मेरे प्रताप ! तुम गूँज उठो, मेरी सन्तप्त पुकारो से ।  
मेरे प्रताप ! तुम बिखर, पड़ो, मेरी उत्पीड़न-मारो से ।  
मेरे प्रताप ! तुम निखर पड़ो, मेरे बलि के उपहारो से ।

## श्री प्रताप-स्तव

छोचनप्रसाद पाण्डेय

स्वातन्त्र्य के प्रिय उपासक, कर्मवीर ।  
हिन्दुत्व-गौरव-प्रभाकर, धर्मवीर ॥  
देशाभिमान परिपूरित धैर्य धाम ।  
राणा प्रताप, तव श्रीपद में प्रणाम ॥ १ ॥

देशानुराग वर-दानधव-प्रेम-मूर्ति ।  
अत्मावलम्ब-अवतार, स्वधर्म-स्फूर्ति ॥  
राणा प्रताप जिनके यश है ललाम ।  
है भक्ति-युक्त उनके पद में प्रणाम ॥ २ ॥

प्रापति में पड़ तथा दुख या अनेक ।  
अन्यान्य सम्मुख सिवा जगदीश एक ॥  
आजन्म शीश जिनने न कभी झुकाया ।  
वै वे प्रताप हमको निज बाहु-छाया ॥ ३ ॥

साम्राज्य, धाम, धन को अति तुच्छ जान ।  
त्यागे सभी सुख अहा ! तृण के समान ॥  
स्वातन्त्र्य-हेतु सहते वनवास-फलेश ।  
वै श्री प्रताप हमको बल दें विशेष ॥ ४ ॥

रक्षा-निमित्त कुल-गौरव के विशुद्ध ।  
आजन्म स्वीय रिपु से कर घोर युद्ध ॥  
रखती सगर्व जिनने निज टेक, अन्त ।  
वै वह प्रताप हमको दृढ़ता अनन्त ॥ ५ ॥

वीरत्व देश मन में रिपु भी लजाते ।  
हैं हर्ष युक्त जिनके गुण-गान गाते ॥  
है गृह-नीति जिनकी छल-छिन्न हीन ।  
वह श्री प्रताप हमको बल दें नवीन ॥ ६ ॥

श्रीशर्य में न जिनरी मद-भर्य देश ।  
श्री पा प्रभुत्व तजने न क्षमा विशेष ॥

जो धर्म देश हित है निज प्राण धारे ।  
वह श्री प्रताप दुख दैन्य हरे हमारे ॥७॥

“चाहे भले रह कुटी वन में बनाके ।  
चाहे भले रह सदा फल मूल-खाके ॥  
स्वाधीनता तज न तू, बनदास, मूढ ।”  
धारे प्रताप ! यह भूत च तत्व गूढ़ ॥८॥

आपत्ति देख जिनका मूल हो न म्लान ।  
जो सौख्य में न तजते प्रभु-पाद ध्यान ॥  
है मुक्ति-मार्ग जिनका, वस, मातृ भक्ति ।  
दे वह प्रताप हमको निज दिव्य शक्ति ॥९॥

“चाहें हो रिपु लक्ष-लक्ष अपने, हों एक चाहे हम ।  
धारेंगे तब भी न धर्म तज के, कापट्य-क्रीड़ा-क्रम ॥  
पाती नैतिक-वीरता जय सदा, पौलस्त्यहन्ता सम ।”  
वाणी वीर प्रताप की यह हरे, सारे हमारे भ्रम ॥१०॥

## प्रतिज्ञा

—पं० नारायणजी पुरुषोत्तम 'क्लान्त'

घैठ के सिंहासन पे प्रखर प्रतिज्ञा लीन्हों,  
रघुकुल आन-शान-शौकत गमाऊं ना ।  
गया हुआ चित्रकोट चोट कर यवनों से,  
छीनने में कायरी छुपान की दिखाऊं ना ॥  
भूखे मरजाना कटजाना रत खेत पर ।  
बनि परतन्त्र दास स्नेच्छ को कहाऊं ना ।  
धैर को विसार कर मोह में फंसे न 'क्लान्त',  
प्राण जावे तो भी तिर 'शाह' को नवाऊं ना, ॥१॥

जावे धन-धान राज वैभव विशाल तो भी,  
वन वन-वासी दैन्य-दासता उठाऊं ना ।  
अन्य राजपूतों-सम वनके कपूत 'क्लान्त',  
'शाह' का तसुर-साला कवहूं कहाऊं ना ॥  
हिंदू-धर्म-रक्षा हेतु कर ने छुपान धारि,  
घाज से पलंग पर पीठ भी लगाऊं ना ।  
मोछ पर ताव नहीं देऊं तृण पर तोऊं,  
पंच धातु-पायन में भोजन हू पाऊं ना ॥२॥

तिर न झुकाऊं एकलिंगनाथ बिना कहां,  
देह गिर जाय तो भी मिष्ट अन्न खाऊं ना ।  
जाति नष्टरोजे क्षात्र कन्या का बचाऊं न तो,  
एनी-कुल धन हिन्दू-सूर्य में गिनाऊं ना ॥  
योगी व्रत-धारी तिर देश न उतारूं तो लो,  
लो लो राजपूती रंग तुम्हें को दिखाऊं ना ।  
सत्ता सब शाह की चित्तोड़ से उड़ावूं न तो,  
उदय-तनुन परताप मैं बहाऊं ना ॥३॥

## हल्दीघाटी

— श्याम-नारायण पाण्डेय

निर्मल वक़रों से बाघ लड़े,  
भिड़ गये सिंह मृग-छीनों से ।  
घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी,  
पैदल बिछ गये बिछीनों से ॥

हाथी से हाथी जूझ पड़े,  
भिड़ गये सवार सवारों से ।  
घोड़ी पर घोड़े टूट पड़े,  
तलवार लड़ी तलवारों से ॥

हय-रुण्ड गिरे, गज-मुण्ड गिरे,  
कट-कट अवनती पर घुण्ड गिरे ।  
लड़ते-लड़ते अरि भुण्ड गिरे,  
भू पर हय विकल बितुण्ड गिरे ॥

क्षण महाप्रलय की बिजली सी,  
तलवार हाथ की तड़प-तड़प ।  
हय-गज-रथ-पैदल भगा भगा,  
लेती थी बैरी वीर हड़प ॥

क्षण पेट फट गया घोड़े का,  
हो गया पतन कर कोड़े का ।  
भू पर सातंक सवार गिरा,  
क्षण पता न था हय-जोड़े का ॥

चिगड़ा भगा भय से हाथी,  
लेकर अंकुश पिलपान गिरा ।  
भटका लग गया फटी भालर,  
हौदा गिर गया, निशान गिरा ॥

× × ×



होती थी भीषण मार-काट,  
 अतिशय रण से छाया था भय ।  
 या हार-जीत का पता नहीं,  
 क्षण इधर विजय, क्षण उधर विजय ॥

कोई व्याकुल भर काह रहा,  
 कोई या विकल कराह रहा ।  
 लोह से लघपय लोथों पर,  
 कोई चिल्ला अल्लाह रहा ॥

पड़ कहीं पड़ा, तिर कहीं पड़ा,  
 फुट भी उनकी पहचान नहीं ।  
 शोणित का ऐसा वेग बढ़ा,  
 मुरवे वह गये निशान नहीं ॥

मेवाड़-केसरी देख रहा,  
 केवल रण का न तमाशा था ।  
 वह दौड़-दौड़ करता था रण,  
 वह मान-रक्त का प्यासा था ॥

चढ़कर चेतक पर घूम-घूम,  
 करता सेना-रखवाली था ।  
 ले महा मृत्यु को साथ-साथ,  
 मानो प्रत्यक्ष कपाली था ॥

रण-बीच चौकड़ी भर-भर कर,  
 चेतक बन गया निराला था ।  
 राणा प्रताप के घोड़े से,  
 पड़ गया हवा को पाला था ॥

जो तनिक हवा से बाग हिली,  
लेकर सवार उड़ जाता था ।  
राणा की पुतली फिरी नहीं,  
तब तक चेटक मुड़ जाता था ॥

×            ×            ×

है यहीं रहा, अब यहां नहीं,  
वह नहीं रहा है वहां नहीं ।  
थी जगह न कोई जहां नहीं,  
किस अरि मस्तक पर कहां नहीं ॥

×            ×            ×

चढ़ चेतक पर तलवार उठा,  
रखता था भूतल-पानी को ।  
राणा प्रताप सिर काट-काट,  
करता था सफल जवानी को ॥

कलकल बहती थी रण-गंगा,  
अरि-दल को डूब नहाने को ।  
तलवार वीर की नाव बनी,  
चटपट उस पार लगाने को ॥

वैरी-दल को ललकार गिरी,  
वह नागिन सी फुफकार गिरी ।  
था शौर मौत से बचो, बचो,  
तलवार गिरी, तलवार गिरी ॥

पंदल से हय-दल गज-दल में,  
छिप-छिप करती वह निकल गई ।  
क्षण कहां गई कुछ पता न फिर,  
देखो घमचम वह निकल गई ॥

क्षण क्षण गढ़, क्षण उधर गढ़,  
क्षण चढ़ी बाढ़-सी उतर गढ़ ।  
पा प्रलय घमस्ती जिवर गढ़,  
क्षण शोर हो गया किधर गढ़ ॥

यथा प्रलय विषयो नागिन धी,  
जिसके डसने में जहर नहीं ।  
उतरी तन से मिट गये वीर,  
फँला शरीर में जहर नहीं ॥

थी घुरी फहों, तलवार फहों,  
वह बरखी-शक्ति सरधार फहों ।  
वह घाग फहों घंगार फहों,  
विजली थी फहों फटार फहों ॥

तहराती थी तिर फाट-फाट,  
बल खाती थी नू पाट-पाट ।  
बिसराती ध्वयक बाट-बाट,  
तनती थी लोह चाट-चाट ॥

× × ×

ऐसा रण राणा करता था,  
पर उसको था संतोष नहीं ।  
क्षण-क्षण आगे बढ़ता था वह,  
पर कम होता था रोष नहीं ॥

कहता था लड़ता मान कहां ?  
मैं कर लूँ रक्त-स्नान कहां ?  
जिस-पर तय विजय हमारी है,  
वह मुगलों का अभिमान कहां ?

भाला कहता था मान कहाँ ?  
 घोड़ा कहता था मान कहाँ ?  
 राणा की लोहित घाँखों से  
 रब निकल रहा था मान कहाँ ?  
 लड़ता अकबर सुल्तान कहाँ ?  
 वह कुछ-कलंक है मान कहाँ ?  
 राणा कहता था बार-बार,  
 मैं करूँ शत्रु बलिदान कहाँ ?  
 तब तक प्रताप ने देख लिया,  
 लड़ रहा मान था हाथी पर ।  
 अकबर का चंचल साभिमान,  
 उड़ता निशान था हाथी पर ॥

× × ×

फिर, रक्त देह का उबल उठा,  
 जल उठा क्रोध की ज्वाला से ।  
 घोड़ा से कहा, बढ़ो आगे,  
 बढ़ चलो कहा, निज भालों से ॥

हय-नस-नस में बिजली दीड़ी,  
 राणा का घोड़ा लहर उठा ।  
 शत-शत बिजली की आग, लिये  
 वह प्रलय-मेघ-सा, घहर उठा ॥

× × ×

तनकर भाला भी बोल उठा,  
 राणा मुझको विश्वास न दे ।  
 बेरी का मुझसे हृदय गोभं,  
 तू मुझे तनिक आराम न दे ॥

× × ×

मुरखों का घेर लगा हूँ मैं,  
 अरि-सिंहासन बहुरा हूँ मैं।  
 राणा मुझको आशा दे दे,  
 शीशित सागर सहसा हूँ मैं ॥

×      ×      ×

वह महा प्रतापी घोड़ा उड़,  
 जंगी हाथी को हवक उठा ।  
 भीषण विप्लव का दृश्य बेल,  
 भय से झकझर-बल बबक उठा ॥

क्षण भर छल बल कर लड़ा मड़ा,  
 वो पैरों पर हो गया लड़ा ।  
 फिर भगले दोनों पैरों को,  
 हाथी मस्तक पर दिया गड़ा ॥

यह बेल मान ने भाले से,  
 करने की की क्षण चाह समर ।  
 इस तरह घाम कर झटक दिया,  
 हाथी की भी झुक गई कमर ॥

राणा के भीषण झटके से,  
 हाथी का मस्तक फूट गया ।  
 अम्बर कलंक उस कायर का,  
 भाला भी दबक कर टूट गया ॥

राणा बैरी से बोले उठा—  
 "देखा न समर भाले से कर ।  
 लड़ना तुझको है अगर अभी,  
 तो फिर लड़ले भाला लेकर ॥"

“हाँ, हाँ लड़ना है” कह कर जब,  
बैरी ने उठा लिया भाला ।  
क्षण भौंह चढ़ा कर देख दिया,  
काँपे जो हाथ गिरा भाला ॥

राणा ने हँस कर कहा “मान,  
श्रव बस करदे हो गया युद्ध ।  
बैरी पर वार न करने से,  
मेरा भाला हो रहा क्रुद्ध ॥

अपने शरीर की रक्षा कर,  
भग जा भग जा श्रव जान बचा” ।  
यह कह कर भाला उठा लिया,  
भीषण तम हाहाकार मचा ॥

क्षण बेर न की तन कर मारा,  
अरि कहने लगा न भाला है ।  
यह गेहुयन करइत फाला है,  
या महाकाल मतवाला है ॥

× × ×

छिप गया मान हौदे-तल में,  
टकरा कर हौवा टूट गया ।  
भाले की हलकी हवा लगी,  
पिलवान गिरा, तन छूट गया ॥

श्रव बिना महावत के हाथी,  
चिंगाड भगा राणा भय से ।  
संयोग रहा, बच गया मान,  
खूनी भाला, राणा हय से ॥

× × ×

राणा के चारों ओर मुगल,  
होकर करने प्राधान लगे ।  
सा साकर धरि तलवार चोट,  
क्षण-क्षण होने नू पात लगे ॥

×            ×            ×

राणा फर ने सिर फाट-फाट  
दे दिये कपाल कपाली को ।  
शोणित की मदिरा पिल, पिला,  
फर दिया तुष्ट रण काली को ॥

पर दिन भर लड़ने से तन से,  
चल रहा पसीना था तर तर ॥  
अथिरल शोणित की धारा थी,  
राणा क्षत से बहती भर-भर ॥

घोड़ा भी उसका शिथिल बना,  
था उसको चैन न धावों से ।  
वह अधिक अधिक लड़ता यद्यपि,  
दुर्लभ था चलना पावों से ॥

तब तक भाला ने देख लिया,  
राणा प्रताप है संकट में ।  
बोला न बाल बांका होगा,  
जब तक प्राण बचे हैं घट में ॥

अपनी तलवार दुधारी ले,  
भूखे नाहर-सा दूद पड़ा ।  
कचकल मचंगया, अचानक दल,  
आश्विन के घन सा फूट पड़ा ॥

रख लिया छत्र अपने सिर पर,  
राणा—प्रताप—मस्तक से ले ।

ले स्वर्ण—पताका जूझ पड़ा,  
रण-भीम-कला अन्तक से ले ॥

भाला को राणा जान मुगल,  
फिर टूट पड़े वे भाला पर ।  
मिट गया वीर जैसे मिटता,  
परवाना दीपक —ज्वाला पर ॥

भाला ने राणा—रक्षा की,  
रख दिया देश के पानी को ।  
छोड़ा राणा के साथ साथ,  
अपनी भी अमर कहानी को ॥

अरि विजय—गर्व से फूल उठे,  
इस तरह हो गया समर-अन्त ।  
पर किसकी विजय, रही बतला,  
ऐ सत्य—सत्य अम्बर अनन्त ॥

---

हृदीघाटी ( खण्ड काव्य ) —श्याम नारायण पाण्डेय इण्डियन प्रेस, प्रयाग (सं० २००६ संस्करण)

( पृष्ठ १३३ से १४४ )



## चेटक

—कविराजा पं० श्री हरनाथजी

घंचल चमक चढ़े और धरि झुण्डन पै,  
छांटत कुदोटी कूद लेलें फरी पट्टा सो ।  
भायें 'हरनाथ' महाराणा श्री प्रताप बाज,  
बाज बाज धार देत बाज ही झपट्टा सो ॥  
एढ़ के छुआवत छनच्छ घणिवाली हूद,  
होदा पील पेठ तें रहावे दीह झट्टासो ।  
चोंक चोंक चपल चमून चट पट्टा मार,  
चेटक उचट्ट चट्ट जात नययट्टा सो ॥३७॥

सज्जत समर साज यान छोड़ते ही शीघ्र,  
थमत न थामें थनवारन फसाते देत ।  
भायें 'हरनाथ' माथ ऊंचो करि हेर हेर,  
कूद कूब कुदक कुदोटीन उछाले देत ॥  
पीठ पै सवार महाराणा श्री प्रताप पेल,  
होंस होंस मानो विजें घोषना के नाले देत ।  
बाग के बतावत ही चेटक उचट्ट चट्ट,  
वैरी गज कुम्भन पै सुम्म घुरताले देत ॥३८॥

रोस रंग राचे वीर नाचे रण रंग देख,  
चाल चातुरी से चले दौड़ता दपटता,  
भायें 'हरनाथ' माथ हाथियो के खूंद खूंद,  
होंदे के सवारन के शीश ह्वै सपटता ।  
वीर श्री महाराणा प्रताप का इशारा पाय,  
वायु के समान जाता वायु से लपटता ।  
पच्छी रूप विपुल विपक्षियो के झुण्डन पै,  
चेटक चटाह बाज बाज सा झपटता ॥३९॥

चौक चौक चंचल चमकू चातुरी से चाह,  
 चहूँ घोर दम्भ दम्भियों के दोर दरता ।  
 मान्य महाराणा श्री प्रताप का प्रतापी बाज,  
 वृन्द वैरियो के हेर होंसता हहरता ॥  
 भावै 'हरनाथ' इक साथ खुरतालन सौ,  
 खोपड़ी खलों की खूब खूँवता खुचरता ।  
 चीरता चमू को तेज तीर सा निकलता वीर,  
 चेटक उचट्ट चट्ट चेटक सा करता ॥४०॥

---

‘प्रताप पताका’ रचयिता कविराजा पं० श्री हरनाथजी, धृज नगर, झालावाड़, विक्रम सं० १९९७

पृष्ठ १६-१७ से उद्धृत

- अर्थ:— १. छणिवालों — बिजली  
 २. अट्टासों — मट्टा  
 ३. नट्टाट्टा — नट का गोला  
 ४. थनवारन — सार्इस  
 ५. नाले — नारे  
 ६. कुम्भन — मस्तक

## प्रताप-विसर्जन

—राधाकृष्णदास

उन्नत-सिर गिरि-अवधि, गगन, सों उत बतरावत ।  
 इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत ॥  
 मंवं पवन सीरी वहै होन लगे पतभार ।  
 पनकुटी नरसिंह, सरत इव, मानों कोउ अवतार ॥  
 हुन भुव भार को ॥१॥

मुख-मंडल अति शांत, कांतिमय चितवन सोहै ।  
 भरे अनेकन भाव व्यग्र चारिहुँ दिसि जो है ॥  
 वीर-मडली घेरि कै प्रभु की गति रहे जोहि ।  
 मनु भीषम सर-सयन परे कीरव पांडव रहे सोहि ॥  
 हृदय उमड़घो परे ॥२॥

लखि निज प्रभु की अंत समय की वेदन भारी ।  
 व्याकुल सब मुख तकै सकै धोरज नहि धारी ॥  
 राव सलूमर रोकि निज हिय उदवेग महान ।  
 हाथ जोरि विनती कियो अति हृष्ट लगे प्रभु कान ॥  
 वचन आरत सने ॥३॥

अहो नाथ, अहो वीर-सिरोमनि भारत-स्वामी !  
 हिंदू-कीरति थापन में समर्थ सुभ नामी ॥  
 कहां वृत्ति है आपकी, कौन सोच, कहां ध्यान ?  
 देखि कष्ट हिय फटत है, केहि संकट में है प्राण ॥  
 कृपा करिकै कहो ॥४॥

सुनत बुझ भरे बिन नैन तिनके दिशि फेर्यो ।  
 भरि कै दीरघ सांस सबन तन व्याकुल हेर्यो ॥  
 पुनि लखि सुत तन फेरि मुख अति संतप्त अवीर ।  
 धरि धोरज अति छीन सुर वाले वचन गंभीर ॥  
 परम आतंक सो ॥५॥

हे ! हे ! वीर-सिरोमनि सब सरदार हमारे ।  
 हे ! विपत्ति-सहचर प्रताप के प्रान-पियारे ॥

तुव भुव-वल लहि मे भयो रच्छा करन समर्थ ।  
मातृ-भूमि-स्वाधीनता को प्रवल सत्रु करि व्यर्थ ॥  
अनेकन कण्ट सहि ॥६॥

या प्रताप नै उचित कहौ कै अनुचित भाखौ ।  
वा स्वतंत्रता हेतु जगत-सुख तृप्त-सम नाखौ ॥  
दाइ महल खंडहर किये सुख सामान विहाय ।  
छानि वनन की धूरि को गिरि गिरि मे टकराय ॥  
बलेश को लेश नहि ॥७॥

पै जब आवत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने ।  
सो अमृत्य निधि मम पाछे रहि है दिन कितने ॥  
तुच्छ वासना मे पग्यो दुःख सहन असमर्थ ।  
चंचल अमरहि देखि कै होत आस सब व्यर्थ ॥  
सोच भावी दसा ॥८॥

कहि दुखमय ये वचन अमर तन दुख सो देख्यो ।  
सुंदि नैन जल भरे स्वास लै सब दिशि पेरव्यो ॥  
सन्नाटा चहुं दिशि छयो सब के मुख गंभीर ।  
पृथ्वी दिशि हेरै सब भरे महा हिय पीर ॥  
बैन नहि कछु कढ़ै ॥९॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो ।  
अभिवादन करि अति विनीत ये वचन सुनायो ॥  
पृथ्वीनाथ ! यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु-हिय आज ।  
कुंचर बहादुर तैं परी कौन चूक केहि काज ॥  
निरासा जो भई ॥१०॥

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यो पुनि ।  
अति गंभीर सतेज मनहुं गुंजत केहरि धुनि ॥  
"सुनो बीर मेवार के गौरव राखनहार ।  
मेरे हिय की वेदना जो कियो अ'स सब छार ॥  
अमर के कर्म ने ॥११॥

एक दिवस एहि फुटी श्रमर मेरे दिन बँटयो ।  
 दूतनेहि में मृग एक आनि के वहाँ जु पेट्यो ॥  
 हरवराइ मंथानि सर श्रमर चतयो ता शोर ।  
 फुटिया के या वांस में फँस्यों पाग को छोरे ॥

श्रमर तीढ़ं न रुक्यो ॥१२॥

बढन चडत आगे यह पगिया चंचल पाये ।  
 पे नहि जिय में घोर छुपाव ताको आये ॥  
 पागहु फटी सिकारहु लग्यो न याके हाव ।  
 पटक पाग लनि भोंपड़िहि अतिहि क्रोध के साव ॥

बैन मुख ते कढे ॥१३॥

रहु रहु रे निर्वोध श्रमर-गति रोकनहारे ।  
 हम न लेहिगे सांस बिना तोहि आज उजारे ॥  
 राज भवन निर्मान करि तेरो चिह्न मिटाइ ।  
 जो दुख पाये तोहि में सो देहों सब भुलाइ ॥

सुखद आवास रचि ॥१४॥

तवहीं ते थे बैन शूल-सम सटकत सम हिय ।  
 यह परि सुख-वासना श्रवसि दुख दिवस बिसारिय ॥  
 अति श्रमोल स्वाधीनता तुच्छ विषय के दाम ।  
 बेचि सिसोदिय कीर्ति को यह करि है श्रवसिनिकाम ॥

रुके हम सोचि एहि ॥१५॥

हिंदूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब ।  
 अति पवित्र रजपूत-रुधोर नस नस दोर्यो तब ।  
 लै लै अति दृढ पन कियो छवै छवै प्रभु के पाय ।  
 "जी लौं तन, स्वाधीनता तो लौं रखौं वचाय ॥

संक करिये न कछु" ॥१६॥

दृढ़गतिन छत्रिन पन सुनि राना मुख बिकस्यो ।  
 आश-लता लहलही भई मुखते यह निकस्यो ॥

“धन्य वीर तुम जोग ही यह पन तुमहि सुहाय ।

अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हारे सदा सहाय ॥

यही आसीस मम” ॥१७॥

देखत—देखत शांति—सदन परताप सिधाए ।

पराधीनता—मेघ बहुरि भारत सिर छाए ॥

सबही सुख परताप संग कियो विसर्जन हाय ।

दीन-हीन भारत रहयो सुख संपदा गंवाय ॥

ताहि प्रभु रच्छिए ॥१८॥

## प्रताप का राम राज्य

—कवि रावमोहनसिंह

इत प्रताप निज भटन घुत, लेय विजय को नाह ।

रम्य घरा राजत रहे, गाजत रहे प्रयाह ॥३२६॥

सवैया

पातलपाय विजे पतसाहसों, राजन को तुरराष्ट्रै रज्योकरे ।

जाहिके राज कलंकित फोड, फालंकित एक भयंक बज्योकरे ॥

तावत प्रीपम मे तरनी एक भीरत भुर्जन छाड़ि भज्योकरे ।

ओ उमडे उदधी घुमडे घन, वही मदमत मतंग गज्योकरे ॥३२७॥

अंग कसे तनत्रांन उदे दिन, छाहुरी ऊपर छन छयो करे ।

बाहुबंधे भुजबंध वही इक, पण्युरिही तिरपे चदियो करे ॥

अकलहे महारानियके इक बाहिनी अंक कृपानि क्हियो करे ।

लेय मुगल्ल चुगल्ल न छल्ल ही, पातल की इक पीठ लियो करे ॥३२८॥

पातल भो भुवसो अनमी, भवसो अनमीन तदा ननियो करे ।

लोभ करे नहे लच्छियको, जय लच्छियको इक लोभ कियो करे ॥

पातनतेन प्रसन्न हुवे कविपातन पिषिल प्रसन्न क्हियो करे ।

साहन को दंडनीक सुही, इक साहनको नहदण्ड दियो करे ॥३२९॥

पातल वीर अचल्ल चलैसजि, वही अनटल्ल टले अघते मुख ।

निडुर तोपिडरे अदजावते, वही सुख फांठ दे दुहुन को दुख ॥

मानके मित्र अमित्रहु मानके, संयमीवही रखे पंगुरी की रख ।

वही सुपती कूपतीजु कहावत, पोषकवहै करे भावह की भुक ॥३३०॥

जापरताप के शाशनवीच, सछिद्र सुने मुकताजु सहस्त्रन ।

तोपन धूम्र अंधेर यही, विनही अपराध कटे बहुवस्त्रन ॥

वहैमुंहजोर रहै कोऊ घोटक, पीरतपेखे किनेइक नस्त्रन ।

छद्म धरैवक बढिह तुरे नख, देय संताप घतेघन शस्त्रन ॥३३१॥

## महाराणा का महत्त्व

—जयशंकर प्रसाद

सज्ज सभागृह में सब अपने स्थान पर  
वन्दी, चारण, प्रतिहारीगण थे खड़े,  
ढले हुए सुन्दर सांचे में गिल्प के  
पुतले-जैसे सजे गये हों भवन में।  
पुष्पाधार, सजाए कुसुमिति क्यारियां,  
मौन खड़े थे सुन्दर मालाकार से,  
कृत्रिम भँवर न गूँज रहा त्रास से।  
सुन्दर मणिमय मंच मनोरम था लगा,  
बैठे थे उपधान सहारे हिन्दू कै—  
अकबर शाहशाह चिबुक कर पर धरे।  
अभिवादन कर, खड़े रहे निर्दिष्ट निज-  
स्थानों पर सब चतुर शिरोमणि मंत्रिगण  
उस प्रभावशाली सतेज दरबार में  
क्षत्रिय नरपतिगण भी सविनय थे झुके।

तब रहीमखां के प्रति खूब करके, चतुर-  
अकबर ने कुछ हंस कर पूछा व्यंग से—  
“कहिये यहां आगरे की जलवायु से  
स्वास्थ्य हुआ सब ठीक आपका वा नहीं?”

कहा खानखाना ने सिर नीचे किये—  
“शहंशाह अब भी कुछ वैसा हैं नहीं,  
जैसा अच्छा होना हूं मैं चाहता,  
इसीलिये अब मेरी हैं यह प्रार्थना  
मुझे हुक्म हो तो जाऊ काश्मीर ही,  
क्योंकि वही जलवायु मुझे हैं स्वास्थ्यकर;  
यही बताया है हकीम ने भी मुझे।”  
अकबर ने फिर कहा—भला यह तो कहो,  
क्योंकर ऐसा स्वास्थ्य तुम्हारा हो गया?”



कहा गानमाना ने फिर क्रुद्ध नम्र हो-  
 "बस हुजूर, मुझसे न यही कहता हूँ  
 जिसे आपसे कहा नहीं मैं चाहता ।

क्षमा कीजिये ! यदि आज्ञा होगी कि हूँ,  
 कहो ! मुझे फिर सच कहना ही पड़ेगा ।"

अरुचर ने तब कहा- "सत्य निर्भय रहो।"

कहा रानखाना ने झुक कर- "जिस दिवस  
 मुझे बनाकर सैन्य भेजा आपने  
 वीर भूमि-मेवाड़-विजय के हेतु, हां-  
 उस दिन सचमुच मुझे असीम प्रसन्नता  
 हुई, कि मैं भी देखूँगा उस वीर को,  
 जो अथ तक हो कर अबाध्य सम्राट का  
 करता है सामना बड़े उत्साह से ।  
 सचमुच साहंशाह एक ही शत्रु वह  
 मिला आपको हैं कुछ ऊँचे भाग्य से;  
 पर्वत की कन्दरा महल हैं, चाग हैं-  
 जगल ही, आहार-घास फल फूल हैं;  
 सच्चा हृदय सहायक, उसके साय हैं;  
 मुगल-बाहिनी से होता जब सामना  
 भिड़ जाना सन्मुख उसका कर्त्तव्य था,  
 सुकुमारी कन्या त्यो बालक का कभी  
 छिन जाता जो आहार बना जो घास से ।  
 वे भी जब हैं अश्रु बहाते तो नहीं  
 होता हैं पाषाण-हृदय द्रवमय कभी ।  
 तिस पर भी उसके उस, हृदय-महत्त्व का  
 कैसे मैं वर्णन कर सकता हूँ प्रभो !  
 राजकुंवर ने वेगम को बन्दी किया  
 फिर भी सादर उसे भेज कर पास में  
 मेरे, मुझको कैसा हैं लज्जित किया  
 मनोवेदना से मैं व्याकुल हो उठा;

इसीलिये यह रोग हुआ है प्रसल में ।  
इससे छुटकारे का एक उपाय है—  
आज्ञा हो तो मैं भी कुछ विनती करूं ।”

हंस और बोले अकबर—‘हां-हां कहो,  
सब मुझको है विदित हुआ जो जो वहां ।”  
कहा खानखाना ने—‘राणा ने कभी—  
किया नहीं आक्रमण आपके राज्य पर ।  
अपने छोटे राज्य मात्र से वे तुष्ट हैं,  
और किसी से भडक रही हो शत्रुता  
तो वह अपने भुजबल से जो कर सके  
करे, शिथिल होगा ! तो भी बल आपका  
बढ़ा रहेगा ! ऐसे सज्जन व्यक्ति से  
आप क्यों न अपना महत्व दिखलाइये ।  
सच कहिये, क्या ऐसे उन्नत हृदय को  
दुख देना है अच्छा ईश्वर-नीति में ?  
केवल चुप हो जाना ही है आपका—  
सन्धि शान्ति के मंगलघोष समान ही,  
दो महत्वमय हृदय एक जब हो गये  
फैलेगा फिर वह महान सौरभ यहां  
जिसके सुखमय गंध-प्रेम में मत्त हो  
भारत के नर गावेंगे यश आपका ।”

अकबर ने फिर कहा—“वात यह ठीक है,  
अब न लड़ाई राणा से उपयुक्त है ।  
मेजो आज्ञा पत्र शीघ्र उस सैन्य को,  
सब जल्दी ही चले आएं अजमेर में ।”  
कहा खानखाना ने—‘हे उन्नत हृदय—  
भारत के सम्राट ! दयामय आपकी  
सुयश-लता की बीज उर्वरा-भूमि में  
शान्ति-वारि से सिंचित हो फलवती हो ।  
अब न काम है जाने का काश्मीर को  
इन चरनों की सेवा ही भू-स्वर्ग है !”

जो उर जरी है कुल-कानि-नेह-वोरी जाति, मान हित माँत जो भरी है थर गोरी सी,  
रोरत प्रताप त्यो निहोरी सी करीर भाँति, वोरी हू प्रकामेगी न ठुमकि ठगोरी सी ।  
“कौशिक” अताम ते प्रभाकर-प्रभा सी साह, श्रीरूक चफासंगी नु भाये बात भोगी मो,  
निपट निगोरी सी परी है जो कृपान कर, तो फिर सुनवता गरी है कर जोरी सी ॥१॥

रोरत प्रताप ये सुनवता हमारी धिरी रन-वदरी की वरजोर विजरी सी है ,  
नैन-पुतरी सी है प्रवीण प्रान-नागर की, साह मान-सागर की सुगर तरी मो है ॥  
जीवन-जरी मो है हरी मरीर गगन की, जंगम सरौर की सजीवन जरी सी है ।  
“कौशिक” सलोक की मिलोक निकरी गी गरी उर सुर-लोक की मनोहर परी सी है ॥२॥

भव-भय भीलम की भारी भयवारी श्रीर, ताप-गय प्रीसम की सिसिर वयारी है,  
प्यारी पलवारी है “कौशिक” हमारी मन, माये वरि लायन मे माय रसवारी है ।  
भनत प्रताप या सुचरित सुनवता पे साह भल मारन की छोड़ चष मारी है,  
नारी छिनगारी है न पार दिलदारवारी, ये तो दिल-दारवारी पार चिनगारी है ॥३॥

तू तो उतपाती उत्पानन को आदी न हों ययो भयो प्रकारन हमारी प्रतिवादी है,  
“कौशिक” तिहारी कौन ठजर आदावो तरी पौन धौ हरी हम तिहारी आहजादी है ।  
भनत प्रताप साह सादी सी हमारी तो ये कुल मरजाद की मुराद बुनियादी है ।  
होवै जो आजादी वरवादी हू सवाई स्वाद जो नहीं अजादी निसवादी राजगादी है ॥४॥

जोरि जोरि टोरी घोर सुभट करोरनि की दौरि दौरि हम पे करत वरजोरी सी,  
ठिठोरी सी “कौशिक” तिहारी साह थोरी पर रौरत प्रताप यह हमारे हिय होरी सी ।  
अव भखभोरी सी वसंगी रन - चंग सोर भोरी सी घरा-बहू लहू के रग वीरी सी,  
रीरी सी लसंगी अग जंग-रंग-भू की धूरि पार खग हू की त्यो प्रसंगी अग गोरी सी ॥५॥

तेरे वन-धाम की तृसना पर धूरि डारि हमने रसना को हरि - नाम - रस वोरी है,  
भनत प्रताप कुल-कानि की उपासना में “कौशिक” सहास प्रान हूँ की आस छोरी है ।  
काम की हमारे नाहि तिहारी सैनसाहीं साह राह लेहु अपनी ययो करत सरफोरी है,  
दाम दिसि दोरी घरा-धाम नेह जोरी सु तो नाम-कीच वीरी कोरी चाम की चटोरी है ॥६॥

वसन-फटे की छटा - वलित पटोरी श्रीर दसन-जटे की सुधा-कलित कटोरी है,  
कौन धौ तिहारी सी न “कौशिक” टटोरी पर भखत प्रताप यह मेरी प्रान डोरी है ।  
साह ये सुनवता है अंतर कठोर खरी जाने ढरि काहू सो न करो गंठजोरी है,  
चौरी है न काहू की कृपा के कीच वोरी है न ये तो नीच कोरी चन्द्रहास की चकोरी है ॥७॥

पुन्य - पटुता ते कटु कपट कटोलौ काटि निपट सपाट बढी बाढ हिन्दुता की है,  
“कौशिक” इहा न चटकीले ठाठ - बाट बैठो साह लकीलों ढरी खाट हिन्दुता की है ।  
रोरत प्रताप प्रेम-कद-रस-बूँदी चखी निरखी विराट लगी लाट हिन्दुता की है,  
चाट दम्भुता की हैं दुआ बिनु मोल तुली लूटि लेहु लूटि खुी हाट हिन्दुता की है ॥८॥

## तुम्हीं ?

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

छली प्रलोभन ने जब छल से,  
छले सरलता के सब प्राण ।  
तुमने ही चरणों से ठुकरा,  
चूर्ण किया उसका अभिमान ॥

भारत के सारे बल को जब,  
फसा वेड़ियों ने जब अनजान ।  
तब केवल तुमही फिरते थे,  
वन-वन पागल सिंह समान ॥

वहा चिलासो की लहरो मे,  
अन्धा वन सारा सत्तार ।  
तुम ही अपने सारे जीवन,  
करते रहे कण्ट से प्यार ॥

सारा भारत मौन हुआ जब,  
सोता था सुख से नादान ।  
तब बन्धन के विकट जाल से,  
लड़ा रहे थे तुम ही जान ॥  
सूर्य झुका, झुक गये कलाधर, झुके गगन के तारे ।  
अखिल विश्व के शीश झुके, पर झुके न तुम प्रताप प्यारे ॥

## प्रताप के वंशजों से

—रामनरेग त्रिपाठी

दिग्विजयी शीरों के वंशज !  
 चक्रवर्तियों के हे प्रतिनिधि !  
 विजय-विविध पुरुषों के समारक्त !  
 स्वयं रामस्त विधानों के विधि !  
 हे धात्रिय ! हे एक ब्रह्म भी,  
 रक्त तुम्हारे तन में जब तक !  
 पराधीन बनकर तूम कैसे ?  
 अचनत कर लेते हो मस्तक !!

---

त्याग भूमि पृष्ठ २६३ से

## स्मृति-गान

—शान्तिप्रिय द्विवेदी

अरे वीर ! क्या तुम्हें कमी थी—जो छोड़ा तूने घर द्वार ?  
 सुख सम्पत्ति से बढ़ा और क्या—जिसके लिये हुआ बलिहार !  
 जह मुगल-दरबारों में थी होती नूपुर की झनकार,  
 वहां भली क्यों लगी तुम्हें तलवारों की खन-खन खनकार !  
 वह विराग था कैसा तेरा—जिसके लिये हुआ मोहताज ?  
 ओ जंगल के राजा ! प्रताप ! क्यों छोड़ा महलो का राज ?

---

त्याग भूमि पृष्ठ ३५० से

हे मेवाड़ पहाड़ ये जूझा जहाँ सिंह परताप ।  
 अटल रहा पर्वत-सा यद्यपि सहे घोर सन्ताप ॥  
 धधकी रूपाग्निनी पदमिनि की जहाँ प्रवल चहुँओर ।  
 कूद पड़ी थी जिसमें सेना यवनो की घनघोर ॥

हे मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है ।  
 दर्प पुराना चूर किया है यवनो का, बतलाती है ॥

हे मेवाड़ पहाड़ यही जहाँ लाल हुआ है नीर ।  
 रक्त वहा मर मिटे जहाँ है लाखो छत्री वीर ॥  
 म्लेच्छराज को गढ़ चितौर से मार भगाया दूर ।  
 हर लाया उसकी कन्या को वापारावल सुर ॥

हे मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है ।  
 दर्प पुराना चूर किया है यवनो का बतलाती है ॥

हे मेवाड़ पहाड़ ये गलता वन करके नित छीर ।  
 मधुर सुखद हैं सबसे जिसके अन्न फल फल नीर ॥  
 कुंजो मे करते हैं कलरव जहाँ सारिका कीर ।  
 कानन मे जहाँ बहै सुगन्धित शीतल मन्द समीर ॥

हे मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है ।  
 दर्प पुराना चूर किया है यवनों का, बतलाती है ॥

नभ को इस मेवाड़-शैल का शिखर रहा है चूम ।  
 भरी हुई है स्वर्ग ज्योति से यह सारी वन-भूम ॥  
 वन फूलो से ललनाएँ सब करती है सिंगार ।  
 दयावती, पतिव्रता, साहसिनी नहिं ऐसी संसार ॥

ये मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है ।  
 दर्प पुराना चूर किया है यवनो का, बतलाती है ॥

(अनुवादक-रामचन्द्र वर्मा)

## चेतावणी री चूँगट्यो

—दे सरी सिंह वारहट, कोटा

पग-पग भम्पा पहार, घरा छोड राख्यो गरम ।  
 (ईंनू) महाराणा र मेवाड, हिरदे वसिया हिर दे ॥१॥  
 घण पलिया घनसाण, (तोई) राण तदा रहिया निजर ।  
 (अव) पेगंतां फुरमाण, हत घत किम फतमत ह्वे ॥२॥  
 गिरन गजां घमगाण, नटवें पर नार्द नहो ।  
 (ऊ) नार्द किम महाराण, गज दोर्म रा गिरन मे ॥३॥  
 ओरां ने आंसाण, हासां हरवल हालयो ।  
 (पण) किम हाले फुल राण, (गिण) हरवल साहां हस्विया ॥४॥  
 नरियंव सह नजराण, भुक फरसा सरसी जियां ।  
 (पण) पसरे लो किम पाण, पाण छतां वारो फतां ॥५॥  
 सिर-भुफिया सह-साह, सोहासण जिम साम्हने ।  
 (अव) रलणो पगत राह, फावे किम तोने फता ॥६॥  
 सुकल चढ़ावे लोस, दाण घरम जिणरो दियो ।  
 सो लिताव वटशीस, लेवण किम ललचावसी ॥७॥  
 देखेला हिदवाण, निज सूरज दिस नेह सूं ।  
 पण तारा परमाण, निरख नितासा नाकषी ॥८॥  
 देखें अंजस दीह, मुलके लो मन ही मना ।  
 दंभी गढ़ दिल्लीह, सीत नमतां सीसवद ॥९॥  
 अन्तवेर आखीह, पातल जो दातां पहल ।  
 (वे) राणा सह राखीह, जिण री साखी सिर भटा ॥१०॥  
 कठिन जमानो कोल, वांचें नर हिमत विना ।  
 (यो) वीरां हंदो बोल, पातल सागे पेखियो ॥११॥  
 अव लग सारां आम, राण रीत कुल राखसी ।  
 रहो साहि सुखराम, एकलिंग प्रभु आपरें ॥१२॥  
 मान मोद सीसोद, राजनीत बल राखणो ।  
 (ई) गवरमिट री गोद, फल मीठो दीठो फता ॥१३॥

महाराणा प्रताप ने अपनी आन-वान और भूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा की दृष्टि से जो उत्कट त्याग और बलिदान किया, वह सिमोदिया वंश की धरोहर बन। जब कभी कोई मेवाडाधिपति अपनी वश पर-  
 म्पराओं से विमुख होता तो उसको प्रताप का स्मरण कराया जाता। राजस्थान के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी  
 श्री केमरी सिंह वारहट ने इसी आशय की यह कविता महाराणा श्री फतहसिंह को लिखी, जब उन्होंने सन्  
 १६०३ ई० में दिल्ली-दरबार में शरीक होने के लिये प्रस्थान किया।

—महाराज श्री विजयसिंहजी

अकबर राज अग्रमाण,

तंगर तन टाणा लगी ।

रोक्यो निज बल राण,

तोमर पाण प्रतापसी ॥१॥

अकबर पौन अयाह ,

धर्म-नाव वोरन घनयो ।

महिपत होय मल्लाह ,

ते राखी राणे पता ॥२॥

फामघज अरु कछवाह ,

बुहिता वे राखी घरा ।

रामचन्द्र फुल राह ,

राण पते भुज बल रखी ॥३॥

त्याग भूनि पृष्ठ २६६ से ।



## मेवाडा मेवाड़ वणाई रजवट री पटशाला

—महाराज चतुरसिंहजी

राणा घोर घरम रखवाला, थूं रघुकुल रा बटवाला ।

थूं रजवट रा बटवाला ॥

वीर प्रताप राम रा पोता, जशरा जगत उजाला ।

भलां पालणो खला खपाणो, चौसट घड़ी आपरा चाला ॥१॥

दो दरियाव तर्या इक साथे चेटक चढवावाला ।

लम्प्या फोड दुख, छोड सभी सुख, खम्प्या न खोड खवाला ॥२॥

मेवाडा मेवाड वणाई रजवट री पटशाला ।

एडी ठोड़ न दियो अगोठो, बढतो गयो बढाला ॥३॥

थारो नाम कोन सुण होवे मुकना मद दताला ।

मनखां पणो सिखायो सागे मनख मात्र रा वाला ॥४॥

खोठां री छाती मे खटके हात हाथ रा भाला ।

एकलिंग रे रिया आशरे दिया दुसमणां टाला ॥५॥



## स मेदपाट रा तू जाया चित्तीड़ा !

—श्री सुमनेश जोशी

जीत्योडां रा गीत रवान नित गाया,  
पण जूंभूणेनं ने जग जाण्या श्रयतारी  
ए मेदपाट रा तू जाया चित्तीड़ा,  
जूंभारां में थारी ऊंची शिरदारी ।

(२)

तू राज तिलक तू महाराणा पद पावो,  
पण भिनखपणा रो तिलक क्रियो लुद हाया,  
तू राणां तू छिन में वरणयो वंरागी  
तू श्रल्लत जगाई, जातयो श्रणगिण राता ।

(३)

तू राजमुकुट सिहासण, सुखरो सपनो —  
सव मेदपाट रे सुख रे सातर धार्यो ,  
तू धरती सोयो पातल-दूना जीम्यो ,  
तू मरण पंथ रो नेप श्रनूटो धार्यो ।

(४)

तू खुदरे हाया खुदरी चिता जलाई,  
तू जल बल ने सोने सो चमक्यो, चाल्यो,  
तू लोहारे रा लोहा ज्यूं जल जल ने,  
जीवण रो साचो नुवो-नुवेलो ढाल्यो ।

(५)

तू राजदण्ड तू विरत, राज्य तू विलग्यो,  
तू रच्यो मरण-त्योहार, मरण व्रत पाल्यो,  
तू भूख्यो, तिरस्यो वन वन श्रटक्यो, भटक्यो,  
(पण) सत्तांधीशां रो गरव पलक मे गाल्यो ।

(६)

तू छप्पन री चोटी चढ़ने चिघाड्यो ,  
(के) रुक जा दिल्ली रा तुरक वादशा रुकजा?  
आ श्रमर गहीदां-सतिथां री धरती हे ,  
भुक सके श्रगर तो इणरे आगे भुकजा ।

(६)

आ धरती गोदड़ नहीं, सिघ जाया है,  
जिणरी छाती में भयो वज्र फीलादी ,  
जो वरबादी ने कदम कदम पर न्योते ,  
बदले में मांगे धरती री आजादी ।

(८)

आ धरती जाया आत्मबली, अभिमानि ,  
ज्यांरी छायां सूं काल कांपतो आयो ,  
जो जीत्या सो जीत्या जुग रा जोधां सा ,  
मरग्या तो मरने मरण-पंथ बतलायो ।

(९)

तू छप्पन री चोटी चढ़ने ललकार्यो ,  
(के) आवो तिर रा सौदा करण्य सरदारों ,  
धरती माता रो नाक बचावण खातर ,  
म्यांनां सूं बाहर काढो अब तरवारों ।

(१०)

केसरिया कर कर उमड़्या दल गोमूंदे ,  
गज्या के भुकरणो निज सत्ता में सोहवे,  
परदेशी सत्ता आगे नहीं भुकांला ,  
चाहे सुरज रो उगणो पिच्छम होवे ,

(११)

अकबर रे कानां पोंहच्या ए संदेशा ,  
भेजी मेवाडां वो फौजी चतरंगी ,  
हलदी घाटी में जंग मच्यो जोधांरो ,  
तू कूद्यो रण मे ले गिणती रा संगी ।

(१२)

रणचण्डी चेती, कुण हार्या कुण जीत्या-  
इणरी तो केवल ख्याता रह गई साखी ,  
पर तू मिट मिट ने अमिट लेख लिख मिट्यो,  
के अमर हुवा जो लाज धरण री राखी ।

## प्रताप प्रतिज्ञा

—श्री केसरीसिंह वारहठ

( दोहा )

सुधर रान सबही चुन्यो, श्रीर नृपन आचार ।  
 पराधीन भूपन दिए, बार बार धिक्कार ॥  
 अरि रान तैं डरि हों नहीं, करिहों नहीं कुकर्म ।  
 पग अकबर परिहों नहीं, घरिहों नहीं विघर्म ॥१०७॥

( मन्हर )

सारीरिक सक्ति घटे प्राण के पयान समें,  
 तदपि घटाय हों न मैं तो मनुसाई को ।  
 कदाचित् स्वास बढ़ि जाय अंतकाल वेर,  
 तदपि बढ़ाय हों न तुरक बढ़ाई को ।  
 वृद्धता लिये तैं भुकि जाय हैं शरीर तोहू,  
 तनिक भुकाय हों न सीस आतताई को ।  
 प्राणप्रिय परिजन को भूलि यदि जे हैं तोहू,  
 भूलि हें न पत्ता कबी भारत भलाई को ।

---

केसरीसिंहजी वारहठ निवासी गांव सोन्याणा जिला उदयपुर द्वारा रचित 'प्रताप-चरित्र' से उद्धृत-  
 काव्यांश ।

## प्रताप-मान सम्वाद

—केसरीसिंह बारहठ

मान— राबरे हितु हैं सदा वाक्य मन कर्मना तें,  
तातें मन मेरो कहिवे को अभिलाख्यो है ।  
कहत विचारे कोऊ मानत न ताकी एक,  
सारे मित्र मण्डल को आप ठेल राख्यो है ।  
लाभ और हानि को विचार में न लावत हो,  
ऐसो हट नाहक ही कैसे भेल राख्यो है ।  
महारान ज्ञानी व्है अज्ञानी की-सी बात करो,  
केवल स्वतंत्रता मे कह मेल राख्यो है ॥

प्रताप— प्यारी हे स्वतंत्रता सब ही जीव धारिन को,  
छोरि कर याको में तो मन बहलाऊँ ना ।  
व्है के परतन्त्र तीनलोक को न राज चाहौं,  
काहू के डराए हू तें दिल बहलाऊँ ना ।  
देवन के देव एकलिंग है हमारे नाय,  
ताके अतिरिक्त सीस काहू पे नमाऊँ ना ।  
हार जाऊँ समर, उजारें जाऊँ देस, देह—  
डारि जाऊँ तोऊ जमीदार कहलाऊँ ना ॥

मान— सम्मति हमारी है सलाम करिवे की रान,  
जिनकी सलाम बीच सम्पति को घाम है ।  
जिनकी सलाम ही ते भूपन के भूप होत,  
जिनकी सलाम तें जहान बीच नाम है ।  
जिनकी सलाम तें असाध्य सोउ साध्य होत,  
जिनकी सलाम तें सधै न कौन काम है ।  
नाहक ही ऐसो हट आप गहि लीजें नाहिं,  
एक बैर कीजें पातशाह सौ सलाम है ॥

प्रताप— कैसे तुर्क चर्नन मे तेगन धरत भूप,  
बदन भुकाय कैसे सीस को नमावें है ?

करत सलाम गत कैसे है विलोम गति ?

पीछी चोवदार कैसे लूम पकरावें है ?

कैसे कर बद्ध होय आमखास रहे खरे ,

कैसे महिपाल अघोदृष्टि सों रहावें है ?

कहा करे मान ! हम सदातँ असिक्षत है,

ऐसी सम्म्यता सो बन्दे करनो न आवे है ॥

मान— कीनी है सलाम जिन भूपन ने मान कहे,

ताके निज भौनन में रहत आनन्द है ।

जाकी राज-रानियां उदय महलों के मध्य,

नूपुर वजात चली जात मन्द मन्द है ।

दम्पति की सुखद विलासता विलोकि वे फों,

नभ मे घरीक रुफिजात गति चन्द है ।

साह की कृपा के कैसे सुघर विलासी वृंद,

सुख के हिन्दोरे चढे भूलत नरिन्द है ॥

प्रताप— कोउ नर सर्व भांति ऊचोहूँ चढ्यो तो कहा?

जाको जस एकवार तांत पै चढ्यो नहीं ।

कंवर अपार धन धाम में बढ्यो तो कहा,

जाको मन जाति अभिमान में बढ्यो नहीं ।

पढि के पुरान, वेद पण्डित भयो तो कहा ?

जो पै कुल-धर्म-पाठ रेंच हू पढ्यो नहीं ।

हायन हजार स्वास सुख ते कढ्यो तो कहा?

देस हित एक हू उसास जो कढ्यो नहीं ॥

मान— अकवर पातसाह भारत के भूपन को,

दासता की जकर जंजीर जरि दीने है ।

जापे भयो कोप को कटाच्छ जचनेश जूको,

ताके घर संजमनी बीच भर दीने है ।

कैसे नृप सीस आसमान सों अराय रहे,

घाय घाय चर्नन में सस्त्र धर दीने है ।

आप को विगारवे की बात हैं कितीक रान?

बडे बडे साहन को मात कर दीने है ॥

प्रताप— भीलन की पल्लिन मे फिरत रहोंगो सदा,

कुटी में रहोगो महलात में रहोंगो ना ।

खावत रहोंगो बैल पात गिरि कन्दरन,

पारतन्त्र व्यंजन को पावत रहोंगो ना ।

कूरम ! विधर्मिन को दास हों कहोगो कहा?

मै तो तुर्क हाथ व्हे के दच्छन रहोंगो ना ।

जाति व्हे रहोगो मै विजाति व्हे रहोगो कहा?

मात व्हे रहोंगो मातहत व्हे रहोंगो ना ॥

मान— भारत के भूप सब साह के अधीन भए,

छत्रिन की जाति मग आपको गहेगी ना ।

धकत दिलीस्वर की क्रोध की अगति बीच,

दनि के पतग देह आपनी दहेगी ना ।

कैवल स्वतंत्रता के कारन विलासता फों,

छोरि कर कष्ट नेक कबहू सहेगी ना ।

रान श्री प्रताप यह डावरे सी बात करो,

रावरे रखेते ही स्वतंत्रता रहेगी ना ॥

प्रताप— भारत के भूपति स्वतन्त्रता चहै न चहै,

नवरोजा जार कर्म कबहू सहेगे ना ।

सीसवद वन्स होय जनानी अवारी अग्र,

हरम हजूर मह पैदल बहेगे ना ।

दास के समान आमखास मे खरे ही खरे,

रेसम की लूम रास हमको गहेगे ना ।

फलचर कहेंगे त्रनचर कहेंगे लोग,

बनचर कहेंगे अनुचर कहेंगे ना ॥

# चेटक री टापां सूं गुंजी आ धरती मेवाड़ी

—सोमग्यसिंह शेखावत

चेटक री टापां सूं गुंजी आ धरती मेवाड़ी ।

पेड़ पेड़ पर लह्यो सूरमों भमियो वीहड़ पहाड़ी ॥

पान फूल वन पत्तियां पाई,

पाखर सेज सजाई ।

अकवर री अणपार फौज में,

वध वध ताग वजाई ॥

चेटक री टापां सूं गुंजी आ धरती मेवाड़ी ।

बीजलसार सावलां रमियो भमियो वीहड़ पहाड़ी ॥

हल्दीघाटी री आंगणियो,

वीरां रगत रंगाई ।

चेटकड़ी हाथोड़ा माये,

खुड़ताला खुड़काई ॥

चेटक री टापा सू गुंजी आ धरती मेवाड़ी ।

पान पान नै रंग कसूमल भमियो वीहड़ पहाड़ी ॥

वट रजपूती द्वभर वांकी,

आजादी अलसाई ।

पीयल री परवानों पाकर,

भरवाणो मुलुकाई ॥

चेटक री टापां सूं गुंजी आ धरती मेवाड़ी ।

पेड़ पेड़ पर लह्यो सूरमों भमियो वीहड़ पहाड़ी ॥

कास खजाना रीता खाली,

भूख ब्रखा भरसाई ।

स्याम धर्मो भामासा आसा,

आडो आय बंधाई ॥

चेटक री टापां सूं गुंजी आ धरती मेवाड़ी ।

पेड़ पेड़ पर लह्यो सूरमों भमियो वीहड़ पहाड़ी ॥

खड्ग कूयालां खिणां कूप नै,  
 सद रगत नीर सोंचाई ।  
 फूली फली फसर कर फली,  
 इसड़ी वेलि उगाई ॥  
 चेटक री टापां सूं गुंजी आ धरती मेवाड़ी ।  
 पैड पैड पर लड्यो सूरमो भमियो ज़ीहड़ पहाड़ी ॥  
 हार जीत भगवत रै हाथ,  
 पुरसारथ सकलाई ।  
 आजादी से पौव लगाकर ॥  
 सूरौ सुरग सिघाई ॥  
 चेटक री टापां सूं गुंजी आ धरती मेवाड़ी ।  
 पैड पैड पर लड्यो सूरमो भमियो वीहड़ पहाड़ी ॥





## पातल और पीथल

—कन्हैयालाल सेठिया

अरे घास री रोटी ही,  
जब बन विलावड़ो ले भाग्यो ।  
नन्हो सो अमरचो चीख पड़्यो,  
राणा रो सोयो दुःख जाग्यो ॥१॥

हूं लड़चो घरों, हूं सह्यो घरों,  
मेवाडी मान बचावण ने ।  
मैं पाछ नहीं राखी रण में,  
वैरचां रो खून बहावण ने ॥२॥

जब याद करूं हलदी घाटी,  
नैरां में रगत उत्तर आर्व ।  
मुख-मुख रो साथी चेतफड़ो,  
सूती सी हूक जगा जावे ॥३॥

परण आज विलखतो देखूं हूं,  
जब राजकँवर नै, रोटी नै ।  
तो क्षात्र धर्म ने भूलूं हूं,  
भूलूं हिन्दवाणी चोटी नै ॥४॥

आ सोच हुई दो टूक तडक,  
राणा री भीम वजर छाती ।  
आख्यां में आंसू भर वोल्हो,  
हूं लिखस्यूं अकवर ने पाती ॥५॥

राणा रो कागद बांच हुयो,  
अकवर रो सपनो-सो सांचो ।  
परण नैरां करचा विस्वास नहीं,  
जब बांच-बांच ने फिर बांच्यो ॥६॥

बस दूत इसारो पा भाज्यो,  
पीथल ने तुरत बुलावण नै ।  
किरणां रो पीथल आ पूग्यो,  
अकबर रो भरन मिटावण नै ॥७॥

“न्है वाँध लियो है पीथल ! सुण,  
पिंजड़ा में जंगली सेर पकड़ ।  
यो देख हाथ रो कागद है,  
तू देखीं फिरसी कियं अकड़ ॥८॥

हूँ आज पातस्या घरती रो,  
मेवाड़ी पाग पगां में है ।  
अब बता मनै किस रजवट के,  
रजपूती खून रगां में है” ॥९॥

जद पीथल कागद ले देखी,  
राणा री सागी सेनाणी ।  
नीचे सूँ घरती खसक गयी,  
आँखों में भर आयो पाणी ॥१०॥

पण फेर कहों तत्काल सँभल,  
“आ बात सफ़ा ही झूठी है ।  
राणा री पाग सदा ऊँची,  
राणा री आण अटुटी है ॥११॥

ज्यो हुकुम होय तो लिख पूछूँ,  
राणा रै कागद रै खातर ।”  
“ले पूछ भला ही पीथल ! तू,  
आ बात सही—” बोल्यो अकबर ॥१२॥

“न्है आज सुणी है, नाहरियो,  
स्याला रै सागै सोवै लो ।

म्हे श्राज सुणी है, सूरजङ्गो,  
बादल री ओटाँ खोवैलो ॥१३॥

पीथल रा आखर पढ़ता ही,  
राणारी आँखियाँ लाल हुई ।  
“धक्कार मने, हं फायर हं,  
ताहर री एक दकाल हुई ॥१४॥

“ह भूख मरूँ, ह प्यास मरूँ,  
मेवाड़ धरा आजाद रहूँ ।  
हं घोर उजाड़ा में भटकूँ,  
पण मन मे माँ री याद रहूँ ॥१५॥

पीथल ! के खिमता बादल री,  
जो रोकै सूर उगाली नै ।  
सिंहा री हाथल सह लेवे,  
वा कूल मिली कद स्याली नै” ॥१६॥

जद राणा री सन्देश गयो,  
पीथल री छाती ठूणी ही ।  
हिन्द बाणी सूरज चमके हो,  
अकबर की दुनियाँ सूनी हो ॥१७॥

## राणा-प्रताप

—वृद्धिशंकर त्रिवेदी 'शिल्पी', उदयपुर

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !

ऐ ! भारतमाता रा सपूत !

ऐ ! स्वतन्त्रता रा अप्रदूत !

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

( १ )

जागूँ हूँ थारी रग-रग में, हो रगत बह्यो राजस्थानी ।  
जागूँ थारी तलवारों में, हो बाप्पा रावल रो पाणी ।  
कीरत कुम्भारी भालें में, थारे हरदम ही बसती ही ।  
थें वे अगतर बांध्या जिरामें, सांगा री छाती कसती ही ।  
बिरा सोच कियों डाकणियां रो, घनघोर गुफा में घुस जाणो ।  
कुल देवी रो कहणो सुणन, नीडर व्है खड्ग उठा लाणो;  
राणा हमीर री वा हिम्मत, थारी नस-नस में ही सांगे ।  
चँडा ज्यूँ देणो त्याग सकल जो त्याग कदे कोई मांगे ।

वा उदयसिंग री सूझबूझ ।

हिवडें लें लडियो जूझ जूझ !

इतिहास बण्योडो हे सक्षुत !

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

( २ )

थें पडयो पगतले जद देख्यो, वो राजस्थानी राजमुगट  
थें देख्या भाई-भाई जद, आपस में लड़ मरता कट-कट ।  
भारत री छाती रौंद रौंद, बैर्यां रा बढ़ता दल आता ।  
थें देख्या दुसमरा रे कब्जे, पुरखां रा गाढ़ा गढ़ जाता ।

वो पदमरा-करुणा रो साकौ, थारी आंखियां में दीड़ गियो ।  
उरा धुआंधार धव धव करती, आंधी हिवड़ा ने कँपा दियो ।

अणबुद्ध्या अगारो जोहर रा, राखोड़ी नीचे दबियोड़ा ।  
वो जयमल-पत्ता रो मरगो, वे जकां जकां पड़िया फोड़ा ।

लोई रो घूँट तुरत पीदो ,

गांगेय-सरोखो प्रण कीदो ।

इतिहास बण्योड़ो हे सबूत ।

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

( ३ )

जो राजस्थानी राजपूत, एको फर लेवं थापस में ।  
तो शाहूलां सूँ छेड़ करे, आ बात न वेर्या रे बस में ।  
मुगलां सूँ खारा हा पठान, खोई आजादो लेवण ने ।  
खिलजी, संयद, लोदी, सूरी, वैठा हा गुस्ता मे तरण ने ।

अकबर आ बात जाणतो हो, इण में रत्ती भर झूठ नहीं ।  
म्हारो तो बाल न बांको व्हे, जो रजपूतां मे फूट रही ।  
पण, आ शतरजी चाल नहीं, बांका राठोड़ समझ पाया ।  
बुसमण सूँ नाता जोड़ जोड़, उल्टा भायां पर गुरािया ।

पातल ! थें कीदा सावचेत ,

भायां सूँ तोड़ो नहीं हेत ।

इतिहास बण्योड़ो हे सबूत ।

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

( ४ )

पण, मानसिंग ने नहीं जेंची, अकबर सूँ कीकर घात करे ।  
भोलो व्हेवं है राजपूत, कहदे सो पूरी बात करे ।  
राजपूतां में एको न ब्हियो, थारे मन में आ टीस रही ।  
दिल्ली पर बुसमण राज करे, हिवड़ में कड़वी रीस रही ।

थें धार लियो हर कीमत दे, मायड़ रो मान बचाऊँला ।

चाहे दो चार बार हारुँ, पण जीत अन्त में जाऊँला ।

म्हेलाँ रो मोह म्हेनै कोनी, पाता पर खाऊँला रोटी ।  
आजादी री रखवाली में, तन कर, डूँला वोटी-वोटी ।

सोनो, चांदी, सुख, सेज, छोड़ ,

थूँ गियो डूँगराँ दौड दौड ।

इतिहास बण्योडो है सबूत ।

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(५)

थें अलख जगायो घर घर जा, डेरा डाल्या भूँपडियाँ में ।

‘सामन्ती’ तज ‘साथी’ बणायो, अणथाहा दुखरी घड़ियाँ मे ।

‘राणी जाया, मेणी जाया,’ थें कह्यो वरोवर है सारा ।

रजपूत, भील, मेणा, सगला, हा थने तरीखा ही प्यारा ।

थें छापा-मार-जुद्ध सिखला, आजादी रो दिवलो जोयो ।

भूखो-तिरस्यो ही लड्याँ कियो, पण सुख री नींव नहीं सोयो ।

वे ‘सगर’ ‘शक्त’ भी छोड गया, तो पण थें टेक नहीं छोड़ी ।

कर अपरणी बजर-भीम-छाती, सब सहियो आण नहीं तोडी ।

जो एकबार थें लियो धार,

पाछो न कदै बदल्घो विचार ।

इतिहास बण्योडो है सबूत ।

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

! (६)

आयो मान ले मुगल-फौज, दिल्ली सँ पढ़ उल्टी पाटी ।

डूँगर डूँगर री खाक छाण, पहुँच्यो सीधो ‘हल्दीघाटी’ ।

सँग लियाँ महाबत, शाहबाज, वे घणा घणा भट अभिमानी ।

अकबर रा छाँद्योंड़ा जोछा, तातार और वे अफगानी ।

तो पातल ! थें चेटक चढ़नै, आढो फिर मारग रोक दियो ।

बाईस हजार बहादुर ले, मुगलाँ रो पाणी माप लियो ।

वो भालो-मान मरद वाँको, गोविन्दसिंग भीलू राजा ।  
सब जणों हलस्या लड मरवा, बाजरा लाग्या माद बाजा ।

चेटक तुडवातो हो लगाम,  
करवाने अपणो अमर नाम ।  
इतिहास वण्योडो है सबूत ।  
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !  
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(७)

‘जय एकलिंग’ कह दूट पड्यो, अणगिणती रो कर दियो ढेर ।  
मूली-गाजर ज्यूँ मुगल फौज, फटवा में लागी नहीं देर ।  
मेवाड़ी दस दस मुगलाँ सूँ, टपकर लेता हा दौड़ दौड़ ।  
चेटक चढ़यो हाथी मार्य, पण थें सलीम ने दियो छोड़ ।  
गोला हमीद रो तोपा रा, खलवली मचादी अरिदल मे ।  
भाले दे दिया प्राण अपणा, लख थने मुसीबत रा पल में ।  
सोल हज़ार व्हे गया खेत, रंग अपण लोहू से माटी ।  
यूँ स्वतन्त्रता रो मोल चुका, इतिहास रच्यो हल्दीघाटी ।

चेटक रो देख्यो त्याग अमर,  
तो गियो सत्क रो नशो उतर ।  
इतिहास वण्योडो है सबूत ।  
ऐ ! राजस्थानी राजपूत ।

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(८)

व्ही हार लडाई में तो पण थें मन में हार नहीं जाणी ।  
आजादी रे अपण करदी, बाकी वचियोड़ी जिन्दगाणी ।  
गाडोल्या तक घर-बार छोड, फर गया उजागर आ घरती ।  
तलवार, तीर, भाला घडिया, क्यूँ के आ सवरी माँ धरती ।  
पच्चीस बरस तक अन्तिम दम, यूँ डिग्यो नहीं अपने प्रण सूँ ।  
‘सामा-क्रोदाँ सूँ पेट पाल, यूँ फदे न विमुख च्हियो रण सूँ ।

पण, हृद होवै है धीरज री, अब उण रो भी छेड़ो आग्यो ।  
जद अमरसिंग रे हाथी सूर्, वनविलाव रोटी लै भाग्यो !!

आखिर फर अपणो पत्यर-मन ।

जें लिख्यो पत्र दिल्ली फोरन ।

इतिहास बण्योड़ो है सबूत ।

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(९)

दिल्ली में हरख अपार हुआ, अकबर रे मनरी बात हुई ।  
जाराँ अन्धारो जीत गयो, उजियाला भायें घात हुई ॥  
पण पीथल दिल्ली बैठो हो, तो फेर अंधारो रहे कठे ।  
सूरज-वंशी री देख-रेख, खुद सूरज करतो रहे जठे ॥

पीथल अकबर ने कह्यो तुरत, फोनी ए राणारा अक्खर ।  
कुण तो पण कीदी है मजारु, वो जीतेजी लेला टक्कर ॥  
उण लिखिया दो ही बोल जकां, वा बात न बिगड़ सकी थारी ।  
उल्टी अकबर ने पीथल सूर्, प्यादे री मात मिली भारी ।

वो सुरसत रो सुत हो सागै,

उण रे कहताँ कुण न्हों जागे ।

इतिहास बण्योड़ो है सबूत ।

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(१०)

जद देख्यो सोना-चाँदी बिन, बिन फीज टलेला प्रण पाल्चो ।  
कीदी अपणी करड़ी छाती, मेवाड़ छोड़ ने थूँ चाल्यो ।  
पण, आ बड़ भागण साँ जामण, बेर्याँ री दासी बण रेवै ।  
घन री ढेरी भायें बैठा, वेटा ओ कीकर सह लेवै ।



वो भामाशाह तुरत दौड़्यो, थेल्यां मे भरी अशरफियां ले ।  
 बोल्हो राणा मत व्हे निराश, लड जितरे संकट नहीं टल ।  
 थू फेर एकठी कर फोजाँ; आड़ावल रो अभिमान वचा ।  
 व्हे देस न दुसमण रे अधीन थू वैंरयां सू घमसाण मचा ।

जो भीम जलै इसड़ा जाया ।

दुसमण री पड़ न सकै छाया ।

इतिहास वण्योडो है सवूत ।

ऐ ! राजस्थानी राजपूत ।

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(११)

ऐ ! सागैड़ा गुहिलीत ! गुफा रा नाहर थू वारै आयो ।  
 कीदी दकाल, बण गियो काल ! थू दुसमण रे माथे छायो ॥  
 गोविन्दसिंग, वो शक्तिसिंग, वो अमरसिंग भीलूराजा !  
 दुसमण रा पांव उखाड़ दिया, पाछा घाज्या मारु वाजा ।  
 मांडल, चित्तौड़, उंठली नै, दो चार किला बाकी रहग्या ।  
 पण सूरजडो आथमग्यो तो, सपनां रा शीश-महल ढहग्या ।  
 भारत मां रोई सिर धुन धून, सहियो न गियो ओ वजरपात ।  
 थै कीदी गोद जकां खाली नहै, विघना री टल सकी घात ।

थू मरयो नहीं ऐ ! मृत्युञ्जय !

ओ देश करै थारी जय-जय ।

इतिहास वण्योडो है सवूत ।

ऐ ! राजस्थानी राजपूत ।

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

# Pratap the mighty

---

H. S. Mordla, Udaipur.

Who knows not Pratap  
    Our Pratap the mighty,  
The ideal hero  
    In world's history,  
The lord of freedom  
    Power and piety',  
Who stood unbent  
    Before Akbar's might ?

    Might that was strongest  
        In men, money and opportunities  
    Of any Emperor  
        Of the then world :  
    Of the then world—  
        World which produced  
    The finest specimen of kingship  
        Both in the East and the West ?

Who knows not pratap—  
    The Sun of the Sun-got clan—  
The very example of  
    Living, endurance,  
Tenacious perseverance,  
    Indomitable courage,  
Firm determination and of the  
    Most pure and spotless character—  
A rare combination to be found  
    In the history of the world ?

# The Last Dialogue

Shri J. S. Singhvi, I. A. S., Udaipur.

The faithful chiefs of many a glorious day,  
Stood round the dying hero's bed of hay,  
A streak of mental anguish made Salumbra inquire,  
"What afflicts the valiant heart of the worthy sire?"

"Chiefs thoughts of tomorrow torment my soul,  
No longer in medpat freedom's drums may roll,  
Amar may not lay aside mirth on Pichhola lake,  
And you may not face the foe for freedom's sake"

"Dewan : we' ll always keep Medpat's honour at heart.  
And face the foe steadfast bearing our part.  
We know not fear once our swords are unsheathed,  
We know that here a great trust in bequeathed."

"Sleep well' O master without peer in chivalry and fame,  
We swear by Bapa's throne and Ekling's name  
Despite foe's legions strong and the'r might,  
We' ll stand together for the country and the Right."

---

# विविध लेख

---

आधुनिक विचारक एवं शोध विद्वान

---

- राष्ट्रीय व्यक्तित्व
- कृतित्व
- सिद्धान्त एवं नीतियां

ज्वालाकाशकराल शोणित झरीमन्त्रे हँडै इचञ्चलै :  
कालाकार कृपाण हस्तवलि तैर्नृत्यत्कबन्धभुर्व ॥  
कृत्वालङ्कृतिमेषयच्च वसनं श्री चित्रकूटाभिघन्त्यक्त्वाब्दे  
युग बाहुषट्क्षितिमिते प्रोक्ते पुरे प्राविशत् ॥ ८ ॥

सोयं कार्यवशादवाप्य नगरं भाडोल सज्ञे पुनः  
स्मृत्वा तत्र पद स्वकीयमगमत्कलाससज्ञ महत् ॥  
वर्षोस्मिन् वसुहस्तषट्क्षितिमिते राष्ट्राभिषिक्तोभवत्स्यायं  
तनय प्रतापउदितः सन्दर्शितेऽब्दे सुधी ॥ ९ ॥

यस्यायं यत्प्रतापेन युधि मुहुरथो दह्यभामस्तरुणकाशीशः  
सज्ञान्न लेभे न च जयमपि सद्भानुना भूप्रदेशे ॥  
तेनायं श्री प्रतापाधिय इति गदितो वीरधीरोविषस्वांश्चावण्डाक्ष्ये पुरे यः  
खगशर रसभूसम्मिते स्वर्जगाम ॥ १० ॥

(गोकुलचन्द्रमा मन्दिर प्राप्तिः)

# मराठी साहित्य पर राजपूतों के इतिहास का प्रभाव

—डा. एम. एस. काण्डे

ईसा की आठवीं शताब्दि से लगभग १००० वरसों तक विदेशी अरब, तुर्क मुगल आदि आक्रमणकारियों के विरुद्ध राजस्थान तथा प्रमुखतः मेवाड़ के राजपूत वीरों ने जो संग्राम किया वह भारतीय इतिहास में अद्वितीय है। बापा रावल के काल से राजस्थान के विभिन्न राजवंशों ने अपने धर्म, शांति और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये जो अलौकिक वीरता दिखाई वह राजस्थान के साथ समूचे भारतीय इतिहास को प्रदीप्त करती है। भारत के राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए राजपूत वीरों ने जो वीरता एवं बलिदानपूर्ण कार्य किये हैं, उनका यशोगान करना हर भारतीय का कर्तव्य है।

## मध्यकालीन मराठी साहित्यः—

इस वीरकाल की चरमसीमा मध्यकाल में हुई। मध्यकालीन भारतीय भाषाओं का साहित्य मूलतः आध्यात्मिक है। राम कृष्ण अथवा शिव गणेश आदि देवताओं तथा उनके भक्तों के आदर्श इस साहित्य में चित्रित हैं। समकालीन वीरों की उपेक्षा अतीत के भक्त चरित्रों का गान करना इस काल के कवियों को अधिक आता था। विशिष्ट काल के वीर पुरुषों की अपेक्षा, शाश्वत सुख को देने वाले भगवान की और उनके भक्तों की अर्चना करना इन सन्तों का उद्देश्य रहा। मध्यकालीन मराठी साहित्य में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई देती है। ईसा का १३ वीं शताब्दिसे १६ वीं

शताब्दि तक महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, मुक्तेश्वर, वामन पंडित मोरोपंत आदि प्रतिभा-संपन्न कवियों की एक परम्परा प्राप्त होती है, किन्तु इन कवियों ने सामयिक वीरों का चरित्रगान नहीं किया है। महाराष्ट्र के इतिहास में स्वाधीन मराठा राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रति सभी भारतीय श्रद्धाभाव रखते हैं। उनसे प्रेरणा लेने वाले महाराष्ट्रीय वीरों में नानाजी, संताजी, संभाजी, घन्नाजी, बाजीराव, ज्येष्ठ माधवराव आदि वीर पुरुष प्रसिद्ध हुए हैं। लेकिन उनके समकालीन साहित्यकार राम, कृष्ण की कथाओं में ही अधिक रंगे रहे। धर्म एवं संस्कृति पर होने वाले अत्याचारों के प्रति वे जागरूक थे, किन्तु भगवद् आराधना को ही वे एक मात्र मुक्ति का मार्ग मानते थे। इस कारण मध्यकालीन महाराष्ट्र में प्रायः राष्ट्रवादी वीरकाव्य की रचना प्राप्त नहीं होती है। इस दृष्टि से महाराष्ट्र धर्म का संदेश देने वाले समर्थ रामदास ही मात्र अपवाद रहे।

## राजपूतों संबंधी ऐतिहासिक उपन्यासः—

१६ वीं शताब्दी के मध्यकाल में अंग्रेजी शासन स्थिर हुआ। इसी के आसपास स्वाधीनता के सपने देखने वाले देश भक्त विचारकों की पीढ़ी का उदय हुआ। उन्होंने अंग्रेजों का विरोध करने के लिये कलम को तलवार की तरह प्रयुक्त करके

भारत के गौरवशाली अतीत को रेखांकित किया। महाराष्ट्र के साहित्य में भारत के अन्य प्रदेशों के वीर पुरुषों के चरित्र भी चित्रित किये गये। उसी काल में मराठी साहित्य में राजपूत वीरों और वीरांगनाओं का गुणगान होने लगा। राष्ट्रवीरों के चरित्र गान से जन सामान्य को प्रेरणा देने की विचारधारा को, लोकमान्य तिलक द्वारा प्रवर्तित गणेशोत्सव और शिवाजी-उत्सव जैसे राष्ट्रीय समारोहों से बल मिला। 'तिलक युग' के इस नवीन साहित्यिक जागृति-काल में सामाजिक उपन्यासों के साथ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये। अनेक उपन्यासकारों ने राजपूत इतिहास से कथाएँ और चरित्रों को चुना है। मुख्यतः राणा प्रताप, राणा हमीर, पद्मिनी, दुर्गादास आदि चरित्रों को लिया गया है। मराठी के उपन्यास सम्राट श्री हरिनारायण आप्ते ने अपने उपन्यास में औरंगजेब की सेना का सामना करने वाले राजसिंह की कथा वर्णित की है। श्री हरिनारायण आप्ते ने दृढ़ प्रतिज्ञा चन्द्रसिंह तथा राणा हमीर आदि की कथाएँ वर्णित की हैं। इसके अलावा बापा रावल, चित्तोड़ के युद्ध एवं जौहर आदि उनके प्रिय विषय रहे हैं। लगभग २५ उपन्यासों का विषय राजपूतों के इतिहास पर आधारित है। हरिनारायण आप्ते और नारायण हरि आप्ते दोनों के उपन्यास लोकप्रिय हुए हैं लेकिन हरि नारायण का 'रूपनगरची राजकन्या' शीर्षक उपन्यास इन सभी में कला की दृष्टि से प्रथम कोटि का है।

## ऐतिहासिक नाटकः—

राजपूतों के शौर्य, साहस, बलिदान और स्वातन्त्र्य प्रेम को विषय बनाकर मराठी साहित्य में कई नाटकों की रचना की गई है। ई.सं. १८६२ में श्री शिरवलकर और मोडक द्वारा लिखा हुआ 'राणा भीमदेव' नाटक लगभग ३० वर्षों तक रंगमंच पर प्रभाव डालता रहा। इन लेखकों में से श्री शिरवलकर ने अपने 'पन्नारत्न' अर्थात् 'दिव्य राजनिष्ठा' नामक नाटक में पन्नाधाय के करुणोदात्त चरित्र का अंकन किया है। राणा प्रताप के जीवन पर ३-४ नाटक लिखे गए हैं। लेकिन वीररस की अपेक्षा भक्तिरस की प्रियता के कारण मीराबाई की कथा मराठी में अधिक लोकप्रिय हुई। श्री शुक्ल और श्री देसाई द्वारा मीरा के जीवन पर लिखित नाटक अत्यधिक सफल हुए। श्री अ. वा. वरवे कृत 'महाराणा प्रतापसिंह', श्री कृ. प्र. खाडिलकर कृत 'प्रेमध्वज', श्री शा. गो. गुप्ते कृत 'रक्त ध्वज', श्री ह. कृ. कुलकर्णी कृत 'प्रतापी प्रतापसिंह', श्री ग. कृ. बोडस कृत 'राणा प्रताप' आदि नाटकों की रचना राणा प्रताप के जीवन को लेकर हुई।

## ऐतिहासिक काव्यः—

नाटककारों की अपेक्षा कवियों ने राजपूत इतिहास का चित्रण अधिक सफलतापूर्वक किया है। मराठी के कवियों का युद्धवीर राजपूत और उनका साथ निभाने वाली स्त्रियों के प्रति सदैव आकर्षण रहा है। फुटकर कविताएँ, प्रबन्ध काव्य और दीर्घ कथात्मक काव्य; तीनों विधाओं में मराठी के कवियों ने राजपूतों के इतिहास से

कथावस्तु ली है। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रबन्ध काव्य की विधा का प्रचलन हुआ और उसमें ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य विशेष लोकप्रिय हुए। श्री ब. रा. प्रधान द्वारा ई० सं० १८६७ में लिखित 'देवसेनी' नामक अतूत काव्य को जयपुर के इतिहास की पृष्ठभूमि प्राप्त है। ई० सं० १८८८ में वासुदेव शास्त्री खरे द्वारा लिखित 'यशवन्तराव' महाकाव्य में पेशवा-काल के व्यक्तियों का नाममात्र आधार ग्रहण कर मराठी और राजपूतों के दीर्घकालीन संघर्ष का चित्रण हुआ है। इस चित्रण में इन दोनों समाजों के देशभक्ति, वीरता आदि गुणों का सम्मान करके कवि ने राष्ट्रहित की दृष्टि से उनके एकता की आवश्यकता प्रतिपादित की है। हिन्दी के महान् लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इन काव्य के बारे में लिखते हैं, "भारत में आदर्श नरेश, देशभक्त, वीर शिरोमणी और महात्मा हो गए हैं। हिन्दी के सुकवि उन पर काव्य करें तो बहुत लाभ हो। 'पलाशीर युद्ध', 'वृत्तसंहार', 'मेघनावध' और 'यशवन्तराव महाकाव्य' की बराबरी का एक भी काव्य हिन्दी में नहीं है। वर्तमान कवियों को इस तरह के काव्य लिखकर हिन्दी की श्रवृद्धि करनी चाहिये।"

श्री दुर्गादास तिवारी नामक एक हिन्दी-भाषी कवि ने महाराष्ट्र में रहकर मराठी में वीरकाव्यों की रचना की है। उनके 'महाराणा प्रतापसिंह' प्रबन्धकाव्य में प्रतापसिंह की पत्नि को भी उनके समान महत्वपूर्ण स्थान देकर उनके वीरकृत्यों का वर्णन किया गया है। तिवारी के 'नन्दिनि' काव्य में औरंगजेब कालीन पृष्ठभूमि है और उसमें

राजपूतों के अपने आपसी भेदों के कारण मुगलों से हार खानी पड़ी यह ऐतिहासिक सत्य प्रस्तुत किया गया है।

अनेकों मराठी प्रबन्ध काव्यों में मेवाड़ के इतिहास की कृष्णाकुमारी की अन्तः आत्मा को छूने वाली कथानकथा वर्णित है। श्री जुवेकर, श्री पारखी, श्री गणेश शास्त्री लेले, श्री गो. वा. कानिटकर और श्री ताटके आदि कवियों ने इस विषय को लेकर काव्य रचना की है। इन कवियों में से श्री गणेश शास्त्री लेले (१८७४) और श्री कानिटकर (१८८२) के काव्य विशेष आकर्षक और रसिकप्रिय हुए हैं। विशेषतः इन काव्यों में कृष्णाकुमारी का विषपान और उसकी माता का शोक, ये दो प्रसंग कथानकपूर्ण तथा प्रभावशाली बने हैं। श्री गो. क. कानिटकर के 'अकबर बादशाह' (१८७९) प्रबन्ध काव्य में राणा प्रतापसिंह के संदर्भ हैं, यद्यपि नायकत्व अकबर को दिया गया है। श्री ना. कृ. गत्रे (१९०१) ने 'श्री महा प्रताप सिंह काव्य' प्रबन्ध काव्य लिखा है।

आधुनिक मराठी काव्य में कवि विनायक श्री वि. ज. करवीकर ने प्रथमतः राष्ट्रीय मुक्तक काव्य लिखे, जो राष्ट्र नायको के आदर्श और सामयिक भावों से ओतप्रोत हैं। अतीत के गौरव की प्रवृत्ति सर्वत्र प्राप्त है। उनके 'वीरमती' काव्य में जोधपुर नरेश जसवतसिंह की वीर पत्नि वीरमती का चरित्रांकन हुआ है। "समरांगण में पीठ दिखाने की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कारी है" यह सन्देश इस काव्य से मिलता है। राजपूत वीरांगनाओं का चरित्र चित्रण विनायक के काव्य की



एक विशेषता है। इस चित्रण से परतन्त्र राष्ट्र को प्रेरणा प्राप्त होगी, ऐसा उन्हें विश्वास था। इस विश्वास के साथ उन्होंने संयोगिता, कृष्णाकुमारी, पन्ना, दुर्गावती, पद्मिनी आदि के चरित्र अंकित किए हैं। इन वीरांगनाओं के जीवन में व्यक्तिगत मानापमान या विलासिता की अपेक्षा राष्ट्रीय मानापमान और स्वातन्त्र्येच्छा को अधिक महत्व दिया गया है। स्वत्व रक्षा के लिए हर बलिदान के लिए वे हमेशा प्रस्तुत रहती हैं। राजपूत स्त्री जीवन की यह उदात्त और स्फूर्तिदायी जीवनकथा कवि विनायक ने अनेक काव्यों में गायी है।

विनायक मात्र कवि थे फिर भी राजपूतों के जीवन से वे आकृष्ट हुए। स्वतन्त्र्य वीर सावरकर और उनके सहयोगी स्वातन्त्र्य शहीद गोविन्द तो खुद स्वातन्त्र्य संग्राम में हिस्सा लेने वाले व्यक्ति थे। अतः अगर उनके काव्य में राजपूतों के आदर्शों का चित्रण मिलता है तो उसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। कवि गोविन्द ने अपने 'भारत प्रशस्ति' काव्य में राणा प्रताप को भारत के श्रेष्ठ पुरुषों में गिना है।

— तो विक्रम तो प्रताप चद्रगुप्त तो ॥

छत्रपति छत्रसाल, पृथ्वीराज तो ॥

भारतीय वीरसिंह संध होय तो ॥”

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने अपनी कविता

‘हिन्द सुंदराती’ में लिखा है,

प्रताप शिव बंदा। श्री गुरु गोविंदा ॥

संभव दे, उद्भव दे। देजी स्फूर्ति ॥”

सावरकर के सहयोगियों में मराठों के इतिहास के साथ राजपूतों के इतिहास की स्मृति भी देशभक्ति की प्रेरणा के रूप में रखी जाती रही। उन लोगो में ‘गावा चित्तोरगढ़ वा शनवारवाड़ा’ (चित्तौड़ या शनवारवाड़े का स्तुति गान करना चाहिये) जैसे समारोह मनाए जाते थे और उनके मण्डल की स्त्रियां स्वत्व रक्षा के लिये जौहर करने वाली राजपूत वीरांगनाओं के आदर्श सामने रखती थीं।

‘वाजी प्रभु ठरु घडे युवसंघ सर्व’

‘आम्ही चित्तौड़ युवती युवती सर्गव’

ऐसे उद्गार निकाले जाते थे।

मराठी में ऐतिहासिक और वीररस प्रधान काव्य के लिए ‘पोवाडा’ दीर्घ कथात्मक और गेय काव्य-प्रकार प्रयुक्त होता है। तिलक युग के अनेक कवियों ने लोगो के मन की स्वदेश प्रेम की भावना जाग्रत करने के लिए पुराने और नए वीरों की कथाओं पर काव्य रचना की और अनेक शायरों ने जनसमूह के सम्मुख उनका गान किया। इनमें से अनेको शायरों ने प्रतापसिंह के उज्ज्वल चरित्र का गान किया। श्री अडविलकर कृत ‘रजपूत रमणी अर्थात् चित्तोरगढ़चा वेढा’ या श्री खाडिलकर कृत ‘क्षेत्रकुलमणा पृथ्वीराज चव्हाण’ जैसे पोवाडों को छोड़ें तो अन्य अनेको की रचना प्रतापसिंह के जीवन पर ही हुई है, जिसमें श्री मुचाटे कृत राणा प्रतापसिंहाचा पोवाडा, श्री साठे कृत स्वधर्मनिष्ठ वीर राणाप्रतापसिंह, श्री जावडेकर, सोपानदेव कृत प्रतापीप्रतापसिंह आदि प्रसिद्ध हैं।

## बाल साहित्यः—

पाठशाला के छात्रों में वीरवृत्ति निर्माण हो इसलिए उनके लिए वीरकाव्य लिखने की परम्परा मराठी साहित्य में निर्मित हुई है। इस परम्परा में श्री वसनूरकर, श्री चिपलूनकर, श्री श्रीरी आदि लेखकों ने राजपूतों के इतिहास की घटनाओं पर कथालेखन किया है। श्री काररवानोस ने 'कृष्णा कुमारी', 'साध्वी मोराबाई' और 'स्वामिभक्त पन्ना' तीन बाल नाटक लिखे हैं। श्री द० कृ० कुलकर्णी ने 'प्रतापी प्रतापसिंह' बाल नाटक की रचना की है।

प्राधुनिक काल के देशभक्त कीर्तनकारों ने आध्यात्मिक या भक्तिरसात्मक देवता चरित्रों और संतचरित्रों के साथ ऐतिहासिक वीर चरित्रों को भी अपने कीर्तनों में स्थान दिया है। इनमें राजपूत वीर कथाओं को भी स्थान मिला है। श्री वा. शि. कोल्हटकर ने 'सती पद्मिनी' और 'वीरांगना संयोगिता' की कथाओं को कीर्तन के लिए लिख कर प्रकाशित किया है।

## इतिहास ग्रंथः—

ललित साहित्य की अपेक्षा वैचारिक साहित्य की निर्मिति कम मात्रा में होती है। राजपूतों का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान होने की वजह से अनेक मराठी विचारकों ने जीवनी और इतिहास विधाओं में राजपूत इतिहास का अध्ययन किया है। जीवनी में राणा प्रताप को स्थान मिला है। उस काल में कर्नल टॉड के 'एनल्स ऑफ राजस्थान' ग्रंथ से लोग आकृष्ट हुए थे।

ललित साहित्य में इस ग्रंथ के आधार पर अनेक उपन्यासों, नाटकों और काव्यों की रचना हुई। इसी ग्रंथ पर आधारित लोकहितवादी द्वारा लिखित 'उदेपुरचा इतिहास' (१८६२) ग्रंथ २ वर्षों में दो बार मुद्रित हुआ। इसके लगभग ४० वर्ष बाद अमरावती में रहने वाले श्री ह. वा. देशपाण्डे ने राजपूतों के इतिहास का सूक्ष्म परिशीलन करके दो ग्रंथ लिखे। 'राजपूत राज्याचा उदय व हास' ग्रंथ में मेवाड़, जयपुर, जोधपुर, बून्दी आदि के राजपूत घरानों का राजनैतिक इतिहास दिया है। 'राजपूत संस्कृति' ग्रंथ में राजपूतों के जीवन की विशेषताओं की तथा भारतीय इतिहास को उनकी देन का वर्णन करके उनके दोषों और परम्परा-हास के कारणों की भी चर्चा की गई है। आज के प्रसिद्ध मराठी विचारक डा० पु. ग. सहस्त्रबुद्धे ने अपने ग्रंथ 'हिन्दु समाज : संघटना आणि विघटना' में ८०० वर्षों तक इस्लाम के आक्रमणों का सामना करने वाली राजपूतों की वीर परम्परा का वर्णन करके उन कारणों की चर्चा भी की है जिनसे राजपूत भारत में एक हिन्दू साम्राज्य प्रस्थापित नहीं कर सके।

भाव प्रधानः—ललित साहित्य और विचार प्रधान ललिततर साहित्य दोनों विभागों ने मराठी में राजपूतों के इतिहास को प्रयुक्त किया है। उनके इस इतिहास को देखते हुए दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक यह कि भारत के भावी पीढ़ी को अपनी सुख-सम्पन्नता को अर्जित करने के लिए राजपूतों की सफलताओं को ध्यान में लेना चाहिए। यह बात यहाँ के विद्वानों ने स्वीकार की है। दूसरी

वात यह है कि मराठी कवियों की दृष्टि सीमित नहीं है। मराठी के गौरवशाली अतीत के साथ राजपूतों की स्वतन्त्रता के हेतु बलिदान देने वाली गौरवशाली परम्परा को भी उन्होंने सामाजिक आदर्श के रूप में लगातार चित्रित किया है।

इस तरह का वीररसपूर्ण साहित्य ई० स० १९३० तक ही अधिक मात्रा में निर्मित हुआ। यही बात मराठी के इतिहास के बारे में भी है। १९३० के बाद ऐतिहासिक उपन्यासों, नाटकों, काव्यों या अन्य विधाओं की रचना कम मात्रा में हुई दिखाई देती है। इसका कारण - उस युग की राजनैतिक परिस्थितियों में ढूँढा जा सकता है। १९२० ई० में लोकमान्य तिलक की मृत्यु के बाद

देश में गांधीजी का प्रभाव बढ़ा। इस कारण महाराष्ट्र में तिलक से प्रेरित क्रान्तिकारी विचार-धारा का प्रभाव धीरे धीरे कम होता गया। कुछ वर्षों तक एक प्रकार से ऐतिहासिक साहित्य की रचना बन्द रही। लेकिन आधुनिक काल में फिर एक बार इसकी ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है। राजस्थान के वीरों, मुख्यतः महाराणा प्रताप को महाराष्ट्र के जन-जीवन में बड़ा महत्व दिया जाता है। आज भी महाराष्ट्र के किसी भी राष्ट्रीय समारोह में शिवाजी के साथ प्रतापसिंह की तस्वीर भी पूजी जाती है। भारतीय परम्परा में राजपूत वीरों ने जिन आदर्शों की प्रस्थापना की है वे महाराष्ट्र को सदैव स्मरण रहेंगे और महाराष्ट्र के कलाकार राजपूत इतिहास से सदैव प्रेरणा लेते रहेंगे।



सदो दयोद्धवो भास्वान् प्रतापो वारुणीं जहो ।  
भवत्सकवरध्वाते न संध्याक्तो न चारस्तभाः ॥४०॥

कृत्वाकरे खड्ग लतां स्वबलभां प्रतापसिंहे समुपागते प्रजे ।  
साखंडितामानवतीद्विषन्वमूः सकोचयंती चरणं पशङ्मुखी ॥४१॥

[जगन्नाथराय मन्दिर प्रशस्ति, उदयपुर]

# महाराणा प्रताप और कर्नाटक

—श्री नगेश हस्वार

कर्नाटक का भरतखंड के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास में बहुत महत्व का स्थान है। उसकी अपनी निजी ऐतिहासिक विशिष्टता है तथा उसकी भारतीय संस्कृति को अपनी विशिष्ट देन रही है।

## भारतीय इतिहास में कर्नाटक :—

भारतीय इतिहास के शताब्दियों लम्बे काल में जब-जब भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, घटनाएं घटी तथा नवीन विचारधाराओं ने जन्म लिया, उनका कर्नाटक पर बराबर प्रभाव पड़ा है। भारत के सम्पूर्ण इतिहास पर दृष्टिपात करने पर यह कहा जा सकता है कि अधिकांश महत्वपूर्ण घटनाएं एवं परिवर्तन प्रायः उत्तरी भारत में ही हुए हैं क्योंकि उत्तर भारत पर निरन्तर विदेशी आक्रमण होते रहे और स्वभावतः उन आक्रमणों तथा दासता के विरुद्ध आजादी की जो चेष्टाएं वहां की गईं वैसे अन्य प्रान्तों में नहीं हुईं।

आजादी का सच्चा मूल्य ऐसे लोग ही समझ सकते हैं जो उसकी रक्षा के लिये सर्वस्व अर्पण करते हैं। राष्ट्र के लिये रक्त तर्पण करने वाले स्वातन्त्र्य वीर पुरुषसिंह व्यक्ति हमारे इतिहास के हर एक पन्ने में मिलते हैं। ऐसे पुरुष सिंहों में चित्तौड़ के राणा प्रतापसिंह का स्थान केवल राजपूताना के इतिहास में ही नहीं बल्कि समस्त भारत के इतिहास में सर्वोच्च है। उसका आदर्श

और राष्ट्र प्रेम भारत के ऐतिहासिक आकाश में ध्रुव तारे की भांति अटल रूप से प्रदीप्तमान हैं।

ऐसे महापुरुषों के आदर्श और कार्य दूसरों के लिये प्रेरणास्रोत और स्फूर्तिदायक होते हैं। राणा प्रताप और शिवाजी के अनुपम जीवन से प्रेरणा पाकर भारत के असंख्य लोग राष्ट्र के लिये शहीद हुए हैं। राणा प्रतापसिंह के त्याग, बलिदान, राष्ट्र-प्रेम आदि गुणों का प्रभाव कर्नाटक की जनता पर उतना ही पड़ा है, जितना कि अन्य प्रदेशों पर।

भारत के इतिहास की विशेषता है विभिन्नता में एकता। यद्यपि भारत के विभिन्न भागों का इतिहास अलग अलग रहा है, किन्तु वे एक दूसरे से प्रभावित होते रहे हैं और उनमें एकता का सूत्र सदैव जीवित रहा है। उत्तर भारत में कई बड़े बड़े साम्राज्य स्थापित हुए; उनमें बहुत कम दक्षिण में पहुंचे। जो साम्राज्य दक्षिण तक फैले वे बहुत कम समय तक टिक पाये। दक्षिण के कतिपय राज्यों ने भी उत्तर भारत के प्रदेशों को विजित किया किन्तु वे भी बहुत दिनों तक न रहे। इसका कारण यही है कि उत्तर और दक्षिण के बीच में दुर्गम पर्वत श्रेणियां एवं जंगल अवस्थित हैं। इसलिये उत्तर और दक्षिण के मध्य सांस्कृतिक सम्बन्ध अखंड होने पर भी राजनैतिक दृष्टि से इन दो भागों का सम्बन्ध पुरातन इतिहास में अधिक नहीं रहा है।

## विजयनगर साम्राज्य:—

राणा प्रताप के पहले दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य उत्कर्ष की स्थिति में था। इसके राजा लोग सदा बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा आदि मुसलमान राज्यों के साथ, अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए, लड़ते आए थे। राणा प्रताप ने अप्रत्यक्ष रूप से विजयनगर से स्फूर्ति पाई होगी। किन्तु विजयनगर साम्राज्य के अन्तिम समय में विजयनगर के राजाओं ने राणा प्रताप से प्रेरणा ग्रहण की है। वे अन्त तक मुसलमानों से हिन्दू साम्राज्य की रक्षा के लिए प्रताप की भाँति लड़े। इतना ही नहीं यह कह सकते हैं कि सारे भारत के लोगों ने देश की स्वतन्त्रता के लिए राणा प्रताप से प्रेरणा प्राप्त की है।

राणा प्रताप की वीर कहानी कर्नाटक के घर घर में प्रचलित है। कर्नाटक में जो राजपूत लोग हैं वे आज तक राणा प्रताप को अपना आदर्श मानते हैं। मुस्लिम आधिपत्य एवं अत्याचार से पीड़ित होकर बहुत से राजपूत स्वतन्त्रता-उद्देग से मुस्लिम राज से दूर होकर कर्नाटक में आ बसे थे। इन लोगों ने कर्नाटक के लोगों को मुस्लिम राज्य के विरुद्ध लड़ने में सहयोग दिया। कर्नाटक के लोगों में अपने यहां के राष्ट्र-वीरों की भाँति प्रताप भी गौरव और आदर का पात्र बना है। राणा प्रताप की स्वातन्त्र्य भावना, स्वाभिमान, स्वदेश-प्रेम, अपूर्व त्याग आदि का कर्नाटक के सभी लोग प्रशंसा करते आए हैं।

## कन्नड़ साहित्य में प्रताप:—

प्रताप के बारे में कई पुस्तकें कन्नड़ भाषा में लिखी गई हैं। १९५४ में मंसूर के काव्यालय, प्रकटनालय द्वारा प्रकाशित वासुदेवय्या का 'आर्यकीर्ति' नामक ग्रन्थ अमूल्य है। इसमें राणा प्रताप के जीवन का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। कर्नाटक के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री पंडित लि. वें. गलगनाथ ने बीसवीं सदी के प्रारम्भ में राणा प्रतापसिंह के समग्र जीवन को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया। 'राणा प्रताप सिंह' उपन्यास सारे कर्नाटक में जनप्रिय हुआ है। उसके बाद भी कई लोगों ने प्रताप के जीवन पर ग्रन्थ रचे हैं। श्री सा. शि. मरुल्लया रचित 'राणा', नाटक ने रंगमंच पर भारी ख्याति प्राप्त की है। साथ साथ श्री मिटीजी रचित नाटक 'राणा प्रतापसिंह' बहुत ही जनप्रिय हुआ है। कर्नाटक में विद्यालय कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में राणा प्रतापसिंह की आदर्श जीवनी का समावेश किया गया है। इसके अलावा कन्नड़ भाषा में कई और पुस्तकें निकली हैं।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी के ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को महाराणा प्रताप के स्वातंत्र्य प्रेम, अदम्य साहस, उत्कट त्याग एवं अनुपम बलिदान से भारी प्रेरणा मिली। स्वयं कर्नाटक प्रदेश के स्वातंत्र्य आन्दोलन ने प्रताप एवं शिवाजी जैसे महापुरुषों के आदर्श से बड़ी शक्ति और विश्वास प्राप्त किया है।

### स्वातंत्र्य संघर्षः—

१८२४ ई० में कर्नाटक में सर्वप्रथम स्वतन्त्रता के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिये किन्नूर चैनम्मा साहस के साथ तलवार खींचकर खड़ी हुई । चित्तौड के युद्धों एवं शाको तथा प्रताप के बलिदान का आदर्श उसके सम्मुख था । उसके बाद कर्नाटक में आजादी का जो संघर्ष चला उसमें हम राणा प्रताप के आदर्श की झलक देख सकते हैं । उस समय में जिन देश-प्रेमी नेताओं की गाथा गाकर आंदोलन किये गये उनमें हमें आदर्श पुरुष प्रताप का नाम भी मिलता है । कर्नाटक के नेता कर्नाटक कुल पुरोहित आलूर वेंकटराव ने कर्नाटक के एकीकरण की लड़ाई में राणा प्रताप के आदर्श को अपनाया था । इस बात को उन्होंने अपने वक्तव्यों और लेखों

में प्रकट किया और लोगों में स्वतन्त्रता की भावना जागृत की थी । इस तरह कर्नाटक ने महापुरुष राणा प्रताप के आदर्श को अपना आदर्श मानकर और उससे प्रेरणा पाकर स्वतन्त्रता प्राप्त करने तथा उसके बाद कर्नाटक प्रदेश के एकीकरण करने का संघर्ष किया ।

इस तरह राणा प्रताप केवल राजस्थान का ही नहीं बरन् समूचे भारत का एक महान् नेता था । उसका आदर्श सभी देश-प्रेमियों के हृदय में देश-प्रेम की भावनाओं को जीवित रखने का कार्य कर रहा है । उनका जीवन सदा स्मरणीय रहेगा । वह सारे विश्व के लोगों के लिये प्रेरणादायक रहेगा ।

राणा प्रताप अमर रहे ।



जब लौ तन मे प्राण न तब लौ टेकहि छोड़ौ ।  
स्वाधीनता बचाइ दासता-शृंखल तोड़ौ ॥  
जो निज कुल-मरजाद सहित ती जीवन ।  
नहिं तार्ते शतगुणित मरन रन मैं जस पोवन ॥  
जो पै निज शत्रुहि मारिकै यह परतिज्ञा राखिहीं ॥  
तौ या सिंहासन पै बहुरि पग धारन अभिलाखिहीं ॥

—राधाकृष्णदास

# महाराणा प्रताप तथा राष्ट्रीय कविता

—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुवे

राजस्थान वीर प्रसू वसुन्धरा हैं। उसके सपूतों में महाराणा प्रताप का नाम तथा स्थान शीर्षस्थ है। वे वीर-शिरोमणि थे। वे राष्ट्र पुरुष थे। उन्होंने मातृभूमि की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के भीष्म पितामह थे। वे हमारे राष्ट्रीय गौरव, प्रतिष्ठा तथा स्वाधीनता के आदि पुरुष हैं। उन्होंने स्वतन्त्रता की ऐसी ज्योति प्रज्वलित की जो कि राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में विकसित हुई। उनका व्यक्तित्व जीवन चरित्र, कार्य तथा सिद्धान्त कवियों के लिए प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। वे साहित्यकारों के प्रेरणा-पुंज हैं। उनका जीवन आलोक-स्तम्भ है। उन पर मध्यकालीन एवं आधुनिक राजस्थानी साहित्य में विपुल रचनाएं लिखी गईं। हिन्दी का आधुनिक राष्ट्रीय काव्य भी उनके यशोगान से परिप्लावित है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 'पत्रावली' में महामानव प्रताप को श्रेष्ठ श्रद्धांजलि अर्पित की है। हिन्दी में उन पर अनेक काव्यों की सृष्टि हुई है। उनसे न केवल हमारा काव्य ही अपितु गद्य-साहित्य तथा पत्रकारिता भी प्रभावित हुई है।

अमर शहीद गरेश शंकर विद्यार्थी महाराणा प्रताप के परम भक्त थे। उन्होंने अपने राष्ट्रीय पत्र 'प्रताप' का नामकरण भी वीर-पुंगव प्रताप

की पुण्य स्मृति में ही किया था। साप्ताहिक 'प्रताप' को हिन्दी पत्रकारिता का उत्का-पिण्ड माना गया है यह पत्र ६ नवम्बर, १९१३ ई० को कानपुर से प्रकाशित हुआ। बाद में सन् १९२० में दैनिक भी हो गया। गरेशजी ने प्रवेशांक में अपने इष्ट-देव महाराणा प्रताप का न केवल स्मरण ही किया--अपितु उनको सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते हुए, वलिदान की गाथा गाते हुए महाराणा प्रताप का निम्न स्तवन किया है:— 'महान् पुरुष-निःसन्देह महान् पुरुष ! भारतीय इतिहास के किस रत्न में इतनी चमक है ? स्वतन्त्रता के लिए किसने इतनी कठिन परीक्षा दी ? जननी-जन्मभूमि के लिए किसने इतनी तपस्या की ? देश-भक्त, लेकिन देश पर एहमान जमाने वाला नहीं, पूरा राजा, लेकिन स्वेच्छाचारी नहीं। उसकी उदारता और दृढ़ता का सिक्का शत्रुओं तक ने माना।" संपादकीय के अन्त में गरेशजी लिखते हैं:—

"प्रताप ! हमारे देश का प्रताप ! हमारी जाति का प्रताप ! दृढ़ता और उदारता का प्रताप ! तू नहीं है, केवस तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है और जब तक संसार में दृढ़ता, उदारता स्वतन्त्रता और तपस्या का आवर है, तब तक हम क्षुद्र प्राणी ही नहीं, सारा संसार तुझे आवर की दृष्टि से देखेगा। संसार के किसी भी देश में तू होता, तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम

पर लोग अपने को न्योछावर करते । अमेरिका में होता, तो वाशिंगटन और लिंकन से तेरी किसी तरह कम पूजा न होती । इंग्लैंड में होता, तो वेल्सिंगटन और नेल्सन को तेरे सामने सिर झुकाना पड़ता । स्कॉटलैंड में वालेस और राबर्ट ब्रूस तेरे साथी होते । फ्रांस में जोन प्रॉफ आर्क तेरे टुकड़ों की गिनी जाती और इटली तुझे मेजिनी के मुकाबले में रखती । ”

गणेशजी का 'प्रताप' आजीवन महाराणा प्रताप का अनुसरण करता रहा । विपत्तियों में प्रदिग्ग बना रहा । राष्ट्रीयता तथा स्वाधीनता के गीत गाता रहा ।

महाराणा प्रताप ने देश की रक्षा के लिए घास-फूस की रोठियाँ खायी, जंगल-जंगल भटके, पत्थरों और पत्तों पर सोए परन्तु मुगल सम्राट अकबर के दरबार में, अन्य राजपूत नरेशों के समान, मर्या नहीं टेका । इसीलिए, आधुनिक कवियों की बात तो छोड़िए, अकबर का दरबारी कवि पृथ्वी-राज भी उनका कीर्ति-गायन करता था और अब्दुल रहीम खानखाना उनकी प्रशंसा कर अपने को कृतकृत्य मानता था । अकबर उनका लोहा मानता था । प्रताप का नाम सुनते ही वह सिरहाने के सर्प के समान भयातुर हो जाता था । हर राजपूत माता प्रताप सदृश्य पुत्र प्राप्ति के लिए लालायित रहती थी । प्रताप ने मस्तक को काट कर अपनी हथेली पर रख लिया था । अब डर कैसा ? राजस्थान के नगर-नगर, गांव-गांव और वन-वन में उन्होंने ऐसा अलख जगाया और स्वाधीनता की धूनी रमायी कि आज प्रत्येक भारत वासी को उन पर गर्व है- अभिमान है ।

महाराणा प्रताप के इतिहास से संबंधित प्रत्येक यस्तु कवियों के लिए संजीवनी बन गई । क्या चित्तौड़, क्या चेतक, क्या हल्दीघाटी और क्या भामाशाह— सभी को कवियों ने अपनी भावाजंलि अर्पित की है । श्यामनारायण पाण्डेय का 'हल्दीघाटी' नामक महाकाव्य महाराणा प्रताप की सर्वश्रेष्ठ काव्यमयी अभिव्यंजना एवं मूल्यांकन है ।

महाराणा प्रताप के कृतित्व की वन्दना से कवियों की वाणी पुण्याभिषिक्त हुई है । शम्भूचाल श्रीवास्तव ने 'महाराणा प्रताप और स्वतन्त्रता' नामक कविता का अन्त इस प्रकार किया है :—

“ धन्य धन्य है पावन जननी धन्य धन्य  
भारतमाता ,  
मरणासन्न समय भी जिसका पुत्र यही  
जपता जाता ॥  
जब तक प्रिय स्वतंत्रते ! तन में लगती है  
तब सुखद समीर ।  
तब तक रण से तिल भर भी न हटेंगे, हम हैं  
भारत वीर ॥ ”

अप्रैल, १९२४ की राष्ट्रीय मासिक पत्रिका 'प्रभा' में प्रकाशित 'दीपक' नामक कविता में, राम-नरेश त्रियाठी ने भारत के महान् व्यक्तियों में महाराणा प्रताप का भी नामोल्लेख किया है—

“राम, भीष्म, हनुमान, भीम, अर्जुन, गौतम,  
गिरिधर का,  
चन्द्रगुप्त, चणक्य, वीर विक्रम, अशोक,  
शकर का,



गुरु गोविन्द , प्रतापसिंह , श्री दयानन्द ,  
 अकबर का ,  
 बाल तिलक का पिता आज है मार्ग ढूँढता  
 घर का ।  
 सिर पर मृत्यु, ओंठ पर ईश्वर , साथी कौन  
 किधर है ।  
 हाय ! अन्धेरे में दीपक से खाली इसका कर है ॥”

महाराणा प्रताप और उनका युग बीत गया ।  
 प्राचीन का “ वैभव ” भी नहीं रहा । अतीत की  
 स्मृति सुखद तथा मधुर होती है । अतीत की  
 अनुभूति कवियों की प्राणशक्ति है । इसीलिए  
 ‘राष्ट्रीय पथिक’ को विगत की बातों का अभाव  
 दिखायी देता है और उनमें कवि को चित्तौड़ तो  
 दिखायी देता है परन्तु महाराणा प्रताप कहां है ?:-  
 “हे दिल्ली, चित्तौर, सिंहगढ़, मरु, बुन्देल,  
 पाचाल ।  
 किन्तु कहां, दुर्गा, प्रताप, शिवा, पृथ्वीराज,  
 छत्रसाल ॥  
 हैं पानीपत, हल्दीघाटी कुरुक्षेत्र चौगान ।  
 किन्तु कहां वह युद्ध-कला, वीरत्वत्याग-विज्ञान ॥”

आचार्य गयाप्रसाद शुक्ल ‘सनेही’ द्वारा सन् १९२१  
 में लिखित अपनी कविता में स्वतन्त्रता प्राप्ति के  
 लिए बलिदानियों की अर्चना आवश्यक मानते हैं  
 जिनमें महाराणा प्रताप अग्रणी हैं ।

“वीर प्रताप शिवा के पद का निज हृदयो में  
 ध्यान करो ,  
 हे भारत के लाल, पूर्वजों की कृति पर  
 अभिमान करो ।

स्वतंत्रता के लिए मरे जो उनका चिर  
 सम्मान करो ,  
 हे ‘त्रिशूल’ अनुकूल समय यह अब अपना  
 बलिदान करो ॥”

ठाकुरप्रसाद शर्मा के लिए चित्तौड़ का पत्थर  
 भी अत्यन्त पवित्र और भव्य है—

“गौरव रक्षक वीर-भवन आधार ?  
 वीर कर स्पर्शित सहस्रशः वार ।  
 उत्पादक जन-हृदय भाव अभिराम,  
 पावन महान् ! सादर तुम्हें प्रणाम ॥”

जैसा कि उपरि लिखित है श्यामनारायण  
 पाण्डेय महाराणा प्रताप के सर्व प्रथम प्रबन्धकार  
 हैं । ‘हल्दीघाटी’ नामक प्रबन्ध काव्य सन् १९३६  
 में लिखा गया । इसमें मेवाड़ केसरी राणा प्रताप  
 के युद्ध-वृत्तान्तों को सजीव रूप में प्रस्तुत किया  
 गया है । यह वीररस प्रधान कृति है । इसके नायक  
 प्रताप हैं । भूमिका में ही कवि ने प्रताप का गुण  
 गान इन शब्दों में किया है:—

“महान् ! इन्हों कतिपय घटनाओं को सैने  
 कविता का रूप दिया है । यह खण्ड काव्य है  
 अबवा महाकाव्य, इसमें सन्देह है, लेकिन तू तो  
 निःसन्देह महाकाव्य है । तेरे जीवन की एक-एक  
 घटना ससार के लिए आदर्श है और हिन्दुत्व के  
 लिए गर्व की वस्तु ।”

पाण्डेयजी को महाराणा प्रताप के समाधि-  
 स्थल को देखकर ही यह कृति लिखने की प्रेरणा  
 मिली थी । यद्यपि इस रचना में महाकाव्योक्ति

गरिमा का अभाव है फिर भी महाराणा प्रताप का यह खड़ी बोली में सशक्त तथा ओजस्वी चित्रण है। भाषा में बड़ा आकर्षण है। शब्दों का चुनाव, शैली की क्षिप्रता, शिल्प का सघन रूप—सभी कुछ महाराणा प्रताप के वीरत्व, शौर्य, स्वाभिमान तथा श्रेष्ठत्व के सर्वथा अनुकूल है। प्रकृति चित्रण का एक कवित्वमय दृश्यांकन—‘अवलोकनीय है’ :—

“ सावन का हरित प्रभाव रहा, अम्बर पर  
थी घनघोर घटा ।  
फहरा कर, पल थिरकते थे, मन हरती थी  
वन-मोर-छटा ॥  
पड़ रही फुही भीसो भिन-भिन, पर्वत की  
हरीवनाली पर ।  
‘पी कहा !’ पपीहा बोल रहा, तरु-तरु की  
डाली-डाली पर ॥

वारिद के ढर में दमक-दमक, तड़-तड़ विजली  
की तड़क रही ।  
रह-रहकर जल था बरस रहा, रणधीर  
भुजा थी फड़क रही ॥ ”

सन् १९४५ में पाण्डेयजी ने ‘जौहर’ नामक प्रबन्ध काव्य भी लिखा जो कि महारानी पद्मिनी की कथा का वर्णन है।

महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महाराजा छत्रसाल, महारानी लक्ष्मीबाई, परम वीर तांत्या टोपे आदि स्वतंत्रता-संग्राम के अजेय तथा महान् सेनानियों का जीवन किसी भी राष्ट्र के लिए धरदान तुल्य हो सकता है। महाराणा-प्रताप आज हमारे इष्टदेव हैं। उनका सर्व होमकारी और त्यागी जीवन हमारे लिए जीवन की चेतना बन गया है। काव्य ने महाराणा प्रताप सट्टर नायक तथा चरित्र प्राप्त कर अपने आपको गौरवान्वित किया है।

प्रताप ! हमारे देश का प्रताप ! हमारी जाति का प्रताप ! दृढता और उदारता का प्रताप । तू नहीं है, केवल तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है और जब तक संसार में दृढता, उदारता, स्वतन्त्रता और तपस्या का आदर है तब तक हम ही नहीं सारा संसार तुझे आदर की दृष्टि से देखेगा। संसार के किसी भी देश में तू होता तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम पर लोग अपने को न्योछावर करते।

—(स्व०) गणेश शंकर विद्यार्थी

## महाराणा प्रताप और सम्राट अकबर

—डॉ० सत्य प्रकाश

महाराणा उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र महाराणा प्रताप ने ६ मई सन् १५४० ई० को जन्म लिया था। सम्राट अकबर ने महाराणा प्रताप से केवल १॥ वर्ष पूर्व सन् १५३८ में जन्म लिया था। दोनों को अपने २ जीवन के प्रारम्भिक काल में परिस्थितियों से लड़ना पड़ा था। दोनों असाधारण व्यक्तित्व के अपने २ ढंग के प्रतिभाशाली शासक थे। दोनों के आदर्श यद्यपि भिन्न थे पर दोनों में एक ही प्रकार की लगन और साध उन आदर्शों के पालन करने हेतु थी। दोनों बड़ा से बड़ा त्याग अपने उद्देश्यों की पूर्ति में करने को सदा तत्पर रहते थे। दोनों क्रियावान व्यक्ति होने के साथ २ बड़ी उच्च-कोटि के देश भक्त थे। दोनों एक ही आयु के होने के कारण साहस, पुरुषत्व, चारित्रिक दृढ़ता, देशभक्ति, सैनिक प्रतिभा तथा नेतृत्व के उच्चतम प्रतीक होने में एक दूसरे से होड़ लगाये हुए थे। एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी होते हुए भी वे दोनों एक दूसरे के गुणों की परख करने वाले भी थे। दोनों में केवल इतनी समता थी कि दोनों अपनी धाक अपने छोटे व बड़े क्षेत्र में व्यक्तियों पर रखना चाहते थे। सम्राट अकबर जहाँ सारे देश पर एक छत्र साम्राज्य स्थापित कर अपना प्रभुत्व सारे देश पर स्थापित करना चाहता था वहाँ महाराणा प्रताप अपनी जन्मभूमि सेवाड़ को स्वतन्त्र तथा विदेशी शासन से सदा मुक्त देखना

चाहता-था और इसके लिए वह अपने प्राणों की बाजी लगाने में भी चूक न करने वाला था। महाराणा प्रताप में अपने स्वयं के गौरव एवं अपने वंश की मर्यादा की रक्षा का व्रत था। वह किसी भी दशा में अपने पूर्वजों की शान बान व शान को सम्राट अकबर की अध्यक्षता स्वीकार करके धूल-धूसरित 'नहीं' करना चाहता था। स्वतन्त्रता का प्रेमी होने के अतिरिक्त महाराणा प्रताप राजपूत-घराने की मर्यादा की रक्षा करने वाला था। अकबर को भलीभाँति ज्ञात था कि प्रताप का राजपूतो में कितना आदर था। वह जानता था कि बिना उसके उसकी आधीनता स्वीकार किये हुये दूसरे राजपूत सरदारों का उसकी आधीनता स्वीकार करना असम्भव सा था।

उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते महाराणा प्रताप की ३२ वर्ष की आयु में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् गोगुन्दा में गद्दी प्राप्त हुई थी किन्तु राजतिलक कुछ दिन पश्चात् कुम्भलगढ में हुआ था। महाराणा प्रताप उस समय प्रौढावस्था में होने के कारण अपने कन्धो पर पड़े शासन सम्बन्धी बोझ के भार के उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता था किन्तु जैसा कर्नल टाड ने एक स्थान पर कहा है—प्रताप उस समय साधन-रहित, राजधानी रहित एवं हताश साथियों एवं वन्धुओं से घिरा हुआ था। पर इतना होते हुए

भी वह साहस का अचल न त्याग कर अपने कुल की मर्यादा का सहारा लेकर चित्तौड़ को मुगलों के चुंगुल से बाहर निकालने के लिए कटिबद्ध था। वह न केवल अपनी खोई हुई जाति मर्यादा को पुनः प्राप्त करने की चिन्ता में था वरन् अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने के लिए पागल सा था। उसके पिता ने सन् १५६७ में चित्तौड़ की रक्षा का भार जयमल के हाथों में सौंपा था और उसने स्वयं गिरवा की पहाड़ियों की शरण ले ली थी और प्रताप ने अपने जीवन के साढ़े चार वर्ष पश्चिमी मेवाड़ के ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में बिचरणा करने की ठान ली थी। महाराणा प्रताप के दादा राणा सांगा ने विदेशी आक्रमणकारी बाबर से लोहा लिया था किन्तु कनवाहा के मैदान में उन्हें करारी हार खानी पड़ी थी। राणा सांगा तथा उसके वंशजों के हृदय में बाबर तथा उसके वंशजों के प्रति विरोध और द्वेष की भावना होना स्वाभाविक सी थी। बाबर के थोड़े वर्षों के शासन के पश्चात् उसके पुत्र हुमायूँ का शासन हुआ। किन्तु उसे थोड़े दिन पश्चात् ही भारत छोड़ना पड़ा। दिल्ली पर पठान शेरखाँ का अधिकार हो गया। मुगल इस प्रकार से विदेशी आक्रमणकारी के अतिरिक्त कुछ और न रहा। हुमायूँ ने अवसर पाकर अपने जीवन की संध्या में फिर भारत पर आक्रमण किया तथा दिल्ली का शासक हुआ, पर उसकी मृत्यु शीघ्र हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् अकबर जो उस समय बालक था शासक हुआ। मुगल सम्राटों की तीसरी पीढ़ी में जन्म लेने वाला वह घटनाओं के क्रम के परिणामस्वरूप यदि राणा-

प्रताप की दृष्टि में विदेशी और आक्रमणकारी के रूप में समझा गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती। राणा प्रताप के परम्परागत धरोहर के रूप में स्वदेश एवं स्वधर्म के प्रति शक्ति प्राप्त थी क्योंकि उसका परिचय उसका दादा दे चुका था। सम्राट अकबर भी अपने दादा की भांति भारत में शासन जमाने के लिए जहां तक मेवाड़ का प्रश्न था बड़ा से बड़ा त्याग करने को उद्यत था। यदि राणा प्रताप अपना सर्वस्व अपने देश की रक्षा के हित में न्यौछावर करने को उद्यत था तो सम्राट अकबर भी अपना प्रभुत्व उस क्षेत्र में जमाने के लिए भी बड़ा से बड़ा बलिदान करने को कटिबद्ध था। अकबर ने राणा प्रताप के पिता के जीवनकाल में चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे जीत लिया था। चित्तौड़ का महान साका हो चुका था। उसमें चित्तौड़ की वीर और वीरांगनायें सहस्रों की संख्या में अपने प्राणों की आहुति दे चुकी थी। इस पराजय के पूर्व ही महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ छोड़कर उदयपुर जा बसे थे। इस रोमांचकारी घटना के परिणाम स्वरूप ही राणा प्रताप के हृदय में अपने पिता के प्रति क्रोध, आक्रमणकारी अकबर के प्रति विद्वेष तथा क्षोभ रखना अस्वाभाविक न था। पर उसने मर्यादाओं का उलघन न करके मेवाड़ को स्वतंत्र करने तथा अकबर के सामने घुटना न टेकने की ठान ली थी। उसी प्रकार से सम्राट अकबर ने देश के अन्य राजपूत राजाओं की तरह मेवाड़ के शासकों को झुकते न देखकर साहस न छोड़ा और उनका निरन्तर सामना करना ही सोचा।

राणा प्रताप गौरवपूर्ण राजवंश के एक समुज्ज्वल रत्न थे। वह जिस राज्य से सम्बद्ध थे उसका भूतकाल बहुत ही समुज्ज्वल एवं गरिमायुक्त रह चुका था। बापा रावल, राणा कुम्भा और राणा सांगा की वीरता एवं शौर्य को उन्होंने उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त कर लिया था। एक पीढ़ी पूर्व ही राणा सांगा का लोहा सारे राजस्थान में माना जाता था और सारे राजस्थान के राजा उसको अपने शिरमौर मानते थे। आमेर के राजा मान का सम्राट अकबर के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध तथा आमेर के अन्य राजाओं के भी राज्य; सम्पत्ति एवं प्रभाव का निरन्तर विस्तार मेवाड़ के राज्य के लिए एक भयंकर संकट उपस्थित किये हुये था। मेवाड़ में उस समय भी राणा आर्थिक दुर्व्यवस्था का सामना कर रहा था। राणा का साथ अन्य राजा-महाराजा भी नहीं दे रहे थे। ऐसी स्थिति में राजा मान की वीरता, शासन पटुता और दान की यश गान जो देश में फैल रही थी उस सब को देखते हुए राणा प्रताप में राजा मान के प्रति शत्रुता, घृणा और क्षोभ होना स्वाभाविक ही था पर राणा प्रताप अपनी स्वतंत्रता के प्रति प्रेम, सत्य-निष्ठा के आगे किसी भी हेय विचार को अपने में नहीं रख रहा था—यह आश्चर्य ही नहीं वरन् उसके असाधारण व्यक्तित्व की बात थी। सम्राट अकबर संकट और विपत्तियों का वह मानस-पुत्र था जिसने तेरह वर्ष की आयु में साक्षर न होते हुए भी दिल्ली में सिंहासन पर बैठने के थोड़े दिनों पश्चात् हेसू से राज्य के लिए लोहा लिया। विजयी अकबर ने पराजित एवं

घायल शत्रु की हत्या से विमुक्त हो अपनी मानवता का प्रथम परिचय किया। तीन सौ वर्ष पुराने इन भावी शासन में सम्भवतः प्रथम बार ही अकबर ने अपने आपको भारतीय अनुभव किया और अपने साम्राज्य को भारतीय साम्राज्य का रूप दिया। ऐसा करने के लिए उसने अपने साम्राज्य के मुसलमान-भिन्न नागरिकों को नागरिकता का समान अवसर दिया। अकबर का साम्राज्य संगठन इस प्रकार से विजेता का अधिनायकत्व नहीं या वरन भारतवर्ष की राजनैतिक एकता का तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप एक यथासम्भव श्रेष्ठ संगठन था। यद्यपि इस समग्र नव कल्पना को ध्यान में लाने एवं उसे मूर्तरूप देने का सारा काम अकबर का था। उसको सहायता एवं समर्थन का बल बाहर से पर्याप्त मात्रा में मिला। ऐसे भारत-राष्ट्र की स्थापना जिसमें सारा देश सम्मिलित हो और जिसमें देश की सभी विभिन्न कोटि के नागरिकों का सक्रिय सहयोग हो, अकबर के व्यक्तित्व की एक सबसे बड़ी देन भारत के इतिहास को है। जैसा कि अन्यत्र कहा गया है अकबर एक सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति था। अधिक पढ़ा लिखा न होने पर उसमें सूक्ष्म-बुद्धि, दूरदर्शिता तथा जनप्रियता अनुपम थी। उसकी वीरता एवं उसके शौर्य से भी उसमें अद्भुत वैयक्तिक आकर्षण था। विराट नीति को स्थिर करके सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को समझना एवं निर्णय देना—ऐसे दो गुण उसमें थे जिसने उसे उदार मित्र के साथ उदार शत्रु भी बना दिया था। कला - प्रियता एवं गुण ग्राहकता उसमें



# महाराणा प्रताप—एक व्यवस्थापक के रूप में

—डॉ० गोपीनाथ शर्मा, एम ए. पी. एच. डी.

सांगा की मृत्यु मेवाड के इतिहास में एक विघटन के युग का प्रारंभ करती है जिसके फल-स्वरूप मेवाड में अनेक राजनीतिक उथल-पुथल तथा विभिन्न आन्तरिक और अभ्यन्तरिक समस्याओं का प्रारंभ होता है। १५२८ से १५३७ ई० की थोड़ी अवधि में ही मेवाड पर तीन शासकों का राज्य हो चला था जिसमें सिवाय पारस्परिक द्वेष और स्वार्थ सम्पादन के प्रयत्नों के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण घटना उल्लेखनीय नहीं है। रत्नसिंह और सूरजमल के वंशज ने मेवाड और हाडीली के सम्बन्ध में कटुता पैदा कर दोनों राज्यों को निर्बल बना दिया। दोनों का पारस्परिक द्वेष इतना बढ़ गया कि वे एक दूसरे को जीवित नहीं देख सकते थे। अन्त में दोनों शिकार के व्हाने लड़कर मृत्यु की गोद में जा बैठे<sup>१</sup>। जब रत्नसिंह के छोटे भाई विक्रमादित्य मेवाड के शासक बने तो वहाँ की दशा अत्यन्त शोचनीय हो चली। उन्हें अपने पद और उत्तरदायित्व का कोई भान नहीं था। शासन कार्य में उन्हें कोई रुचि नहीं थी।

चाटुकारों और पहलवानों की संगति में रहकर उन्होंने अपने पद और अधिकार का दुरुपयोग करना आरंभ कर दिया। उनके व्यवहार से असन्तुष्ट होकर अभिमानी सरदारों ने दरबार में जाना बन्द कर दिया और वे अपने-अपने ठिकाने में जाकर रहने लगे<sup>२</sup>। जब इस अवस्था में बहादुरशाह ने मेवाड पर आक्रमण कर दिया तो महाराणा के लिए सिवाय शत्रु से अपमानजनित सन्धि करने के सिवाय और कोई चारा न रह गया। इस पराभव ने भी राणा की आंखों को न खोला और वे अपने रहन-सहन तथा व्यवहार में पूर्ववत् बने रहे<sup>३</sup>। फल यह हुआ कि पृथ्वीराज के औरस पुत्र वरावीर ने अवसर पाकर १५३६ ई० में राणा की हत्या कर दी और वह स्वयं मेवाड का शासक बन बैठा। जब अराजकता और निन्दनीय कार्यों का दौर बढ़ता ही जा रहा था कि कई सरदारों ने मिल कर उदयसिंह को अपना नेता स्वीकार किया और वरावीर को परास्त कर उसे (उदयसिंह) मेवाड का शासक घोषित किया<sup>४</sup>।

१. वीर विनोद, भाग २, पृ. ४, ख्यात, पत्र २६-२७

२. ओझा - उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ. ३६४; केंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ३, पृ. १३०; जी. एन. शर्मा-मेवाड एण्ड दी मुगल एम्पराई, पृ. ४७

३. वेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३६१-६२; मीरान, पृ. २६०-६३ (पाण्डुलिपि)।

४. कुम्भलगढ़ दान पत्र, वि. स. १५६४; अमर काव्य वशावली, पृ. ३२; मेवाड एण्ड मुगल एम्पराई, पृ. ५६-६०।





में खेती की व्यवस्था से जनता के लिए काम भी खोज निकाला गया और उस भू-भाग को आबाद करने में भी सहायता मिल गई। इस नई व्यवस्था से आक्रमणकारियों को बड़ी हानि हुई— एक तो उनके लिए विध्वंसकारी कार्यों के लिए कुछ भी अवशेष न बचा था और दूसरा शत्रुओं के लिए रसद प्राप्त करने की संभावना समाप्त हो गई<sup>६</sup>।

जब इस व्यवस्था से सुरक्षा प्रबन्ध समुचित रूप से सम्पादित हो चुका तो प्रताप ने अपने अपने सामन्तों तथा आश्रितों का भी सहयोग प्राप्त करने में प्रयत्नशीलता दिखाई। इस कार्य में उन्हें अपने व्यक्तित्व, आदर्शवादिता तथा क्रियाशीलता से बड़ी सफलता मिली। शिशोदिया सरदार, स्थानीय सरदार तथा अन्य बाहरी राजपूत-वंशों ने प्रताप को अपना नेता स्वीकार किया और सभी मेवाड़ की सुरक्षा के लिये उनके सहयोगी बन गये। चौहान, शिशोदिया, तंवर, राठौड़, सोलंकी आदि राजपूत वंशों ने मेवाड़ के लिए बलिदान चढ़ाने को अपना-अपना सैन्य बल प्रताप को सुपुर्द कर दिया और सभी देश की रक्षा के कार्य में लग गये। इन राजपूत वंशों के अतिरिक्त ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र तथा भीलों के जत्ये भी महाराणा के साथ देश-रक्षा के पुनीत कार्य के लिए कमर बांध

कर तैयार हो गये। हल्दीघाटी के युद्ध में इन सभी जातियों का, जिनमें मुसलमान भी सम्मिलित थे, सहयोग था। राज्य के तथा राज्येतर सामन्तों तथा सम्पूर्ण जनता का सहर्ष सहयोग प्राप्त करना और आस-पास के राज्यों से मैत्री-संयोग बढ़ाना प्रताप की सहिष्णु तथा विचारशील नीति का परिचायक है। इस नीति को समयोचित और चतुर नीति कहा जा सकता है<sup>७</sup>।

सुरक्षा नीति की भांति प्रताप ने सैन्य व्यवस्था तथा युद्ध-प्रणाली को भी नया मोड़ दिया। हल्दी-घाटी के युद्ध के पहिले प्रताप ने जगह-जगह चौकियाँ बिठादी थी तथा गुप्तचरों को भी लगा दिया था जिससे शत्रुओं की चाल से वे अवगत हो सकें। युद्ध के लिए उन्होंने सम्पूर्ण सेना को नहीं लगाया था, वरन् सेना के कुछ अंग को कोल्हारी में सुदूर छोड़ा था जो मुगलों की वियक्त सेना को परेशान कर सके और स्थानीय सेना के इलाज आदि आवश्यकता में सहायता पहुँचा सके। पुरानी राजपूत प्रणाली की भांति युद्ध में लड़कर मर मिटने पर प्रताप विश्वास नहीं करते थे। यही कारण था कि उन्होंने किसी युद्ध में या मोर्चे में डटकर मुगलों से मुठभेड़ न की। शत्रु को अपनी छावनी में घेर लेना, उसकी रसद को रोक लेना, भागती हुई सेना का पीछा करना, शत्रु के डेरे को लूटना

६ बदाउनी : मुन्तखाब, भा. २, पृ. २२८; वीर विनोद, भा. २, पृ. १४६,

जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ. ८६ ८७

७. सूर्यवंश, पृ. १९, वंशावली राणाजीनी पृ. ६८;

बदाउनी : मुन्तखाब, भा. २, पृ. २३१, अकबरनामा, पृ. ६९, १५२,

तबकान, पृ. ३३३, जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ. ६१-६६।

प्रादि नई प्रथाएँ थीं जिन पर प्रताप ने बल दिया जिसके फलस्वरूप अकबर की महान् शक्ति प्रताप को परास्त न कर सकी। एक ही युद्ध में लड़कर युद्ध को समाप्त करना वह सही नहीं समझते थे। युद्ध को लम्बा बढ़ा कर शत्रु की शक्ति का नाश करना वे अधिक उपयोगी मानते थे। इस नई गति विधि से प्रताप अपने समय में (चित्तौड़ और मांडलगढ़ को छोड़) पुनः मेवाड़ को अधीन करने में सफल हुए<sup>८</sup>।

जन-जागरण तथा जन-संगठन की क्षमता भी प्रताप में खूब थी। सम्पूर्ण पहाड़ी भागों में घूम-घूम कर तथा कष्ट साध्य जीवन को बिताकर उन्होंने जनता के नैतिक स्तर को बनाये रखा। प्रताप ने उनके जीवन की समस्या को अपने जीवन की समस्या बनाया। वे कई दिन ग्रामीण जनता के बीच में विचरण करते रहते और जन-आन्दोलन के द्वारा देश को सजग बनाये रहे। मुगलों के लिए ऐसे नए संगठन का मुकाबला करना बड़ा कठिन था<sup>९</sup>।

जब मुगलों का भय कम हो गया और देश भी एक सूत्र में संगठित हो चला था तो प्रताप ने जन जीवन को सुव्यवस्थित करने का बीड़ा उठाया।

उन्होंने नई बस्तियों को एक रूप देने के लिए चांवड में राजधानी को स्थापित किया। समुचित शासन व्यवस्था के लिए वे शासन के प्रमुख कर्णधार बने परन्तु उन्होंने कई विभागों की देख रेख के लिए विभागीय अध्यक्षों की नियुक्ति की। पुराने अधिकारी या तो मर चुके थे या नई प्रणाली के लिए उपयुक्त नहीं थे। महाराणा ने नई शासन व्यवस्था के लिए नए दल को तैयार किया। रामा नामक मुख्य प्रधान को हटाकर भामाशाह की नियुक्ति इसी दिशा में एक नया कदम था<sup>१०</sup>। इस प्रकार की शासन व्यवस्था में परम्परा और नई परिस्थिति के अनुकूल आचरण का सामंजस्य था। जिस विभागीय वर्गीकरण की शासन पद्धति का प्रारंभ प्रताप ने किया था उसी का रूप हम महाराणा अमरसिंह के समय में पाते हैं<sup>११</sup>।

समसामयिक ग्रन्थों व अन्य साधनों के अध्ययन से स्पष्ट है कि प्रताप की राजधानी में न्याय का समुचित प्रबन्ध था। अपराधियों की संख्या उचित दण्ड देकर कम कर दी गई थी जिससे चोरी डकैती तथा अनैतिक आचरण का राज्य में कोई भय नहीं रह गया था। अमरसार का लेखक अलंकृत भाषा में लिखता है कि यदि प्रताप के

८. नेहासी ख्यात, पृ. ११-१२; वीर वीनोद, पृ. १५५;

जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्पराई, पृ. ६६-१०७;

९. अकबरनामा, भा. ३, पृ. १६६;

जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्पराई, पृ. ११०।

१०. मामो परधानों करे, रामो कीधो रद्द, प्राचीन पद्य, उद्धृत, श्रीका, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा. १ पृ. ४३१।

११. अमरसार, प्रताप वर्णन, श्लोक, ६०-७५। सर्ग १, श्लोक २५५-२५६।

राज्य में पाष की विद्यमानता स्त्रियों के अलकाओं में ही थी चोरों के पकड़ने के लिए पाष का उपयोग नहीं होता था। इसका आशय यह है कि सभी में नैतिक आचरण था अतएव दण्ड में कठोरता का प्रयोग करने की आवश्यकता न थी<sup>12</sup>।

प्रताप की राजधानी की स्थिति भी व्यापार वाणिज्य की अभिवृद्धि के लिए अत्यन्त उपयोगी थी। चावण्ड के चारो ओर फल, फूल तथा धान्य की पैदावार के लिए भूमि उपयोगी थी। ऐसे समृद्ध स्थान को राज्य का केन्द्र बनाकर प्रताप ने केवलमात्र सुरक्षा के विचार से प्रजा का हित सम्पादन नहीं किया वरन् गुजरात तथा मालवा से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की<sup>13</sup>।

एक अच्छे शासक की भाँति प्रताप ने कलात्मक प्रवृत्तियों को भी प्रोत्साहन दिया। इन प्रवृत्तियों में चित्रकला की प्रवृत्ति बड़े महत्व की थी जो चावण्ड चित्रशैली<sup>14</sup> के नाम से विख्यात है। मेवाड़ चित्र शैली को इस शैली ने समृद्ध बनाने में बड़ा योग दिया था। इस शैली में विषय के प्रतिपादन में तथा रंगों के प्रयोगों में सादगी तथा भाव प्रदर्शन में गांभीर्य प्रमुख हैं। इस शैली के बने हुए चित्र श्री गोपीकृष्ण कानोडिया तथा श्री मोतीचन्द खजानची के संग्रहों में

सुरक्षित हैं। एक रागमाला का चित्र जो प्रताप के समय के ठीक बाद वि. सं. १६६२ में बना था इस बात को प्रमाणित करता है कि रागमाला का चित्रण प्रताप के समय से आरंभ हो गया था तथा इस माला का आधार स्थानीय चित्रकला की अभिव्यक्ति था। इससे यह भी प्रतीत होता है कि रागमाला का चित्रकार निसारदी (नासिरुद्दीन) या निसार आदि चित्रकार थे जो एक चित्र को अनेक चित्रकार मिलकर मुगल पद्धति के अनुकूल बनाते थे। निसार या निसाहद्दीन का नाम यह भी सिद्ध करता है कि प्रताप के राज्य की नीति धर्म सहिष्णु थी जिसमें जाति, धर्म आदि का भेद न था। शासकीय नियमों में उदारता थी अन्यथा निसारदी या नासिरुद्दीन नामक व्यक्ति के लिए राज्याश्रय संभव न था। यदि हम चित्रशैली को अधिक दारीकी से देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि पृष्ठभूमि के चित्रण में तथा पुरुष और स्त्रियों की आकृति में दक्षिण तथा पश्चिमी तटीय भागों और मालवा के प्रभाव की भी छाप है। ऐसा प्रतीत होता है कि तब तक मेवाड़ का सांस्कृतिक सम्बन्ध इन विभिन्न भागों से परिपक्व अवस्था में पहुँच चुका था।

चित्रकला की भाँति प्रताप ने स्थापत्य कला में भी रुचि ली। उनके समय के स्थापत्य में

१२. अमरसार, प्रताप वर्णन श्लोक, ६०-७५

१३. वदी, श्लोक ६०-७५।

जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परस, पृ. ११७-११८।

१४. मेरा लेख : मेवाड़ पेन्टिंग, उत्तर भारती, भा. ६, नं. २, पृ. ६२-६३।

सैनिक तथा साधारण जन-जीवन के स्थापत्य का सम्मिश्रण था। उस समय के बने हुए महलो की दीवारों, सुरक्षा के प्रबन्धों और बुर्जों के अवशेष जो कमोल, उभयेश्वर, कमलनाथ, चावण्ड आदि में पाये जाते हैं इन विशेषताओं को स्पष्ट बतलाते हैं। इन सभी महलो को पहाड़ी नाको तथा घने जंगली भाग में बनाया गया था। चावण्ड के महलों में तो दूरी हुई नालियां भी दिखाई देती हैं जो पास वाले जलाशय से पानी लाने और उसे इकट्ठा करने की योजना बतलाती है। इन महलों से गुप्त मार्ग से निकलने के साधन भी सैनिक स्थापत्य पर प्रकाश डालते हैं<sup>15</sup>।

प्रताप की व्यवस्था में साहित्यिक उन्नति का भी प्रधान स्थान है। पद्मिनी चरित्र की रचना तथा दुरसा आहडा की कविताएं प्रताप के युग की आज भी अमर बनाये हुए हैं। चावण्ड में यह परम्परा पिछले समय तक भी मिलती रही है।

प्रताप में, अतएव, एक अच्छे सेनानायक के ही गुण न थे वरन् उनमें एक अच्छे व्यवस्थापक की विशेषताएं थी। उनका ओजस्वी चरित्र उन प्रतीकों में हैं जो शासन, कला तथा सामाजिक संगठनों से सम्बन्धित है।



राष्ट्रे प्रदोषयति नित्यमहो प्रदीप्तां  
नाम्नः स्मृतिः सपदि यस्य नवात्मशक्तिम्  
वीराग्रिणि विजयते भुवि स प्रतापो  
राणावर स्त्रिभुवन प्रथितः प्रतापः ॥१॥

स्वात्माभिमान जनको जनमानसेषु  
प्रदीप्ता भास्वर यशः परिभासमानः  
राणा प्रताप-रविरेष सदोदयः सन्  
नास्तं कदाचन गतौ न पुनश्चगच्छेत् ॥२॥

—पं० विद्याधर शास्त्री

१५. शोध-पत्रिका में मेरा लेख-महाराणा प्रताप की उजड़ी हुई राजधानी;

मेरा लेख, महाराणा प्रताप और उनका पर्वतीय जीवन, महाराणा प्रताप (स्मारिका), जयपुर, पृ. ४४।

# महाराणा प्रताप और तंवर नरेश

—रत्नचन्द्र अग्रवाल

उदयपुर के प्रख्यात सरस्वती भण्डार में सुरक्षित 'अमर काव्य' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि मेवाड़ नरेश महाराणा उदयसिंह ( प्रतापसिंह के पिता ) ने ग्वालियर नरेश रामशाह ( रामसिंह ) को उनकी सहायतार्थ मेवाड़ में बारांडसोर नामक प्रदेश दे दिया था<sup>१</sup> । यह रामशाह ग्वालियर के राजा 'विक्रमादित्य' का पुत्र था । मुगल सम्राट अकबर के सेनापति इकबाल खाँ से पराजित होने पर रामशाह अपने तीनों पुत्रों, शालिवाहन, भवानीसिंह, और प्रतापसिंह, सहित मेवाड़ाधिपति उदयसिंह की शरण में आगए थे<sup>२</sup> । प्रसिद्ध इतिहासकार 'अलबदायुनी' ने अपने ग्रंथ मुन्तख-बुत्तवारीख में हल्दीघाटी युद्ध का आँखों देखा वृत्त प्रस्तुत करते हुए यह लिखा<sup>३</sup> है कि "इस लड़ाई में चित्तौड़ वाले जयमल के पुत्र और ग्वालियर के तंवर नरेश रामशाह अपने पुत्र शालिवाहन सहित बड़ी वीरता के साथ लड़कर मारे गए । तंवर-वंश का एक भा वीर पुरुष बचने न पाया " । दूसरी ओर माननीय ओझाजी ने<sup>४</sup> यह भी मन प्रतिपादित किया है कि "विक्रम संवत् १६३३ (=१५७६ ईस्वी) में महाराणा प्रतापसिंह के पक्ष

में रहकर, हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में अकबर की सेना से लड़कर राजा रामशाह अपने दो पुत्रों सहित काम आया । केवल उसका एक पुत्र शालिवाहन बचने पाया " । यह विरोधाभास प्रतीत होता है । स्थिति तो यह है कि हल्दीघाटी के युद्ध में रामशाह का ज्येष्ठपुत्र शालिवाहन भी स्वर्गलोक पधारा था । सन् १६५६ में मुझे हल्दीघाटी क्षेत्र में, 'खमणोर' ग्राम के बाहर समतल भूमि पर बनी हुई दो छतरियों की खोज करने का सुम-वर प्राप्त हुआ था । ये दोनों आधुनिक ब्लॉक डेवलपमेंट कार्यालय के पोछे विद्यमान हैं । श्री ओझाजी ने भी इनका उल्लेख नहीं किया है । इनमें से बाईं ओर की छोटी सी छतरी के एक स्तंभ पर लघुलेख उत्कीर्ण है जिससे यह सिद्ध होता है कि विक्रम संवत् १६८१ में महाराणा प्रताप के पोत्र महाराणा कर्णसिंह ने उक्त स्मारक का निर्माण कराया था और " यह ग्वालियर के राजा रामशाह के पुत्र शालिवाहन की छतरी है " शीलालेख में इसका स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध है । मेवाड़ी भाषा का यह लघुलेख हल्दीघाटी के युद्ध के प्रसंग में रक्त-लाई अर्थात् रक्तताल नामक

१. गीरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपुताने का इतिहास, १९३२, भाग २, पृष्ठ ७३२

२. डॉ. राजस्थान (हिन्दी), प्रथम खण्ड पृष्ठ ३५२-५३.

३. ओझा उपर्युक्त, पृष्ठ ७४८.

४. उपर्युक्त, भाग १, पृष्ठ २३५.

स्थल विशेष की जानकारी करने में सहायक है—  
यहीं पर तंवर वंशज राजा रामशाह व उनके पुत्र  
सद्गति को प्राप्त हुए थे । मेवाड़ की स्थिति महा-  
राणा प्रताप के पौत्र कर्णसिंह के राज्यकाल में  
सभल चुकी थी—उसी समय इन तंवरवंशी नरेशों  
को श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए 'शालिवाहन' को  
यह छतरी बनायी गयी थी । मेवाड़ के महाराणा  
कर्णसिंह ने अपने पितामह महाराणा प्रताप के  
साथी इन वीरो की याद को बनाए रखा और  
उनका एक स्मारक भी बना दिया—यह उनकी  
उदारता का सूचक है ।

उपर्युक्त लघुलेख तत्कालीन इतिहास की  
महत्वपूर्ण सामग्री है । इसका सुपाठ्याश निम्न रूप  
में प्रस्तुत किया जा सकता है:—

- पंक्ति १- समत<sup>५</sup> १६८१ वर्ष<sup>६</sup> ।  
,, २- रना<sup>७</sup> करणसीध जी ।  
,, ३- ने कराई छतरी<sup>८</sup>  
,, ४- गलेरक<sup>९</sup> रज<sup>१०</sup> की

पंक्ति ५- रजमरस ॥ बेटो<sup>१२</sup>

,, ६- सलवहण<sup>१३</sup> ज री<sup>१४</sup>

,, ७- सोलवट<sup>१५</sup> मदीजत

,, ८- .. ने कम कीधो<sup>१६</sup>

उक्त लेख की लिपि देवनागरी व भाषा  
मेवाड़ी है जो भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी  
महत्वपूर्ण है ।

'खमणोर' ग्राम से बाहर इस छतरी के  
चारों ओर सुविशाल समतल भूमि वनास नदी के  
किनारे तक फैली है यह स्थल विशेष 'रक्तताल  
होना चाहिए । 'खमणोर' ग्राम का नाम तो  
'खामणपुर' था— यह विक्रम संवत् १३१७ के,  
खमणोर से ही प्राप्त, एक शिलालेख में वर्णित  
है । उक्त शिला आज कल उदयपुर के राजकीय  
संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही है ।

रणछोड़ भट्ट कृत प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ  
'अमर काव्य' में वर्णित शालिवाहन सम्बन्धी  
उद्धरण भी महत्वपूर्ण है यथा:—

५. सवत्

६. वर्ष

७. राणा कर्णसिंह ज

८. छतरी बनवाई

९. ग्वालियार के

१०. राजा के

११. राजा रामशाह के

१२. पुत्र

१३. शालिवाहन

१४. की

१५. सिलावट = सूत्रधार जिसका नाम 'मदीजत' था ।

१६. ने काम किया अर्थात् छतरी का निर्माण किया ।

तत्र प्रविष्टश्चतुरङ्ग वीरान् दिल्लीशहिन्दूकगणान् च  
घोरान् ।

निवारयामास न ते प्रविष्टा यदा समस्ता :  
प्रवभूवुरुग्राः ॥

ते कच्छवाहा--मुगलाः पठानास्ततो भटान् प्रेषयति  
स्म राणा ।

पुत्रैर्युत तु वर शालिवाहनं सरामसाहि  
युधि चाहुवाणकान् ।

भालादिकान् खण्डितवन्त एव तानेते  
गत तवरमण्डल दिवि ॥

विखण्डितानां भवनेश्वरस्य महाभटानां गणानां  
विधातुम् ।

विद्याविनोदी स गणेश्वरोपि शक्तो न कोऽन्यः  
प्रभवेत् समर्थः ॥

यहाँ भी युद्ध में रामशाह, शालिवाहन एवं  
अन्य तंवर वंशी वीरों के निधन का स्पष्ट उल्लेख  
किया गया है ।

खमणोर ग्राम के बाहर उपर्युक्त छतरी व  
शिलालेख मुगल एवं राजपूत इतिहास की महत्वपूर्ण  
थाती है और तत्कालीन स्थापत्य कला की दृष्टि  
से भी उल्लेखनीय है । यह उस सपूत का स्थायी  
स्मारक है जिसने मुगल आक्रमणों से टक्कर लेने में  
तनिक भी संकोच न किया था । यह उस लाडले  
शालिवाहन की याद दिलाता है जो अपने पिता व  
भाइयों के साथ मेवाड़ रक्षा कार्य हेतु स्वर्ग सिधारा  
था । मेवाड़ नरेश कर्णसिंह ने इस छतरी का  
निर्माण करा ग्वालियर नरेशों की महत्वपूर्ण सहा-  
यता के प्रति आभार प्रदर्शित किया था । यह  
मेवाड़ और ग्वालियर के प्राचीन राजघरानों की  
एक सूत्र में पिरोने वाला श्रद्धा धागा है । हल्दी-  
घाटी खमणोर क्षेत्र के बीच इस छतरी की महत्व-  
पूर्ण विद्यमानता तो और भी उल्लेखनीय है ।

\*\*\*

तत्तनूजनिरय प्रतापको यत्प्रतापमिहिरोशुजनिर्यः  
वैरिवर्ग वनितास्त्रपयोदः ख्यापयत्यतितरां निजकीर्ति ॥८॥

(भीमपद्मेश्वर मन्दिर प्रशस्ति)

# कुम्भलगढ़ का युद्ध (१५७८ई०)

—श्रीराम वल्लभ सोमानी

जैसलमेर भंडार में भोज चरित नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहित है। इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि कुम्भलगढ़ में १५७७ ई० में की गई थी और अन्त की प्रशस्ति में अकबर और प्रताप सम्बन्धी कुछ वृत्तांत दिया है जो सम सामायिक इतिहास के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है।

महाराणा प्रताप जिसने अकबर की आज्ञा अधीनता स्वीकार नहीं की थी मेवाड़ की राजगद्दी पर २८ फरवरी १५७२ ई० को आसीन हुआ था। अकबर का मेवाड़ पर सबसे पहला आक्रमण महाराणा उदयसिंह के शासनकाल में १५६७-६८ ई० में चित्तौड़ पर हुआ था। उस समय दुर्ग का भार जयमल और पत्ता को सौंप कर महाराणा कुम्भलगढ़ के पहाड़ों की तरफ चला गया। जयमल बीरमदेव राठोड<sup>१</sup> का पुत्र था और मेड़ता हाथ से निकल जाने के पश्चात् यह मेवाड़ चला आया था। चित्तौड़ युद्ध के १ वर्ष पूर्व की,

जयमल के शासनकाल में कोठारिया ग्राम में लिखी "धर्मदत्त कथा" (१५६६ ई०) की<sup>२</sup> प्रशस्ति मिली है। यह ग्रन्थ इस समय राधनपुर के जैन भंडार में संग्रहित है। इस प्रशस्ति के अवलोकन से प्रकट होता है कि जयमल को कोठारिया गांव जागीर में मिला हुआ था। अमेर शास्त्र भंडार में "सम्यक्त्व कौमुदी" नामक<sup>३</sup> एक हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहित है। यह ग्रन्थ चित्तौड़ पर अकबर की विजय के कुछ समय पश्चात् १५६८ ई० में कुम्भलगढ़ में महाराणा उदयसिंह के राज्य में लिखा गया था। इससे प्रकट होता है कि उस काल में महाराणा उदयसिंह वहाँ अवस्थित हो चुका था।

इस प्रकार महाराणा प्रताप ने अकबर के साथ शत्रुता पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त की थी जिसके फलस्वरूप उसे आज्ञा युद्ध में व्यस्त रहना पड़ा था। अकबर जैसे प्रबल शासक से

(१) बीरमदेव मेड़ता का स्वामी था। इसका मालदेव के साथ दीर्घकाल तक संघर्ष चलता रहा। इसने अजमेर से लेकर चाकसू तक का भाग जीत लिया था। इसके समय की कई ग्रंथ प्रशस्तिया मिलती हैं। इनसे वि० स० १५६२ में मेड़ता पर इसका अधिकार होना प्रकट होता है। मालदेव ने मेड़ता जीत लिया तब बीरमदेव ने शेरशाह से सहायता लेकर वापस मेड़ता प्राप्त कर लिया।

(२) संवत् १६२३ वर्ष माघ मासे कृष्ण पक्षे चतुर्थी तिथी सोमवारे श्री कोठारिया नगरमध्ये राष्ट्रकूट श्री जयमलजी राज्ये मच्छी खरतरगच्छे गण गगननमोमणि कल्प श्री पूजिनदेव सूरिविजयराज्ये—

(धर्मदत्त नृपकथा की प्रशस्ति)

(३) "संवत् १६२५ वर्ष शाके १४६० प्रवर्तमाने दक्षिणायने मार्गे शीर्षे शुक्लपक्षे पष्ठम्यां शनी श्री कुम्भल मेरुदुर्गरा० श्री उदयसिंह राज्ये श्री खरतरगच्छे श्री गुणलाल उपाध्याये. स्ववचनार्थं लिखायित—"

(सम्यक्त्व कथा कौमुदी की प्रशस्ति)



युद्ध करने के लिये उसने न केवल मेवाड़ को संठ-ठित किया बल्कि एक-२ देशवासी के दिल में मातृभूमि के लिये मर मिटने का सकल्प<sup>४</sup> पैदा कर दिया था। यह युद्ध मेवाड़ के राजपूत वर्ग तक ही सीमित नहीं था। बल्कि सब ही वर्गों के लोगो ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया था। भीलो का सहयोग अभूतपूर्व था। उसने मुगल सेनाओं पर गुरिल्ला पद्धति से आक्रमण कर उन्हें इतना परेशान कर दिया था कि किसी भी मुगल सेनापति की हिम्मत नहीं होती थी कि वह मेवाड़ के पहाड़ी भागों में आक्रमण के लिये आसानी से प्रवेश कर सकें।

फारसी तवारीखों में अकबर की कुम्भलगढ़ विजय ६ १३ शब्दान हि० सं० ९८६ ( १५ अक्टूबर, १५७८ ) में होना वर्णित है। इसकी विक्रमी संवत् की तिथि १६३५ वि० सं० आती है। यह आक्रमण शाहवाजखां के नेतृत्व में किया गया था। महाराणा प्रताप ने राव भाण

के नेतृत्व में वहां थोड़ी सी सेना रहने दी और अल्पकालीन युद्ध के पश्चात् कुम्भलगढ़ पर अकबर का अधिकार हो गया। दुर्ग को भारी विनाश हुआ। कहा जाता है कि कोई जीवित प्राणी नहीं बचा था जो वस्तुतः अकबर की प्रभुसत्ता स्वीकार कर सके। किन्तु "भोज चरित" की इस प्रशस्ति से पता चलता है कि अकबर के शासनकाल में कुम्भलगढ़ पर नियमित रूप से कार्य चलता आ रहा था। इसमें स्पष्टतः "अकबर-वातशाह राज्ये कुम्भलगढ़ विग्रहे विजयो भवति" शब्द अंकित है। यह प्रशस्ति युद्ध के शीघ्र बाद की ही हो सकती है। इतना विशाल आक्रमण होते हुए भी प्रतिलिपिकार अपना कार्य यथावत् करता रहा था और मुगलों के शासनकाल में भी यह कार्य जारी रखा था जो उल्लेखनीय है। इसके विपरीत कुमारपाल ने जब पाली पर आक्रमण किया<sup>७</sup> तब त्रुटित ग्रंथ लेकर कई प्रतिलिपिकार वहां से भाग खड़े हुए। मेवाड़ में वि० सं० १६३३-से १६३५ तक दोनो वर्षों में भीषण संघर्ष चलता

(४) श्री जी. एन. शर्मा—मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स पृ० ७६-७७

(५) भीलो का महत्व १४ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही मिलता है। वि० सं० १४०५ में विरचित "प्रद्युम्नचरित" में भीलो द्वारा मार्ग शुल्क लेने का उल्लेख मिलता है। ( हज बटवाल नारायण तण्ड, देड़ दाण मुहि लागउ धणउ ) वि० सं० १४११ में विरचित श्रावकाचार में इनके जंगल में निवास और घनुष बाण लेकर के विचरण वर्णित है। ऋंगी ऋषि के लेख के अनुसार महाराणा हमीर ने इन्हें पहली बार जीतकर मेवाड़ के राजाओं के आधीन बनाया था। कुम्भा के समय यह जाति एक महत्वपूर्ण सैनिक क्षमता वाली जाति थी। फारसी तवारीखों में इनके कई संदर्भ उपलब्ध हैं।

(६) मुन्तखाब उत तवारीख जिल्द ०, पृष्ठ २७५

(७) पंचाशक प्रकरण वृत्ति की वि० सं० १२०७ की प्रशस्ति द्रष्टव्य है इसमें "पल्लीभगे त्रुटितं पुस्तकामिद-मग्रहीत" लिखा है।

रहा था। कभी किसी महत्वपूर्ण चीज़ी को मुगल सैनिक ले लेते थे और कभी राजपूत इन्हें वापस हस्तगत कर लेते थे। अकबर स्वयं भी मेवाड़ में आया था। उसने वि० सं० १६३३ में राजा मानसिंह, भगवानदास आदि के नेतृत्व में कुछ सेना इसलिए भी भेजी कि राणा की गतिविधि मालूम की जा सके। अकबर गोगून्दा गया और वहां से मोही और मदारिया की तरफ गया। इस प्रकार सम्पूर्ण पहाड़ी क्षेत्र को उसने घेर लिया ताकि राणा कहीं भी कुशलतापूर्वक भाग न सके किन्तु उसे इसमें कोई सफलता नहीं मिली। अकबर अपनी इच्छा की पूर्ति किये बिना ही मालवा लौट गया। इसके पश्चात् कुछ सेना मानसिंह के नेतृत्व में भेजी। इस सेना ने भी राणा से कुछ क्षेत्र जीत लिये किन्तु राणा ने उसे वापस पहाड़ों में जाने को बाध्य कर दिया<sup>८</sup> कुम्भलगढ़ विजय के लिये शाहवाजखां को लगाया। जिसने उक्त दुर्ग को विजित किया था। इस प्रकार इस प्रशस्ति के सम्बन्ध में दो विकल्प हो सकते हैं :—

(१) या तो इसमें वर्णित घटना उक्त युद्ध के पहले की है।

(२) या इसमें दो गई तिथि गलत है।

इस सम्बन्ध में घटनाकाल के शीघ्र बाद ही हि० सं० १८७ तक पूरी हुई तारीख-ए अकबरी, में जिसे हाजी मोहम्मद आरिफ कन्वारी ने लिखी

थी, पृष्ठ २६२-२६३ पर इसका वर्णन इस प्रकार है :—

“हि० सं० १८४ में रोहतास का किला जीता और इस साल में अकबर अजमेर आया शाहवाजखां को कुम्भलगढ़ का किला जीतने भेजा। दुर्ग विजय की सूचना सफर हि० सं० १८६ में शाहवाजखां तथा अन्य दरबारियों द्वारा दरबार में भेजी गई कि बहुत ही मुश्किल से इस किले को अपने कब्जे में कर लिया गया है। इस कारण कि हजरत बादशाह सदैव अपने सेवकों की खुशी और उन्नति का ध्यान रखते हैं और हमेशा उनका यह स्वभाव है कि इस्लाम धर्म को मानने वालों तथा इस्लाम धर्म की दिन प्रतिदिन उन्नति होती रहे तथा कुफ्र की हिमायत करने वालों के समस्त स्थान दरबार के सामन्तों द्वारा विजित हो। चूंकि कुम्भलगढ़ का किला ऐसे मुल्क में स्थित है कि उसकी ऊंचाई बहुत है और देखने वालों की आंख उसके छज्जे तक मुश्किल से पहुँचती है और यदि उसको देखने का प्रयास भी करते हैं तो पीछे की ओर सिर के बल गिर पड़ते हैं। चूंकि उनका यह उद्देश्य था कि यह किला उनके अधिकार में आ जाय, अतः उन्होंने जीतने के लिये समस्त चिन्ता दरबार के सामन्तों पर निहित की। इस पहाड़ी इलाके में एक राणा का राज्य है कि उसके महलो की ऊंचाई और वहां तक पहुँचने के रास्तों

(८) “मान प्रकाश” में मानसिंह द्वारा कुम्भलगढ़ जीतने का उल्लेख है— (शोध पत्रिका वर्ष १८, अंक १, पृष्ठ ३५ एवं ३७) शाहवाजखां द्वारा की गई विजय इससे निम्न रही होगी क्योंकि इसमें दुर्ग विजय का श्रेय मानसिंह को दिया हुआ है।

की कठिनाई के कारण उसने अपने मस्तिष्क में घमंड को स्थान दे रखा था। अपने समस्त साथियों तथा समकालियों से गर्व करता था कि मैं किसी के आधीन नहीं हूँ। आज तक कोई बादशाह अपने लगाम की डोरी से उसके कान नहीं छेद सका। तथा इस्लाम राज्य का उस देश में पदार्पण नहीं हुआ था। न जाने कितने बादशाह तथा सुल्तान उस प्रदेश को जीतने के लिये परेशानी तथा हसरत को लेकर मर गये और इस किले को फतह करने में हमेशा हार मानी। हजरत बादशाह के मनमें यह था कि खुदा के आशीर्वाद से इस किले को अपने कब्जे में ले आये— उपर लिखे हुए सन् में शाहवाजख़ां ने धोखे और चालाकी से (खिदहाव फरेवदादा) उस किले को कब्जे में कर लिया। समस्त जनता को जो किले में थी तलवार के घाट उतार दिया। राणा भागकर पहाड़ों में चला गया।”

इस वर्णन से स्पष्ट है कि शाहवाजख़ां का घेरा लम्बे समय तक रहा था। अथवा एक बार हि० सं० १८४-८५ में संभवतः उसे कुछ सफलता

मिली हो और राणा द्वारा इसे वापस जीत लिया गया हो। अन्यथा कत्ले आम के बाद जैन साधुओं का वहाँ ग्रन्थ-रचना करना कभी भी संभव नहीं हो सकता है। इस संबंध में और शोध किया जाना चाहिये। प्रशस्ति समसामयिक है इसलिए प्रामाणिक मानी जा सकती है। मूल प्रशस्ति में “गोपाचल संस्थान मध्ये लिखितं” वाक्य है। यह संभवतः कुम्भलगढ दुर्ग का ही एक भाग है। मूल प्रशस्ति इस प्रकार है:—<sup>१</sup>

इति श्री धर्मधोष गच्छे धर्मसूरिसताने पाठक राजवल्लभ कृते श्री भोज चरित्रे भानुमती विवाह वर्णनो देवराज सज्जीभूत वर्णनो नाम पंचम प्रस्तावः। श्री भोज चरित्रं सम्पूर्ण समाप्तम्। प्रथाग्रम् १८०१ !! संवत् १६३४ वर्षे चैत्रवदि १० दिने शक्रवर पातीसाह विजयराज्ये कुंभमेरगढ विग्रहेविजयो भवति। वा० भावधर्म शिष्य गणेश श्री उदयनन्द सीषश्य (शिष्यस्य) हारी लिखितं स्वलूमधे (?) मांगलिक ययो भवति। कली (लि) काल समा (समये) चैत्रे दसमी। बुध बासरे। गोपाचल संस्थान मध्ये लीक्षितं भोज चरित्रं ज...?



# पातल और पीथल का पत्र व्यवहार

—डॉ० मनोहर शर्मा

पृथ्वीराज राठौड़ और महाराणा प्रतापसिंह राजस्थान के इतिहास में परम प्रकाशमान हैं। इन दोनों महापुरुषों का व्यक्तित्व असाधारण है, फलस्वरूप इनको देश भर में गौरव प्राप्त हुआ है। राजस्थान में इस प्रकार के चारित्र्य-सम्पन्न नरवीरों के संबंध में स्तुति परक पद्यों का लोक प्रचलित होना सर्वथा स्वाभाविक है क्योंकि यहां की जनता का इतिहास-बोध सदा से बड़ा उत्कट रहा है। किसी भी लोकवीर के गुण-कर्मों से प्रभावित होकर कवि-वाणी प्रकट होती है और फिर वह जनता के जीवन का अंग बन जाती है। लोग उसे भूलते नहीं और समयानुसार अपने पूर्वजों के चरित्रगान के समान उसका प्रयोग करके गौरवान्वित होते हैं। इसी रूप में पृथ्वीराज राठौड़ (पीथल) और महाराणा प्रतापसिंह (पातल) का पद्यात्मक पत्र-व्यवहार है। वह निम्न रूप में प्राप्त है —

## पृथ्वीराज राठौड़

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूँ ता बयण ।  
मिहर पिछम दिस माँह, ऊँगे कासपरावउत ॥१॥  
पटकूँ मूछा पाण, कं पटकूँ निज तन करद ।  
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥२॥

## महाराणा प्रतापसिंह

तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूँ इकलिग ।  
ऊँगे जाँही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥१॥

खुसी हूँ पीथल कमध, पटको मूँछां पाण ।  
पछटण है जेत पतो कलमां सिर केवाण ॥२॥  
साग मूँड सहसी सको, सम जस जहर सवाद ।  
भड पीथल जीतो भला, बैण तुरक सूँ बाद ॥३॥

इन दोहों ( अथवा सोरठों ) का प्रसंग इस प्रकार प्रकट किया जाता है कि महाराणा ने विपत्तियों से संत्रस्त होकर दिल्लीपति अकबर को आधीनता-सूचक पत्र लिखा, जिसे पाकर बादशाह ने पृथ्वीराज राठौड़ के सामने बढ़ा गर्व प्रकट किया। पृथ्वीराज ने उस पत्र को नकली बतलाते हुए प्रतिकार हेतु दो सोरठे महाराणा को लिख भेजे और उनका उत्तर तीन दोहों में उन्हें प्राप्त हुआ।

इस लौकिक-प्रवाह की ऐतिहासिकता के संबंध में विद्वानों में मतभेद है और प्रामाणिकता हेतु कोई पुष्ट साधन उपलब्ध न होने पर भी यह विवाद चल रहा है।

इन दोहों में प्रयुक्त दो शब्दरूप विशेष ध्यान देने योग्य हैं। वे हैं—पातल ( प्रतापसिंह ) और पीथल पृथ्वीराज। राजपूत-समाज में पत्रव्यवहार का शिष्टाचार बड़ा ही सम्मानपूर्ण एवं उच्चकोटि का है। 'पातल' और 'पीथल' शब्दरूप राजपूतों के लिए चारण-समाज में परम्परानुसार प्रयुक्त किए जाते हैं। इस प्रकार इस पत्र व्यवहार की शैली राजपूत-समाज की न होकर किसी चारण-कवि की चीज प्रतीत होती है। चारण सरस्वती

का उपासक है परन्तु मूल-रूप में वह शक्ति का पुत्र है। प्रस्तुत पद्यों का समग्र-प्रभाव इन्हे किसी चारण की रचना ही प्रकट करता है।

इस प्रकार पात्रों की विचारधारा को दृष्टि में रखते हुए उनके मुख से कहलवाई गई यह किसी महान् कवि की वाणी है, जिसका नाम काल-प्रवाह ने अज्ञात कर दिया है। राजस्थान की लोक-प्रचलित साहित्य-सामग्री में से इस प्रकार के और भी अनेक उदाहरण सहज ही दिए जा सकते हैं। इतिहास-बोध से सम्पन्न और काव्य रसिक राजस्थानी जनता ने उदार-हृदय रहीम को भी तो राजस्थानी कवि बनाकर सुख माना है। जन-साधारण में कहा जाता है कि रहीम ने महाराणा प्रतापसिंह को यह दोहा लिख भेजा था —  
ध्रम रहसी, रहसी धरा, खिस जासी खुरसाण ।  
अमर विसभर ऊपरै, राख नेहचो राण ॥

स्पष्ट हो इस दोहे के रूप में प्रकट राजस्थानी कवि की वाणी को रहीम की रचना मान लिया गया है और इस में प्रयुक्त 'अमर शब्द' की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। साधारण जनता को इसकी प्रामाणिकता के विवाद में कोई रुचि भी नहीं है।

उपयुक्त पद्यात्मक-पत्र व्यवहार की ऐतिहासिकता के बारे में काफी लिखा गया है परन्तु इसकी साहित्यिक-गरिमा के संबन्ध में किसी ने प्रकाश डालने की चेष्टा नहीं की है, जो एक उपयोगी और सरस विषय है। ध्यान रखना चाहिए कि ये पद्य विशेष रूप से अर्थ-गंभीर हैं।

प्राचीन काल से भारतीय प्रजा के सामने अपनी स्वाधीनता एवं जीवन-पद्धति की सुरक्षा का विकट प्रश्न रहा है। इस पुनर्जीवित कार्य हेतु सदा से भारतीय जनता संघर्ष एवं आत्म-बलिदान करती रही है। बाह्य-आक्रमणकारियों ने अनेक बार इस देश को आक्रान्त किया और हर समय भारतीयों द्वारा उनका सामना किया गया। समय-समय पर यहाँ ऐसे त्यागी और वीर महापुरुष हुए हैं, जो देश की सम्मिलित शक्ति एवं गौरव के प्रतीक-रूप में लोक-सम्मान का पात्र बने हैं।

कई बार हमारा राष्ट्र गौरव गिरा भी है परन्तु वह सर्वथा विनष्ट कभी नहीं हुआ। दिल्ली-पति अकबर के जमाने में भारतीयों के सामने बड़ी विकट स्थिति आई और देश-गौरव के बचे रहने में संदेह पैदा हो गया। उस समय भारतीयता की उपासक समस्त प्रजा की आँखें महाराणा प्रतापसिंह की ओर लगी हुई थीं। महाराणा स्वयं वनवासी बने हुए थे परन्तु वे सम्पूर्ण देश के लिए गौरव के प्रतीक थे। उनकी आन ही भारतीयों की आन थी। ऐसी स्थिति में यदि महाराणा पराधीनता स्वीकार कर लेते तो भारत का सम्मान सर्वथा विनष्ट हो चुकता और हजारों वर्षों से जिस ज्योति को जागृत रखने के लिए असंख्य नर-वीरों ने आत्म-बलिदान किया था, वह व्यर्थ चला जाता। इसी भावना से प्रेरित होकर किसी राष्ट्रकवि ने ये दोहे ( अथवा सोरठे ) बना कर भारतीय प्रजा को समर्पित किए हैं।

पृथ्वीराज राठौड़ स्वयं उच्चकोटि के कवि एवं भारत-भक्त थे। उनके मुख से उपर्युक्त सोरठे कहलवाकर राजस्थानी-कवि ने सोने की सुगन्ध-मय बना दिया है। ये उद्गार पृथ्वीराज राठौड़ के ही प्रतीत होते हैं और उनके चारित्र्य के सर्वथा अनुकूल हैं। परन्तु अन्य राजस्थानी-कवियों की वाणी में भी असाधारण सँजीवनी-शक्ति प्रकट हुई है और उन्होंने आश्चर्यजनक रूप से वीर-निर्माण का कार्य किया है। महाराणा प्रतापसिंह महावीर थे, वे कवि न थे। उनका चारित्र्य उनके उत्तर में प्रकाशमान है। इस प्रकार इस पत्राचार में स्वाभाविकता का जो सौन्दर्य द्रष्टव्य है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

पृथ्वीराज के पत्र में दिए गए प्रथम पद्य को लीजिए। अकबर दिल्ली का बादशाह है। उसने बड़ी शक्ति संचित कर रखी है। परन्तु महाराणा प्रतापसिंह भारत के हृदय-सम्राट हैं। एक ओर भौतिक शक्ति है तो दूसरी तरफ आत्मा का बल है। अकबर ने अपनी नीति और तलवार से यहां साम्राज्य स्थापित कर लिया परन्तु फिर भी महाराणा के रूप में भारत की आत्मा स्वाधीन थी। वह कभी अकबर के सामने झुकी नहीं। यह एक ओर शक्तिशाली विस्तृत-साम्राज्य एवं दूसरी ओर छोटे से भूभाग में केन्द्रित एक राष्ट्र के गौरव का संघर्ष था। राष्ट्रकवि ने प्रथम सोरठे में इसी प्रश्न के महत्व की ओर संकेत किया है— “यदि प्रताप अपने मुख से ऐसा वचन कहता है कि अकबर ‘बादशाह है’ तो काश्यपुत्र सूर्य पश्चिम में उदय होने लगता है।” महाराणा स्वयं सूर्यवंशी हैं और उनका लोक-प्रतिष्ठित विरुद ‘हिन्दुआ-सूरज’ है।

महाकवि ने इस प्रयोग के द्वारा प्रकृति की आदि-परम्परा और भारतीय जीवन-पद्धति को समान धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार महाराणा के द्वारा पराधीनता स्वीकार करना सृष्टि-क्रम का स्पष्ट परिवर्तन है। जो किसी भी स्थिति में वांछनीय नहीं।

दूसरे सोरठे जैसा उद्गार तो शायद ही कभी किसी कवि के मुख से प्रकट हुआ होगा— “शिव (एकलिंग) की सृष्टि के व्यवस्थापक (दीवान), मुझे दो में से एक बात लिख दो - “मैं अपनी सूँछी पर स्वाभिमान के साथ हाथ फेरूँ या अपने शरीर को स्वयं ही तलवार से काट डालूँ ?” इन शब्दों में कविमुख से सम्पूर्ण भारत की आत्मा बोल रही है। राजस्थानी-साहित्य में इस प्रकार की और भी अनेक रचनाएँ हैं, जिनके द्वारा वह सम्पूर्ण भारत की आवाज के रूप में सामने आता है। इस दोहे के पीछे भी सम्पूर्ण भारत के हृदय की पीड़ा है। यह एक व्यक्ति की आवाज नहीं परन्तु एक प्राचीन एवं विशाल जाति की आवाज है। यह एक प्राचीन राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न है, जो प्रताप की ‘हां या ना’ पर निर्भर है। अतः कवि विस्तार में नहीं जाना चाहता। उसने लघुतम प्रश्न उपस्थित किया है। राष्ट्र का गौरव ही राष्ट्रकवि का जीवन है। राष्ट्र की पराधीनता राष्ट्रकवि की मृत्यु है। वह मान खोकर जीवित रहना नहीं चाहता। भारतीय कवि का स्वाभाविक रूप यही है, जिसका इस राजस्थानी सोरठे में साक्षात् दर्शन करके पुण्य-लाभ किया जा सकता है।

कवि ने बहुत ही थोड़े से शब्दों में बड़ी गहरी बात कह डाली है। ऐसे प्रश्न का उत्तर महाराणा प्रतापसिंह के द्वारा उसी रूप में दिया जा सकता है, जिस रूप में वह आगे के तीन दोहों में दिया गया है। जब कवि-वचन रूपी पवनदेव ने भ्रम की घनघटा को उड़ा दिया तो सूर्य का प्रकट होना अनिवार्य ही था।

महाराणा की ओर से दिए गए उत्तर में 'तुरक' शब्द विशेष रूप से ध्यातव्य है। भारत में असुर, यवन, म्लेच्छ, तुरक आदि शब्द समानार्थक से हो गए हैं और इन सब के पीछे एक ही भावना है। यह भावना भारतीय स्वाधीनता एवं संस्कृति पर चोट करने वालों के प्रति विरोध की सूचक है। भारत एक जीवित राष्ट्र है। उसमें आक्रामक के प्रति सार्वजनिक-विरोध की स्थायी

भावना है। उसमें सुदूर स्थित आत्मीय के प्रति सुदृढ़ भावात्मक एकता है। महाराणा के उत्तर में यही दृढ़ता प्रकट हुई है। इसका सार है—  
"राठौड़ पृथ्वीराज, तुम गर्व के साथ मूर्खों पर ताव दो। सूर्य तो सदा ही पूर्व में ही उदित होगा। मेरे विषय में तुर्क से किए गए विवाद में सदा ही तुम्हारी विजय है।"

इस प्रकार इस पत्र व्यवहार के पांच पक्षों में भारत की विजय का गौरवगान है। यह अकबर पर महाराणा प्रतापसिंह की विजय है। यह अकबर पर पृथ्वीराज राठौड़ की विजय है। सबसे ऊपर यह कवि-वाणी की विजय है। राजस्थान में सदा से कवि की विशेष सम्मान मिलता रहा है। इसका मूल कारण कवि-वाणी की तीव्र प्रेरणा है, जो इस पत्राचार में व्याप्त है। \*

महाराणा प्रताप की तलवार, शिवाजी या दुर्गादास राठौड़ की तलवार किसी की भी मान ली जाय, एक ही बात है। इसकी तीखी धार कभी मन्द नहीं होती। यह वैसे ही कठोर और वैसे ही तेज धार युक्त बनी रही है और बनी रहेगी जैसी कि उन प्रातः स्मरणीय बीरो के हाथ में बनी रही थी। अधिक समय तक काम में न लाने से यदि कुछ जंग लग भी जाता है तो कर्तव्य-धर्म-बल से उठे हुए हाथ से चलने एवं रुधिर से धुलने पर वह अधिक तेज होकर अधिक चमकने लगती है।

(स्व०) क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह

(खरवा ठाकुर)



# विरुदछिहत्तरी

— डॉ० मोतीलाल मेनारिया

विरुदछिहत्तरी<sup>१</sup> डिंगल भाषा की एक बहुत विख्यात रचना है। लोकप्रियता की दृष्टि से इसका डिंगल साहित्य में सर्वोपरि स्थान है। साहित्य-प्रेमियों द्वारा जितना मान इस छोटी सी रचना को प्राप्त हुआ उतना डिंगल भाषा के बड़े से बड़े ग्रन्थ को नहीं मिला। यह ग्रन्थ मेवाड़ के महाराणा प्रताप की आत्म-कथा से जुड़ा हुआ है। अतएव जहाँ कहीं महाराणा प्रताप का यशोगान होता है, जहाँ कहीं उनके शौर्य और पराक्रम की चर्चा होती है, वहाँ विरुदछिहत्तरी के दो-चार दोहे अवश्य सुनने को मिलते हैं।

अभी तक विरुदछिहत्तरी दुरसाजी आढ़ा की कृति मानी जाती रही है और कहा जाता रहा है कि यह मुगल सम्राट अकबर के समय की रचना है। परन्तु कुछ गहराई से अध्ययन करने पर ये बातें निर्मूल जान पड़ती हैं।

विद्वानों ने दुरसाजी का अस्तित्व — काल सं० १५६२-१७१२ स्थिर किया है<sup>२</sup> जो अनुमानाश्रित है। लेकिन ये अकबर के समकालीन थे, इसमें कोई मतभेद नहीं है। क्योंकि ये बीकानेर-

नरेश महाराजा रायसिंह (सं० १६३०-४८) के आश्रित थे जो अकबर के विश्वासपात्र सेनापति थे और जिन्होंने इनको चार गांव, एक करोड़ पसाव और एक हाथी प्रदान किया था<sup>३</sup>। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि विरुदछिहत्तरी अकबर की समसामयिक रचना है और यह दुरसाजी आढ़ा की कृति है। कारण, इसमें मुगल बादशाह अकबर के लिये अत्यन्त अभव्य शब्दावली का प्रयोग हुआ है।<sup>४</sup> जैसे:—

गढ़ ऊंचो गिरनार, नीचो आवू ही नही ।  
अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी ॥  
अकबर कुटिल अनीत, और विटल सिर आदरे ।  
रघुकुल उत्तम रीत, पाले राण प्रतापसी ॥  
अकबर कूट अजाण, हियाफूट छोड़े न हठ ।  
पगां न लागण पाण, पणघर राण प्रतापसी ॥  
अकबरियो हत आस, अंव पांस भाखे अधम ।  
नापे हिये निसास, पास न राण प्रतापसी ॥  
गोहिल कुल घन गाढ, लेवण अकबर लालचो ।  
कोड़ी दे नह काढ़, पण घर राण प्रतापसी ॥  
अकबर मच्छ अयाण, पूछ उछालण बल प्रबल ।  
गोहिल-वत गह राण, पाथोनिधी प्रतापसी<sup>४</sup> ॥

१. श्री प्रताप सभा, उदयपुर, द्वारा प्रकाशित ।

२. डिंगल गीत, (रावत सारस्वत और कुवर चंडीदान द्वारा संपादित), पृ०-१४ (टिप्पणिया)

३. दयालदास री ख्यात, पृ३५ ११८ ।

४. विरुदछिहत्तरी, पृ० १, ३, ४, ८ और ७१ ।



अकबर जैसे प्रतापी सम्राट के व्यक्तित्व के संबंध में कोई भी समकालीन कवि विशेषकर अकबर का आश्रित कहा जाने वाला कवि ऐसा लिखने का साहस नहीं करेगा और न उसका आश्रयदाता उसे ऐसा लिखने की इजाजत देगा ।

यह अकबर-कालीन रचना नहीं है, इसका दूसरा प्रमाण अन्तर्साक्ष्य के रूप में इस पुस्तक में ही उपलब्ध है । यथा:—

दिल्ली हूँत दुरुह, अकबर चढ़ियो एक दम ।  
राण रसिक रणरुह, पलटे केम प्रतापसी ॥  
उड़ै रोठ अणवार, पीठ लगा लाखों पिसरण ।  
वेढीगार बकार, पैठो उदियाचल पतो ॥  
अकबर दल अप्रमाण, उदैनयर घेरे अनय ।  
षांगा बल खूंमाण, साहां दलण प्रतापसी ॥  
देवारी<sup>५</sup> सुरद्वार, अड़ियो अकवरियो असुर ।  
लड़ियो भड़ ललकार, पोलां खोल प्रतापसी<sup>६</sup> ॥

अन्तिम दोहे में देवारी के दरवाजे पर अकबर और प्रताप के युद्ध का वर्णन है जिसकी पुष्टि इतिहास से नहीं होती । अकबर अथवा अकबर

की सेना से महाराणा प्रताप का कभी कोई युद्ध देवारी के दरवाजे पर नहीं हुआ । मुस्लिम सूत्रों के अनुसार अकबर उदयपुर में आया अवश्य था पर वह देवारी के रास्ते से नहीं आया । वह दिल्ली से सीधा अजमेर पहुँचा और वहाँ से गोगून्दा, मोही, मदारिया<sup>७</sup> तथा उदयपुर<sup>८</sup> होता हुआ वांसवाड़े<sup>९</sup> चला गया ।

इसी दोहे के चतुर्थ चरण में 'पोलां खोल-प्रतापसी' से उदयपुर के विभिन्न दरवाजों की ओर संकेत है । परन्तु उस वक्त ये दरवाजे थे ही नहीं । उदयपुर की शहरकोट और इन दरवाजों को बनवाने का काम महाराणा प्रताप के पौत्र महाराणा कर्णसिंह ( सं० १६५६-८४ ) ने आरम्भ किया था<sup>१०</sup>, पर उनके समय में पूरा नहीं हो सका । इसलिए आगे के महाराणाओं के समय में भी चालू रहा और अन्त में जाकर महाराणा संप्रभासिंह द्वितीय ( सं० १७६७-१८८ ) के शासनकाल में समाप्त हुआ ।

इन तथ्यों के आधार पर विरुद्धिहत्तरी का रचनाकाल सं० १८०८ के बाद का स्थिर होता है ।

५. देवारी का दरवाजा उदयपुर से ७ मील दूर पूर्व दिशा में देवारी रेलवे स्टेशन के पास है । इसको महाराणा उदयसिंह ( १५६४-१६२८ ) ने बनवाया था । इसके किवाड़ महाराणा राजसिंह ने ( सं० १७०६-३७ ) ने लगवाये थे । इस सम्बन्ध की एक प्रशस्ति वहाँ लगी हुई है; " महाराजा-धिराज महाराणाजी श्री राजसिंहजी आदेशात सावण सुद ५ सोमे सम्बत् १७३१ विवे पोल रा कमाड चढ़ाव्या ॥ लिखतुं जोशी गोरखदास साह पंचोली नाथू पंचोली । "

६. विरुद्धिहत्तरी, पृष्ठ ८ और ९ .

७. प्रो० श्रीराम ; महाराणा प्रताप (अंग्रेजी), पृ० ८६ .

८. वही ; पृ० ६१ .

९. डा० ओम्का ; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७५७ .

१०. डा० ओम्का ; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ८२६ .

इस संदर्भ में विश्वविहारी की भाषा के संबंध में भी थोड़ा-सा विचार कर लेना समीचीन जान पड़ता है। डा० तैत्तिरी ने ङिगल भाषा के दो स्वल्प नाम हैं— (१) प्राचीन ङिगल और (२) अर्वाचीन ङिगल। सं० १२५७ से सं० १७५७ की ङिगल को उन्होंने प्राचीन ङिगल और सं० १७५७ से अब तक की ङिगल को अर्वाचीन ङिगल कहा है॥<sup>१</sup> विश्वविहारी की भाषा अर्वाचीन ङिगल है। इसकी भाषा डुरतावी के ङिगल गीत आदि की भाषा से नहीं मिलती, जिसकी भाषा बन्धुनः प्राचीन ङिगल है। उदाहरण—

### —गीत—

अह माये राग आम लग ऊंची,  
नव पडे बस स्मृतर नाद ॥  
रोप्या भला रायपुर राजा,  
पडे न साधन तपा प्रसाद ॥१॥  
मेछां अगम तुजसमे मूरत,  
गुण पूजाकर पूज गए ॥  
अगाहट रोपे इल ऊपर,  
अमर तणां देवल अमर ॥ २ ॥  
पाषाणां चुपियां सह पडसी  
अवका दिन जातां अन नव ॥  
बड़ा बड़ा गजदब दपारां  
दापाहरा तणां बजदब ॥ ३ ॥

अवचल मंडप करे आगाहट,  
मुर जिम यापे बवे मुर ॥  
मुहे मांगियां सु दीवी नौने  
पडा अनोअन रायपुर<sup>१२</sup> ॥ ४ ॥

—डुरतावी

सांगों धरम सहाय, दाबर नूं मिड़ियो देह ॥  
अकबर कदमां आय, पडे न राण प्रतापसी ॥  
अकबर कने अनेक, नम नम नीसरिया कृपति ॥  
अनमी रहियो एक, पुहनी राण प्रतापसी ॥  
हलदीवाटी हरील, धमंड चमारण अरि पडा ॥  
वारण करण अडोल पहुँच्यो राण प्रतापसी ॥  
दुविवा अकबर देह, जिम विव हूं बायल करे ॥  
धमंग ऊपर पैल, पाखर राण प्रतापसी ॥

—विश्वविहारी<sup>१३</sup>

भाषा का यह अन्तर इतना स्पष्ट है कि इन मन्त्रों में अधिक दोका-टिप्पणी व्यर्थ है।

ङिगल कविता के सैकड़ों प्राचीन निबन्ध नंग्रह-ग्रन्थ हमार देलने में आये हैं। इनमें से कुछ में डुरतावी आड़ा के पुठकर गीत, कवित (छन्द), मूलका इत्यादि पढ़ने की मिले पर विश्वविहारी के दोहे कहीं दिखाई नहीं दिवें। सिर्फ २० वीं शताब्दी के दो-एक हस्तलेखों में ये दोहे देखे गये जिन्हे विदित होता है कि विश्वविहारी इन्हीं पुरानी रचना नहीं हैं जिनकी कि वह मानी जा रही है।

११. बबनिका राठीइ रतनविहारी से महेस्वामीदरी, पृष्ठ ४ (मुद्रिका)।

१२. बाबुर मूरसिह देखावर; महाराणा बटवारा, पृ० १४३-१४४।

१३. पृ० ४, ६, ३ और १०।

सारांश, यह कि विरुद्धिहत्तरी न तो मुगल सम्राट अकबर अथवा महाराणा प्रताप के समय की रचना है और न यह दुरसाजी आढ़ा की लिखी हुई है। सम्बत् १६०० के बाद किसी समय किसी दूसरे व्यक्ति ने इसे लिखा है <sup>14</sup> और प्राचीन वताने

के अभिप्राय से दुरसाजी का नाम इसके अन्तिम दोहे में जोड़ दिया है:—

कवि प्रार्थना कीन, पंडित हूँ न प्रवीणपद ।  
दुरसो आढो दीन, प्रभु तुव शरण प्रतापसी <sup>15</sup> ॥



.....The historians of Akbar, dazzled by the commanding talents and unlimited means which enabled him to gratify his soaring ambition, seldom have a word of sympathy to spare for the gallant foes whose misery made his triumph possible. Yet they too, men and women, are worthy of remembrance. The vanquished, it may be, were greater than the victor.

Vincent A Smith.

---

१४ सम्बत् १६६६ में स्वर्गीय ठाकुर भूरसिंह शेखावत का 'महाराणा यशप्रकाश' ग्रन्थ छपा था। इसमें विरुद्धिहत्तरी पूरी की पूरी प्रकाशित हुई है। इसी समय कोई व्यक्ति इस रचना को लिखकर सामने लाया जान पड़ता है।

१५. विरुद्धिहत्तरी ; पृष्ठ १६ ।

# कर्मवीर भामाशाह

—बलवन्तसिंह महत्ता

महाराणा प्रताप के प्रधान मन्त्री वीर भामाशाह का प्रथम उल्लेख समकालीन ग्रन्थ कवि हेमरत्नसूरि<sup>१</sup> कृत "गोरा बादल कथा पद्मनी चउपई"<sup>२</sup> की प्रशस्ति में मिलता है, वह इस प्रकार है:—

पृथ्वी परगट राणा प्रताप ।

प्रतपइ दिन दिन अधिक प्रताप ॥

तस मन्त्रीसर बुद्धि निधान ।

कावडिया कुल तिलक निधान<sup>३</sup> ॥

सामि धरमि धुरि भामुसाह ।

वयरी वस विधुसण राह ॥

तपु लघुभाई ताराचन्द ।

अवनि जाणि अवतरिउ इन्द्र ॥

धूय जिम अविचल पालइ घरा ।

शत्रु सह कीधा पाधरा ॥

तसु आदेश लही सुभ भाई ।

सभा सहित पांमी सुपसाई ॥

वात रची ए बादल तणी ।

सांमि धरमि ए सोहामणी ॥

भामाशाह का जन्म वि० सं० १६०४

आषाढ शुक्ला १० सोमवार तदनुसार २८ जून, १५४७ ई० को हुआ माना जाता है। इसके अनुसार भामाशाह महाराणा प्रताप से सात वर्ष छोटा था। भामाशाह की मृत्यु महाराणा प्रताप से तीन वर्ष बाद माघ शुक्ला ११, १६५६ विक्रमी को हुई, जब वह ५१ वर्ष का था<sup>४</sup>। महाराणा अमरसिंह ने गंगोद्भव तीर्थ [ मेवाड--राजघराने का दाह संस्कार स्थल ] में स्वयं के लिए निर्धारित स्थान के निकट भामाशाह का दाह संस्कार कराया और छत्री बनाने की आज्ञा दी। इस सम्मानपूर्ण कार्य द्वारा वीर भामाशाह को उसके द्वारा मेवाड के राजवंश के लिये की गई उत्कट सेवाओं के लिये श्रद्धांजलि अर्पित की गई<sup>५</sup>।

१. हेम रत्नसूरि समकालीन अयाचक विद्वान साधु थे। भामाशाह के भाई ताराचन्द ने इनसे आल्हा-उदल के ढंग पर गोरा-बादल और पद्मिनी चरित्र लिखवाया था। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६४५ के आषाढ शुक्ला ५ को सादड़ी में की गई, जहाँ पर प्रताप की ओर से प्रशासक नियुक्त था।
२. इस ग्रन्थ का प्रकाशन हाल ही में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ने किया है।
३. भामा बावनी खुम्माण रासो आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी भामाशाह का कावडिया कुल में उत्पन्न भारमल का पुत्र होना लिखा है।
४. वीर विनोद भाग २ पृ० २५१
५. गंगोद्भव, आयड़ (उदयपुर) में महाराणाओं के दाह संस्कार-स्थल में भामाशाह की छतरी विद्यमान है।

भामाशाह जैन धर्मानुयायी कावेडिया गौत्र का ओसवाल महाजन था । श्री अग्रचन्द नाहटा ने १६ वीं शताब्दी की दो पट्टावलियां प्रकाशित कराई हैं जिनके अनुसार वि० सं० १६१६ में उसका पिता भारमल चित्तौड़ में विद्यमान था जो पहिले तपागच्छ का अनुयायी रहा, बाद में उसने देवागर से प्रभावित होकर नागोरी लोकागच्छ को स्वीकार कर लिया था । इनसे भारमल के परिवार के धनी बनने का वृत्तान्त भी मिलता है<sup>६</sup> । भारमल को महाराणा सांगा ने अलवर से बुलाकर अपने पुत्र विक्रमादित्य की सुरक्षा का उत्तरदायित्व देकर रणयभोर दुर्ग की किलेदारी प्रदान की थी<sup>७</sup> । महाराणा उदयसिंह ने वि० सं० १६१० में भारमल

को अपना सामन्त बनाकर एक लाख का पट्टा दिया था । चित्तौड़ की तलहटी में पाडन पोल के पास इनकी हस्तिशाला थी और किले पर महलों के सामने तोपखाने के पास उनकी बड़ी हवेली थी । इससे महाराणा उदयसिंह के काल में इस परिवार की उच्च प्रतिष्ठा एवं स्थिति का प्रमाण मिलता है ।

उदयपुर में भामाशाह महलों के पास गोकुल-चन्द्रमाजी के मन्दिर के निकट रहते थे जो स्थान दीवानजी की पोल के नाम से प्रसिद्ध हुआ । महाराणा प्रताप के काल में जावर एक महत्वपूर्ण सुरक्षा-स्थल रहा माना जाता है । वहाँ मोती-वाजार के निकट भामाशाह की हवेली थी ऐसी

६. ॥ ॐ शिव ॥ सं० १६१६ चित्रकूट महादुर्ग कावेडिया  
नन्दनो भारमल्लो धनी तपागणीयो ऽ भूत । तेन देवागर  
सूरिणाममिधानं युद्ध क्रियाधारक त्वं चाश्रुतं तदादित इव  
तदगुण रंजित चेतस्कोऽवदत् . . . . . इति भाव तथा  
शुद्धात्मा भारमल्ल ताम्भिन्न वसरे, तत्रे त्या भोमा  
नामा नाहटोऽस्ति तद्गृहेषु पुण्य योगादक्षिणावर्तः शंख  
प्रादुर्भूत तत्तमान्निध्यात गृहे अष्टादशकोट्यो धनस्य प्रकटी भवति ॥

— ... — ... —  
भामा कोऽवदत् कर्णे भो । समय सम्बन्धिन् मम पुत्री  
तव च पुत्रो भविष्यति तयो सम्बंध कर्तुं श्री फल स्थाने इदमदभुत  
महात्म्यं शंखं ददामि, इत्यनित्तच्य समुत्पन्न परमामोदो बहुत दान  
मान पूर्ववम गृहीतं<sup>१</sup> भारमल्लः गृहकोष्ठ कान्तः समभ्यर्च्य समयक  
चन्दन चतुष्कि कोपरि सस्मृतो देवस्ते नाष्ट दशकोटि धन तत्र<sup>२</sup> प्रकटित कृतं ।

७. वीर विनोद भाग २, पृ० २५२ । मेवाड़ के इतिहास में ओसवाल परिवार के लोगों को किलेदारी का उत्तरदायित्व दिया जाता रहा है । ऐसे सुप्रसिद्ध किलेदारों में रणयभोर का भारमल, कुम्भलगढ का आशाशाह, चित्तौड़गढ का महता चीत, प्रताप के समय में कुम्भलगढ का महता नरवद; माण्डलगढ़ का महता अग्रचन्द प्रमुख हुए हैं ।

मान्यता रही है । जावरमाता का विशाल मन्दिर<sup>८</sup> भी भामाशाह द्वारा निर्मित माना जाता है ।

भामाशाह के प्रारम्भिक जीवन के संबंध में कुछ ज्ञात नहीं होता । यह संभव है कि महाराणा उदयसिंह द्वारा चित्तौड़-त्याग के साथ यह परिवार भी उसके साथ पहाड़ों में चला गया हो । उस काल में भामाशाह ने पर्वतीय जीवन का अच्छा अनुभव प्राप्त किया । ऐतिहासिक दृष्टि से भामाशाह का प्रथम उल्लेख हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप की सेना के हरावल के दाहिने भाग में युद्ध करने का मिलता है । उसके साथ उसका भाई ताराचन्द भी था । युद्ध के प्रारम्भ में प्रताप के हरावल ने बादशाही सेना को जो शिकस्त दी, वह प्रसिद्धि है । भामाशाह और उसका भाई हल्दीघाटी के युद्ध से बच गये ।

हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात् महाराणा प्रताप ने मुगल बादशाह के खिलाफ एक दीर्घकालीन कठिन पर्वतीय युद्ध का प्रारम्भ किया, जो लगभग बारह वर्षों तक अनवरत रूप से चला । इस संघर्ष में प्रताप के अविचल एवं वफादार सहयोगी के रूप में भामाशाह इतिहास में प्रसिद्ध

हो गया है । इसी संघर्ष के दौरान में वह एक अच्छे योद्धा एवं रणनीतिज्ञ तथा कुशल प्रशासक एवं संगठक के रूप में प्रकाशित हुआ । यही कारण था कि कुछ वर्षों बाद ही राम महासाणी के स्थान पर महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया । इस घटना के संबंध में निम्न कहावत प्रसिद्ध हुई:—

भामो परधानो करे, रामो कीदो रद्द ।  
घरची बाहर करण नूँ, मिलियो आय मरद्द ॥

प्रताप के दीर्घकालीन युद्ध की कई महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ भामाशाह का नाम जुड़ा हुआ है । भामाशाह ने मेवाड़ की सैन्य दुकड़ियों का नेतृत्व करते हुए स्वतन्त्र रूप से कई बार शाही इलाकों पर आक्रमण किये और लूटपाट कर मेवाड़ के स्वातन्त्र्य संघर्ष के लिये धन प्राप्त किया । ये आक्रमण गुजरात, मालवा और उत्तर मेवाड़ के सरहद के इलाकों मालपुरा आदि में होते थे । आमेर का मानसिंह जब मेवाड़ में शाही थाने स्थापित कर रहा था उस समय कुँवर अमरसिंह के साथ भामाशाह मालपुरे की लूट में लगा हुआ था । वि० सं० १६३५ का

८. जावरमाता का मन्दिर सबसे पहिले वसन्तगढ़ निवासी जेतक ने महाजनो के निगम की आज्ञा से वि० सं० ७०३ में मेवाड़ के राजा शिलादित्य के समय में बनाया था । उस समय यह स्थान उद्योग और व्यापार का बड़ा केन्द्र था और दूर दूर से आये हुए महाजन यहाँ रहते थे । [ सामोली के शिलालेख के आधार पर ]

महाराणा रायमल के काल में मालवे के बादशाह द्वारा इस मन्दिर का विध्वंस कर दिया गया था । भामाशाह ने इसका पुनर्निर्माण कराया हो । वि० सं० १६५० का शिलालेख मन्दिर में मौजूद है ।

भामाशाह का मालवे का घावा सुप्रसिद्ध है । चूलिया में महाराणा प्रताप को भामाशाह ने जो पच्चीस लाख रुपये तथा बीस हजार शराफियाँ भेंट की, वह इसी का परिणाम था ।

दिवेर की घाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप की सेना ने मुगल फौजों को बुरी तरह परास्त किया । डा० कासिका रंजन कानूनगो ने लिखा है कि इस महत्वपूर्ण युद्ध में चूण्डावतो और शक्तावतो के साथ भामाशाह ने प्रमुख भाग अदा किया था<sup>९</sup> । खुम्माण रासो के अनुसार महाराणा अमरसिंह के काल में भामाशाह—अहमदाबाद से दो करोड़ का घन लेकर आया था<sup>१०</sup> ।

महाराणा प्रताप के प्रधान होने के नाते उसने प्रशासन की व्यवस्था, सैन्य संगठन, युद्धनीति और आक्रमणों की योजना आदि में भामाशाह ने प्रमुख हिस्सा लिया होगा । यह निसन्देह है और इससे भामाशाह की योग्यता और कुशलता का तथा उसकी सेवाओं एवं उपलब्धियों का आभास मिलता है । महाराणा प्रताप के ताम्रपत्रों-परवानों आदि पर भामाशाह का उल्लेख मिलता है ।

बादशाह ने अपनी भेद नीति के द्वारा न केवल राजपूतों को एक दूसरे के विरुद्ध करके अपने दरबार में उच्च पद, मंसब आदि देकर रखा था,

वर्तक राजपूत राज्यों के आंतरिक प्रशासन का कार्य करने वाले अधिकारियों को भी वह मुगल दरबार में प्रतिष्ठा देता था । ओसवाल जाति के बच्छावत कर्मचन्द को, जो पहिले बीकानेर का प्रधान रहा था, दरबार में बैठक देना इस बात का उदाहरण है । भामाशाह को इसी भाँति महाराणा प्रताप से अलग करने का प्रयत्न किया गया । अकबर के द्वारा इस उद्देश्य से भेजे गये चतुर कूटनीतिज्ञ अब्दुर रहीम खान खाना ने भामाशाह से मुलाकात की और उसकी प्रलोभन आदि देकर बादशाह की सेवा में आने को कहा । यह बात उस समय हुई जब कि महाराणा प्रताप संकटपूर्ण आर्थिक एवं सैनिक स्थिति में जीवन और मृत्यु का संघर्ष कर रहे थे । भामाशाह द्वारा ऐश्वर्यपूर्ण जीवन के प्रलोभन को ठुकराता और स्वाभिमान एवं सच्चाई का संकटपूर्ण जीवन स्वीकार करना उसके उज्ज्वल चरित्र का प्रमाण है ।

भामाशाह ने महाराणा प्रताप और महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल में जिस कुशलता और राज्यभक्ति के साथ प्रधान का कार्य किया उससे भामाशाह को तो प्रतिष्ठा और विश्वास मिला तथा उसके घर में तीन पुत्र तक तीन महाराणाओं का प्रधान पद रहा । वास्तव में वह वस्तुपाल, तेजपाल जैसा जो अन्हिलवाड़ा के सोलंकी राजाओं

९. K. R. Qanungo : Studies in Rajput History P. 52

१०. कपड़ पीया कापड़ा, लीघो घन दो कोड़ ।

साथ समान कियो सहु, समा कीया सजोड़ ॥

अहमदाबाद सु नामो साह । अमर पास आयो उछाह ॥

के प्रधान थे और जिन्होंने आवू पर जैन मन्दिर बनवाये, पराक्रमी और नामवर या । भामाशाह के लिये यह प्रसिद्ध है कि उसने मरने से पहिले अपनी पत्नी को एक बही दी, जिसमे मेवाड के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ था और कहा सकट के समय यह बही महाराणा के नज़र करना । इस खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक खर्च चलता रहा<sup>11</sup> ।

जनश्रुति के आधार पर भामाशाह के संबंध में एक मान्यता चली आती है । जब महाराणा प्रताप अत्यन्त सँकट में पड़े और राज्य के सभी आर्थिक साधन समाप्त होने से स्वदेश छोड़ कर अन्यत्र जाने लगे तो भामाशाह ने बहुत बड़ी संपत्ति लाकर प्रताप को भेंट की जिससे पच्चीस हजार सेना का १२ वर्ष तक निर्वाह हो सकता था<sup>12</sup> । श्री गौ० ही० ओझा इस बात को कल्पित कथा मान कर लिखते हैं कि भामाशाह और उनका पिता भारमल उदयपुर राज्य के मच्चे स्वामिभक्त, सेवक थे । भामाशाह ने राज्य के खजाने की सुव्यवस्था रखी । किन्तु महाराणा प्रताप के पास धन की कमी होने की बात सही प्रतीत नहीं होती । भामाशाह राज्य की सम्पत्ति को सुरक्षित स्थानों में

गुप्त रूप से रखवाता था, जिसका ब्यौरा वह एक बही में रखता था । वही वही उसने अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी स्त्री को दी<sup>13</sup> । श्री कानूनगो भामाशाह द्वारा भेंट की गई सम्पत्ति को अपने सैनिक अभियान द्वारा लूट कर लाई गई सम्पत्ति मानते हैं ।<sup>14</sup> स्पष्ट ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में इस सम्बन्ध में सही स्थिति प्रकट करना कठिन है । किवदंती का आधार यदि भामाशाह का त्याग है, जिसके लिये भामाशाह की इतिहास में प्रसिद्धि हुई है, तो यह भी असंभव नहीं प्रतीत होता कि धनी परिवार का होने से स्वयं प्रताप के साथ त्याग एवं बलिदान का जीवन व्यतीत करने वाले भामाशाह ने अपनी पारिवारिक संपत्ति को भी स्वतन्त्रता के निमित्त प्रताप को भेंट की हो ।

कानूनगो भामाशाह की प्रशंसा में लिखते हैं कि उसका नाम सम्पूर्ण राजपूताना में उतने ही श्रद्धा और आदर से लिया जाता है, जितना कि महाराणा प्रताप का । भामाशाह न तो नेताजी पात्कर था और न नाना फडनवीस ।<sup>15</sup> श्यामलदास ने भामाशाह के पराक्रम और नाम की तुलना अन्हिलवाडा के सुप्रसिद्ध प्रधान वस्तपाल, तेजपाल से की है ।

११. वीर विनोद भाग २, पृष्ठ २५१-२५२

१२. कर्नल जेम्स टॉड कृत राजस्थान का इतिहास भाग प्रथम

१३. ओझा - उदयपुर का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ ४६३

१४. K. R. Qanungo : Studies in Rajput History P. 52

१५. वही । नेताजी पात्कर शिवाजी का विश्वस्त भाथी था जिसको औरंगजेब ने प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया था । नाना फडनवीस एक प्रसिद्ध मराठा कूटनीतिज्ञ और देशभक्त हुआ है किन्तु उसने सार्वजनिक धन का अपने स्वार्थ के लिये दुरुपयोग किया ।



कविवर लोचन प्रसाद पांडे ने भामाशाह को भाव भीनी श्रद्धांजली देते हुए कहा है: —

पूजा के योग्य तू है, वणिक, सजीव श्री शक्ति की मूर्ति तू है ।  
हे अहा धन्य तेरा वह धन, जननि भक्ति की मूर्ति तू है ॥  
तुझसे स्वाभिमान चतुर मंत्री, वर आत्म त्यागी वीर ।  
भारत में क्या दुर्लभ है, इस वसुधा में भी धार्मिक वीर ॥



महाराणा प्रताप की वीरता उस भावना की  
प्रतीक है जिससे अधीन जातियाँ अन्यायियों की सत्ता  
के विरुद्ध वगावत करती हैं और मनुष्य जुल्मों के आगे  
गर्दन झुकाने से इन्कार कर देता है ।

—कविवर रामधारीसिंह 'दिनकर'

# अरावली पहाड़ों का सामरिक महत्व

—जमनालाल दशोरा

## अरावली की स्थिति एवं बनावट:—

पृथ्वी के इतिहास में आदिकाल में निर्मित अरावली आडाअवला या अरडावन्निया पहाड़ों के नाम से पुकारे जाते हैं। ये पहाड़ भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रान्त राजस्थान के बीचों-बीच दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व तक ४३० मील लम्बे फैले हुए हैं और राजस्थान के बाहर दिल्ली तक चले गये हैं। इस प्रकार समग्र अरावली पहाड़ों की लम्बाई कच्छ की खाड़ी से दिल्ली तक करीब ७०० मील है। इनकी ऊँचाई दक्षिण में आबू के पास ५६१५' है लेकिन उत्तर में जाते जाते घटकर १०००' तक रह जाती है। ये एक विशिष्ट प्रकार के जल विभाजक का काम करते हैं। इन पहाड़ों से कई नदियाँ निकल कर पूर्व और पश्चिम दिशाओं में बहती हैं। अरावली पहाड़ दक्षिण में १५० मील तक चौड़े होकर दो शाखाओं में बंट जाते हैं एक शाखा राजस्थान के दक्षिण से उत्तर पूर्व की ओर चलकर अजमेर जिले में होती हुई टोरा, जयपुर, झुंझनू और अलवर जिलों में होती हुई दिल्ली तक चली गयी है। दूसरी शाखा वांसवाडा, चित्तौड़, कोटा, और बून्दी जिलों में होती हुई अजमेर के पास पहली शाखा से मिल जाती है। इन के बीच-बीच मेवाड़, उपरमाल और हाडोती के पठार बन गये हैं जो समुद्र की सतह से २००० फीट से अधिक ऊँचे हैं।

अरावली पहाड़ राजस्थान की प्राकृतिक बनावट के मुख्य अंग हैं तथा वे इस प्रदेश को दो भागों में विभक्त करते हैं। इसके पश्चिम में विस्तृत थार का मरुस्थल राजस्थान का २/३ भाग घेरे हुए है। ये पहाड़ इस मरुस्थल को आगे नहीं बढ़ने देते हैं। इन पहाड़ों में विध्याचल के बराबर सघन और आर्थिक महत्व के वन तो नहीं पाये जाते हैं लेकिन इनकी प्राचीन चट्टानों में लोहा, जस्ता, शीशा, ताम्बा, अभ्रक, संगमरमर, एस्बेस्टस आदि कई खनिजों के भंडार पाये जाते हैं। ये पहाड़ हजारों वर्षों से आदिवासी भीलो, गरासियों और भीरों के निवास स्थल रहे हैं। इन पर सुरक्षा के लिये राजपूत काल में ६ठी से १६वीं शताब्दि के मध्य अनेकों दुर्गों की संरचना हुई। १६वीं-१७वीं शताब्दि में ये पहाड़ महाराणा उदयसिंह, प्रतापसिंह और राजसिंह के लिये अच्छे सैन्य संचालन स्थल और सुरक्षा के स्थान रहे।

## ऐतिहासिक भूमिका:—

पर्वतमालाओं का मानव इतिहास में व्यापक सामरिक एवं राजनैतिक महत्व रहा है। युद्ध-रत सैनिकों ने संकटकाल में पहाड़ों का सुरक्षात्मक उपयोग किया है। भारत के इतिहास में अरावली पहाड़ सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक स्थान रहे हैं और इन पहाड़ों की चोटियों, घाटियों

भरनो और दरों का वर्णन इतिहास में यत्र-तत्र बड़े रोचक ढंग से अंकित हुआ है। यह पर्वत-माला संकटकाल में युद्ध-रत योद्धाओं के लिये सैन्य संगठन करने और एकाएक आक्रमण करके पुनः पहाड़ों में छिप जाने वाली गुरिल्ला युद्ध नीति के लिये बहुत ही उपयुक्त और महत्वपूर्ण आधार रहे हैं। किन्तु ये पहाड़ शान्तिकाल में मानव के लिये आनन्ददायक प्राकृतिक सौंदर्य-स्थल तथा मौन और एकाकी साधना करने वाले योगियों के लिये उपयोगी स्थल भी रहे हैं।

राजनैतिक सीमा-विभाजन की दृष्टि से भारत के इतिहास में विंध्याचल पर्वतमाला की भांति अरावली पर्वतमाला का बड़ा महत्व रहा है। इस पर्वतमाला द्वारा राजस्थान प्रदेश के पूर्वी एवं पश्चिमी भागों में विभक्त होने से भिन्न भिन्न शक्तियाँ जन्म लेती रही। मध्यकाल में पश्चिम में मारवाड़ में प्रधानतः राठोड़ों और पूर्व में मेवाड़ में मिसोदिया राजपूतों का आधिपत्य रहा। थार के रेगिस्तान एवं इस पर्वतमाला के कारण उत्तर के आक्रमणकारी प्रायः पूर्व की ओर अथवा पश्चिम की ओर मुड़ जाते थे। दक्षिण-विजय की प्रस्थान करने वाले दिल्ली के बादशाह भी पर्वतीय भाग के विस्तृत प्रदेश को प्रायः अछूता छोड़ जाते थे। दक्षिण की ओर ऐतिहासिक दृष्टि से इस पर्वतीयमाला ने राजस्थान और गुजरात प्रदेशों के बीच विभाजन रेखा का कार्य किया है। पहाड़ों में सुरक्षा की दृष्टि से घने वन, उंची घाटियों और गुफाओं के स्थल बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। ये स्थल सदा से वनीय

जन्तुओं के निवास स्थान रहे हैं। आत्म रक्षा की दृष्टि से मानव ने इन स्थलों में प्रवेश किया। मैदानी इलाकों की भांति जब तीर, तलवार और बल्लभ पर्वतों में भी चलने लगे तो ऊँचे २ पर्वतों पर दुर्गों का निर्माण शुरू हुआ और पर्वतीय इलाकों की सुरक्षा की दृष्टि से नवीन सामरिक व्यवस्था एवं रीति-नीति का जन्म हुआ। इस प्रकार की दुर्ग-संरचना के क्रम में अरावली पहाड़ों पर कई दुर्गों का निर्माण हुआ जिनमें दिल्ली, वयाना, राजगढ़, भुंभनू, आमेर, तारागढ़, (अजमेर), उठाला, देवगढ़, कुंभलगढ़, कोटडा, मांडलगढ़, भंसरोड़गढ़, बूंदी, हम्मीरगढ़, जहाजपुर, मँडोर, सिरौही, सिवाना, जालोर, अचलगढ़ (आबू) जोधपुर, गलियाकोट, देवालिया, प्रतापगढ़, कुशलगढ़, श्रीगङ्गी, बांसवाड़ा आदि किले बने। इसी प्रकार राजस्थान में विंध्याचल के ढालों पर घोलपुर, रणथम्भोर, कुम्हेर, भंसरोड़गढ़, चित्तोड़, इन्द्रगढ़, उंटगढ़ आदि किलों का निर्माण हुआ। इन किलों की उपादेयता एवं उपयोगिता वर्षों तक उनके अजेय रहने पर प्रकट होती रही। राजस्थान के चित्तोड़गढ़, रणथम्भोर आदि किले अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण तक अजेय रहे। भरतपुर का किला तो अंग्रेजों की गगनमेदी तोपों के सामने भी अजेय रहा।

### सामरिक महत्वः--

इस भाँति पर्वतमाला तथा उन पर स्थित दुर्ग सामरिक दृष्टि से कई प्रकार से उपयोगी सिद्ध होते थे।

१. घोड़े हाथियों आदि पर सवार होकर आक्रमण करने वाले लोगो के लिये अज्ञात एवं दुर्गम घाटियों को पार करना बड़ा कठिन होता था तथा आक्रमणकारियों को गुप्त पर्वतीय स्थलो से होने वाले तीरो, पत्थरो आदि के प्रहारों से भयानक विनाश का सामना करना पड़ता था।

२. ऊँचाई के कारण दूर से आने वाले शत्रु आसानी से दिखाई पड़ जाते और उनकी गतिविधियों की जानकारी रखना सरल होता था।

३. आक्रमणकारी के तीर और बन्दूको की गोलिया किले में रहने वाले सैनिकों का उतना विनाश नहीं कर पाती थी, जितना कि पर्वत की चोटी पर बने किले के परकोटे में रहने वाले लोग बुर्जों, सहतीरो से तीरो, बन्दूको एवं पत्थरो से आक्रमणकारियों का विनाश करते थे।

४. किले घिर जाने पर किले के अन्दर कई दिनों के रसद और पानी का प्रबंध होने के कारण किले के अन्दर से एवं बाहर से शत्रु पर अचानक आक्रमण कर भाग जाने वाली युद्ध-नीति से आक्रमणकारियों को त्रस्त किया जाता था एवं उस इलाके से आवश्यक रसद आदि प्राप्त करना भी कठिन कर दिया जाता था।

५. सकरे पर्वतीय मार्गों, दर्रे को प्रायः द्वार बनाकर बंद कर दिये जाते थे। वहाँ दोनों ओर पहाड़ों की चोटियों पर चौकियों के लिये सैनिक रहते थे, जिससे हमलावर लोगो को सकरे मार्ग में होकर जाने में कठिनाईया रहती थी और कई बार दर्रे पार करते करते ही उनकी बहुत सी

फौजें काट दी जाती थी। महाराणा प्रताप, महाराणा रानसिंह आदि के काल में जब जब मुगल सेनाओं ने मेवाड़ पर आक्रमण किया, उन्हें धांगडमऊ, मुंकदडा, देवारी, चीरवा, ऊंदरी के घाटो या देसूरी एवं राणकपुर की नाल या हल्दी-घाटी से होकर प्रवेश करना पड़ता था। इन संकरे पर्वतीय मार्गों में उनको भारी विनाश का शिकार होना पड़ता था। ऐसा कहते हैं वर्तमान जयसमुद्र का निर्माण भी संकरे पहाड़ी मार्ग को रोकने के लिये किया गया। इसके पानी को पार कर शत्रु सेना के लिये दूसरे किनारे के इलाके पर आक्रमण करने में भी बड़ी बाधा आती थी। इसी सुरक्षा की दृष्टि से पिछोला भील के किनारे उदयपुर के राजमहल बनाये गये तथा उदयपुर नगर बगया गया।

६ अरावली पहाड़ के दक्षिण-पूर्व के मगरा, छप्पन, भोमट, मेवल, कांठल, वागड आदि इलाको के सघन वनो तथा चित्तौड़, बूंदी, कोटा, सवाई माधोपुर और भीलवाड़ा के पहाड़ों में पाये जाने वाले सघन वनो में उत्तरी भारत के समतल मैदानों के रहने वाले आक्रमणकारी सदैव असफल रहे। इन पहाड़ी इलाको में विपत्ति के समय रहने पर खाने के लिये जंगली अनाज और जंगली जानवरो का शिकार उपलब्ध हो सकता है।

७ सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इन पहाड़ों के विषम वातावरण में स्वच्छद निवास करने वाली और पहाड़ी मार्गों से परिचित युद्धप्रिय आदिम जातिया निवास करती हैं जिनका सहयोग जब कभी किसी राजा को प्राप्त हुआ उसको

पराजित करना प्रबल से प्रबल शत्रु के लिये असाध्य होगया । इसके अलावा प्राकृतिक जीव और मले-रिया आदि बीमारियाँ आदि भी बाहर से आने वाले लोगो के लिये घातक प्रमाणित होती थी । इस प्रकार अरावली पहाड़ों में निवास करने वाले लोगो पर आक्रमण करना प्रायः उतना ही दुर्घर्ष और संकटप्रद था जितना कि शेर की गुफा में प्रवेश कर उसे छेड़ना । साथ ही इन वनवासियों से शस्त्र, भोजन, वस्त्र और आवास के साधन प्राप्त हो जाते थे जो आक्रमणकारी के लिये दुर्लभ होते थे ।

### अरावली के प्रसिद्ध दुर्गः—

अरावली पर्वतमाला के विस्तृत क्षेत्र में निर्मित कई दुर्ग इतिहास-प्रसिद्ध रहे हैं । मेवाड़ और हाडीती, अजमेर और आमेर के दुर्गों का निर्माण इन्हीं पहाड़ों पर हुआ है । इन पर्वतमालाओं का महत्व मेवाड़ के इतिहास में महाराणा सांगा से राजासिंह तक अत्यधिक रहा है । महाराणा प्रताप का तो समग्रजीवन ही अरावली पहाड़ों में कटा था । यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि महाराणा प्रताप और अरावली पहाड़ एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये थे ।

अरावली पहाड़ों पर दुर्ग बनाने का अधिकांश कार्य राजपूतों द्वारा किया गया है । परिहार, परमार, चौहान, सिसोदिया, राठोड़, कछवाहा और भाटी राजपूतों ने चित्तौड़, आबू, स्वर्णगिरि (जालोर) तारागढ़, रणथम्भोर, कुंभलगढ़, भटनेर, सिवाना, मांडलगढ़, बयाना, मलियाकोट, आमेर, जैसलमेर, मण्डोर और जोधपुर के किले बनाये ।

जाटों ने धौलपुर, भरतपुर, डीगके किले बनाये । इस प्रकार इन सब दुर्गों को देखने पर ज्ञात होता है कि सबसे अधिक किलो के बनाने का काम ६वीं से १६वीं शताब्दि के मध्य हुआ । इस काल में अरावली पहाड़ों पर छोटे बड़े १०० से भी अधिक किले बनाये गये । इनमें सबसे अधिक किले और इमारतें बनाने का काम महाराणा कुम्भा ने किया । उन्होंने अपने जीवन काल में ८० किले और कई इमारतें बनायी ।

इतिहास में कई शताब्दियों तक सुदृढ़ दुर्गों ने आक्रान्ताओं से रक्षा करने का कार्य सफलतापूर्वक किया । मध्यकाल में बारूद के आविष्कार के साथ दुर्गों की अश्वेद्यता टूट गई । अलाऊद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ और रणथम्भोर दुर्गों का ध्वंस इसका प्रारम्भ था । अरावली के अन्दर के घने भागों के दुर्गों का महत्व फिर भी बना रहा ।

### अरावली और प्रतापः—

१५६७ ई० के चित्तौड़-पतन के बाद अरावली पर्वतमाला का सामरिक दृष्टि से नवीन तरह से उपयोग किया गया । महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ की असमर्थता का ख्याल करके अरावली के घने भागों में चले गये । उन्होंने चारों ओर दुर्गम पर्वतीय श्रेणियों से घिरी वर्तमान उदयपुर घाटी को अपना केन्द्रस्थल बनाना निश्चित किया ।

निरन्तर मुगल आक्रमणों के आगे महाराणा प्रताप को उदयपुर की घाटी भी त्यागना पड़ा, क्योंकि इस घाटी में प्रवेश के लिये उत्तर और पूर्व दिशाओं में अपेक्षाकृत सरल मार्ग हैं । गोगूँदा

स्थान का चुनाव भी प्रताप को शीघ्र ही छोड़ना पड़ा, क्योंकि देसूरी और हल्दीघाटी के मार्गों ने प्रताप पर मुगल सेना का बराबर दबाव पड़ता रहा। अन्त में प्रताप अरावली के अत्यधिक विकट भागों में चले गये। छप्पन का पर्वतीय भाग प्रताप के लिये स्थायी सुरक्षा-स्थल बन गया। उससे लगी हुई दक्षिण-पूर्व की ओर की चान्द की घाटी को प्रताप ने अपना राजनैतिक एवं सामरिक कार्य-स्थल ( राजधानी ) बनाया।

चान्द का स्थान सामरिक दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। इस स्थान पर आक्रमण करना शत्रु के लिये दुस्तर कार्य था। आक्रमण होने पर निकट के दुर्गम एवं वनीय पर्वतों में गायब होना आसान रहता था। इसके अलावा इस स्थान से निकल कर समय समय पर मालवा, गुजरात और गोंडवाड इलाकों में आक्रमण कर लूटपाट मचाना तथा लूट कर पहाड़ों में छिप जाना बड़ा सरल रहता था। इसी स्थान से प्रताप और उसके सेनापतियों ने कई बार मुगल प्रदेशों पर सफल आक्रमण किये, मुगल सेनाओं का विनाश किया और धन एवं साधन प्राप्त किये। प्रताप

ने इसी समय सफल 'छापामार' युद्ध नीति का संगठन एवं संचालन किया। जिसके लिये वे इतिहास-प्रसिद्ध हो गये हैं। इसी नीति का बाद में शिवाजी ने प्रयोग किया।

इस संकट-काल में प्रताप और उसके साथियों के परिजन भीलों के सहारे छप्पन के विकट एवं दुर्गम पर्वतों में रहते थे। सम्भवत मेवाड़ राज्य के सभी प्रकार के साधन कोष आदि भी इस भाग में सुरक्षित रखे गये होंगे। कमलनाथ के पर्वत पर प्रताप का सपरिवार रहने की बात इस इलाके में प्रसिद्ध है और उस पर्वत पर आज भी कुछ खंडहर अवशिष्ट हैं, जहाँ प्रताप का परिवार रहता था।

अरावली के इस भाग में भ्रमण करने पर सर्वत्र प्रताप से सम्बंधित स्थान, खंडहर, स्मारक आदि दृष्टिगत होते हैं। इन सभी स्थानों के साथ प्रताप के जीवन की कोई न कोई घटना जुड़ी हुई है। इन इलाकों में प्रताप के सम्बन्ध में कई प्रकार की घटनाएँ एवं किंवदंतियाँ प्रचलित हैं जो प्रताप के जीवन एवं चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालती हैं।



# हिन्दी-काव्य और महाराणा प्रताप

—डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

हिन्दी-काव्य में भक्ति, शृंगार एवं वीरता की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इन प्रवृत्तियों में वीरता की प्रवृत्ति उसके साथ आदिकाल से ही जुड़ी हुई है। भक्तिकाल में यह प्रवृत्ति दिव्य चरित्रों का श्रंग बनी और रीतिकाल के शृंगारिक वातावरण में इसने देश और धर्म के लिए युद्ध-रत वीरों का साथ दिया। आधुनिक काल में इस प्रवृत्ति का विकास राष्ट्रीय भावना के रूप में हुआ जिसके फल-स्वरूप अनेक ओजस्वी चरित्र भारतीय मानस को प्रभावित करने में समर्थ हुए। हिन्दी-काव्य को समृद्ध बनाने वाली वीरता की इस प्रवृत्ति ने ही भारतीय इतिहास को महाराणा प्रताप का वह पवित्र तथा शौर्यपूर्ण चरित्र दिया, जिसके बिना महाराणा प्रताप का प्रताप वह प्रखरता न प्राप्त कर पाता जो आज उसे प्राप्त है, अस्तु।

हिन्दी-काव्य में महाराणा प्रताप संबंधी कविता की अलग एक धारणा हो बन गई है। उनके जीवन-काल से अब तक मुक्तक और प्रबन्ध की शैलियों में अनेक काव्य लिखे गए हैं। उन काव्यों की विषय और शिल्प की दृष्टि से ही नहीं जीवन-दर्शन की दृष्टि से भी अनेक मौलिक प्रवृत्तियाँ हैं, जिनका सम्यक् आकलन एक स्वतंत्र शोध-प्रबन्ध का विषय है।

ध्यान देने की बात है कि हिन्दी-काव्य की रचना डिगल, पिंगल, व्रज, अवधी, मैथिली और खड़ी बोली की छ भाषा-शैलियों में हुई है। आधुनिक काल तक आते आते ये शैलियाँ मिलकर एक हो गई हैं और भाषा-शैली की दृष्टि से हिन्दी-काव्य को एक-रूपता प्रदान करने में सफल हुई हैं।

इन छ भाषा-शैलियों में से राणा प्रताप-संबंधी काव्य-धारा का विकास केवल ४ में ही हुआ। अवधी और मैथिली में अब तक कोई स्वतंत्र काव्य देखने को नहीं मिला। डिगल और पिंगल राजस्थान की बोलियों की साहित्यिक काव्य-शैलियाँ थी। इनमें रचना करने वाले कवि प्रायः चारण और भाट थे, जो आश्रयदाता राजाओं का गुणगान करते थे। राणा प्रताप का अधिकांश जीवन युद्धों में व्यतीत हुआ था, अतः वे किसी भी अर्थों कवि को आकृष्ट नहीं कर सकते थे। केवल वे कवि ही उनके चरित्र पर काव्य-रचना कर सकते थे, जो किसी के दिव्य गुणों पर रीझ सकते हों या जिन्हें देश और समाज की रक्षा की चिंता हो। राजस्थान के इस महावीर राणा प्रताप के गुणों पर ऐसे अनेक कवि रीझे और उन्होंने डिगल शैली में एक ऐसी शाश्वत काव्य-धारा प्रवाहित की जो खड़ी बोली की शैली में विकसित राष्ट्रीय काव्य-धारा की गंगा में मिलकर एक तीर्थ के रूप में परिवर्तित हो गई।

इतिहास के मर्मज्ञ और हिन्दी साहित्य के भक्त डॉ० देवीलाल पालीवाल ने बहुत परिश्रम से अप्रकाशित रूप में उपलब्ध डिंगल के समस्त काव्य-मृजन का प्रकलन “प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप” नामक ग्रंथ में किया है। इस ग्रंथ को देखने से पता चलता है कि राणा प्रताप सबंधी काव्य की रचना हिन्दी में उनके समकालीन कवि पृथ्वीराज से ही प्रारम्भ हो गई थी। वही कवि था, जिसने घास की रोटी भी सैतान के हाथ से छिन जाने पर अकबरी साम्राज्य के आगे झुक जाने का निश्चय करने वाले राणा प्रताप को पत्र लिख कर सचेत किया था। फिर उन्होंने देश की बलिवेदी पर जिस गरिमा के साथ अपने आपको समर्पण किया, उसे भारतीय इतिहास भुला नहीं सकता। पृथ्वीराज की ये पंक्तियाँ उस इतिहास का महिमा-शिखर हैं—

जासी हाट बात रहसी जक  
अकबर ठग जासी एकार ।  
रह राखियो खत्री धर्म राणें  
सारा ले बरतो ससार ॥

डिंगल में पृथ्वीराज के स्वर में स्वर मिला कर जिन अन्य समकालीन कवियों ने राणा प्रताप के पावन चरित्र का गायन किया उनमें, दुरसा आढा पीरा आसिया, रामा साँदू, जाड़ा मेहदू, गोरघन बोगसा आदि के नाम प्रमुख हैं। ये वे कवि हैं, जिन्होंने किसी कामना से प्रताप का यश-गान किया था, अपितु उनके सामने राणा प्रताप के वे गुण थे जिनसे देश और जाति की रक्षा होती है। दुरसा आढा ने लिखा है—

आया प्रन भूपत आवाहण  
भुजंग भजग तज बल भंग, ।  
रहियौ राज खत्री धर्म राखण  
सेत उरग कलोघर संग ॥

रामा साँदू ने राणा प्रताप की वीरता पर रोझ कर केमल कविता ही नहीं की थी, अपितु आत्म-बलिदान भी किया था, जिनका कवि पृथ्वी-राज राठीड़ ने अपनी कविता में बड़े गौरव के साथ स्मरण किया है :—

चारण जाणो माय चारणा  
अवं समं विच नथ, अनथ,  
घरमां तणौ न वंठो घरणं  
रामौ वंठो रभ रथ ।

पृथ्वीराज राठीड़ का प्रताप के संबंध में निम्नांकित दोहा उसके समकालीन अन्य कवियों की भावनाओं को भी अपनी भावभूमि में समेटे हुए है :—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राणा प्रताप ।  
अकबर सूतौ ओभकै, जाण सिराणो साप ॥

इन पंक्तियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि अपने समकालीन हिन्दी काव्य पर ही राणा के पुण्य चरित्र का कितना गहरा प्रभाव था। राजाओं के आश्रय में रहने वाले कवियों ने अपने अपने आश्रयदाताओं का बड़े बड़े ग्रंथों में गुणगान किया है किन्तु वे सभी बड़े ग्रंथ इस एक दोहे की भाव-गरिमा पर तुल जाते हैं। पृथ्वीराज प्रताप के शत्रु के दरबार में रहे थे, अतः उनमें अधिक प्रताप के पराक्रम का अकबर पर पड़ने वाला प्रभाव अन्य कौन कवि जान सकता था ?



अकबरी दरबार के ही एक अन्य ब्रजभाषा कवि गंग भी महाराणा प्रताप की वीरता, देश-भक्ति एवं गरिमा से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने भी मुक्त कंठ से प्रताप के गुणों का वर्णन किया है।

प्रताप के समकालीन कवियों ने केवल मुक्तक कविताएं लिख कर ही प्रताप की प्रशंसा नहीं की अपितु प्रबन्ध कविता में भी उनके यश का गान किया था। माला सांदू ऐसे कवियों में प्रमुख है। उसने 'महाराणा प्रतापसिंहजी रा झूलणा' नामक प्रबन्ध कविता की रचना की। डिंगल के कुछ अन्य कवियों ने भी प्रताप के सबध में प्रबन्धनात्मक कविताएं लिखी। किशोरदास, दलपतिविजय एवं गिरधर आसिया के नाम ऐसे कवियों में गिनाए जा सकते हैं। गिरधर आसिया का 'सगत रासी' काव्य की उदात्त भाव-भूमि पर प्रताप की महिमा प्रस्तुत करता है।

ब्रजभाषा की शैली में राणा प्रताप का वर्णन स्वतंत्र प्रबन्ध के रूप में नहीं मिलता। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उसमें प्रताप-संबंधी स्वतंत्र काव्य लिखे ही नहीं गए होंगे। वस्तुतः मुगलों के आतंक के कारण मध्य देश की भाषा में उनका उतना प्रचार-प्रसार नहीं हो सका। मुक्तक रूप में जो अन्य उदाहरण मिलते हैं उनमें ब्रज-भाषा के कवि-मानस पर प्रताप के निरंतर बढ़ते हुए प्रभाव का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। डा० देवीलाल पालीवाल ने कई ऐसे सुन्दर छंद प्रकाशित संग्रहों से खोज निकाले हैं जिनसे प्रताप के चरित्र पर चढ़ता हुआ ब्रजभाषा की कलात्मक अभिव्यक्ति का रंग अत्यधिक आकर्षित हो उठा है।

उदाहरणार्थ १६वीं शताब्दी के कवि स्वामी गणेशपुरी के प्रताप संबंधी मुक्तको में से एक छंद इस प्रकार है:-

बाढ़ी वीर हाक हर डाक भुव चाक चढो।

ताक ताक रही दूर डाक चहुँ कोर में।  
बोलिकै कुबोल हय तोल वहलोल खां पै।

वागो-प्राण कता रान पता को विनोद में।  
टोप कटि टोपी लाल टोपा कटि पीत पट  
सीस कटि अंग मिली उपमा सुमोद में।  
राह गोद मंगल की मंगल गुरु की गोद  
गुरु गोद चद की अरु चद रवि गोद में ॥

अगर ब्रजभाषा की शैली में लिखी गई प्रताप-संबंधी सभी मुक्तक कविताएं सुरक्षित रह पाती तो उससे हिन्दी साहित्य की अद्भुत समृद्धि होती। किंतु मुगल साम्राज्य के आतंक ने पराधीन जाति को वह सब नहीं करने दिया। स्वतंत्रता-पूर्वक वे कवि प्रताप का यशगान नहीं कर सकते थे जो राजदरबारों में रहते थे और अन्य कवियों के काव्य की सुरक्षा के साधन ही नहीं थे।

ब्रजभाषा में प्रताप-संबंधी प्रबन्ध-काव्य का उदाहरण केसरीसिंह बारहठ का 'प्रताप चरित्र' काव्य है। इसकी रचना १८८४ वि० में सोन्याणा (मेवाड़) में हुई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी कविता में राष्ट्रीय भावनाओं को स्थापित देकर हिन्दी कवियों के लिए राष्ट्रीयता का जो मार्ग प्रशस्त किया था, उसी का प्रतिफल इस काव्य में हुआ है। "प्रताप-चरित्र" के इस छंद की भाव-भूमि देखिए:-

पूरन पवित्र परतप, है चरित्र तेरो ।  
पढिवे ते मेठ देत संकट भिताप में ॥  
मेरे जानिके में रामनाम सो महान मंत्र ।  
पाठ के करे ते हठि जात पुन्ज पाप, के ॥\*

वीर-रस-पूर्ण इस काव्य में केसरीसिंहजी बारहठ ने राणा प्रताप की धीरता का सर्वत्र मनोहारी आलंकारिक वर्णन किया है। कवि ने रीतिकालीन आलंकारिक शैली ही नहीं अपनाई, अपितु परम्परा से चले आते हुए उपमान भी स्वीकार किए हैं तथा पौराणिक सैवर्भों का सहारा लेकर रोचकता उत्पन्न की है। उदाहरणार्थ रणभूमि का दृश्य यहां दृष्टव्य है। इस वर्णन से ब्रजभाषा की अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन की कड़ी जुड़ती है:—

अलकापुरी में अजीपरी राशि मुन्डन की,  
अजी चन्द्रहामन सुवास इतरन की ।  
रक्तनाल बहे ताते घरा ना पटी है अजों,  
दीखत है लाल लाल अजी भूमि रन की ।  
घोर घमासान रच्यों पातल इरिद्वी घाट,  
पीर ना मिटी है अजों रोष के फनन की ।  
साल प्रतिसल टाल टाल के निकाल कर,  
अजों चन्द्रमाल खाल आढत गजन की ।

निश्चय ही इन पक्तियों में कवि ने ओज रखा है, उसके पीछे जातीयता के स्वाभिमान की ठोस भूमिका है, जो आधुनिक कालीन राष्ट्रीयता के विरोध में कहीं भी खड़ी नहीं मिलती। गांधीवादी राष्ट्रीय भावना के गायको ने भी जातीयता के भावों को महत्व दिया है तथा विभिन्न कथा-प्रसंगों एवं भाव-भूमियों से राष्ट्र को

जगाने, बलिदान करने एवं स्वतंत्रता लाने की प्रेरणा बारहठ के प्रताप-चरित्र में भी वर्तमान है।

ब्रजभाषा का आसन छीनने वाली खड़ी बोली में तो महाराणा प्रताप का एक ऐसा भव्य विम्ब राष्ट्रीय भावना की भूमि से उठा, जिसने समस्त देश को ही अपने जादू से चमत्कृत कर दिया। जनता, कवि तथा स्वाधीनता के सेनानियों को राणा प्रताप स्वतंत्रता के पर्याय नजर आने लगे। वस्तुतः खड़ी बोली की प्रताप-संबंधी कविता ने राष्ट्रवीर को जो मानस-प्रतिमा देश को दी, उसका स्थान शिवाजी तो ग्रहण कर ही नहीं सके, अन्य आधुनिक शहीद भी नहीं कर पाए।

खड़ी बोली में राणा प्रताप संबंधी काव्य मुक्तक और प्रबन्ध दोनों ही रूपों में प्रचुर परिमाण में लिखा गया। जहां तक प्रताप-संबंधी मुक्तक-काव्य का प्रश्न है, उसमें भावना के रंग अधिक उभरे हैं, किंतु प्रबन्ध काव्य में विचार और राष्ट्रीयता का दर्शन भी उभर कर आया है। जिन कवियों ने राणा प्रताप के संबंध में मुक्तक कविताएं रची हैं, उनमें प्रसाद, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चोहान, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, शिशु, रामावतार 'अरुण' राकेश, श्यामनारायण पाण्डेय जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, सुमनेश आनंद मिश्र, रामनरेश त्रिपाठी, कन्हैया-लाल सेठिया तथा हरिकृष्ण प्रेमी आदि कवि प्रमुख हैं। इन कवियों ने प्रताप को मातृभूमि की मुक्ति दिलाने वाला मा का सच्चा मूलतः देश और जाति का रक्षक बतलाया है।

सर्वत्र उसकी वीरता का वर्णन राष्ट्रीय दृष्टि से किया गया है। अधिकांश मुक्तक कविताओं में प्रताप के चरित्र की वे भूमियाँ अनावरित की गई हैं, जो आधुनिक परिवेश में देश के प्रति प्रेम जगाती हैं तथा जाति की स्वाधीनता के लिए वलिदान की प्रेरणा देती हैं। उदाहरणार्थ 'वीरांगना' (डा० रामगोपाल शर्मा दिनेश' कृत) में 'राणा का स्वप्न' कविता में राणा समस्त देश की पराधीनता की पीड़ा अनुभव करता हुआ स्वप्न में मृत चेतक की यह बोली सुनता है:—

वह अरि जो भारमाता को  
बचन में जकड़े बैठा है,  
जो दिशि-दिशि से ऊपर के सब  
अंबर को पकड़े बैठा है,  
हिल जाय गगन उसका भय से  
ऐसी हुंकार सुनाओ तो।  
उठ प्रलयपथोदर से गरजो  
असि से ज्वाला चमकाओ तो ॥

प्रसिद्ध कवि हरिकृष्ण प्रेमी ने समस्त देश की स्वतंत्रता के लिए प्रताप को वन वन भटकता हुआ देखा है:—

भारत के सारे बल को जब, कसा वेड़ियों ने  
अनजान।  
तब केवल तुम ही फिरते थे, वन वन पागल  
सिंह समान ॥

जिन कवियों ने खड़ी बोली में प्रताप के पावन चरित्र को विषय बनाकर प्रबन्ध-काव्यों की रचना की, उनमें जयशंकर प्रसाद, श्यामनारायण पाण्डेय, गोकुलचंद्र शर्मा और रणवीरसिंह शक्तावत

के नाम प्रमुख हैं। जयशंकर प्रसाद ने "महाराणा का महत्व" एवं गोकुलचंद्र शर्मा ने "रणवीर प्रताप" नामक खण्डकाव्य में प्रताप के चरित्र का शीर्षपूर्ण राष्ट्रीय चित्र उभारा है। इन कार्यों की भाषा आधुनिक युग की व्यापक राष्ट्रीयता को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। कवियों ने प्रताप की वीरता के पीछे उसके त्याग, वलिदान जाति-हित एवं पराक्रम के भावों को सारे देश के साथ जोड़ कर चित्रित किया है।

श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी' में राष्ट्रीयता का पक्ष उतना महत्व नहीं रखता जितना महत्व उन्होंने प्रताप के हिन्दू-प्रेम को दिया है। व्यक्ति-पक्ष प्रधान है, फिर भी वह पक्ष राष्ट्र के कल्याण की भावना को महत्व देता है। वीरता आदि के चित्र जितनी ओजपूर्ण भाषा में पाण्डेयजी ने प्रस्तुत किए हैं, उतनी ओजपूर्ण शब्दावली भूषण के काव्य में भी नहीं मिलती। अतः दृष्टिकोण की ही नहीं कवित्व की भी हल्दी-घाटी को गरिमा प्राप्त हुई है।

शिशुपालसिंह 'शिशु' ने भी हल्दीघाटी की एक रात में प्रताप को राष्ट्रीय दृष्टि से देखा है। रणवीरसिंह शक्तावत के 'प्रताप' महाकाव्य में यद्यपि हिन्दू-प्रेम को वर्णन की पृष्ठभूमि बनाया गया है तथापि कवि ने हिन्दू शब्द के अर्थ को धर्म की भावना तक सीमित न रखकर भारतीय जाति का वाकी बना दिया है और उसकी स्वतंत्रता का अपहरण करने वाले शासक-वर्ग को यवन की संज्ञा दी है। अतः 'प्रताप' महाकाव्य की भाव-धारा भी राष्ट्रीयता के उपक्रमों में ही प्रवाहित मिलती

है। अभिव्यक्ति में अभिव्येवता अधिक होने पर भी भावोद्बोधन की अपार क्षमता है।

इन काव्यों के अतिरिक्त रामनारायण माथुर कृत "हल्दीघाटी का युद्ध" मिश्र कृत "भारतसूर्य" आदि ग्रंथ भी महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।

सारांश यह कि हिन्दी-काव्य में महाराणा प्रताप की अपने काल से ही गौरवपूर्ण स्थान मिलना आरंभ हो गया था। उनके त्याग, वलिदान, स्वातंत्र्य-भावना तथा प्रजा मुक्ति की कामना को कवि-गण आदरणीय और उल्लेखनीय मानने लगे थे। अतः अपनी प्रतिभा के प्रसूनो से वे इस

पावन चरित्र का गायन करने को प्रेरित हुए। हिन्दी की डिगल, पिंगल, ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली नामक चार भाषा-शैलियों में वह चरित्र निरंतर ऊंचा उठता गया और आधुनिक काल में आकर समस्त देश को जगाने में सहायक हुआ। खड़ी बोली के कवियों ने राणा प्रताप के उस वलिदान को मुगलों की शक्ति के आगे कोई विशेष परिणाम नहीं लगाया था। अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हिलाने में सबसे बड़ी प्रेरणा-शक्ति सिद्ध कर दिखायी। भविष्य में भी यह पावन-चरित्र हिन्दी काव्य में ऐसी प्रेरणा-शक्ति बनकर रहेगा — यह निश्चित है।



मेवाड में जैन धर्म और आ० हीर विजय सूरि को—

## महाराणा प्रताप का दिया हुआ पत्र

—अगरवन्द नाहटा

मेवाड में जैन धर्म का प्रचार काफी प्राचीन काल से है। चित्तौड़ के निकटवर्ती माध्यमिका नगर से प्राप्त जैन अभिलेख के अनुसार जैन धर्म का प्रचार महावीर-निर्वाण के कुछ समय बाद ही हो गया था। माध्यमिका नगर से जैन साध संघ की माध्यमिका शाखा निकली। वैसे उज्जैनी, दशपुर आदि मालव-प्रदेश में तो भ० महावीर के समय से ही जैन धर्म प्रचारित था ही। महावीर के कुछ शताब्दियों बाद तक के मेवाड के जैन धर्म प्रचार संवधी उल्लेख ज्ञात नहीं है पर आठवीं शताब्दी में आचार्य हरिभद्रसूरि हुये। उन्होंने चित्तौड़ में रहते हुये 'धूर्तख्यान' नामक प्राकृत ग्रंथ की रचना की। प्राचीन प्रबन्धों के अनुसार आचार्य हरिभद्र तो चित्तौड़ के ही थे। उसके बाद तो समय-समय पर अनेक जेनाचार्यों और साधु-माध्वियों का भी मेवाड प्रदेश में विहार होता रहा। १३ वीं शताब्दी में जगचन्द्र सूरि आहड़ (आभाटपुर) में आये और उनके विशेष तप करने से वहाँ से 'तपागच्छ' का प्रादुर्भाव हुआ। १२ वीं शताब्दी से खरतर-गच्छ का भी इस प्रदेश में अच्छा प्रचार रहा है। सुप्रसिद्ध आचार्य जिनवल्लसूरि और जिन दत्तसूरि का चित्तौड़ में काफी प्रभाव था। १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जिनोदयसूरिजी ने मेवाड़ में जैन

धर्म का अच्छा प्रचार किया। उनके विहार का कुछ वर्णन 'विज्ञप्ति महालेख' में पाया जाता है जो मुनि जिन विजयजी सम्पादित 'जैन विज्ञप्ति लेख संग्रह' में छप चुका है। १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खरतरगच्छ की दो शाखायें जिनवर्द्धनसूरि और जिनभद्रसूरि से अलग-अलग हो गईं। जिनवर्द्धनसूरि की पिप्पलक शाखा के आचार्यों के कई लेख चित्तौड़ आदि में प्राप्त हुये हैं। १७वीं शताब्दी में खरतरगच्छ में दो और शाखा-भेद हुये अर्थात् जिनरंगसूरि और जिनरत्नसूरि दोनों की परम्परा अलग-अलग हो गई। और दोनों का उदयपुर आदि में अच्छा प्रभाव रहा। इधर विजयगच्छ और लोंकागच्छ का भी १७वीं-१८वीं शताब्दी में विशेष प्रचार हुआ। आगे चलकर स्थानक-वासी और तेरापंथी सम्प्रदाय का प्रभाव भी मेवाड प्रदेश में बढ़ता गया। उदयपुरादि में अन्य कई गच्छों के जैन महात्मा जाति वाले हैं। १७वीं शदी के हीरानंदसूरिजी को महाराणा कुंभा ने कविराज पद दिया था।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के उपरोक्त गच्छों के अतिरिक्त दिगम्बर सम्प्रदाय का भी इस प्रदेश में अच्छा प्रचार रहा है। चित्तौड़ का जैन कीर्ति स्तम्भ दिगम्बर आदक का ही बनाया हुआ है। चित्तौड़ पर श्वेताम्बरों के तो ३२ जैन मंदिर १६वीं

शताब्दी में विद्यमान थे जिनका उल्लेख 'चित्तौड़ चैत्य पारपाटी' में मिलता है और इस संबंध में मेरा लेख 'जैन सत्यप्रकाश व शोध पत्रिका' में छप चुका है। शोध पत्रिका के प्रारम्भिक वर्षों में 'जैन साहित्य में चित्तौड़' शीर्षक लेखमाला मैंने प्रकाशित करनी प्रारम्भ की थी। पर वह दो-तीन अंकों में ही प्रकाशित हो सकी, आगे का काम रुक गया। मेवाड़ के गाँव गाँव में जैनों की बस्ती है। और अनेक स्थानों में जैन मन्दिर हैं। उन सबका इतिहास टटोला जाय तो काफी नवीन जानकारी प्रकाश में आ सकेगी। स्व० यतिवर्य अनूपऋषिजी ने मेवाड़ के कई स्थानों के जैन मन्दिरों व मूर्तियों के लेख संप्रहीत किये थे।

मेवाड़ के अनेक स्थानों के महत्वपूर्ण विवरण जैन काव्यादि ग्रन्थों में पाये जाते हैं। उनका संग्रह किया जाय तो इस प्रदेश के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड सकता है। १५वीं शताब्दी में पोरवाड़ घरणासाह ने महाराणा कुम्भा के राज्य काल में बहुत ही कलापूर्ण और अजोड़ स्थापत्य कला वाला त्रैलोक्यदीपक जैनमन्दिर बनाया। १६वीं शताब्दी के करमासाह ने शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार किया जिसका विवरण मुनि जिनविजयजी सम्पादित 'शत्रुंजय तीर्थ द्वारा प्रबन्ध' आदि में पाया जाता है। १७वीं शताब्दी के भामाशाह और १८वीं शताब्दी के दयालशाह तो विशेष प्रसिद्ध हैं ही।

महाराणा प्रताप के समय मेवाड़ की स्थिति बड़ी विकट रही। सम्राट अकबर ने कई बार सेना भेजकर मेवाड़ को तहस-नहस करने का प्रयत्न किया पर महाराणा ने अनेक कष्ट सह कर भी

अपनी आन-वान को सुरक्षित रखा। चित्तौड़ का आक्रमण कितना भयंकर था, इसका कुछ वर्णन खम्भात के पोरवाड़ जैन कवि ऋषभदास ने प्रसंग-वश 'हीर विजय सूरि रास' में किया है।

अकबर और प्रताप के समय दो महान जैनाचार्य बड़े ही प्रभावशाली हुये हैं। उन्होंने सम्राट अकबर को जैन धर्म का प्रतिबोध किया था। तपागच्छ के आचार्य हीर विजयसूरि संवत् १६३६ में फतहपुर सीकरी जाकर सम्राट से मिले थे और संवत् १६४८-४९ में लाहोर जाकर खरतरगच्छ के आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने सम्राट को जैन धर्म के प्रति विशेष आकृष्ट किया। इन दोनों आचार्यों के साथ सम्राट अकबर का विशेष धार्मिक संबंध रहा, इसका विशेष विवरण 'सुरीश्वर सम्राट', और हमारे युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि' ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुका है।

सम्राट अकबर अपने प्रारंभिक जीवन में काफी क्रूर रहा है। पर अन्तिम जीवन में अनेक धर्माचार्यों के सम्पर्क में आने से उसमें काफी परिवर्तन आ गया। तपागच्छीय शातिचद्र, भानुचन्द्रादि और खरतरगच्छीय मानसिंह ( जिनमिह सूरि ), समय सुन्दर आदि का भी अकबर से अच्छा संबंध था। हीर विजय सूरि और जिनचन्द्रसूरि के सम्राट पर प्रभाव के सूचक कई फरमान-पत्र प्राप्त होते हैं और शिलालेखों (समकालीन) के आधार पर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अकबर ने अपने राज्य में वर्ष ६ महीने जितने दीर्घकाल के समय भिन्न-भिन्न दिनों में जीव-हत्या बन्द करवा दी थी और अनेक जैन तीर्थों

की सुरक्षा के फरमान भी जारी किये थे । जैन-महापर्व-पर्युषण के १२ दिन जीव हिंसा न की जाय इसका एक फरमान तपागच्छ वालों को दिया गया और आषाढ़-चौमासे के ८ दिन तक जीव हिंसा न हो तथा खम्भात वन्दर की मछलियां न मारी जाय ऐसे फरमान खरतरगच्छ के जिनचन्द्र सूरिजी को दिये गये । अकबर का शासनकाल भारत का स्वर्णकाल या उन्नति का युग कह सकते हैं । जैन धर्म एवं समाज का भी इस समय अच्छा उत्थान हुआ ।

महाराणा प्रताप वर्षों तक अकबर के प्रति-द्वन्दी रहे । एक के ऊपर एक आपदाएं उनके उपर आती रही, इसलिये धार्मिक दृष्टि से मेवाड़ में विशेष प्रगति नहीं हो पाई, जैनाचार्यों के साथ महाराणा प्रताप का क्या ऐसा संबंध रहा, इस विषय में विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता । पर जैन आश्रमों का मेवाड़ में काफी प्रभाव था, इसलिये साधु-साध्वियों का इस प्रदेश में उस संघर्ष के समय में भी विहार होते रहना सम्भव है । आसपास के अनेक स्थानों में तो जैन धर्म-महात्माओं द्वारा धर्म प्रचार होता ही था । 'जैतानन्द पुस्तकालय, आगम मंदिर, पालीताणा' से मुझे एक ऐसे पत्र की नकल प्राप्त हुई है जिसके अनुसार राणा प्रताप ने आ० हीरविजय सूरिजी को एक पत्र भेजा था । और उसमें अपने वहां आने का अनुरोध किया था । मूल पत्र कहां है ? जिसकी कि यह नकल की गई, यह ज्ञात नहीं हो सका है । पत्र की भाषा और

शैली भी कुछ संदिग्ध सी है । संवत् १६३५ के आसोज सुदि ५ को यह पत्र लिखा गया है । उस समय हीर विजय सूरि सम्भवतया गुजरात में थे । मगसुदानगर को यह पत्र भेजा गया है । यह नगर कौनसा और कहां है ? यह ठीक से पता नहीं । इस पत्र से राणा प्रताप उस समय चावण्ड में थे । इस पत्र की प्रामाणिकता के संबंध में तो मैं मूल पत्र देखे बिना कुछ नहीं कह सकता । पर मुझे जैसी प्रति मिली है उसकी नकल नीचे दी जा रही है ।

### हीर विजय सूरि को राणा प्रताप का दिया पत्र ?

श्री रामोजायति ॥

श्री गुरोस प्रसादातु श्री एकलिंगप्रसादातु स्वस्त श्री मगसुदानग्र म्हासुभस्याने सरब औपमा लाग्रेक भठारकजी म्हारज श्री हीरवजेसूरजी चरण कुमलायण स्वस्त श्री वजेकटक चावड रा डेरा सुयाने म्हारज धराज श्री राणा प्रताप सीयजी ली० पगे लागणो वचसी, अठारा समाचार भला है, आपरा स्वा भला छाहीजे । आप बडा के पुजणीक है बडा करवा राखेजी जीसुं ससट रखावेगा, अप्र १ आपरो पत्र अणादना म्हे आहीआ सो करण कर लखावेगा श्री बडा हजुर रो बगत पदारवो हुवो जीस्में अडासु पाछा पदारता पातसा अकब्रजी ने जेना बाव म्हे ग्यान रो प्रतिबोब दीदो जीरो चमतकार मोटो बता आ जीर्वहिंसा छरकला त्या नाम पखेरु री वतीसो माफ काइ जीरो मोटो उपगार कीदो सो श्री जैन राप्र म्हे आप असाइज अदोतकारी अबार री स्मे देखता आप जुफेले न्ही

आखी पुरवहीद स्थान अत्र वेद-भुजरात सुदा चारु  
दसा मे धरम री बडो अदोतकार दखारो जडा पछे  
आपरो हुओ नही सो कारण कई वेगा पदारसी आगे  
सु फदा प्रजाता कारण रा दसतुर माफक आगेहेजी  
माफक तोल मुरजाद सा बावत रेगा श्री बडा  
हजुर री बखत आप्री मुरजाद सामो आवारी कसू  
पडी सुणी सो काम कारण लेखे भुल रइवेगा  
जीरो अदेसो नही जाणोगा आगेसु श्री हेमाचरजी  
ने श्री राज म्हे मान्याहे जीरो पटो कर देवाणो  
जी माफगयारी पगरा भटारख गादी प्रआवेग

तो पटा माफक मान्य जावेजा श्री हेमाचारजी ने  
पेला श्री वडगच्छ रा भटारख जी ने बडा कारण  
सुं श्री राज म्हे मान्या जी माफक आपने आपरा  
पगरा गादी प्र पाटवी तपगच्छ राने मान्या  
जावेगाइ सुवाये देस म्हे आप्रे गच्छ रा देवरो तथा  
उपासरो वेगाजी री मुरजाद श्री राज सुवा दूजा  
गछरा भटारख आवेगा सो राखेगा श्री समरण  
ध्यान देव जात्रा करे जठे आद करावसी भुलसी  
नही ने वेगा पदारसी प्रवागो पक्षोली गोरो समत  
१६३५ रा वर्षे आसोज सुद ५ गुरुवार ॥





# महाराणा प्रताप-सम्बन्धी नवीन ज्ञातव्य

—डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए; पी.एच.डी.

एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ<sup>१</sup> में महाराणा प्रताप सम्बन्धी कतिपय नवीन ज्ञातव्य प्राप्त हुए हैं। विद्वज्जगत् की जानकारी और विचार हेतु इन उल्लेखों को यहां प्रस्तुत किया जाता है।

सुप्रसिद्ध हल्दीघाटी-युद्ध में ग्वालियर के राम-शाह तंवर द्वारा अपने पुत्रों सहित महाराणा प्रताप के पक्ष में मुगल सेना से लड़ते हुए काम आना सम्बद्ध समस्त इतिहास ग्रन्थों से विदित होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि रामशाह महाराणा प्रताप से रु. ८००-०० आठ सौ रुपये रोकड़ प्रतिदिन प्राप्त करते थे। अवश्य ही राम-शाह के साथ निश्चित संख्या में सैनिक भी थे जिनके व्यय हेतु उक्त द्रव्य उन्हें प्रतिदिन प्राप्त होता था।

इस उल्लेख से महाराणा प्रताप की तत्कालीन सम्पन्नता प्रकट होती है।

हल्दीघाटी-युद्ध विषयक उक्त उल्लेख इस प्रकार है :—

“राजा रामशाह तुंअर, गुआलेर री घणी महाराणाजी श्री प्रतापसिंहजी कनै था। सो विषामाहे रुपईया ८०० रोज १ रोकड़ पावता। हल्दी री घाटी बेड़ १ तठै काँम आया। सँ० १६३२ आवण वदि ७ राणी प्रनापसिंहजी कछवाहों

मोनसौंघ सुं वेड़ तिण माहे काम आया। सोनिगरी मोनसौंघ अयंराजोत १ राठोड़ रामदास जंत-मालोत २ राजा रामसाह खालेर री घणी ३ डोडोयो भीम साढावत ४ पडिहार सेढू ५ सादू रामो घरमावत ६।”

विचारणीय है कि हल्दीघाटी युद्ध का समय प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में विक्रमी संवत् १६३३ द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला २ दिया गया है और इस लेख में विक्रमी संवत् १६३२ श्रावण कृष्णा ७ है।

महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी युद्ध के पश्चात् कठिनाई में बाहर से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु महाराणा के मंत्री भामाशाह ने सैनिक व्यय की उचित व्यवस्था की। इस विषय में उक्त ग्रन्थ में यह उल्लेख मिलता है।

“राणांजी श्री प्रतापसौंघजी नौ विषामाहे पाति साहजी री फौजा जोर दबाया। घवण नौ क्युं ही पहुँचै नहीं। तद दीवाणजी कह्यो। हु अहमदानगर रं पातिसाह तीरे जासा। तरै सा भामै कह्यो। बारा वरस ताई पांच हजार घोडा नौ तेल नै षावाण ताई चाहीजसी। सौ हु दावै ही तठा सुदेसुं। दीवाण इसी मत विचारो”

महाराणा प्रताप के प्रसिद्ध दिवेर युद्ध के विषय में निम्नलिखित उल्लेख है—

१. राजस्थान प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर में सुरक्षित, हस्तलिखित ग्रन्थ, क्रमांक ३५४६४.

“पछै रांणी प्रतापसीधजी इणे मगरे आया । सुर तांण चकतो पातिसाह रौ भाई गांम देवेर रं थाणे थो । सो राणांजी ऊपर आयो । तठे वेढ़ हुई । तठे राणांजी रा साथ री गोली सुरताण चकतो रं लागी । रांणीजी लडाई जीती । बीजी तरफ सहबाजखान कांबो थो । सो पिए न्हासे गदो । राणांजी रं घरती वली । ”

कर्नल जेम्स टॉड ने दिवेर युद्ध भूमि को ग्रीस के प्रतिष्ठित रणक्षेत्र पेरेथान से उपमित किया है १२ ४६० ई० पूर्व के मेरेथान युद्ध में शूरवीर युनानियों ने विजय प्राप्त कर ईरानियों को अपने देश से बाहर निकाल दिया था ।

इस ग्रंथ में आगे लेख है कि महाराणा प्रताप का जन्म संवत् १५६७ में हुआ और महाराणा प्रताप ने विक्रमी संवत् १६५७ में मालपुरा लूटा : —

“संवत् १५६६ रा जेठ सुदि ३ राणांजी श्री

प्रतापसीधजी रौ जन्म । सं० १६५७ रा चैत माहे रांणै प्रतापसीधजी मालपुरो मारयो । सं० १६५७ दिन ३ लूट्यो । ”

विचारणीय है कि महाराणा प्रताप का जन्म सं० १५६७ ज्येष्ठ शुक्ला ३ को और देहान्त सं० १६५३ में माघ शुक्ला ११ को माना जाता है । इस ग्रन्थ में महाराणा प्रताप के मृत्युकाल के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता है । इस ग्रन्थ में लेखनकाल उपलब्ध नहीं है किन्तु संभव है कि इस ग्रन्थ का लेख महाराणा प्रताप का समकालीन हो । महाराणा प्रताप जैसे राष्ट्रीय वीरो के संबंध में अनेक लेख हमारे प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं । इतिहासकारों का परम कर्तव्य है कि ऐसे बिखरे हुए लेखों को विधिवत् संकलित करें और सम्यक् रूपेण इनका परीक्षण करते हुए हमारे राष्ट्रीय इतिहास का पुनर्निर्माण करें ।



# वीर भावना के प्रमुख प्रेरक : महाराणा प्रताप

—डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया

प्रभु का संसारी संस्करण पुरुष है। पुरुष में चारपुरुषार्थों का सम्यक् समीकरण विद्यमान रहता है। जीवन में इन पुरुषार्थों को उद्दीप्त करने के लिये वीर-भावना का संचार आवश्यक है। वीर-भावना से अणुप्राणित होकर जो पुरुष इन पुरुषार्थों का योग-प्रयोग करते हैं, वे वस्तुतः कामवीर, अर्थवीर, धर्मवीर और मोक्षवीर कहलाते हैं। इन चारों पुरुषार्थों में जो सम्यक् रूप से वीर होता है उसे महावीर कहते हैं। हमारे यहां प्रत्येक युग में ऐसे महावीर अवतरित होते रहे हैं। सोलहवीं शताब्दी के महावीर : विख्यात महाराणा श्री प्रतापसिंह के श्रीनाम से जाने, माने और पहिचाने जाते हैं।

महाराणा प्रताप के जीवन ने भारतीय जीवन को विशेषतः प्रभावित किया है। व्यक्ति समाज और समाज राष्ट्र का निर्माण करता है। इसी प्रकार राणा प्रताप ने अपनी स्वतंत्रता मेवाड़ की स्वतंत्रता और मेवाड़ की स्वतंत्रता राष्ट्र की स्वतंत्रता मानी थी। उनका यह स्वतंत्रता का प्रयोग हमें मध्य-समय पर अणुप्राणित करता रहा है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में देश-वासियों में वीर भावना भड़काने के लिये महाराणा प्रताप के जीवन-चरित्र ने घघकती ज्वालामुखी का काम किया है।

“कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू” स्वयं कवि की वाणी का विषय बनकर हिन्दी वीर काव्य साहित्य

को समृद्ध किया है। इस सन्दर्भ में महाकवि प० श्यामनारायणजी पांडेय कृत हिन्दी खड़ी बोली की पहली और अकेली काव्यकृति-‘हल्दीघाटी’, स्वर्गीय प० गोकुलचन्द्र शर्मा विरचित ‘प्रणवीर प्रताप’, शिशुपालसिंह शिशु कृत ‘हल्दीघाटी की एक शाम’ श्री ब्रजेन्द्र अवस्थी रचित ‘चेतक’ तथा श्री भागीरथ भास्कर की प्रताप विषयक ओजस्वी रचना विशेषतः उल्लेखनीय है। राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली द्वारा वाल साहित्य के प्रकाशन का यशस्वी कार्यात्मक हुआ है। इसी सन्दर्भ में श्री विश्वनाथजी लिखित ‘महाराणा प्रताप’ नामक कृति महत्वपूर्ण है। वर्षा ऋतु में विशेष रूप से यहां के लोक-जन-जीवन में आल्हा के साथ महाराणा प्रताप विषयक आख्यात गाये दुहराये जाते हैं। यहां हम इन काव्य कृतियों में चित्रित प्रताप के प्रतापी-जीवन की संक्षिप्त चर्चा कर उस वंद्यवीर आत्मा को ‘शब्द श्रद्धाजलि’ अर्पित करेंगे।

वीर भावना के रूप में महाराणा प्रताप और वीर-व्यवहार कुशल की दृष्टि से क्षत्रपति शिवाजी का नाम उत्तर भारत के बच्चों-बच्चों के लिये आलोक स्रोत का काम करता रहा है। कविवर श्री भागीरथ भास्कर ने प्रताप की शक्ति और शौर्य का उल्लेख करते हुये कहा है— यथा

‘ताप था प्रताप था  
प्रताप की कलाई में !’

× × ×

युद्ध क्षेत्र में प्रताप के प्रताप से भयभीत शत्रुपक्ष की दशा-बुर्दशा का उल्लेख पठनीय है— यथा—

“हल्दी फिर जाती  
हल्दीघाटी की लड़ाई में ।”

इस महान् आत्मा का पवित्र-चरित्र, देश-भक्ति, स्वाधीनता, स्वाभिमान, स्वावलम्बन और आत्मत्याग आदि अनेक सद्गुणों की चर्चा श्री पं० गोकुलचन्द्रजी शर्मा की आदिम काव्यकृति— ‘प्रणवीर-प्रताप’ में २०२ छन्दों में हुई है ।

चित्तौड़गढ़ को स्वतंत्र कराने का दृढ संकल्प क्या आज के शासकों के लिये समर्थ प्रेरणाप्रद ‘राजपथ’ नहीं हैं । यथा—

‘मै राज्यसुख भोगा करूँ, चित्तौड़ गौरव नष्ट हो।  
मुख मोड़ लूँ कर्तव्य से क्या देशसेवा भ्रष्ट हो।”

× × ×

“मेवाड़-धरणी शत्रुकर से मुक्त होगी शीघ्र ही,  
गुरु गर्व होकर चूर्ण होगा पतित मुगल महीन्द्र ही।  
अब तुर्क सिंहासन हिला दूंगा उडा आर्यध्वजा,  
इन क्रूर यवनोको चखा दूंगा अहो रण का मजा।”  
राणा की प्रतिज्ञा प्रत्येक देशवासियों के हृदय में  
देशप्रेम, निस्वार्थ कर्तव्य भावना का अमूल्य प्रेरणा  
स्रोत रहा है । यथा —

“तबतक न शय्या-शयन नृप, प्रासाद वास करूँ कभी,  
यह प्रण किया मैंने दिशाओं कान दे सुनलो सभी।  
यह ठानकर आदेश यों प्यारी प्रजा को दे दिया,  
सर्व पर्वतो मे जा रहो, मेवाड़ मे न जले दिया।”

यशस्वी वीर रस प्रधान महाकवि पं० श्याम-  
नारायणजी पांडेय की धारणी को मुखरित करने  
वाला पहला प्रेरणाप्रद चरित्र महाराणा प्रताप का

ही रहा है । उन्होंने ‘हल्दीघाटी’ नामक प्रबन्ध  
काव्य रचकर वस्तुतः हिन्दी साहित्याकाश में दृढ़  
प्रतिज्ञा हिमालय की अमर स्थापना की है । कवि  
का प्रताप स्वतंत्रता का निरूपमेय दीवाना है, यथा—

यज्ञ अनल सा घघक रहा था  
यह स्वतंत्र अधिकारी ।  
रोम रोम से निकल रही थी,  
चमक चमक चिनगारी ॥१॥

वीर राजपूत को सम्बोधित करते हुये कवि  
ने प्रताप का संदेश बड़ी ओजस्वी वाणी से व्यक्त  
किया है, यथा—

“नही देखते सतियों के जलने  
का है अङ्गार कहाँ ।  
राजपूत ! तेरे हाथों में  
है नङ्गी तलवार कहाँ ॥”

आला माना जैसे वीर यह आह्वान सुनकर  
बलिदानी के रूप में उद्घोष करते हैं जिसे सुनकर  
न केवल चेतन अपितु अचेतन भी मातृभूमि की  
बलिवेदी पर बलिदान करने को उद्यत हो जाते हैं,  
यथा —

“निज शरीर को आहुति दूँगा,  
किसी बात को चाह नहीं ।  
मैं प्रताप के लिये मरूँगा,  
हटो हटो परवाह नहीं ॥”

एक ओर मानसिंह जैसे शक्तिधर शत्रुपक्ष से  
सम्मान पाकर महाराणा के पिरुद्ध युद्ध क्षेत्र में  
उपस्थित होते हैं, उधर मेवाड़ के मनुष्य ही नहीं,  
पशुकुल भी अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिये  
आकुल हो उठे हैं— राणा प्रताप के विश्वास

अश्व चेतक की वीरता का वर्णन करते हुये कवि- ]  
 वर ने वस्तुतः कीर्ति स्तम्भ की स्थापना की है ,  
 यथा —

“रण बीच चौकड़ी भरभर कर  
 चेतक बन गया निराला था ।  
 राणा प्रताप के घोड़े से  
 पड़ गया हवा का पाला था ॥”

चेतक के कार्यकलाप को देखकर लगता है कि आज  
 के अनेक युद्ध उपकरण — टैंक, जेट, एटम आदि  
 फीके प्रतीत होते हैं । यथा—

“गिरता न कभी चेतक तन पर  
 राणा प्रताप का कोड़ा था ।  
 वह दौड़ रहा अरि-मस्तक पर,  
 या आसमान पर घोड़ा था ॥  
 जो तनिक हवा से बाग हिली  
 लेकर सवार उड़ जाता था ।  
 राणा की पुतली फिरी नहीं  
 तब तक चेतक मुड़ जाता था ॥”

समर केशरी, प्रतापी प्रताप के कार्यकलाप आज के  
 समर-संस्थान के लिये आदर्श पाठक्रम का  
 काम करते हैं ।



कोल खानखाना के प्रतापसिंह राना पर,  
 बाना हिंदवाना को सुहाना तो गया रीतै ।  
 दाह के करन पातसाह के उराहने पै,  
 चाह के मरन रनराह के जयारी तै ।  
 पानि देकें मुच्छन कृपान पुनि पानि देकें,  
 पान लीं उड़ावें म्लेच्छ वीरता बयारी तै ।  
 सूरन के हाके होत कूरन के साके होत,  
 हूरन इलाके होत तूरन तयारी तै ॥

—महबूब-उद्-दीन खानखाना

प्रकबर के चित्तौड़ आक्रमण का—

## कवि ऋषभदास कृत वर्णन

—प्रगरचन्द नाहटा

खम्भात के पोरवाड़ जातिय भावक कवि ऋषभदास ने सम्वत् १६८५ के विजयादशमी को हीर विजयसूरि रास की रचना की। कवि ऋषभदास की ओर भी अनेकों रचनायें प्राप्त हैं वह कवि (गुजराती) के रूप में काफी प्रसिद्ध है। रास में इसने प्रसंगवश सम्राट अकबर का अच्छा वर्णन किया है। उसमें उसकी ऋद्धि-सिद्धि एवं विजयों का उल्लेख है।

यहां पर केवल उसके चित्तौड़ आक्रमण का ही विवरण उपस्थित किया जा रहा है। इस वर्णन में लिखा है कि आकाश में उसका प्रताप रूप सूर्य उगा। यश दरी चन्द्रमा प्रगट हुआ। अकबर गाजी हाथी की तरह था। सब देश के राजा उसके अधीन हो गये थे। संप्राम में सदा उसकी जय होती रही और पाप करने में उसने कोई कमी नहीं रखी। पाप का भय उसे था ही नहीं। चित्तौड़ लेते समय उसे जो पातक लगा उसे एक जीभ से धर्णन नहीं किया जा सकता। फिर कवि ने वर्णन किया है कि किस तरह चित्तौड़ पर आक्रमण किया गया और जयमल पत्ता ने कंसी शूरवीरता दिखाई। चित्तौड़ की रानियों और नारियों ने जोहर किया। चित्तौड़ को कब्जे में करके अकबर ने वहां कत्लेआम मचाई, जो महा-जन जीवितव्य की बड़ी आशा लेकर उससे मिलने

गये उन्हें भी यम घर पहुँचा दिया गया। जिन स्त्रियों ने उसे मोती से बधाया उनको भी मार डाला। कोट को गिराया। मन्दिरों को ढाया। इस तरह अकबर यमदूत या काल की तरह क्रोधी होकर क्रूर बन गया। अन्त में कवि ने कहा है कि जब वह गढ़ लेकर वापस आ रहा था तो एक गर्भवती को जमीन पर पड़ी हुई और मरी हुई देख कर उसके मन में दया का संचार हुआ और सहसा उसके मुख से यह निकल पड़ा— या खुदा! मैं बड़ा दोजखी हूं। मैंने बहुत बुजगारी की। ऐसे कार्यों से बीहस्त न पाऊंगा और मेरी बड़ी स्वारी होगी। मुझे चित्तौड़ आक्रमण का जिन महात्मा ने मुहूर्त दिया उसने भी ठीक नहीं किया। मैंने कितने खून किये और दोजख का भागी बना।

गुणग्राही अकबर, जयमल पत्ता, की असाधारण वीरता से बहुत ही प्रभावित हुआ और उनकी मूर्ति बनाकर आगरे के किले में हाथी के ऊपर स्थापित की।

कवि ने स्पष्ट लिखा है कि अकबर के आक्रमण से वहां का शासक उदयसिंह भयभीत हो गया था। उसे घोरज नहीं रहा। तब जयमल ने उसे कहा— कि हम युद्ध करेंगे और राणा किले को छोड़ कर चला गया।

कवि ऋषभदास एक जैन श्रावक था । चित्तौड़ आक्रमण की घटना के करीब ५० वर्ष बाद उसने हीर विजयसूरि रास बनाया पर उस समय अकबर और चित्तौड़ आक्रमण की भयकरता को लोग भले नहीं थे । लोक-मुख से, गुजरात में रहते हुये, कवि ने जो कुछ व जैसा सुना अपने काव्य में उसे स्यान दे दिया । इसमें कुछ अतिशयोक्ति और

अतिक्रम हो सकता है क्योंकि किसी भी घटना को कुछ वर्षों बाद सुनी सुनाई बातों से लिखने वाला हु-बहु वर्णन नहीं कर सकता । फिरभी जनश्रुति में वह घटना जिस रूप में प्रसिद्ध हुई उसकी कुछ भांकी कवि के वर्णन से मिल जाती है ।

यहाँ अकबर के चित्तौड़ आक्रमण का वर्णन हीर विजयसूरि रास से उद्धृत किया जा रहा है-

आकाशे सूर ढकायो जसि, प्रतःप रूप सूर उगयो तसि ।  
यश रूपी ओ त्याहाँ किओ चद, अकबर गाजी जिस्यो गयंद ॥  
सकल देशना राजा जेह, छिद्र सूरमा देखे तेह ।  
मनस्युं चिते होस्ये खीअ, दीसेछे अकबरनी जीअ ॥  
संग्रामि जय ओहनि सदा, पाप थकी नवि बीहि कदा ।  
चित्तौड लेता पात्यक थयुं, ओके जीभें न जाओ कह्यु ॥  
लीघो गढ नवि जाओ जसि, यत्र ढोकली कीघो तसि ।  
नाखे उछालीने पाहाण, गढमां पडता हरो पराण ॥  
गढ तोही लीघो नवि जाय, बहु मानवनो खय तहि थाय ।  
पाछो अकबर न दीओ पाय, बढि सबल चित्तौडो राय ॥  
अकबर रहि गढ घेरो करी, मुगल रहि गढ पाछलि करी ।  
ऊपरिथी मूके नर नालि, घणा पुरुष मरे समकालि ॥  
गज घोडा मानव जे मरें, तेहनि गढ खाई मां भरे ।  
उपरि शूरनर चाल्या जाय, पोले जई दीओ घण घाय ॥  
ऊपरथी नांखे नर पाहण, हरो घणा पुरुषना प्राण ।  
अकबर शाह पाछो नवि वले, चक्री भरत जिम लडत नहले ॥  
वढे गुमानी अकबरशाह, गढ चित्तौड न लीघो जाय ।  
हिंदू तुरके न आपे नमी, करे उंवरा वात तिहाँ समी ॥  
बेठी माल गज छोडे देह, वलोपातशाह खिजमति लेह ।  
मन मनायुं पातशाह तरुं, माणस मोकल्युं गढि आपसुं ॥  
राणाने जई कयों जुहार, पृथ्वी शिद करावो खुआर ।  
दीजे धिया निज खिजमति घणी, बढीस्युं करस्यो प्रजारेवणी ॥

जईमल पता पासे परधान, दूततणा बे काप्या कान ।  
कर्या फजेत दीधु अपमान, तुज पादशानी नांठी शान ॥  
मांगी बेठी हस्ती माल, न देऊ मस्तकतणो मुआल ।  
धिय आपी जुव्युं घीक्कार, बोल्यो हिन्दुनो अवतार ॥

॥ दुहा ॥

अक पति ने बली पाणिमुं, राखि शके तिहा राखि ।  
जे उतर्युं अध पाइके, ते न चढे नर लाखि ।  
बाल नमामु जीववुं, भलो सनामी भूख ।  
माथु जाजो नाकस्युं, नाक म जास्यो दूक ॥  
अक नर मुआ ते जीवीआ, जस कीरति जगि सार ।  
कीरति खडी थिर रह्या, घीक तेनो अवतार ॥  
“ढाल - वासुपूजय जिन पूजय प्रकाशो अ देशी ॥  
धिग अवतार कहुं नर तेहनो, जे रणि कायर थाय ।  
जा अकबर शाहिनि तुं कहीजे, वढवो चोपट घाय ॥  
बल्यो दूत ते वचन सुणी ने, आव्यो अकबर पास ।  
करण देखाडे कर जोडीने, पूरववात प्रकाश ॥  
न दोअे वेडी कैसी दमडी, दोअे जयमल तुम गाली ।  
लडे विगर चित्तोड़ न आवे, वात करो सब खाली ॥  
सणी पातशाह कोप्यो प्यारे, हल्लां करे ज हकारे ।  
जल जावा न दोअे गढ माहि, कणना नाकां भारे ॥  
मदाफरी महमूदीअं अन्न; चित्तोड़ मांहि वेचाय ।  
तव राजा परजा गढ माहि, आकल व्याकुल थाय ॥  
राणो धर्यं खमे नहि त्याहरे, कहे मुगल नें मिलिये ।  
जयमल कहे नव मलीअे राजा, वहि अगनिमां जई बलीअे ॥  
तुमे जाओ वढस्युं अमे अहेस्युं, राखुं ख्यत्री लाज ।  
जेमल पता रह्या रण माढी, छांडी गयो महाराज ॥  
जाणे वात अकबरशा जयारें, तयारें पुरुष हकारे ।  
गज सोटा गाजता त्यांहि, पोलि माथां मारे ॥  
भांजि पोलि गढ भेल्यो जयारि, हिदू हुआ होसीआर ।  
सोल अमर होय त्यांहां मोटा, पापतणो नहि पार ॥



चद्रा रूपवती इन्द्राणी , चित्रकोटनी राणी ।  
 धीरमती वाघेली वलती , हीमे अगनीमां प्राणी ॥  
 वहु नारि सुत साथे दाधी , वर्णवता दुख लागे ।  
 महा पातिग जाणिने पडित , कविता पाछो भागे ॥  
 जयमल पता गज अश्व हणीनि , अकबर साम्हा घाय ।  
 वढता किमे न पाछा भागि , जो शतखड अ थाय ॥  
 शाहा अकबर देखी खुसो थाअे , क्या लडते दो भाई ।  
 न लडो गढ देऊं तुम पीछा , हुमाउ केरी दुहाई ॥  
 जयमल पता कहि न रहूं वढता , पाछा पाय न देस्युं ।  
 नारी पुत्र गढ माल गमाडी जीवी काहुं करेस्युं ॥  
 शूरपणु देखी शाह हरस्यो , झालो जीवता दोय ।  
 जयमल पता ते हाथि न आवे , वढी शत खंडज होय ॥  
 शाहा अकबर गढमां जई पेसे , ताम कपाय अनोरी ।  
 चितोड़ की मत कुत्ती छोड़ो , सबकु मारो ठोरी ॥  
 महाजन मिलवा कारणि आवे , ते जम धरि पुहुचावे ।  
 हणी नारी गढ चित्रोड केरा , जे मोतीज वधावे ॥  
 पाडी कोट लगाइयां मंदिर , सबल पाप तिहां कीधुं ।  
 सम खाअे खवरावे तेहना , पातिग लोक प्रसीधुं ॥  
 अस्यो काल जम सरीखो अकबर , केही पीर तेहने मिलस्युं ।  
 जे जाअो ते जाओ भाई , अमे तो पाछा हलस्युं ॥  
 अकबर शाहा गढ लेई वलीओ , गर्भवती एक नारो ।  
 मारी भोमि पडी ते दीठी , दया ई मन मंग्रारी ॥  
 या खुदा मि बड़ा दोजखी , कीनी बोहोत बुजगारी ।  
 इस करणी थो बीहस्त न पाऊं , होईगी बोहोत खोजारी ॥  
 करडो आंगली शीश धुणावे , आगरे में जब आवे ।  
 चित्रोड़ ग्रहवा महरत आप्यु , ते महात्मा तिहां जावे ॥  
 करी तसलीम नि घात प्रकाशे , कैसा मूहरत दीना ।  
 सुणी पातशा मुखमां मारे , मुख बांका तस कीना ॥  
 वेश पहिन क्या महरत दीना , केता खुनमें कीना ।  
 मि दोजख का हुआ विभागी , उसमि बांहा लीना ॥

आओ मित्या क्या हर्ष घरता , क्या खूबी ति कीनी ।  
दोजख कुंडी पीछि पावे , अवल शिख्या मि दीनी ॥

॥ दुहा ॥

तुझे तजारख मि दीउं , मुझकुं देगो खुदाय ।  
तुझ कुं भी देगा खुदा , दोनू दोभख जाय ॥  
पापभीरू अकबर अख्यो , पाप्यो सबल जगोस ।  
देश देशना नरपति , आवी नामे शीश ॥

॥ चौपाई ॥

सर्व भूप मांहि ते वडो , कुंभ माहि जि कामज घडो ।  
कामधेनु गवरीमां जेम , सकल रायमा अकबर तेम ॥१॥  
वृक्ष मांहि कल्पद्रुम जाणि , पत्थरमां जिम हीश खाणि ।  
जलमा निरमल गंगा नीर , त्यम मुगलमां अकबर मीर ॥२॥  
अहेवो अकबर चिहु दिशे फिरे , सकल रायने ते वश करे ।  
जीती बाजते पाछो फरे , आवी आगरा मांहि ऊतरे ॥३॥  
जयमल पताना गुण मन घरे , वे हाथी पत्थरना करे ।  
जयमल पत्ता वेसार्या त्याहि , असा शूर नहि जगमांही ॥४॥  
गढ माही पेसी नर बोलेह , जयमल पतापगढ हमकुं देह ।  
न दीऊं गढ करूं संग्राम , भूझी जगमा राखुं नाम ॥५॥  
अहेवा जयमल पत्ता जगि जेह , अकबरशाहना वैरी तेह ।  
शूरपणानो गुण ते लीघ , दरवाजे दोई मूरति कीघ ॥६॥

॥ गाहा ॥

किं कामिनी किं कविरस , कि सारंग सरेण ।  
मन तन लो अण लगति, शीश घूमत न जेण ॥१॥  
चित्त चमक्कीअ शीश धुणक्कीअ, रोमि रोमि उल्लास ।  
तोहु निरगुण परगुण लेई , मुखे न भाखे खास ॥२॥  
मुखि बोलि गुण अकबरशाहि, जयमल पत्ता वाधी शोभाय ।  
गज ऊपरि चढाव्या दीय , आगरा गढ दरवारि जोय ॥३॥  
पछे देश वली जीत्या सहू , मोटा गढ ते लीघा बहू ।  
एक छत्र नमे सहू कीय , जीती सीकरी आव्या सोय ॥४॥  
पते थई जीत्यां सहू गाम , तेणे सीकरी फतेपुर नाम ।  
सील गाऊ गढ फिरतो होई, पाने डामर तलाव ते जोइ ॥५॥

# महाराणा प्रताप एवं 'मान प्रकाश'

—डा० प्रभाकर शास्त्री

हिन्दू-संस्कृति के रक्षक, सिसोदिया क्षत्रिय-वंश कुल-भूषण, महाराणा प्रताप का नाम भारत-वर्ष के इतिहास में 'स्वाधीनता-संग्राम के पुजारी' के रूप में स्वर्णक्षिरो से अंकित है। महाराणा उदयसिंह की मृत्यु पर सन् १५७२ ई० में महाराणा प्रताप मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। इनके पास न राजधानी थी और न कोष ही था, परन्तु बड़े धैर्य से इन्होंने राज्य सम्भाला और सेना इत्यादि की तैयारी करने लगे। आमेर के कुंवर, बादशाह जलालुद्दीन अकबर के कृपा-पात्र सैनिक, मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम का प्रताप द्वारा तिरस्कार करने सम्बन्धी कथा इतिहास प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध में मानसिंह ने स्वयं अकबर की सेना का नेतृत्व किया था। उसके बाद भी मानसिंह तथा अन्य कछवाहा सरदार मेवाड़ के विरुद्ध मुगल सेना के साथ लड़ते रहे थे। मेवाड़ की स्वतन्त्रता छीनने के लिये अकबर ने मेवाड़ में ५० थाने नियत किये और स्वयं वहां प्रबन्ध करने के लिये गया, परन्तु मेवाड़ में उसका कभी पूर्ण अधिकार नहीं हुआ। यह भी सत्य है कि महाराणा प्रताप के पास अर्याभाव के साथ ही सेना व शस्त्रास्त्र भी नहीं थे। यह सबकुछ समझते हुए भी महाराणा प्रताप ने अपनी आन व मातृभूमि की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया।

उनका यह बलिदान आज भी भारतीय संस्कृति का गौरव बना हुआ है।

मुगल बादशाह जलालुद्दीन अकबर का तीन विजिष्ट प्रकार के राजपूतों से सम्पर्क हुआ था, जिनमें (१) सरलता से आत्म-समर्पण करने वाली मे आमेर के शासक (२) डटकर युद्ध करने करने के उपरान्त विजेतासे ससम्मान समझौता करने वाली मे रणायम्भोर के शासक तथा (३) आत्म समर्पण करने से सर्वथा निषेध करने के साथ ही निरन्तर युद्ध करने वालों में महाराणा प्रताप का नाम लिया जाता है, जो एक गौरव की बात है।

आमेर (जयपुर या डूँडा की प्राचीन राजधानी) के शासक तथा सम्राट अकबर के प्रधान सेनापति मिर्जा राजा मानसिंह 'प्रथम' की स्तुति में लिखे गये एक अप्रकाशित ऐतिहासिक महाकाव्य "मान प्रकाश" का पता चला है, जो खण्डित रूप में एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ते में सुरक्षित है। इस हस्तलिखित ग्रन्थ का परिचय- "शोध-पत्रिका" (वर्ष १८, जनवरी-अप्रैल, ६७) में प्रकाशित हो चुका है। यहां उसके राणाप्रताप विषयक अंश को प्रस्तुत किया जा रहा है। मूल ग्रन्थ अनेक स्थानों पर त्रुटित, अपूर्ण व अशुद्ध है।

१ 'भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास'— एस आर शर्मा, अनुवादक— श्री सत्यनारायण दुबे, द्वितीय संस्करण, १९६१, पृष्ठ ३४५ के आधार पर।

जहाँ तक सम्भव हो सका है, शुद्ध करने का प्रयास किया गया है । यहाँ पर सिर्फ शुद्ध पाठ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

प्रयाणमाकर्ण्य महीश्वरस्य

वैरिप्रियाः प्रेयसि वीतसंगाः ।

बभूवुस्तसाहित चातुरङ्गा

भेजुः कुरंगा इव काननानि ॥ १ (पृष्ठ-२३ए)

शूरः प्रतस्थेऽरिविदारणाय

स मानसिंहः सहितो बलौघैः ।

तदा जलौरिव शक्तिसंभूत्

किमर्जुनः किं पृथुरेष भूप. ॥ २

संस्थापयन्निजित वैरिवृन्दात्

धर्मानपि स्वच्छतरप्रताप. ।

दीनान् द्विजानप्यथ देवताना

सद्मानि पद्मापतिरजितानि ॥ ३

१. 'महीश्वर महाराज मान के विजय-प्रस्थान को सुनकर अपने प्रियतमों से वियुक्त होकर शत्रु-कामिनियों-हरिणों के समान वनों का सेवन करने लगे । (यहाँ केवल राय मुरारिदास अपने नायक मिर्जा मान की प्रशंसा मात्र कर रहा है । संस्कृत-काव्यों में ऐसा वर्णन बहुतायत से उपलब्ध होता है ।)

२. शूरवीर मानसिंह शत्रु के विदारणार्थ सेना सहित चल पड़ा । उसे देखकर शत्रु-समूह (विपक्षी राजगण) शक्तिन हो उठा । जिस प्रकार समुद्र अर्जुन व राजा पृथु को देखकर हुंसा था ।

विशेष-ऐसी कथाएँ प्रसिद्ध हैं कि अर्जुन (सहस्रार्जुन) जब दिग् विजय के लिये निकला तो उसकी विशाल सेना को देखकर समुद्र शक्तिन हो गया था । इतनी सेना उसका अस्तित्व समाप्त न कर दे, यह आशंका थी । इसी प्रकार महाराज पृथु ने सर्वत्र व्याप्त इस समुद्र को हटा कर यहाँ पृथ्वी बनायी थी । पृथु द्वारा निर्मित होने से ही यह पृथ्वी कहलाती है । अतः उन पूर्व स्मृतियों के आधार पर कवि ने यहाँ भी कल्पना का है ।

३. 'स्वच्छतर प्रतापी राजा मान विजित शत्रु-समूह को, धर्म को तथा दीन ब्राह्मणादि को पुनः संस्थापित करता हुआ एवं पद्मापति भगवान् विष्णु से रजित देवालयों की स्थापना करता हुआ विजय यात्रा के लिए चल पड़ा ।' पूर्व पद्य में समागत क्रिया 'प्रतस्थे' का अन्वय यहाँ भी करना होगा । मानसिंह गोविन्द भगवान् के अनन्य उपासक थे- यह तत्कालीन संस्थापित मन्दिरों में स्पष्ट है । जयपुर में गोविन्द देव का मन्दिर (अजमेर की घाटी पर) आपके द्वारा ही निर्मित है-ऐसा गुना गया है ।

रिपुशतान्यथ देशमशेषतो

वशमसावनयन्नयकोविदः ।

नृपतिरेव तदा जगतामभूद्

अनुमतो मुमुदे मुदिताशयः ॥ ४

अथाजगामाभिमुखोक्तवह्नि—

जनेनैर्वृतो धर्मधुरोण मुख्य ।

तमाह्वयामास महोग्रवीर्य

राणानृप मानमही महेन्द्रः ॥ ५

‘उवाच त वीर ! वह्निः प्रयाहि, त्व पातिसाह भज सर्वभारः ।

योद्धुं मतिश्चेद् बहिरेहि तूर्णं, योधैर्मदीयैर्कुं युद्धमृद्धः ॥’ ६

नृपोक्तवाक्य बहुशो निशम्य राणा नृपः क्रोध वशादुपेतः ।

हन्तुं महीपालमणिं प्रकोपाद्वण्डाहतः सर्प इवाजगाम ॥’ ७

‘तदीययोधाः सहसा समन्तात् श्री मानसिहोपरि पेतुर्ग्राः ।

शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधान् ववर्चुरम्भोदगणाइवापः ॥’ ८

४. “ अनेक शत्रुओं, देश-विदेशों को अपने अधिकार में करता हुआ वह नीतिवेत्ता संपूर्ण ससार का अनुमत होकर प्रसन्न हुआ । ” इस पद्य में केवल उसकी प्रशंसा की गई है ।

५. धर्मधुरिणों में भी प्रमुख, सामन्तादिजनो से परिवृत, अग्नि के समान तेजस्वी राजा मान (राणा प्रताप को जीतने के लिये ) पहुँचा । महान शक्तिशाली ‘राणा’ (नृप) को महाराज मानसिंह ने बुलाया ।

६. म० मानसिंह ने राणा से कहा—वीर, बाहर आओ । तुम्हें सर्वस्व देकर वादशाह की सेवा करनी है । यदि युद्ध करने की इच्छा है तो शीघ्र मैदान में आजाओ तथा समृद्ध होकर मेरे योद्धाओं से युद्ध करो ।

७. राजा मान की बात सुनकर राणा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और डंडे से पीटे गये सर्प के समान (क्रुद्ध भाव से ) राजा मान को मारने के लिए आ पहुँचे ।

८. राणा के योद्धा एकाएक मानसिंह पर आक्रमण करने लगे । उन योद्धाओं ने शर (बाण) भस्म (तलवार) शक्ति, ऋष्टि (अस्त्रविशेष) परश्वध (परशु) आदि की वर्षा कर दी, जिस प्रकार मेघ-समूह जल की वर्षा करते हैं ।

विशेष—यहाँ राणा व मानसिंह की अनवन का कोई कारण उल्लिखित नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है, यह उसके उपरान्त का वर्णन है, जब मानसिंह सेना सहित आक्रमण करने आया था तथा हल्दीघाटी में युद्ध हुआ था, जिसका उल्लेख—ग्रवुलफजल, निजामुद्दीन, वदायूनी आदि ने विस्तार के साथ किया है ।

‘किमुभयैर्मुमुचे न चिराच्चमूर्नववधूरिव भावनयानया ।  
तरुणकु भिगतिः स्फुरदम्बराचरण चुम्बितचन्द्रमुखद्युतिः ॥’ ९

‘तेषां प्रताप प्रसमीक्ष्य भूपो युद्धाय चैतान् स्वयमाचकार ।  
सिंहो यथा वारणराजमुच्चै विहन्तुकामः स तथा ऽवभाषे ॥’ १०

क्षणेन स क्षोणिपतिर्विपक्षान् विद्राव्य तान्दोर्युगलप्रतापैः ।  
दत्यानिवेन्द्रः स बभौ विजित्य प्रताप सन्तापित वैरिवर्गः ॥ ११

धनदेन करेण केवलं धनदो भूमिपतिर्बभूवह ।  
सुतरामाहितापकारिणा महसाऽसौ गरुडोपमो न किम् ॥ १२

वज्राङ्कितेनैव करेण भूपः पुरन्दरस्यापमिति जगाम ।  
प्रतापदावानलदग्धवैरिकक्षयोऽप्यलक्ष्यो द्रुतयां व भूव ॥ १३

प्रतापतिग्माशुरसित्वमेव यमोऽसि कोपेन रणाङ्गाणेषु ।  
एको विधात्रा विहितोऽसि तस्मादोशो दिशः पालयितुं प्रयत्नात् ॥ १४

९. युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है कि दोनों सेनायें बहुत देर तक युद्ध की इस भावना से नववधू के समान, जो तरुण गजपंक्ति की गति से युक्त, तथा चमकती हुई तलवारों की कान्ति से उदीप्त थी,— मैदान न छोड़ सकी ।

१०. जिस प्रकार सिंह यह न हाथी को मारने की इच्छा रखता है, उसी प्रकार प्रताप पक्षीय योद्धाओं के प्रताप को देखकर राजा मान ने स्वयं युद्ध के लिये तलकारा । ( वह उसी प्रकार गर्जा जैसे सिंह हाथी को देखकर गरजता है ) ।

११ राजा मान भुज-प्रताप से क्षण भर में विपक्षियों को छिन्न-भिन्न कर, जीतकर अपने प्रताप से वैरि-वर्ग को सन्तप्त करता हुआ इन्द्र के समान शोभित हुआ ।

१२. धन देने वाले हाथ से (पर्याप्त धन देने के कारण) वह राजा मान ‘धनद’ (कुवेर) कहलाया । अत्यधिक शत्रु पीडक होने के कारण वह गरुड के समान क्यों न माना जाय ? [अहि + ताप + कारिणा, आहित + अपकारिणा, दो प्रकार से पदच्छेद होगा ।]

१३ वज्र से अंकित भुजा होने से वह राजा इन्द्र के समान होगया । अपने प्रताप रूपी दावानल से शत्रु रूपी शुष्क वृणों को दग्ध कर राजा मान ने शीघ्र उन्हें अलक्षित कर दिया ।

१४. मानो दिक्तरुणियां ही स्तुति कर रही हैं — “ आप प्रताप रूपी सूर्य हैं, रणस्वलों में कोप करने के कारण ‘यमतुल्य’ हैं । विधाता ने आपको दिशाओं के पालनार्थ इसीलिए बनाया है । आप दिशाओं के स्वामी हैं ।

नस्तोतुमीशोऽस्ति भवन्तमुच्चैः सहस्राजिह्वोऽप्यथको मनुष्यः । १५  
 भ्रमरहितमुदार हृत्सरोज नृपस्य, स्फुरति नियतमेव यत्र कृष्णाघ्नियुग्मम् ।  
 बलिदमनविधौ यद् भूतले नोन्ममीख तव तदणुमपि स्यात् केनतन्नेव जाने ॥ १६  
 न स्तोतुमीशोऽस्ति भवन्तमुच्चैस्सहस्राजिह्वोऽप्यथको मनुष्यः ? ।  
 एवं स्तुतो दिक्कृष्णीभिरोष हहत्समीरस्य मिपान् महोशः ॥ १७  
 एवं रणे युध्यति मानसिहे समागतो माघवसिह वीरः ।  
 विश्रम्यतां क्षोरिपते क्षणान्नस्त्रन्नश्यतां युद्धमिदं जगाम ॥ १८  
 इतीरयित्वाऽभिमुखो रणाग्रे व्यग्रान्समग्रान् विदधेऽरियोघान् ।  
 तदा न युद्धाय पुरोवभूवुः केचिद् भयात्तस्य परिस्खलन्तः ॥ १९  
 तद्वाणभिन्ना बहुशो विपन्ना दीनावभूवुः कति भूमिपालाः ।  
 केचिद् विहायाजिमही प्रतस्थुः स्थिताश्चिरङ्कचन योद्ध कामाः ॥ २०

१५. सहस्र जिह्वा वाला सर्पराज भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं है, तो मनुष्य का तो सामर्थ्य ही कहाँ ? [यह एक पंक्ति ही है । इसकी पुनरावृत्ति हुई है अग्रिम पद्य के उपरान्त । संभवत यह पद्य लेखक की नहीं लिपिकर्ता की भ्रान्ति है । ]

१६. राजा का हृदय भ्रमरहित एवं उदार है, जहाँ कृष्ण का चरणकमल नियत रूप से स्फुरित होता रहता है । जिस चरणकमल ने बलि राजा के दमनावसर पर भूतल से आकाश तक नाप लिया था, उसका अणु भाग भी तेरे किस अंग के समान हो, यह नहीं जाना जा सकता ।

१७. आपकी स्तुति करने के लिये हजार जिह्वा वाला नागराज भी समर्थ नहीं है, तो मनुष्य की तो सामर्थ्य कहाँ ? इस प्रकार ( १४ से १७ तक ) तेज वहने वाली हवा के बहाने मानो राजा मान दिशा रूपी स्त्रियो से स्तुति किया गया ।

१८. इस प्रकार मानसिह के युद्ध करते हुए माघवसिह वीर आगये । वे बोले—राजन्, आप क्षण भर विश्राम कीजिये, इस युद्ध को समाप्त कीजिये ।

विशेष—माघवसिह मानसिह के छोटे भाई थे ।

१९. यह कहकर वीर माघवसिह युद्धाभिमुख हुए तथा सभी विपक्षी योद्धाओं को व्यग्र बना दिया । उस समय उनके भय से कोई भी युद्ध के लिए सामने नहीं आया ।

२०. माघवसिह के बाण से अनेक योद्धा छिन्न भिन्न हो गये, अनेक राजा दीन हो गये, कुछ युद्ध भूमि छोड़कर भाग गये, कुछ युद्ध करने के लिये कुछ समय खड़े रहे ।

निशेव तद्वासःस युद्ध गतेऽस्तमेवन्तदरातिमित्रे ।  
 संकोचिते तत्तष्णीमुखाब्जे स माघवेन्दुः सहसोद्दिदीपे ॥ २१  
 उद्दीपिते माघवसिह चन्द्रे तमांसि तत्रासुरमी प्रतीयाः ।  
 तत्तक्षभाजाम्बदनानि रेजुः कुमुद्वतीनामिव काननानि ॥ २२  
 राणा तदादुर्मदवीरं वीर्यो दुर्योधनायास्य पुरो बभूव ।  
 स कर्णं कल्पोऽर्जुनकल्पवीर्यं विजेतुकामः पश्य जगाम् ॥ २३  
 यत्त्व रणे माघवसिह, वीरान् बलेन विद्राव्य मुदम्बिधत्से ।  
 क्षणेन तत्क्षमापतिना समेत मुदा विहीन सहसा विधास्ये ॥ २४  
 राणा-नृपे जीवति या जिगीषा यूनोवृथा सा भवतोरुपेता ।  
 युवाम्बिजानीतमिदं मदुक्तं, सत्यं शपे विष्णुपदारविन्दम् ॥ २५  
 इतीरयन् बाणशतेव वीरः आच्छादयामास स ती प्रकोपात् ।  
 छन्नम्युन व्रासिरमास युद्धे रुद्धन्तथाऽभद्रगगनं शरीरैः ॥ २६

२१. दिन में रात्रि की कल्पना की गई है । अराति (शत्रु) का मित्र भी शत्रु ही होगा । शत्रुओं के युद्ध में इस प्रकार अस्त हो जाने पर वह दिन रात्रि के समान होगया । मित्र यहाँ द्व्यर्थक है । शत्रु परक 'व' सूर्य परक । सूर्य के अस्त होने पर रात्रि का आगमन होता है । उन शत्रुओं की तरुणियों के मुख सकुचित होगये । [सूर्यास्त होने पर कमलिनिया सकुचित होगई] अर्थात् शत्रुओं की स्त्रियां म्लानमुखी हो गई । तब माघवसिह रूपी चन्द्रमा उस रात्रि में सहसा प्रकाशित हो उठे । [काव्यगत सौन्दर्य दर्शनीय है ]

२२. माघवसिह रूपी चन्द्रमा के उद्दीपित [ प्रकाशित ] होने पर ये शत्रु अन्धकार में गये । तथा माघवसिह के पक्ष वाले योद्धाओं के मुख कुमुदिनियों के चन के समान खिल उठे ।

२३. दुर्मदवीरवीर्य राणा प्रताप माघवसिह से लड़ने के लिये [ दुर + योधनाय ] सामने आगया । कर्ण के समान प्रतापी राणा प्रताप अर्जुन के समान शक्तिशाली राजा मान को जीतने की इच्छा से कठोर वचन बोला ।

२४. राणा ने कहा— माघवसिह वीरों को अपने बल से विद्रावित कर इस रणभूमि में जो हर्ष का अनुभव कर रहे हों, मैं अभी क्षण भर में राजा मान सहित तुम्हें हर्षहीन बनाता हूँ ।

२५. राणा प्रताप के जीवित रहते तुम युवकों की जो जीतने की इच्छा है, वह व्यर्थ ही है । मैं जो कह रहा हूँ, उसे अच्छी प्रकार जानलो, मैं भगवान विष्णु के चरणों की शपथ लेकर कह रहा हूँ ।

२६. इस प्रकार कह कर वीर प्रताप ने उन दोनों को मँफ़्टों वालों से ढर दिया । आकाश वाला समूह से आच्छन्न होगया और वह दिन दुर्दिन के समान प्रतीत होने लगा ।



आदी गजेनैव गजो नियुक्तस्तुरंगमेनैव तुरङ्गमोऽपि ।  
 पदातिना पत्तिरथ व्ययुध्यन् समस्तदासीदुभयोः प्रयोगः ॥ २७  
 एव प्रवृत्ते गुह्यसगरेऽस्मिन् विसिस्मिरे दैवतमण्डलानि ।  
 शस्त्रान्धकारे गहने प्रवीरा भेजुर्भयच्छन्नमनः शरीराः ॥ २८  
 यस्समुखे यस्य पपात वीरस्त तजघान स्वपरो न भेदः ।  
 (बा)राणाचमूर्वाण विभिन्नदेहा भेजे विदेहा विदिशो दिशोऽपि ॥ २९  
 राणा नृपो वाणशतेन भूयः शूरस जीमूत इवान्वरुद्ध ।  
 तद्वाणसच्छान्ततनुः स घन्वी तं योद्धुकामः पुरतोवभूव ॥ ३०  
 तद्वाणसंभूतघनान्धकार व्याधूय भास्वानिव मानसिंहः ।  
 वभीरणक्षोणिमुखे रिपूणामप्रेक्षणीयो घरणीधुरोणः ॥ ३१  
 यतो यतो युध्यति दन्तिराजी ततस्ततो युध्यति मानसिंहः ।  
 सादो तथा पत्तिरथाप्ययुध्यन् युद्ध तदासीद्विषता स लक्ष्यः ॥ ३२

२७. सर्व प्रथम हाथी से हाथी भिड़ गये तथा धोड़े से धोड़े । पैदल से पैदल लड़ने लगे । इस प्रकार उस समय दोनों ओर से समान प्रयोग हो रहा था ।

२८. इस भयंकर संग्राम को देखकर देवताओं का समूह भी आश्चर्य चकित होगया । शस्त्रों की अधिकता से हुए घने अन्धकार में भय से आक्रान्त मन व शरीर वाले योद्धा इतस्ततः भागने लगे ।

२९. जो जिसके सामने चला गया, उसने उसे मार डाला । अपने पराये का भेद नहीं रखा गया । राणा की सेना बाणों से छिन्नभिन्नशरीरा विदेह के समान इतस्ततः दौड़ने लगी ।

३०. जिस प्रकार बादल जलधारा से भूमि को रोक देता है, उसी प्रकार उस राणा ने पुनः सैकड़ों बाणों से शूरवीर मानसिंह को रुद्ध कर दिया । उसके बाणों से आच्छान्त घनुर्धारी युद्ध की कामना से उसके सामने जा खड़ा हुआ ।

३१. राणा प्रताप के बाणों से उत्पन्न घने अन्धकार को दूर करके सूर्य के समान मानसिंह राणभूमि में शत्रुओं के लिये उत्प्रेक्षणी होगये ।

३२. जैसे जैसे हाथियों की पंक्ति लड़ती थी वैसे ही वैसे मानसिंह भी युद्ध कर रहे थे । घुड़सवार और पैदल भी लड़ रहे थे । वह युद्ध शत्रुओं द्वारा लक्ष्ययुक्त था ।

खड्गेन भिन्नाः कारिणो निपेतुः क्षरेण नूनाः परसाधिनोऽपि ।  
 पदातयोऽभी तरसा भयेन पेतुर्महीपालमणोरमुष्यः ॥ ३३  
 एवं नृपे युध्यति मानसिंहे प्रताप सतापितवैरिसंघे ।  
 अरातियो विगतप्रकोपाः गेजुर्व भियावै विदिक्षोदिक्षोऽपि ॥ ३४  
 सयुध्यतान्तत्र महाभटानामसङ्ग नदी प्रादुरभूउदारा ।  
 परामुमातङ्गमहाद्रिला केशेन शैवालवती विरेजे ॥ ३५  
 भयावहा भीरुजनावलीनामानेन्ददा, सा, भटमडलीनाम् ।  
 चकार योर्ध्वेण नदीमदीनां समानसिंहो, जित मानसिंहः ॥ ३६  
 देशे निराशो विजये तथा द्रा (क) (रा) शानुषो विद्रुतसर्वगर्वः ।  
 रण प्रयातुन्तद्वरा सचेतश्चक्रे समुद्रभ्रान्ति गतिः क्रमेण ॥ ३७

हृतगति रति वेगादास राणा नृपोऽपि,

द्विमुख इव स पश्यन् पृष्ठदेशे पुरोऽपि ।

नरपतिरति रोषाद् धावमानोऽरय पश्चाद्

असु रहितमिदं न श्रतमेक मुभोच ॥ ३८

३३. लङ्ग से फाटे गये हाथी और घाखो से छिन्न-भिन्न घुस्सवार यहाँ गिरे हुए थे । महीपाल मणि मान के डर से अनेक योद्धा भी (पँचल) गिर पड़े थे ।

३४. इस प्रकार प्रताप से संतप्त कर दिया है शत्रु वर्ग को जिसने ऐसे राजा के युद्ध करने पर शत्रु-योद्धा क्रोध रहित होकर विभिन्न विशास्त्रों में भयभीत होकर भाग गये ।

३५. युद्ध करने वाले योद्धाओं की यहाँ गून की नदी उत्पन्न हो गई । भरे हुए हाथी महान् पर्वत के समान लग रहे थे तथा योद्धाओं के केश शैवाल(सिंघार) की शोभा दे रहे थे ।

३६. जिसने मानरूपी (रघाभिमान रूपी) सिंह को जीत लिया है, उस मानसिंह ने अपने पराक्रम से रण नदी को विशाल बना दिया । यह भीरुजनों के लिए भय देने वाली एवं यीरु योद्धाओं के लिये आनन्ददायिनी हुई ।

३७. (अपने) देश की विजय में निराश, विनष्ट सर्वगर्व जलतगति राणा प्रताप ने अपने मन को पुनः रण में जाने के लिये (युद्ध करने के लिये) तद्वरा (ताजा) बनाया । अर्थात् यह पराजय का अनुभव करके भी पुनः युद्ध के लिये फटफ उठा ।

३८. द्विमुख (दो मुखवाले, व्यक्ति के समान चहे) देश से जाने तथा पीछे देगता हुआ राणाप्रताप हृत-गति होगया । इस (राणाप्रताप) के पीछे क्रोध से दौड़ते हुए राजा मानसिंह ने भी निष्प्राण के समान इस एक को ही छोड़ा । अर्थात्-राणाप्रताप तो चन गया, जेव सभी राणापक्षीय योद्धा मारे गये या अधीन होगये ।

रणशिरसि रिपूणां मृत्युरेवास्ति कीर्त्ये  
 नरपतिकुलभाजां क्षमाभुजस्तेनपण्डाः ।  
 समरभुवि जितानां वरिभूपावलीनां ।  
 प्रणतिमि तिवहजाः कीर्त्तये कीर्त्तयन्ति ॥ ३६  
 श्रीमानसिंहभुजचडमरीचिदग्धा  
 केचिन्नियेतुरवनी पतयोऽम्बरासी ।  
 द्वन्द्वं च केचिदपहाय निकुञ्जमीयुः  
 केचित्तदीय पदपल्लवमीयुरार्त्ताः ॥ ४०  
 संलग्ना नृपतेर्वभूवुरथ ये तीक्ष्णासिधारापथे  
 ते स्वर्वामविलोचनारतिरसोल्लासा स्पदंशत्रवः ।  
 उद्यत्तिग्मकर प्रताप दहन ज्वालाकशालस्य ये  
 खड्गस्यासु-रसंमुखा रणामुखे ते निर्जिताः भूमिपाः ॥ ४१  
 इत्य देशमशेषतोऽस्य तनयन्दुर्गं वश नीतवान्  
 घर्मानप्यवनीपतोऽद्रितिलकस्सस्था पयन्निर्वभौ ।  
 भदेवानथ देववृन्द सदव प्रोन्मूलिते पत्तने  
 नैवं कर्म सुदुष्करं सकृत्तान् जित्वा परान् वरिणः ॥ ४२  
 काचित्कुम्भलमेष्कानदरीद्वारिद्विषन्मण्डली  
 पश्यन्ती नृपतेः प्रतापदहन ज्वालावली दातिवषः ।  
 हित्वा तत्परिधान भूर्जवमन जाता कूलीनापि सा  
 दिग्वासा किमहो महोन्नतिहृदः कोपोऽपिलोकोत्तरः ॥ ४३

३६. युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं की मृत्यु ही राजाओं की कीर्ति के लिये है। वे राजा लोग निष्फल नहीं हैं। युद्ध-भूमि में जीते गये शत्रुराजाओं के समूह को प्रणति (नमस्कार) की बहुज व्यक्ति, कीर्ति के लिये स्वीकार करते हैं।

४०. मानसिंह के भुजदंड की किरणों से जले हुये कुछ राजा लोग अम्बर से पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ योद्धा युद्ध छोड़कर अपने घर भग्न गये और कुछ पीडित होकर उनके चरणाश्रित होगये।

४१. जो योद्धा राजा मान की तीक्ष्ण-धारावाली तलवार के मार्ग में आये, वे शत्रु लोग स्वर्ग-सुन्दरियों के रतिरसोल्लासके भागी हुए (स्वर्ग चले गये)। जो उगते हुये तपवांशु (सूर्य) के प्रताप रूपी दहन (अग्नि) ज्वाला से कराल (भयकर) खड्ग के सम्मुख नहीं आये, वे राजा लोग स्वत ही जीत लिये गये।

४२. इस प्रकार संपूर्ण देश, राणा के पुत्र एवं दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया व उन्मीलितपुर में ब्राह्मणों को पुनः मन्दिरों में वसता हुआ एवं धर्म की भी स्थापना करता हुआ राजा मानसिंह शोभित हुआ। उसने शत्रुओं को जीतकर इस प्रकार का कोई दुष्कर कार्य नहीं किया।

४३. कोई कुम्भलमेरु (दुर्ग विशेष) के जंगल की गुफा के द्वार स्थित शत्रु मंडली, प्रतापी राजा मानसिंह के प्रताप रूपी दहन (अग्नि) ज्वालामुखी को देखनी हुई कुलीन भी यह पहने हुए भूर्ज वस्त्रों को छोड़कर दिग्वासा (नग्न) होगई। कवि कहता है—तेजस्वी व्यक्तियों का कोप भी लोकोत्तर (अलौकिक) होता है।

# Rana Pratap and the Andhras

—Prof. K V R. Narasimham, M. A., Ph D.

Rana Pratap Singh—the very name thrills every patriot. That part of our motherland, which is known as Rajasthan and the house of Udaipur in particular can legitimately be proud of giving birth to such an illustrious son of our Bharat-mata.

Rana Pratap is the doyen of our freedom fighters. His unparalleled patriotism and unflinching devotion to dharma, his matchless tenacity and incomparable prowess can inspire any patriot in any part of the globe. His greatness can never be confined to a time or clime.

We had to fight the Britisher, and he was strong. We needed an example, which we could emulate. Rana Pratap was one such. He fought Akbar the Great, the mightiest of the Moghuls. Rana Pratap became an indelible source of inspiration for the Indian people and it was his noble spirit that roused and inspired us to fight the mighty British Empire, vanquishing it ultimately from the Indian soil.

All patriots did not come out openly to fight the Britisher. If terrorists and satyagrahis employed different weapons, a physically passive patriot could do something else. It was the writer. A writer has an important role to play in the freedom—fight. The writers could create a general atmosphere conducive to the fight and without this proper atmosphere, the freedom movement in our

country could never have gained such gigantic proportions.

In a very subtle way the necessary back-ground for the fight was created. Many a writer did not oppose the Britisher openly. But they chose similar circumstances, where in a true patriot acts and acts in a very different way than a traitor would do. They could freely discuss state-craft, inspire the people to be righteous and spur them to action wherever it was necessary.

Can a writer get a better example than Rana Pratap's to do justice to his pen?

Rana Pratap's untiring efforts for the Swarajya were first known to the people of Andhra through the "Annals of Rajasthan." Kala Prapurana Chilakamarti Lakshminarasimham known as Andhra Scott, was inspired by Todd's work. His was a master pen. He wrote the 'Rajasthan Kathaval' The first part of this book gives in detail the life and the place of Rana Pratap among the heroes of Hindusthan. Eversince, many a poet drew inspiration from Rana Pratap Singh.

Sri Siva Sankar Sastry translated 'Rajapoota Jivana Sandhya' a Bengali novel into Telugu, which again could be a good source to draw the material from.

The stage, unlike a poem, is a mass medium. If the poem could be a treat to

the scholar, the stage could reach the illiterate villager.

“Rana Pratapa Singh” a Telugu play written by Sri Vedula Satyanaravana Sastry had the source material from Rajapoota Jivana Sandhya. The playwright is a poet of no mean order, and as such this drama in five acts could be to the cultivated taste of the reader

We have many more dramas with Rana Pratap Singh as the hero Dwijendralal Roy's works have an honoured place among Indian historical dramas. Some of them are translated by Sri Sri-pada Kameswara Rao. He abridged the drama of Sri Roy to a third. This Telugu play can at once be a good piece of literature and has a good stage value too

Sri Gundimeda Venkata Subba Rao too followed more or less Sri Roy in his “Rana Pratap—The Lion of Rajasthan”. Sri Subba Rao, an adept in play-writing, is at his best at a historical drama. The drama in five acts gives a vivid picture of the exploits of Rana Pratap

These two Dramas have a very welcome feature about them. There is a general feeling among us that Rana Pratap was no doubt a great patriot, but he was an unsuccessful fighter. But that feeling is reduced to a bare minimum in these two plays. Both the plays end with an optimistic note. In fact, Rana Pratap could regain all his lost territory excepting Chitor. This was brought in aptly, and proper justice was done to the great fighter. Both the dramas end with the death of Maharana Pratap. But the hero's death

does not strike a discordant note even in an Indian heart. The audience feel that Rana Pratap did his best and left the unfinished work to his compatriots. He was not portrayed as a hero who died of a broken heart.

A deviation from the current belief was made by Sri Subba Rao. It is said that Rana Pratap, in a weak moment, wrote a letter to Akbar surrendering himself to the mighty Moghul; and it was Prithvi Singh a poet, who adorned Akbar's court that could inspire the Rana once again and spurred him to action against Akbar. But Sri Subba Rao suggests that the letter is only a forged one, brought out at the instance of Akbar, only to save the face of the Moghuls and demoralise the freedom fighters. As far as the other part of the episode is concerned, it is accepted that Prithvi Singh, though a court poet of Akbar, had great respect for the Rana. It is quite possible that he too was misled, and so got annoyed and his letter inspired Rana Pratap. Whether the letter was forged by Akbar to save his own face or dubbed as forged by the playwright to save the face of the hero, is a matter to be decided by the historians. But it surely opens a new field for researchers. Even if the letter were a genuine one, the change brought out by Sri Subba Rao is most welcome, as it gives a tonic effect to the hero's character. And such a deviation is recommended by our rhetoricians.

Another drama, “Rana Pratap Singh” by Sri I Yajnanarayana, is more or less an adaptation to the stage of the material available elsewhere. The play is in good Telugu

but the supernatural element in a historical drama is generally taken to be out of place and this play could not be very popular.

Sravyakavya is more or less a class medium. Sri Rajasekhara Stavadhani, took to Sravyakavya. At the masterhands of this poet, this kavya turned out to be a classic. It is on a par with Sivabharatamu another historical poem, by Sri Venkatesha Sastry. The Sivabharatamu has Chatrapati Shivaji as the hero Sivabharatamu and "Ranapratapasimha charitramu" can be said to be twins; one excels the other in poetic beauty; both have historical themes, and freedom fighters as their heroes. They came out at a time when

we were in the thick of the fight with the Britisher.

Rana "Pratap Singh Charitramu" brings out the hero's life & exploits in detail. We get a glimpse of his 'compatriots' and his enemies and their devotion and even their malice. The poem takes us to an epic atmosphere, of course, without the supernatural element in it.

These are some of the works on Rana Pratap Singh. Though he was dubbed as a misguided patriot by some people, the nation, in general, and the poets, in particular, took him as a perennial source of inspiration. Andhras are no exception to this.

Maharana Pratap left behind a story and a record in history so glorious as to inspire freedom-loving people everywhere.

—R. P. Tripathi.

# Maharana Pratap and Shivaji

—Prof. M. J. Pathakji

The ruling house of Mewad carried on for centuries a great fight against the different Muslim dynasties which were successively occupying the throne of Delhi. This struggle almost became continuous and very bitter since the time of Rana Sanga. It was Rana Sanga who gave up the usual defensive tactics of the Rajputs and went upto Sikri to challenge the conquest of Hindustan undertaken by Babar. Since that year 1527 A. D. for more than one hundred and fifty years an incessant fight went on between the Sesodias of Mewad and the Mogul Emperors of Delhi.

All these struggles were carried on with intermittent successes and reverses. In this long difficult fight of generations between the Mewad Rulers and the Mogul Emperors, undoubtedly the most heroic as well as the most inspiring was the one put up by Rana Pratap against Akbar. This conflict is of great importance from several points of view, all of which will be referred to here very briefly as these few lines are written by way of a general appreciation only of the great Pratap.

Pratap had to oppose one of the most remarkable kings who ever ruled India. Some consider Akbar as one of the greatest kings the world has ever seen. Whatever the historian's opinion may be, it can be definitely affirmed that Pratap had to face a very powerful adversary.

Islam had penetrated India for the preceding five centuries and the Mogul period was one of culminating glory for Islam in the country. Even during the Mogul period the regime of Akbar had a characteristic strength and grandeur. Pratap with his limited resources of men money and material had to combat against the unlimited resources of an empire which was fast increasing its control over the whole of North India. Smith says: "the empire of Akbar during the last quarter of the 16th century was the most powerful in the world and its sovereign was immeasurably the richest monarch on the face of the earth."

Moreover, during the sixteenth century Hindus had lost all hopes of maintaining, far less of extending their power in the whole of India. Rana Sanga's defeat in 1527 brought to a finish for the time being, all ambitious designs of the Rajputs. Hemu's overthrow in the 2nd battle of Panipat of 1556 at the hands of Akbar demolished all ideas of mighty Hindu revival to the five century old military and political domination of the Muslim conquerors. In addition to these disappointing events happening in North India, the battle of Talikota fought in 1565 brought to a disastrous end the Vijayanagar Empire in south India. In this way the century was one of complete political mastery of Islam over the Hindu kings and the latter who were carrying on a mighty though hopeless resistance to overwhelming



Islamic forces rushing into India had received their death-blow. Pratap came on the scene of action in 1572 A. D. — exactly at a time when the Hindus were thus already terribly submerged thrice in less than forty years—1527 to 1565—under the ever expanding flood of oceanlike Muslim conquering hordes.

Such disheartening state of things for Hindus in their own country thus brought even the proud Rajputs to submission before the might of Akbar and his Moguls. But this fact aggravated very considerably the already difficult task undertaken by Pratap. His own kith and kin went over to his opposite camp. Those very brave and mighty Rajputs who had put up a terrific resistance for more than eight centuries beginning from the conquest of Sind by Mahamud Kasim in 712 A.D. to the battle of Sikri in 1527 A. D., had now laid down their arms before Akbar. It was an irony of fate that so soon after the gallant effort of Rana Sanga and the determined resistance of thousands of his Rajput warriors against Babar the descendants of those very warriors now began to submit willingly not merely their power but even their daughtersto Akbar.

We come across numerous instances in earlier Rajput history when for the sake of not giving his daughter to a Muslim monarch, a Rajput king would wage a desperate war, get thousands of his brave fighting men killed and finally if the struggle would appear fruitless, he would himself poison the same daughter and would also see that all ladies of his har-

em and those of his fighting men burn themselves in the terrible 'Jauhar' and thereafter would lead all his Rajput men in saffron clothes for the performance of 'Kesariya' and die to a man. A Rajput king would sacrifice everything for upholding what he regarded a matter of prestige and honour for his family.

That the inheritors of such high and noble traditions should by themselves offer their daughters in marriage to the Mogul Emperors shows clearly the depth of the feeling of hopelessness which had overcome the Rajputs at engaging into a challenging fight with the Delhi monarchs. It proves that they had lost heart in their ceaseless valiant fight of centuries against Muslim conquerors and they now became unknowingly by marriage alliances party to a scheme of empire building which had an ultimate purpose of their own destruction—an object which they could not realize at the time.

Pratap was the only Rajput who really understood this planning of Akbar and stood against it like a man. With a guerilla war fare of utmost difficulties, miseries and obstacles to himself, his family members and his heroic fighting men, he vehemently protested by his action this attempt of Akbar to completely emasculate the Rajputs. In the vast ocean of the prevailing Rajput defeatism Pratap firmly stood like a conspicuous beacon light on a rock, inspiring countless generations of Rajputs who have followed him to look up to him for a noble outlook, an unrivalled determina-



tion for righteous purpose and an unparalleled capacity to suffer all possible difficulties for a cherished ideal

It may be also emphasized that Pratap's undertaking was far more difficult, strenuous and complicated than that of Shivaji, who is generally acclaimed the saviour of the Hindus.

Pratap's kingdom was geographically much nearer to the Mogul Emperor's headquarters and therefore far more exposed to danger than Shivaji's. The latter being far away from Delhi and Agra was much safer. Besides, the vast - Vindhya-chal range also intervened between Mogul capital and Shivaji's area of adventure.

Pratap had to challenge a king of rising fortune who was fast developing his empire. Shivaji opposed an empire wherein deterioration had already set in. The former had thus to fight against a power growing from strength to strength, the latter had to finish a weakening structure.

The army led by Akbar had still kept up the strong traditional sturdy fighting capacity of its central Asian blood, whereas the one led by Aurangzeb had lost its high fighting calibre and had grown enervated since the days of Jahangir and Shah Jehan which had brought in for the Moguls prosperity beyond measure leading to luxury and pleasures of life even among the common soldier. To fight with Akbar's army was thus much more difficult for Pratap than to break down Aurangzeb's force for Shivaji.

Pratap was single-handed in his opposition to Akbar. The other Rajput kings

connected with him by a common faith and blood relationship took up the side of Akbar. Even Pratap's own brothers gave up his country's cause and went over to Akbar. The non-Rajput opponents of Akbar were also few and were easily vanquished by Akbar and his generals. Thus almost the whole brunt of a fresh and growing empire's full weight fell upon Pratap, whereas Shivaji's effort was one of the several great efforts at that time throughout India to oppose the evil deeds of Aurangzeb. The Sikhs in Punjab, the Jats and Satnamis in Central India, Rana Raj-Singh of Mewad and Durgadas Rathod of Marwad in Rajputana, even in South India Bijapur and Golconda together with Shivaji were all one in not allowing Aurangzeb to have his own wishes easily carried out. The last Sikh Guru Govind Singh opposed Aurangzeb till the latter's death; the Guru himself dying a year later in 1708. Rana Raj Singh who had made Mewad too hot for Aurangzeb's vast army survived Shivaji for six months. Durgadas, the inveterate opponent of Aurangzeb, was carrying on his vigorous campaign even against the latter's successor. The kingdom of Bijapur submitted to Aurangzeb in 1686 and that of Golconda in 1687 - a few years after Shivaji's demise. This both kingdoms carried on their wars against the Emperor in South India together with Shivaji helping each other alternately. Prof. Sharma remarks in 'Crescent India' page 550, (Vol. II), 'In the eyes of Aurangzeb the worst offence of Kutb Shah was his fraternising with infidels (the Marathas). Shivaji, after his fight from Agra in 1666 had received effective help from Golconda in recovering forts

from the Moguls. In 1677 Shivaji was promised an annual subsidy at Haidrabad for the defence of his territory.

Pratap was helped by none except the single instance we come across of his own minister Bhamashah helping him with money. All others—Rajputs and Muslims—had joined hands to completely annihilate Pratap. The Marathas with a single voice without any defection were behind Shivaji. It required a far more powerful determination to be in Pratap's position than to be in that of Shivaji.

Both employed noble means to carry out noble aims. But among these two, Pratap may be given a higher place. Akbar's territory was so near Pratap's own. He could also have righteous indignation against his brother Rajput kings who joined Akbar and whose territories were contiguous to his own. But he did not plunder any of these territories. He only wanted to protect his own kingdom and to restore what he lost. Shivaji, on the other hand, took away several times immense treasures from Surat which was then a part and a port of the Mogul Empire. Pratap's more high levelled ways in this way brought to him greater difficulties.

Moreover, Pratap flourished almost at the end of the great long Rajput epoch, at a time when the whole Rajput race was obviously exhausted in all sorts of resources by several centuries of single handed deadly struggle with countless Muslim armies pouring into India from time to time. Thus an exhausted Rajput Kingdom had to oppose the might of a freshly started empire continuously reju-

venated by Muslims coming from Central Asia. Such tremendous difficulties could not be faced by even the other brave Rajput rulers and their Rajput warriors. So it was that they gave up their disastrous struggle and accepted the Mogul's domination which they thought to be inevitable. It adds volumes to the credit of Pratap that he was not overcome by such circumstances and kept his head erect and heart unnerved for a strenuously long period of twenty-five years, when all other mighty Rajputs lost their usual firmness and completely surrendered to the Moguls.

In contrast with Pratap, Shivaji had an easier problem to tackle. The latter headed a national rising of the fresh and young Maratha race, everyday gaining new vitality and had only to strike down an imperial power which had already grown dilapidated from within by its own inherent weakness.

Thus in the case of Pratap an old, exhausted devitalized Rajput race had to face the growing might of a new race of Moguls helped moreover by his (Pratap's) own kith and kin, whereas Shivaji with his fresh Maratha race had merely to pull down a tottering imperial structure which had been worn out and had become so overgrown as to be intrinsically unmanageable.

Lastly, Pratap had to oppose Akbar's policy which was apparently very tolerant but really most dangerous to Hindus. Akbar was at the time greatly admired and respected for his so called liberality.

by his contemporary men and his political game was followed to a great extent by the British rulers later on, accompanied by results too fresh to require any analysis here. Thus it was most difficult for Pratap to get any general sympathy from the common Hindu of the time who thought he was exceptionally free from any religious persecution by Akbar. On the contrary, Shivaji had to oppose the religious fanaticism of Aurangzeb which naturally aroused in the hearts of the masses of the people a hatred against the intolerant Imperial religious policy. Aurangzeb could not even conciliate with the Shia Muslim Kingdoms of the Deccan. So it happened that in the task which Pratap undertook all Muslims were against him and many Hindus even not merely did not sympathize with him but actively supported the cause of his enemy Akbar, whereas in the work of Shivaji not merely all Hindus were actively helping him, but even the harassed Shia Muslims were on his side. In this way Pratap had to oppose an externally tolerant religious policy which was naturally admired by most Hindus who in those mediaeval times were unfamiliar with such apparent religious liberalism. Shivaji had to break down a fanatic and intolerant system of government which brought about the destruction of thousands of Hindu religious places of worship, a state of things bringing bitter resentment in the hearts of all Hindus, and thus evoking a far more popular approval for his challenge to the Empire.

The work of both Pratap and Shivaji has been mighty and tremendous. Both have been very great in their own way, but if we compare the two and the circumstances under which they were placed and

had to carry out their work, it can be definitely laid down that Pratap's task was certainly an uphill one. His achievements were more difficult of accomplishment, more strenuous in their execution, hindered by many more adverse circumstances and brought about in the midst of far fewer favourable environments than those of Shivaji.

Generations after generations have passed since the death of Pratap but he has remained immortal. No sooner as Akbar, the greatest Mogul Emperor is remembered, immediately the memory of Pratap becomes fresh. Even otherwise his memory is imperishable. He has always been the ideal of the Rajputs in general and their kings in particular.

The Hindus have the time-old convention of giving their children the names of the persons whom they look up to as models. When the Hindus very much respect some one, they assign his or her personal name to their newly born children. In this way Rama, Lakshman, Bharat, Krishna, Bhim, Arjun, Karna, Sita, Jasoda, Anasuya have been adopted for many as their proper names. So it has been with regard to Pratap. Since his days many Rajput kings, numberless Rajput commoners and thousands of other Hindus have been named as Pratap. Rana Pratap thus lives as Pratap in the memory of countless people, who consciously or otherwise remember his great name and his immortal work and go on paying their tribute to a man enshrined permanently in their hearts, by constantly reciting his name.

Such was Pratap. He more than merely justified his name which signifies 'force' or 'power.' He was Pratap in name and he became Pratap in fact.

# Maharana Pratap & Panjabi Literature

—Dr. Surindar Singh Kohli

Maharana Pratap has become an image for heroism and patriotism throughout the length and breadth of our country. It is because of his unique love for the motherland. He fought against aggression and foreign domination throughout his life. He never submitted to the Mughal imperialism, but accepted a harder life with his band of loyal followers. He had to go without food and without shelter for days, but this did not and could not cow down his indomitable spirit. Nothing could make him swerve from his high ideals and grim determination. He stood for liberty.

Guru Gobind Singh of the Panjab—the tenth Guru of the Sikhs—and Shivaji of Maharashtra also faced Mughal imperialism like Maharana Pratap, therefore whenever there is a reference to the past glory of **Bharat**, to the patriotic fervour and towards the struggle for independence, the names of all the three appear together. They together present a significant instance of national integration whereby the Rajputs, the Sikhs and the Marathas become one, having the same ideal in view, i.e., the protection of the motherland from the hordes of the foreign invaders.

We are wonder-struck, when we read the stories of the great sacrifices that were made by Rajput princes and princesses. No prince would turn his back in the battlefield, this was their unique tradition. No prince would accept the interference

of any foreign element within his territory. The Rajput blood was to be kept pure and, if need be, the womenfolk burnt themselves to death in the face of the onslaught of the advancing enemy. Maharana Pratap was a symbol of such a glorious tradition. The Mughal Emperor wanted to subdue such a brave Maharana. If the Maharana wanted, he could easily enjoy all the comforts of life, but it was to be at the cost of Rajput traditions, which the great Rana could not tolerate.

Our Panjab, being the gateway to India, had to bear the brunt every time, when our country was invaded. Our people had to be always ready for sacrifices. Guru Gobind Singh prepared an army of the **Khalsa** for the defence of the country. The heroic deeds of brave Panjabis were sung in the form of **Vars**. But a closer study of this genre of the poetic expression reveals that till the modern period no reference is found of the great Rana in the Panjabi heroic poetry. This was most probably due to the fact that because of the fewer modes of conveyance, the contacts were very few. The knowledge about the historical personages was very much limited. Moreover, the patriotic fervour was localised. During the British regime, an all-India consciousness for independence was awakened. People began to think in terms of the whole sub-continent. A great organisation, i.e., Indian

National Congress. was constituted with the main aim of the attainment of independence. This movement aroused heroic and patriotic feelings. The poets and literateurs also began to think on all-India basis. Since the emotional outburst of the people can be brought about through poetry, we hardly find any reference to the Maharana in Panjabi prose, fiction and drama. His heroic life was, however, rendered in Panjabi, in the school text-books after independence. Short patriotic songs were also interspersed in these texts, eulogising the great

sacrifices made by Guru Gobind Singh, Maharana Pratap and Shivaji for the motherland.

The Panjabi poets, after independence, and especially in the recent Chinese and Pakistani invasions, have sung numerous songs in order to inspire and arouse the spirit of our brave soldiers in particular and our folk in general. In these songs we find several references to the brave Rajputs and especially the exemplary feats of the great Rana. We produce below some of the examples:—

- 1- O ! My Pratap ! arise and put on thy armour.  
( Vidhata Singh Tir in his poem, **Dhi Puttar nun Awaz** )
- 2- Thou art the son of Pratap  
( Kartar Singh Balaggan in his poem, **Bharat de Nau jawan nun wanger** )
- 3- They have their history of Mewar in the background  
( Gurdit Singh Kundan in his poem, **Desh de Rakhe** )
- 4- . . . and Pratap have raised our prestige very high  
( Hazara Singh Gurdaspuri in his poem, **Laggi Chot Nagare te** )
- 5- We swear by . . . . . and Chittor  
( Darshan Singh Awara in his poem, **Suagat** )
- 6- Awaken again the glorious tradition of Pratap  
( Nirranjan Singh Naqis in his poem, **Sahitkar nun wanger** )
- 7- Pratap and . . . have raised its honour  
( Bishan Singh Upashak in his poem, **McMahon Line** )
- 8- Will he be able to face the blow of the sword of Pratap ?  
( Kartar Singh Shamsheer in his poem, **Rubaeen** )
- 9- How can the unswerving warriors of India tolerate . . .  
Those Rajput . . . warriors of six feet height ?  
( Bhagwant Singh in his poem, **Mitr Dhrohi nun** )
- 10- We sacrifice our lives to keep up our honour to preserve the prestige of  
Rajput mother's milk,  
Our . . . Ranas have sacrificed their lives for this honour.  
( Sant Inder Singh chakravarti in his poem, **Bir Bolian** )

- 11- You have been goaded on by Pratap and ...  
(Surjit Multani in his poem **Seema te Lar Rahe Sipahi nun** )
- 12- We have to follow the footsteps of Rana and ..  
( Amar Komal in his poem **Bir Sainkan da Geet** )
- 13- You are the offspring of .. and Pratap;  
If need be, place your head on the palm of your hand for the sake of your country.  
( Gurdev Singh Maan in his poem **Geet** )
- 14- We are the sons of Pratap,  
We did so that our country may live.  
( Dr. Vishwa Nath Tiwari in his collection **Tan di Chikha** )
- 15- We are lions . . . we are and Ranas  
( Uttam Singh Tej and harbans Kaur in their collection **Kulian Chhamkan** )
- 16- We are lovers of and Pratap  
( Inderjit Hassanpuri in his poem **Var deiaay Zindgani** )

Such like references may be found in the poems of other poets Maharana Pratap now belongs to all Indian Literatures. Because of the golden ideals that he followed, he will be remembered for ever by the people of the Panjab

— — —

# IMPACT OF MAHARANA PRATAP AND OTHER RAJASTHANI HEROES ON ORIYA LITERATURE & NATIONAL MOVEMENTS IN ORISSA

—Dr. Gopal Chandra Misra, D. Litt.

A name to remember, the bravest of the braves among the Rajputs, the Maharana Pratap Singh, belongs to the unique honour of having pledged his life to the cause of his dear motherland, at the cost of shedding blood, waging war for a quarter of century. Rajasthan the land of the Aryan has the signal honour of having produced a galaxy of proclaimed heroes, wellknown in India for their extraordinary valour conviction and a high sense of patriotism always characterised by self-sacrifice, fearlessness and death-defying spirit. The Rajput heroes, even after centuries of their death have been shining as bright luminaries and will continue to shine as such throughout the ages. Their geniuses were unsurpassable, their firm ways of upholding morals and values were simply rare and for this they attained perfection as heroes and won universal recognition like Maharana Pratap Singh, and Particularly Rana Pratap has been described as a Popular personality in Indian literatures, and of all the good qualities of such a renowned hero, 'Patriotism was his offence' as this is remarked by Dr Smith, the wellknown historian. It was inevitable for the force of his character that youthful Ranapratap son of Udai Singh would defy the might of Akbar the great Mogul ruler in Indian history (1556-1605). He possessed enormous strength that he sitting in his forts, could shake,

the entire Mogul empire to its very foundation and the heritage of building fortifying and consolidating the Rajputs has passed on to this great exponent of Patriotism in our country. Rana Pratap shared his nation's grim determination and his bravely acts have been portrayed as to reflect integrity, originality and a tradition that belongs to India only and that is upholding ones' freedom against all odds.

In Oriya literature modernism took its shape in the early years of the present century the new innovations were in form of stories, poems and fictions and the author of such stories and fictions chose thematically to draw upon the lives of great Indian personalities, historical, social, and political. Thus Budha, Ashok, Ranapratap, Sivaji and other personalities in various fields of life were adopted as popular subject matter for study materials of children as well as adults. Glimpses of such glorious lives unlocked humanity from every readers' heart and brought to the parched mind the needed moisture of understanding and sympathy of the many facts of Indian heroism, the Rajasthani heroism struck the imagination of the literary bards of Orissa from the last quarter of the last century and they presented either in fiction or in drama the Rajasthani personalities their acts, achievements to the Oriya readers in a most enchanting manner and absorbing style. In Oriya



literature the Battle of Haladighati has been thematically accepted, celebrated and immortalised in the works of historians and authors. The battle is well-remembered and the valour of Rajputs has been identified with the bravely acts of Rana Pratap. The grand mothers narrate to their dreaming grand children such amazing deeds of Prâtap, the youthful soldiers jump to feet to hear of the extraordinary skill of fighting of Prâtap. The whole of Rajasthan, may the whole of India a resounded with the marching song of Pratap Singh, his amazing deeds another exciting tales of Haladighati have found place in so many compositions, poems short stories for children and one act plays. The important features of such compositions based on the heroic tales of Rajput heroes headed or preceded by Rana Pratap Singh is its deep patriotic note and national appeal. Since the later half of the last century with the beginning of renaissance in Oriya literature these heroic tales of Rajasthan poured in Oriya compositions and periodicals and it create a similar atmosphere in the country.

The glorious life of Rana Pratap and his lineage has been sung in Oriya literature including the translation of the Todds annals of Rajasthan and the descriptions as given by Siba Prasad Das Ramachandra Aharya, Godavarish Mohapatra, Kalindi Charan Panighani, Dayanidhi Misra, Dhaneswar Stapathi, Aswimini Kumar Ghose are thrilling and provide a sumptuous feast of heroic tales of Rajasthan the spectacular performances of the Rajasthani fighters against the Moghul troops. "Rana Pratap Singh" is a book

(a biography) written by Godavarish Mahapatra and also a book with the same title is written by Sri Dayanidhi Misra reveals to the Oriya children the hero in his true colour a noble character rare in the history of the freedom movement of a country.

Rana Pratap's noble and fearless character has baffled the foreigners and the titles published in Oriya are devoted to the study of his high genius. In modern Oriya Literature whether Juvenil or General there exists numerous works in which lives of great Rajput heroes and their historic performances have been represented reconstructed from the available records.

In Godavarish Mohapatra's book 'Rana Pratap' the Chapters deal with the brief history of Rajput clan Mewar coronation of Maharana Pratap, preparation for war against by Rana, severe ordeal, Akbar, Haladighati letter of Pruthiviraj, recovery of Mewar, and the last years of Rana Pratap. It contains all the qualities of an essentially good and absorbing story and in their telling the author has succeeded in producing life throbbing effects on the minds of young readers. After all Rana aspired to free his mother land from the clutches of the Turks, while some of his contemporaries surrendered their territories to the invading Moghuls. Rajputana produced a hero who proclaimed at the cost of his life "Freedom first, Freedom second, freedom always." This is remarkable for its sense of historical responsibility and literary splendour.



A passage from the above book clearly shows how successfully the author has brought out the salient features in the life of Rana

“SANTAN AJI Ma Pakhare Bidrohi  
Au Upaya Nahi Deshar Ehi Dundinare  
Taku Lakshya Digare Chakraba pain Eka  
Bhagabanhi Saha E Katha Bhabila Bele  
Prapatanka Akhire Luha Ase Sira Prasi-  
ra Tharia Fae Kahanti-Hai. Pua hoi Mar  
e durdasa kipasi dekhibi Jiban dele ki  
mar mukti nahi Santan raktare mibarar  
ban giri kandara ranjita kale kan chitor  
udhar hoi parib nahe, Taha Jadi hua  
sethilagi Pratap Prastuta achhi Sethilagi  
Pratap age sarathi heb Varsa Manib nahi  
bajra manib nahi Akas manib nahi. Sag-  
ar Manib Nahi Agniki Akatarare abicha-  
rare lampha deb.” — what simplicity of  
language and profundity of thought  
Here Pratap pledges himself to the cause  
of liberation of Chitor and for the achiev-  
ement of that noble mission Pratap himse-  
lf is his own Charioteer no rain no thun-  
der, no cloud, no ocean, no fire, will keep  
him back from his march Here Pratap is  
considered and portrayed as the greatest  
patriot of mother land and in the const-  
ruction modern nationalism in India  
Rana Pratap's sacrifice has always been  
acknowledged. The modern position of  
nationalistic India only underline the far  
sighted vision and practical wisdom of  
boldness of those Rajput heroes like  
Rana Pratap in the sixteenth century  
India, and the character of Rana Pratap  
and his life should be considered from  
this aspect only. Throughout his activiti-  
es, plannings and marches Pratap created  
a wonderful spirit enduring and sustai-

ning and trained a large band of sincere  
devoted soldiers and executives whose  
successors generated a force in the nati-  
onal movements in British India and  
provided an impetus to the congress,  
Volunteers, not only in Orissa but throu-  
ghout this country The biography of  
such proud son of India is again well  
represented in Dayanidhi Misra's book  
“Rana Pratap” His epic struggle which  
in fact forms preceding part of the nati-  
onal history of nineteenth century India  
has been well documented A good bio-  
grapher Sri Misra has done well to gather  
together vast materials from ‘Toods’  
‘Rajasthan’. The book divided into chap-  
ters of unequal extent is a faithful record  
of the history of Rajputs and its heroes.  
Having 106 pages the book was at first  
serialised in the Oriya Journal ‘Mukur.’

This biographical work has all the  
good qualities which a well brought out  
book in this generation should indeed  
have, an appealing theme, a concise and  
lucid exposition of Rajput Chivalry in  
medieval India.

“Rajput Gaurab” (Glory of Rajputs)  
is a title in two volumes written by Sibp-  
rasad Das, the wellknown historical bio-  
grapher in Orissa was published by the  
Students store, Berhampur in the year  
1935 and 1936. The historical facts as  
dealt with in these two volumes are rich  
and varied. The book has emphasised the  
emotional, imaginative and adventurous  
aspect of the Rajput chieftains, warriors,  
and generals It revelled in the heroism of  
Rajput rulers In nut shell the author has  
attempted to discover the charm of

medieval war-chivalry and love of freedom. Indeed the biographer has revived the forgotten Rajput glory and has restored faith in the struggle for freedom, the triumphant resurgence of Indian Nationalism. Rana Pratap has, in his acts, shown that self-sacrifice in the war is the only reward for a worthy son of a great country. The topography and history of Rajputana, Mewar, Bappaditya, Rana Samar Singh, Rani Padmini, Hamir, Rana Sangram Singh, Bikramajit, Panna, Udaï Singh, Sakta Singh, Rana Pratap, Rana Raj Singh, Jayachandra, and many other interesting personalities have been dealt with vividly in these volumes.

**Mewar** (1928), **Bikanor** (1931), **Marwar** (1930) by the same author are notable literatures on the rise and decline of Rajputs in central India and in all these writings the sacrifice and love for freedom of Rana Pratap has sparkled like jewel. A great deal has been written in periodicals or books and in all these the patriotic behaviour of the hero and his enigmatic personality has been understandably brought out. Rana Pratap's undivided loyalty to his mother-land has inspired millions in this country. Invariably every young man understands the enduring qualities of Pratap's character, the man for whom the most young men and women today in India entertain the same sentiment as the Germans for Frederick the Great or the Italians for Garibaldi.

The impact on Oriya literature and the national movement in Orissa in the early twenties is easily discernible. Thematically the thrilling story of this great patriot Rana Pratap offers a parallel

background in British India when the countrymen had to wage war under the leadership of the Congress party to get rid of foreign rule. The theme of Rana Pratap can be identified with the national struggle for freedom in this present century. The theme of Rajput heroism has been acceptable in novels and short stories also. Ramachandra Acharya's novels, '**Kamal Kumari**' and '**Pranaya Prabah**' are the two among others to note. Also in '**Birbharat**' by Basudev Mohapatra, we come across a strikingly similar theme. Kalindi Charan Panigrahi's one-act play '**Padmini**' is also a serious piece in which the undrunted heroism of highly conscious and daring Rajput women have been celebrated. In schools and colleges young boys and girls have rather been impressed at the depth of character and sacrifice of such illustrious sons and daughters of Rajputana and invariably they choose to dramatise them on occasions. As J. L. Garvin profoundly observed "That we may keep our hold upon the meaning of life and preserve a conviction of human destiny, there is nothing more vital than that we should remember our dead"; and as such few names can we recollect in modern India with more patriotic fervour or deep sense of gratitude than that of 'Rana Pratap' the selfless patriot of medieval India, a life of noble pursuits and dedicated services. He was one of our truly great heroes whose memory time can not efface, symbol of sacrifice and self-respect. On the whole the valour and military achievements of Rajasthani heroes constitute a record of the Indian history of which one is justly proud.

# IMPACT OF MAHARANA PRATAP AND RAJASTHANI HEROES ON THE LITERATURE AND MOVEMENT OF BENGAL

—Sukhamay Mukhopadhyay

## I

Bengal was unfortunately the first State of India to be enslaved by the British after the latter's victory at the Battle of Plassey (1757). But Bengal was also the first Indian State, where yearning for freedom took concrete shape towards the close of the last century.

Since the rising of the yearning for freedom, the Bengalees began to adore those heroes of India and abroad, who fought for the freedom of their countries. It is interesting to note that most of the heroes adored by the Bengalees were Rajputs. The reasons were not far to seek. Col. Tod's **Annals and Antiquities of Rajasthan** was very popular among the educated Bengalees. A Bengali work named "**Rajput-Kahini**," based on Tod's "**Rajasthan**" and written by Kaliprasanna Das Gupta was widely read by all sections of the Bengalees. These two books were mainly responsible for the popularity of Rajput heroes in Bengal.

Of those popular Rajput heroes, the position of Rana Pratap is the highest. His name became a household word in Bengal. His relentless struggle for freedom won everybody's heart and it inspired the patriotic people of this State, who were themselves fighting for freedom. Many novels and dramas about him were written by both eminent and non-eminent Bengalee writers.

First we shall deal with the novels. The earliest and the best among such novels is "**Rajput-Jivan-Sandhya**" (1879) by Ramesh Chandra Dutt. This novel covers almost the entire career of Rana Pratap. In it, the battle of Haldighati has been described in detail. The rescue of Pratap by his brother, Shakta, Pratap's unflinching struggle for freedom, his decision of making submission to Akbar in time of despair, giving up of that idea at the exhortation of Prithviraj, the poet, his plan of migrating to the Indus Valley, timely financial help by his minister Bhama Shah and his final rally have also been described. Parallel with the historical story of Rana Pratap, an imaginary story concerning Tej Singh and Durjay Singh, depicting their traditional rivalry and ultimate fight and Tej Singh's love with Pushpakumari, a Rajput girl, runs through the novel. The customs and habits of the Rajputs of that time have been reflected in this story.

The novel "**Rajput-jivana-Sandhya**" ends with a sad tone. Its concluding chapter deals with the defeat and ultimate subordination of the Rajputs by the Mughals after the death of Rana Pratap. The writer heaves a deep sigh at the loss of independence of such a valiant race.

Among the other novels, based on the story of Rana Pratap, two can be mentioned. One is "**Mantrer Sadhan Rana Pratap**" by Haran Chandra Rakhit and the other is "**Pratap Sinha**" by Damodar Mukherjee. The first novel is worth-mentioning for its patriotic spirit. In it, the author has told the story of Pratap in a lucid style and has frequently given patriotic sermons. In the second novel, the enmity between Rana Pratap and Man Singh, the battle of Haldighati, Amar Singh's (son of Rana Pratap) love and marriage and the famous story of Salim's love with Mehrunnissa have been described. Both the novels have been popular among the readers.

## II

Among the dramas about Rana Pratap, Jyotirindranath Tagore's "**Asrumati**" (1879) is the earliest. The plot of the drama is briefly this —

Rana Pratap had a daughter named Asrumati, who was born on the eve of the Mughal invasion of Chitor. Asrumati was brought up by a Bhil chieftain. She was handed over to her father when she grew up. When Pratap after the battle of Haldighati was wandering in the forests of Mewar, Asrumati was caught by the soldiers of Man Singh, the enemy of Rana Pratap. Then Asrumati caught the notice of Salim, the son of Akbar. Salim fell in love with her and wanted to marry her, at which Asrumati gave her consent. But Pratap's brother, Shakta Singh did not approve of his niece's marriage with a Mughal prince. So, he planned to marry Asrumati to Prithviraj,

the court-poet of Akbar. Knowing this plan, Salim became jealous. He killed Prithviraj and hit Asrumati with a weapon, as a result of which, Asrumati became unconscious. Shakta Singh brought Asrumati to senses and took her back to her father. At that time Rana Pratap was in his death-bed. When he came to know of her daughter's love-affair with a Muslim prince, he ordered her to take poison and die. But soon he learnt of her daughter's innocence from Shakta Singh. He then ordered Asrumati to become a nun and remain a virgin throughout her whole life. After this, Rana Pratap died.

Asrumati is a tragic play. In it, the two characters, Salim and Asrumati are well-developed. Rana Pratap is a side-character in this drama. But his valour, sense of self-esteem and uncompromising attitude have been portrayed fully.

Girish Chandra Ghosh, the celebrated Bengalee playwright, began to write a drama named "**Rana Pratap**", but he could not finish it. Only two acts of the drama were written.

Dwijendral Roy (better known as D. L. Roy), another famous Bengalee playwright, wrote a complete drama named "**Pratap Sinha**" (1905). Its plot is almost completely based on Tod's *Rajasthan*. This drama is charged with fiery patriotism. Its plot is briefly this—

Rana Pratap Singh, after losing Chitor, vowed before the Goddess Kali to recover it. Pratap took shelter in the

forest. The Mughals were at this time masters of Mewar, but its inhabitants had deserted the localities and entered into the forest. Akbar the Mughal emperor ordered Man Singh to attack Pratap and subdue him. Man Singh was once insulted by Pratap, when the latter refused to dine with him. He attacked Pratap with a vast army. Pratap, with a handful of Rajput soldiers, fought gallantly at the battle of Haldighati and was defeated. Chaitak (Chetak), his horse, fled from the field, carrying the Rana on his back. Pratap, with his family, entered into the forest again. The Mughals tried several times to capture him but he managed to escape every time due to the timely help of his brother and loyal chieftains. Pratap had to suffer much for his valiant struggle. Once he considered the suffering unbearable and decided to make peace with the Mughals by offering allegiance to Akbar. But at the insistence of Prithviraj, the court-poet of Akbar, he gave up this idea. Then he received ample support from his followers and with their support, he recovered the whole of Mewar, except Chitor and Mandalgarh.

Along with the patriotic and historical story of Pratap, an imaginary love-story has been tagged in this drama. In this love-story, Shakta Singh (the brother of Pratap), Daulat-un-nissa (the niece of Akbar) and Mehr-un-nissa (Akbar's daughter) constitutes the eternal triangle. Shakta is, however, wedded to Daulat-un-nissa, who ultimately died. Shakta, after insulting Salim, is killed. This story does not fit in with the spirit of the drama.

In this drama, the character of Pratap is fully developed. But he has been practically deified. Shakta is a mysterious person. Man Singh, as the enemy of Pratap, disgusts the readers, but at the same time one feels sympathy for him because he has been unjustly treated by the Hindu society. Akbar of this drama is a shrewd politician and a debauchee.

On the whole, D. L. Roy's drama, 'Pratap Sinha' is a magnificent attempt to depict the great Rajput hero in his true self. It is one of those works of Bangali literature, which evoked real patriotism in the hearts of the people of Bengal.

### III

Next, we shall deal with those novels and dramas which are based on the stories of other Rajput heroes. Among these Rajput heroes, the position of Raj Singh is the highest.

Bankim Chandra Chatterjee, the great Bengali novelist wrote a first-rate novel named "Raj Sinha" whose hero is Raj Singh. This novel deals with the war between Raj Singh and Aurangzeb. It describes how Chanchal Kumari, the princess of Rupnagar (a small State of Rajasthan) demolished the picture of Aurangzeb and incurred the wrath of Aurangzeb, who, in order to punish her, wanted to marry her. Chanchal Kumari, unwilling to marry Aurangzeb, sent a letter to Raj Singh, offering herself to him. This caused the war between Aurangzeb and Raj Singh as a result of

which Aurangzeb was defeated and disgraced. Along with this main plot, there is also a sub-plot which deals with the love-affair between Zeb-un-nissa, Aurangzeb's daughter and Mubarak, one of Aurangzeb's commanders. This sub-plot is very artistically woven and it ends with the killing of Mubarak by his wife, Dariya Bibi, and the completion of the tragedy of Zeb-un-nissa.

The novel, **Raj Sinha**, though based on Todd's *Pajasthan*, does not confine itself only to the narrative of Tod. The affair of the princess of Rupnagar (Kishengarh) is taken from Tod, But Tod nowhere says that this affair was the cause of the war between Aurangzeb and Raj Singh. In fact, this affair occurred twenty-one years before the said war and the war broke out for an altogether different reason, viz. Raj Singh's giving shelter to Jaswant Singh's widow and son. The war between Aurangzeb and Raj Singh also did not end in such a crushing defeat of the former, as Bankim Chandra has pictured

In spite of certain amount of departure from the history, '**Raj Sinha**' is a magnificent novel. It is specially laudable for bringing into limelight the noble, selfless and gallant character of Raj Singh to the Bengali people for the first time.

The war between Raj Singh and Aurangzeb also forms the subject-matter of an important Bengali drama, '**Alamgir**' written by Kshirodeprasad Vidyavinode. The cause of the war in this drama, too, is the affair of the princess of Rupnagar. But in this drama, Udaipuri, the Bagum

of Aurangzeb, plays a very important role. She is painted as a noble and intelligent lady with political foresight, who occasionally brings the fanatic Aurangzeb to senses. Ultimately, Udaipuri earns the respect of Raj Singh. The drama ends with the unhistorical meeting and embrace of Aurangzeb and Raj Singh in a cave of the Aravalli hills. In this drama, the tragedy of Raj Singh's private life and the rivalry of his two sons, Bhim Singh and Jai Singh, have also been manifest. In it, Bhim Singh does a great sacrifice by withdrawing from the rivalry and leaving Mewar. But he comes to the help of his mother-land when the war with Aurangzeb starts. In the last scene of the drama, Bhim Singh breathes his last before the eyes of his father and Aurangzeb.

The drama, '**Alamgir**' contains many fictitious and imaginary elements. As a drama also, it has many flaws. But it is, nevertheless, an important drama. Its importance lies mainly in unfolding the two great historical characters, viz. Aurangzeb and Raj Singh.

#### IV

Now we shall give an account of those works, which deal with the heroes of Rajasthan, other than Pratap Singh and Raj Singh.

One such work is Michael Madhusudan Datt's drama, **Krishna Kumari**. It is based upon a chapter of Todd's *Rajasthan*. The sad story of Krishna Kumari, the daughter of Rana Bhim Singh of Mewar, has been told in this drama. When Krishana Kumari attains



marriageable age, her father tries to marry her. But, eventually, a rivalry ensues between two Rajput kings, Jagat Singh and Man Singh, both of whom wanted the hands of Krishna Kumari. The story ends with the suicide of Krishna Kumari who gave away her life to save Mewar. There is no great quality in this drama. But it is to be admitted that this is the first tragedy among Bengali dramas.

Another work of this type is Jyotirindranath Tagore's drama **Sarojini**. This drama tells of Alauddin Khilji's invasion of Chitor and the self-sacrifice of Sarojini, the daughter of Rana Lakshman Singh, who was mistaken by Alauddin as Padmini. This is a mediocre drama. But the scene of the self-sacrifice of Sarojini and other Rajput ladies evoked respect and patriotism in the hearts of the spectators. Therein lies its value.

Two dramas of Dwijendra Lal Roy (D. L. Roy) deserve special mention in this section. One is **Mewar Patan** (1908) [The fall of Mewar]. In it, the invasion of Mewar by the Mughals after the death of Pratap Singh, the heroic fight of Rana Amar Singh, and the ultimate surrender of Mewar have been described. This drama is full with fiery patriotism all through. In the end, while sighing a deep sigh for the fall of such a great country, the author does not fail to point out the inherent defects of the Hindu society, which were mainly responsible for the fall of Mewar. Rana Amar Singh, Govinda Singh and other Rajput characters of this drama are patriotism personified. Another important character of this drama is Mahabat Khan, a Rajput

converted to Islam, who plays a leading part in subjugating Mewar, in order to revenge the injustice done unto him by the Hindu society. **Mewar Patan** is one of the most magnificent historical drama of Bengal. The songs of this drama are also wonderful, particularly, the songs sung by the bardess Satyavati are without any parallel.

The second drama of D. L. Roy to be mentioned in this connection is **Durgadas**. This drama tells of the heroic achievements of Durgadas, one of the commanders under Jaswant Singh, the Maharaja of Marwar. The plot of the drama is briefly this.—

When Jaswant Singh died, Aurangzeb at the instigation of his wicked Begum, Gulnair, Planned to capture Jaswant's wife and his little son, Ajit Singh which was foiled by Durgadas. Durgadas miraculously rescued the wife and son of his deceased master from the clutches of Aurangzeb and took them to Rana Raj Singh of Mewar. Then followed Aurangzeb's war with Mewar and Marwar, the unsuccessful rebellion of Aurangzeb's son, Akbar, Durgadas's giving protection to Akbar, his escorting Akbar to Maharashtra, Gulnair's falling into love with Durgadas and refusal by Durgadas, Ajit Singh's ungrateful behaviour to Durgadas and Durgadas's taking asylum in Mewar. In this drama the character of Durgadas has been portrayed marvellously. He is not only a hero, but a noble man, an ideal character, free from any vice. One may argue that in painting the character of Durgadas, the dramatist has been

more heroworshipping than objective. But the author's main object was to arouse respect for Durgadas in the minds of the readers and spectators of the drama. There he has been fully successful.

Besides these dramas of D. L. Roy, his another drama, **Tarabai**, also deals with a story of the history of Rajasthan, i. e. the story of Rana Raimal, his three sons and one of his daughters-in-law, Tarabai. This is an unimportant drama with no special feature in the story or its treatment. D. L. Roy's two other dramas, **Nur Jahan** and **Shah Jahan** though dealing mainly with the Mughals, contain Rajput characters and through them the author has paid tribute to the valour and patriotism of the Rajputs.

## V

Rajput chivalry did not find so much expression in Bengali poetry as it did in the other branches of Bengali literature. Only two works deserve mention in this respect.

The first is Ranglal Banerjee's **Padmini Upakhyan** (1858). It is a fairly long poem written in conventional metres. In it, the well-known story of Alauddin Khilji's invasion of Chitor and Padmini's self-sacrifice has been told. The best part of this poem is the commander's words of encouragement to the Rajput soldiers, which fill the hearts of the readers with inspiration.

The second work of poetry to be mentioned in this context is Rabindranath Tagore's **Katha** (1899). This book is a

collection of short poems, all of which are taken from historical and semi-historical works. They speak of the chivalry, patriotism, nobility and sacrifice of Indians through different ages. Six poems of **Katha** deal with the Rajputs. In one of these poems **Mani** the story is about a brave Rajput king, who, even in captivity, refused to offer 'salam' to Aurangzeb, the emperor of India. In another **Raj Vichar**, we see that a Rajput king gives capital punishment to his son, who attempted to rape a Brahmin's wife. In a third **Nakal Garh** we find that a native of Bundi sacrifices his life to save a false fort styled 'The Killa of Bundi' from demolition by the Rana of Chitor. Another poem **Katha Horikhela** tells of the cleverness of a Rajput queen who trapped the Pathan commander, Keshar Khan, pretending to play 'Holi' with him and ultimately killed him. In another poem **Vivaha** the separation of a young girl and her self-sacrifice on hearing the news of her husband's death have been described. In the last poem on Rajputs, the tragedy of a Rajput commander of a fort has been described who had to choose between violating his king's orders and surrendering the fort to the enemies and who ultimately put an end to his own life to solve the problem. All these poems are very beautiful and they bear ample testimony of Tagore's respect for the Rajputs.

The last work to which we shall refer is Rabindra Nath Tagore's **Kaj-Kahini**. The work is written in prose, but its style is poetical. In it, the author



described in an enchanting manner the tales of Rajput heroes and heroines of different times, such as Shiladitya, Goha Bappaditya, Padmini, Hamvir, Chanda, Kumbha and Sangram Sinha

## VI

The impact of Rana Pratap and other Rajput heroes on the movement of west Bengal has been enormous. Though the Bengalees do not observe any special 'utsav' for the Rajput heroes (as they have done for Shivaji), all the fighters for freedom have been inspired by them.

The lofty position, which Rana Pratap has held in the minds of the Bengalees, will be clear from the severe criticism by numerous critics towards Jyotirindranath Tagore, who in her drama '**Asrumati**' made the daughter of Rana Pratap fall in love with Akbar's son. Jyotirindranath had to give explanation for his doing so time and again, although his explanation did not satisfy the critics. Once Girish Chandra Ghosh, the celebrated actor and play-wright, was invited to appear in a role at a performance of

'Asrumati'. He accepted the invitation and appeared in the first act. But the very idea of a love-affair between Pratap's daughter and Akbar's son shocked him so much that he refused to take part in the subsequent acts.

Rana Pratap's heroic fight with the Mughals in the field of Haldighati, inspired every Bengalee. No wonder, therefore, the fight of Jatin Mukherjee (Bagha Jatin) and his comrades with the police-force of the British will be compared with the Battle of Haldighati. This was done by Kazi Nazrul Islam, who eulogised the bank of Budi Balam (a river of Orissa) where the fight of Jatin Mukherjee took place, as '**Naba Bharater Haldighati**' (the Haldighati of New India).

Rana Pratap was highly praised by all the political leaders and national heroes of Bengal. His name is even now inspiring us. Other Rajput heroes have also been respected and adored by us all along. That is why a Bengalee writer commented that Rajputana was the second home of the Bengalees.



# The Battle of Haldighati

---

Dr. A. L. Srivastava

Rana Pratap looked upon Man Singh, as Abul Fazl rightly observes, 'as the landholder, subordinate to himself,'<sup>(1)</sup> that is, a scion of a vassal, though ruling, family and that too not in a distant past. He, therefore, considered it derogatory to allow him to enter free Mewar as an invader, and was keen to encounter him at Mandalgarh. But he was persuaded to risk a pitched battle in the open plain in which the Mughals were adepts. Consequently descending from the rock fortress of Kumbhalgarh, he moved down the hill and encamped at the village of Lohsingh, 8 miles west of Haldighati, where the Kumbhalgarh range narrows itself into a pass. Here he spent the night preceding the battle. The Mughal army had already arrived at Molela, and now the distance between the two hostile forces was hardly 12 miles.

## Site of the battle

This memorable battle is popularly known as that of Haldighati, which is fittingly designated by Tod as the Thermopolyae of Mewar. Haldighati (not Haldighat, as some modern writers think) is a mountainous pass of a yellow colour (exactly like that of a spice drug called haldi or turmeric, when broken) extending from the south for a mile and a

half in the north-easterly direction, and ending just south of the village of Khamnaur. That is why Abul Fazl calls it the battle of Khamnaur. Though a participant in it, Badayuni gives it the name of the battle of Gogunda. It is, however, clear from the account left by Badayuni himself that the battle did not take place at Gogunda or at Khamnaur, nor anywhere inside the pass which is so narrow that even now after a lapse of nearly four hundred years two men can hardly walk abreast through most part of it <sup>(2)</sup>

Nor even could the battle have been fought at the only plain inside the Haldighati pass popularly known as the Badshah Bagh. This Badshah Bagh is too small a place for a battle-ground between the armies aggregating at the lowest estimate 8,000 men and an equal number of horses and elephants combined. And the deployment and manoeuvres of the question in this restricted area. This eyewitness definitely states that the left wing of the imperial army was posted at the entrance of the pass (dar Dahna-i-ghati) which is two to three miles south-east of Khamnaur. It follows, therefore, that the Mughal cen-

---

1 A. N. Akbar nama Vol. III, P. 173.

2 Recently the government of Rajasthan has converted the entire pass into a motorable road and disfigured it beyond recognition.

tre and right wing extended from the entrance of the pass (ghatī) in the east to the river Banas in the west. He further observes that the Rana's army came from behind the pass (az aqub darra baramdah), that his vanguard under Hakim Sur issued out from the west side of the hill (az janib qibla ruai-i-koh) and that he (Rana) himself came out of the west of the pass (az miyan-i-ghatī) behind Hakim Sur.<sup>3</sup> It is thus clear that the battle took place outside the entrance of the Haldighatī (pass) and in the plain between that pass and the village of Khamnaur. Badayuni is right when he says that the ground was rough and rugged, was studded with stones and covered by thorny bushes.<sup>4</sup> The first encounter between the vanguards of the two armies took place here, and the subsequent fighting in the plain south-west of Khamnaur, extending upto the southern bank of the river Banas.<sup>5</sup>

A Mewar tradition, as preserved in its Khyats, gives the strength of the Imperial army under Man Singh as 80,000 horse, and that of the Rana 20,000. Muhtasib Nainsi's figures are 40,000 on the side of Man Singh and 9,000 to 10,000 on that of the Rana.<sup>6</sup>

Tod, however, says that the Rana brought into the field 22,000 brave Rajput troops of whom only 8,000 returned to their homes, the remaining 14,000 met the soldiers' death in the field.<sup>7</sup> These figures are highly exaggerated, and seem to be in keeping with an Indian proverb that "the intelligent exaggerate a thing four times whereas the ignorant do it ten times." The contemporary Mughal historians, including Badayuni who was present at the battle, put Man Singh's command at 5,000 troops.<sup>8</sup> Which consisted mostly of Central Asian Uzbeks, Qazzaqs and Badakhshis, besides Indian Muslims, such as the Sayyids of Barha, Shaikhzadas of Fatehpur Sikri and others and the Rajputs, mostly of Man Singh's own Kachhwaha clan. The Rana had about 3,000 horse,<sup>9</sup> and just a few hundred Bhils under punja who were not mentioned by the historian Badayuni as they remained far behind in the rear and took no part in the battle. The Mughals possessed light artillery of an improved variety, but no field guns, as it was impossible to drag them into the interior of the mountainous region of western Mewar. The Rana had no artillery,

3 M. T. (Muntakhab-ut-Tawarikh) Vol. II, p. 231-232.

4 Even today the place is exactly like that.

5 The present writer visited Haldighatī twice, first in June 1930 and for the second time with Sir Jadunath Sarkar and went to Balicha where Pratap's noble steed Chetak lies buried. In his third visit in November 1960 he found the ancient monument (pass) completely disfigured by the misplaced zeal of a reforming minister, not responsive to the ancient glory of his land.

6 Ojha. Udaipur Rajya ka Itihas, Vol. II, p. 745.

7 Tod, Annals and Antiquities, p. 351 and 353.

8 M. T. Vol. II, p. 228; T. A. Vol. II, p. 321.

9 M. T.; Vol. II, p. 231.

and besides the sword, his principal weapons in this war were bow and arrow and the lance. Both sides possessed war elephants.

### **Battle of Haldighati, June 18, 1576.**

The Imperial army was marshalled in the following manner. In the front line were posted a little more than 80 chosen young skirmishers, called the chicken of the front line (chuza-i-harawal) under Sayyid Hashim Barha. Behind these was the advance guard in two contingents, one commanded by Jagannath Kachhwaha and the other by Asaf Khan, the bakhshi of the army. The third line was that of iltimish or advance reserve under Madho Singh Kachhwaha. The centre, consisting of the contingents of Khwaja Muhammad Rafi Badakhshi, Shihab-ud-din Karoh, Payanda Qazzaq, Ali Murad Uzbek, and his own Kachhwaha clansmen, was commanded by Man Singh himself.

The right wing, composed mostly of the Sayyids of Barha, was under Sayyid Ahmad Khan Barha, and the left wing consisting of the contingents of the Shaikhzadas of Sikri (relations of the Shaikh Salim Chishti), some other Muslims and the Kachhwaha Rajputs of Raja Lun Karan of Sambhar, was commanded by Ghazi Khan Badakhshi. The rear of reserve was under Mihtar Khan.<sup>10</sup>

As the Rana's army had to proceed from its place of encampment through the narrow pass<sup>11</sup> of Haldighati, it could not be marshalled in proper order. It came out of the mouth (dahna) of the pass in two batches, the advance guard under the command of Hakim Sur was followed by the main army under Rana Pratap himself. When the Rana came face to face with the Mughal force in the open, he drew up his army in the following manner. The advance guard, consisting of the contingents of Kishan Das Chundawat of Salumber, Bhim Singh of Sardargarh, Sanga of Deogarh and Ram Das (son of Jamal) of Badnor and some Afghan troops, was led by Hakim Sur, who had joined the Rana in order to settle his scores with the Mughals, the hereditary enemies of his race. The right wing was commanded by Ram Shah, ex-ruler of Gwalior and the left wing by Man Singh Jhala. Pratap with the bulk of his brave troops took up his position in the centre.<sup>12</sup> The rear consisting of the Bhils under Rana Punja of Panarwa concealed in the interior of the pass and did not come into contact with the enemy in the open plain. The Rana had not set apart any section of his troops to act as reserve in the time of emergency. He had no fire-arms.

On the morning of June 18, 1576 the Rana's advance guard led by Hakim

<sup>10</sup> M. T., V I II, p 230-231, A. N., Vol III, p 174

<sup>11</sup> T. A. (Tabaat-i-Akbari), V I II, p 323

<sup>12</sup> A. N., Vol III, p 174

<sup>13</sup> The date was 21st Rabi, I, 984 A. H. -- June 18, 1578 (Vide English Translation of A. N., Vol. III, p 245)

Sur appeared suddenly at the mouth ( north-eastern entrance ) of the Haldi-ghati pass and was soon followed by the main army under the Rana himself Pratap took up the offensive and his vanguard made so fierce and successful a charge that the Mughal Chickens of the front line under Sayyid Hashim and advance guard under Jagannath and Asaf Khan were huddled together and rolled up into one in the rugged and bushy plain; they were defeated and driven back. Sayyid Hashim fell from his horse and Asaf Khan, followed most probably by Badayuni, fled back to the shelter of the Mughal centre Jagannath Kachhwa-ha fighting desperately was about to fall when the iltimish under Madho Singh came to his rescue. The reinforcing iltimish too could not stand before the onset of the Rana's army whose wings pushed forward to charge their Mughal opponents The Imperial left wing under Ghazi Khan Badakhshi was attacked by the Rana's right wing under Raja Ram Shah and was defeated and forced back The charge was so irresistible that the Rajputs of Lun Karan of Sambhar, who were in the Imperial left wing, fled like a flock of sheep, and running through the Imperial advance guard took shelter with the Mughal right wing under the Barha Sayyids The Shaikhzadas of Fatehpur Sikri fled in a body, and while fleeing an arrow struck the buttocks of their leader Shaikh Mansur, son-in-law of Salim Chishti, and the wound continued to give him trouble for a long time afterwards Ghazi Khan, though a mulla, persevered on for

sometime until he received a sword cut in his right hand which injured his thumb Then he could stand no longer and fled crying out "Flight from overwhelming odds is one of the traditions of the Prophet." The Imperial troops who had turned their backs in the first Rajput onset fled ten to twelve miles beyond the river Banas without drawing in their reins.

At this time the Rana's left wing under Mana Jhala charged the Mughal right wing which too, in spite of the valour and resistance displayed by the Sayyids, sustained defeat Nevertheless, the Sayyids of Barha did not abandon their position and persevered on. Had they not done so, writes Badayuni, a great disaster would have befallen the Imperial army.

After breaking the enemy's first line of the chickens of the front, advance guard, iltimish and the right and the left wings, the Rana's men turned toward the Mughal centre. Raja Ram Shah of Gwalior putting himself in front of the Rana made such gallant charges on the Rajputs of Man Singh as defy description. Man Singh too joined the battle and fought so bravely as to extort the admiration of so hostile a critic as Abdul Qadir Badayuni who exultingly remarked that Man Singh's leadership that day convinced him of the truth of Mulla Sheri's remark that "the Hindu wields the sword of Islam " In order to come to close grip with the enemy, the Rana sent forward his elephants to break the Mughal centre and to make a way for

his troops to the position held by Man Singh. The famous Sisodia elephant named Lona encountered the Mughal Gajmukta and wounded him. The latter was about to flee when a bullet struck Lona's driver (mahawat) which made the animal turn back. Lona's place was taken by Ram Prasad, the most famous of the Rana's elephants, whom Akbar had coveted for a long time. The Mughals sent forward Ran Madar to oppose Ram Prasad who was about to prevail over its rival when his mahawat was shot dead by an arrow. Seizing hold of the opportunity Husain Khan, the superintendent of the royal elephants, jumped with alacrity from his own elephant on to the back of Ram Prasad, who thus came into the possession of the Imperial army. The centres of the hostile forces now drew nearer, and in the close hand to hand fighting. R m Shah with his three sons (Salibahan, Bhan Singh and Pratap Singh), and Ram Das, son of the illustrious Jaimal, performed prodigies of valour and fell fighting valiantly to their last breath. The latter (Ram Das) fell from a stroke inflicted by Jagannath Kachhwaha. The fierce fighting between the Rajput chiefs and rank and file of the two sides was marked by indescribable animosity and bitterness. Challenge after challenge was hurled by both the sides, and personal combats took place. The Rana riding his famous steed Chetak and Man Singh his elephant, took part in the fighting. But the bolder story recorded in the Amar Kavya Vanshawali and Raj Ratnakar that Chetak jumped like a hungry tiger on to the head of Man Singh's elephant, that the infuriated Rana gave a spearthrust

to his opponent which the latter parried by reclining himself in the howda, and that the attacking horse received a cut in one of his fore legs, seems to be apocryphal. It is, however, a historical fact that the Rana and Man Singh approached each other and "did valiant deeds." Happily they did not meet in a personal combat, and the Rana was opposed by Madho Singh Kachhwaha who had rushed to the assistance of his leader. The Kachhwahas devotedly crowded round Man Singh and made repeated attacks on the Rana, who received arrow and spear wounds in a contest with Madho Singh Kachhwaha. Nevertheless the Rana's side was prevailing, and if he had kept a body of fresh troops as a reserve and thrown them into the battle at this stage, it is likely that victory would have crowned his brow. But that was not to be. Seeing that the battle was going against the Imperial army, Mihtar Khan, the commander of the Imperial reserve, rushed to the field with his kettle-drums beating and proclaiming loudly that Akbar had arrived by forced marches. The Rana's men, who had been under arms since four in the morning, were already exhausted, the momentum of their initial success was gone and the Mughals had now rallied from all sides. The arrival of Mihtar Khan with fresh troops and the reports of Akbar's arrival at the battle-field in person disheartened the Sisodias, and the wounded Rana's devoted attendants, seizing the bridle of Chetak, turned him back towards the entrance of the Haldighati Pass.

It was probably a little before the Rana's withdrawal, when his small army was practically surrounded, that what Badayuni describes as his personal exploit took place. The eye-witness account of this writer is vitiated by the lack of correct sequence of the events, and its author's unconcealed prejudices must be corrected by a reference to Abul Fazl's brief but precise description. After the battle was all but won, and the Mughal van and wings had returned to fight, Badayuni on the advice of Asaf Khan went on shooting indiscriminately, friendly and enemy Rajputs alike, claiming that it was a service to Islam and taking comfort from the idea that he had done his duty by fighting against the 'infidels' and earned the merit due to a 'ghazi' (slayer of infidels).

Before the Rana had quitted the field, Jhala Bida of Badli Sadri out of pure devotion snatched away the royal umbrella from over the head of his chief who, surrounded by the enemy, was in imminent danger, and rushing forward against Man Singh's men cried out 'that he was the Rana. This released the pressure on Pratap and, accompanied by Hakim Sur, he was able to escape safely through the Haldighati pass to Gogunda. The battle continued for sometime after the Rana had left the field. Bida met the hero's death that he had coveted. The struggle came to an end with his fall and the remnant of the Rana's army turned

its back and retreating through the pass reached Koliyari, west of Gogunda, without molestation. The battle had begun at about 8 in the morning and ended at mid-day. Man Singh came out victorious <sup>14</sup>

The battle claimed a huge toll of lives on both the sides. On the Imperial side 150 troopers were killed and more than 300 were wounded. The Rana lost more than 500, most of whom were 'distinguished men'. The more prominent among those who laid down their lives were Raja Ram Shah of Gwalior and his three sons, Jhala Bida of Badli Sadri, Ram Das of Badnor, Dodia Bhim Singh, Shankar Das Pathor. Rawat Natsi and Jhala Man Singh. The members of the Tanwar ex-ruling family of Gwalior paid loyally with the last drop of their blood for the protection and hospitality accorded to them by their generous patron, and not a single male member fit enough to succeed Raja Ram Shah survived the battle of Haldighati. The number of the wounded on the Rana's side must have been more than double that of the dead. <sup>15</sup>

### The result of Haldighati

Haldighati proved to be as barren a victory as it was hardwon. Man Singh's campaign failed in its primary object, viz, the death or capture of Rana Pratap and the subjugation of Mewar. The 18th

14. A. N., Vol. III, p. 174-175, M. T., Vol. II, p. 230-234, T. A., Vol. II, p. 323, Vir Vinod Vol. II, p. 150-153

15. A. N. Vol. III, p. 175; M. T., Vol. II, p. 233-234, T. A. Vol. II, p. 323, Ojha, Rajputana ka Itihas Vol. II p. 755.



of June in the burning hills of western Mewar was so hot that "the very brain boiled in the cranium" and "the air was like a furnace and no power of movement was left in the soldiers." Naturally the exhausted Mughals were unable to pursue<sup>16</sup> the fugitives and the Rana escaped safely to Koliyari, west of Gogunda, where he spent the night following the battle in security. Moreover, the Mughals were apprehensive of being ambushed, and they believed the Rana had concealed his troops behind the hills and might renew the contest. So Man Singh returned to his camp at the bank of the Banas, and moved to Gogunda the next day.

The battle did not break the Rana's power, it only caused a temporary setback to his fortune. From more than one point of view the battle proved to be a blessing in disguise. Far from disheartening him or making him give up resista-

nce, it stiffened the the Rana's attitude and gave him fresh confidence. The brave stand of his troops against the most powerful and the richest monarch on earth convinced him of his moral strength and determined him to continue the struggle. Haldighati is a dividing line between Pratap's policies and activities before June 18, 1576 and after that date. After the valuable experience gained in this battle the programme of the recovery of the Mughal occupied Mewar began to be given a practical shape. Pratap would not repeat the mistake of a frontal attack on a vastly superior enemy in the open field. Hence-forward he adopted the guerilla system of warfare so well-suited to the physical condition of his country and the genius of his people, particularly the primitive Bhils. The lessons of Haldighati became responsible for a change in the character of warfare between Pratap and Akbar.

---

16 T A , Vol II, p. 323, wrongly thinks that the Mughals pursued the fugitives



# IS MAHARANA PRATAP TO BLAME FOR RESISTING AKBAR ?

—Dr. Dasharatha Sharma

Maharana Pratap is sometimes blamed for not having helped the unification of India by recognising Akbar's suzerainty.<sup>1</sup> But the scholars arguing like this should take into consideration the conditions under which the Rajputs were required to serve the Mughal Emperor. Were the conditions good enough to be accepted by a self-respecting people ? Or were the Rajputs to surrender everything, especially their honour, before they could be the pillars of the edifice called the Mughal Empire and by some even the Mughal confederation ? Till then the Rajputs had played a brilliant role in the history of India. They had fought for its independence and every Rajput ruler to whichever clan he might have belonged regarded other clansmen as members of his own fraternity as it were and treated them with all the considerations which are and should be the privilege of every self-respecting people. Did they have the same or a similar treatment at Akbar's court ?

We are prone to idealise Akbar's reign. With only the fulsome Akbarnama and other Muslim histories as our guides, we give Akbar more than his due. We disbelieve too. But we should not, at least, have any reason to disbelieve the Dalpat Vilasa a Rajasthani historical chronicle which was written during the

reign of Maharaja Rai Singh of Bikaner (1571-1611 A D) and has been published recently by the Sardul Pajasthan Research Institute, Bikaner. It is an account of an eye-witness. We find from it that Rai Singh's cousins were given in marriage to Akbar, and Rai Singh served Akbar loyally at Jodhpur, Sirohi, Nagor, various sites in Gujrat and Siwana. As far as the material side was concerned, these services, whether of the Bikaner house or others, did not remain unrecognised and unrewarded. But one ought to look to other things also, things which do matter in a rational being's life but refuse to be measured in a material scale.

When Akbar began his qamargha hunt in the Bhera-Rohtas-Girjhaka area, many of the Rajput chiefs accompanying the Emperor were encamped on the bank of the river Jhelum. On Akbar's reaching there the Rajputs hastened to put on their clothes and pay respect to him. One Darji, however, was a bit late. Akbar whipped him himself. A young Rajput prince, named Prithidipa, had been allowed to play on by his maternal uncle. Though surrounded by Rajputs for whose sentiments he should have cared, Akbar ordered the poor uncle to be whipped, and the self-respecting Rajput, unable to bear the insult, and

1. See Dr R S Tripathi's *The Rise and Fall of the Mughal Empire* (Referred to by Dr A L Srivastava in *Summaries of Papers submitted to the IHC, Aligarh 1960*, p 35)

expecting neither sympathy nor backing from anyone stabbed himself thrice with his one dagger, thereby infuriating the Emperor even further and making him pass an order for having the Rajput trampled to death by an elephant. The Rajput chiefs looked on helplessly, not even one raising his voice in protest against Akbar's inhuman orders.

When Prince Dalpat Singh of Bikaner and some of his companions saw Akbar after cremating the Rajput's body, they found him shouting, "Let the Hindus consume cows and the Muslims pigs" He took off his turban and had his locks cut off. The Rajputs also took off their turbans (and probably followed his example) Akbar's shouting continued, "These Rathods have royal blood in their veins but the Sekhawats are mere Jats." Normally no Rajput tolerates such insults But tehse wonderful Rajputs of Akbar's court instead of reacting suitably to the occasion, retired sheepishly to their tents, and putting on their bodies the signs of 'Sankha' and Chakra' prepared themselves for death (an ignoble one of course, because it was for no noble cause and nothing better than the suicide of a

hapless victim of destiny) If Akbar did not ultimately have them put to death, it was on no account of Rajput valour or martial spirit, but because he could, when he desired, put a curb on his own caprices.

Stories of the way Akbar treated Rajputs must have reached Maharana Pratap and made him realise the utter ignominy of submitting to Akbar, even in the interests of a so-called confederation. A man does not live by bread alone, though the Maharana realised the importance of bread too, if we are to believe some of the stories of his wanderings and sufferings in the hills and jungles of Mewar, and Indians may feel deservedly proud of the fact that Rajasthan had till then a few proud spirits which put freedom and self-respect above the tinsel of material rewards. Rajput chivalry lived on after 1557 A D. not in the persons of rich Rajput grandees of the Mughal court, like the Maharaja Man Singh and Rai Singh, but the brave fighters like Maharana Pratap and others who inspired by his example yearned to live only in an atmosphere of full freedom, political as well as cultural

# महाराणा प्रताप के आदर्श और सिद्धान्त

डॉ० देवीलाल पालीवाल

भारतीय इतिहास के विख्यात स्वातन्त्र्य योद्धा महाराणा प्रताप का ऐतिहासिक मूल्यांकन इतिहासकारों द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार से किया गया है, जिससे प्रताप के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के मत सामने आये हैं। एक बात में लगभग सभी इतिहासकार एक मत हैं, कि महाराणा प्रताप इतिहास में एक अटल प्रतिज्ञापालक, अदम्य स्वतंत्रता-प्रेमी एवं महान् त्यागी और वलिदानी योद्धा हो गया है। किन्तु उसके ऐतिहासिक महत्त्व उसके व्यक्तित्व एवं उसके आदर्श, सिद्धान्त और नीतियों के बारे में विचार वैभिन्न्य है।

## प्रताप और इतिहासकार

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं—“राणा प्रताप की वीरता, अटल स्वतंत्रता-प्रियता और कष्ट साधना एवं वलिदान से प्रभावित होकर कई आधुनिक लेखकों ने प्रताप के संघर्ष के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह गभीर इतिहास नहीं है। अबुल फजल और अन्य फारसी लेखकों ने शूरवीर प्रताप को महत्त्वहीन चित्रित किया है, जब कि कतिपय अन्य लेखकों ने अकबर और मानसिंह को। यह संघर्ष हिन्दू और इस्लाम धर्मों के बीच में नहीं था बल्कि मुगल साम्राज्य और मेवाड़ राज्य के बीच का संघर्ष था।

“प्रताप के साहस, सकल्प और अदम्य इच्छा शक्ति को कितनी ही प्रशंसा की जाय, किन्तु यह

स्वीकार करना पड़ेगा कि उसके सिद्धान्त राज-पुताना के अन्य तत्कालीन राजाओं के सिद्धान्तों से सर्वथा भिन्न था। प्रताप मेवाड़ की स्वतंत्रता और सिसोदिया वंश के प्रभुत्व के लिए लड़ा, किन्तु अन्य राजा लोग उस के सम्बन्ध में उत्साहित नहीं हुए क्योंकि मेवाड़ के बड़े शासकों के सम्बन्ध में उनका पूर्व अनुभव सुखद नहीं रहा। यह कहना अविवेकपूर्ण होगा कि शेष सभी राजपूत कायर एवं डरपोक हो गये थे और उन्होंने अपनी स्वतंत्रता सुख-उपभोग के लिए बेच दी थी। अकबर ने अपनी नीतियों से यह सिद्ध कर दिया था कि वह उनके राज्यों को आत्मसात नहीं करना चाहता था और न वह उनके सामाजिक, आर्थिक, और धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप करना चाहता था। वह चाहता था नये साम्राज्यी संघ (Imperial Confederation) के प्रति उनकी वफादारी, उनका खिराज देना, विदेशी नीतियों का समर्पण करना, मुगल संघ की निश्चित सैनिकों के साथ सेवा करना तथा अपने राज्यों को मुगल साम्राज्य का एक अंग मानना। मेवाड़ के चारण-भाटों की प्रचारात्मक रचनाओं के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नहीं मिलते जिनसे यह सिद्ध किया जा सके कि तमाम राजपूत राजाओं पर वैवाहिक संबंध थोपना अकबर का सामान्य नीति थी। राजपूत राजा इसके लिए स्वतंत्र थे।

“सभी परिस्थितियों पर गौर करके अधिकांश राजपूत राजाओं ने ईमानदारी और विश्वास से मुगल सम्राट की अधीनता में मुगल संघ में शरीक होना पसन्द किया। विवेक और दूरदर्शिता मुगल संघ में शरीक होने वाले राजपूतों के साथ थी जब कि प्रताप कोरे काल्पनिक आदर्शों और भावुकता-पूर्ण विचारों से ग्रस्त था।”

डा. गोपीनाथ शर्मा का मत है—“यह स्वीकार्य है कि अकबर एक महान और उदारचेता सम्राट था, जिसने देश को राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एकताबद्ध करने की आदर्श नीति का अनुसरण किया। प्रताप का एकता से अलग रहना उस महान कार्य पर एक प्रकार का बड़ा आघात था। उस सीमा तक प्रताप की नीति उसके देश के लिये हानिकारक थी। यदि उस समय प्रताप मुगल व्यवस्था में शरीक हो जाता तो वह अपने देश को विनाश और वरवादी से बचा सकता था। उस का दीर्घकालीन संघर्ष उन दिन की आने से नहीं रोक सका जब कि उसके पुत्र अमरसिंह के काल में मेवाड़ मुगल साम्राज्य के अधीन हो गया। यदि मेवाड़ को वही अवसर पहिने मिला होता तो उसका पिछड़ापन मिट गया होता।” आश्चर्य की बात यह है कि उपरोक्त मन प्रकट करने के साथ-साथ डा. शर्मा यह भी कहते हैं—“किन्तु प्रताप का नाम हमारे देश के इतिहास में स्वतन्त्रता के एक महान नैतिक के रूप में अमर रहेगा जिसने

संघर्ष के इस नैतिक स्वरूप पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और भौतिक लाभ अथवा हानि की चिन्ता किए बिना लड़ता रहा। उसने हिन्दुओं के गौरव को कायम रखा। जब तक यह जाति जीवित है, वह इस बात के लिये चिरस्मरणीय रहेगा कि उसने एक विदेशी के विरुद्ध संघर्ष में अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। स्वतन्त्रता के एक महान योद्धा, आदर्श के दृढ़ पालनकर्ता और चरित्रवान योद्धा के रूप में आज भी वह करोड़ों लोगों के लिये आदर्श व आशा का स्रोत बना हुआ है।”<sup>2</sup>

डा. गोपीनाथ शर्मा के इस परस्पर विरोधी तर्कों से पूर्ण मत के अनुयायी कई और विद्वान भी हैं। कतिपय विद्वान प्रताप के उद्देश्यों और आदर्श को सफीर्ण मानते हैं। विजय चन्द्र मजूमदार कहते हैं—“यदि आदर्श ऊँचा न हो तो प्रताप की जैसी दृढ़ता और वीरता भी फलदायक नहीं हो सकती। प्रताप चाहे कितने बड़े देवता क्यों न हो वह अपने वश गौरव की प्रतिष्ठा रखने के लिये व्यग्र थे।” डा. रघुवीरसिंह के मतानुसार “स्वाधीन भारत के इस नये चातावरण में तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निष्पक्ष अनु-दर्शन करने पर राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्श की सफीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मक नीति में हर प्रकार की रचनात्मकता का पूर्ण द्रव्य नष्ट हो जाना है।”<sup>3</sup> इसी बात को

1. R. P. Tripathi Rise & Fall of the Mughal Empire, P. 222-225

2. G. N. Sharma Mewar & the Mughal Emperors, P. 121

3. डा. रघुवीरसिंह - पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृष्ठ 77

श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट बदल कर इस भाँति कहते हैं—“ आदर्श चाहे कितना सकीर्ण हो उसमें सम्पूर्ण आस्था रखकर उसके लिये सर्वस्व बलिदान करने चाहे कभी नहीं मरते । ” 4 कतिपय विचारको ने इससे आगे बढ़ कर राणा प्रताप को अबुन फजल की भाँति एक छोटा जमींदार, विवेकहीन विद्रोही आदि भी माना है ।

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. आशीर्वादिलाल श्रीवास्तव ने महाराणा प्रताप के आदर्श तथा उद्देश्यों एवं नीतियों के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की है । महाराणा प्रताप द्वारा अकबर के भारत की एकता के महान् कार्य में शरीक न होने के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि ऐसा करना प्रताप की ही भूल थी, उसके बारे में हाया नहीं से उत्तर देना कठिन है । डा० श्रीवास्तव कहते हैं कि अतकाल में वर्तमान युग की धारणाओं एवं विचारों को पढ़ने से यह भाँति उत्पन्न हुई है । उनका कहना है कि प्रताप के तथाकथित असहयोग के लिये प्रताप की अपेक्षा अकबर अधिक दोषी था, जो प्रताप के मुगल दरबार में हाजिरी देने की बात पर अधिक अड़िग रहा । अकबर की हठ के कारण युद्ध चलता रहा और अमरसिंह के काल में जहाँगीर द्वारा मेवाड़ के राणा को मुगल दरबार से हाजिर होने से मुक्त रखने की शर्त स्वीकार करने पर ही शान्ति हुई । डा० गोपीनाथ शर्मा के तर्क को अमूर्ण बताते हुए उन्होंने कहा है कि १६१५

ई. में अमरसिंह को जहाँगीर से सम्मानपूर्ण सन्धि की जो शर्तें मिली वह प्रताप और अमरसिंह के १८ वर्ष लम्बे संघर्ष के कारण ही । यह सम्मान अमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, डूंगरपुर आदि राज्यों को नहीं मिला । डा. श्रीवास्तव कहते हैं— “प्रताप को अकबर महान के विरुद्ध सफल संघर्ष के कारण भारतवर्ष की प्रधान तात्त्विक भावना (Elemental Spirit) का प्रतीक माना गया है, जो सर्वथा उचित है । यह भावना देश के परम्परागत गौरव की रक्षा करती है और उस गौरव पर आंच लाने वाली हर बात के विरुद्ध संघर्ष करती है । 5 किन्तु डा. श्रीवास्तव यह भी कहते हैं कि प्रताप में रचनात्मक योग्यता, दृष्टि की व्यापकता और राजनैतिक अन्तर्दृष्टि का अभाव था । 6

### तत्कालीन धार्मिक स्थिति और प्रताप

महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में प्रकट किये गये विभिन्न इतिहासकारों के मतों पर विचार करने तथा प्रताप के आदर्श और सिद्धान्तों की चर्चा करने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम तत्कालीन परिस्थितियों तथा प्रचलित धारणाओं एवं सामाजिक वातावरण पर गौर करें जो उस समय व्याप्त थे । निःसंदेह ही इतिहास का मध्य युग धर्मान्धता और अत्याचारों से परिपूर्ण रहा है, भारत भी इस वातावरण से अछूता नहीं रहा । सामन्ती राजतन्त्रीय युग के इस काल में धार्मिक प्रचार-प्रसार के पीछे साम्राज्यी-प्रसार और तबीन

4. राजेन्द्र शंकर भट्ट : महाराणा प्रताप, पृष्ठ 116

5 A. L. Srivastava, Akbar the Great, Vol. 1, P. 222-224

6. Ibid, P. 197

प्रदेशों की विजय के मन्सूबे रहते थे। विशेष बात यह है कि भारत में धार्मिक कट्टरता और अत्याचार का काल इस्लाम के प्रवेश से प्रारम्भ होता है, जो भारत में प्रविष्ट होने के समय तक अपने क्रान्तिकारी स्वरूपको खोकर रूढ़ीवादी और विकृतिपूर्ण बन चुका था। इस्लाम के आगमन के पूर्व और बाद में भी मूल भारतीय सांस्कृतिक परंपरा उदारता, सहिष्णुता और समन्वय की रही, यद्यपि इस देश में धार्मिक मत-मतान्तर बढ़ते ही गये थे किन्तु अशोक और हर्षवर्धन जैसे सम्राटों की व्यवहार-परम्परा बराबर चलती रही। मध्य एशिया से निरन्तर आक्रमण होते रहे, दिल्ली में सल्तनतें बदलती रही और प्रत्येक नवीन आक्रमणकारी भौतिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बड़े से बड़े 'गाजी' के रूप में प्रकट होता रहा।

इन परिस्थितियों में निस्सन्देह ही मुगल साम्राज्य के निर्माता अकबर को इस बात का श्रेय जाता है कि उसने अपनी दूरदर्शिता, राजनैतिक सूझबूझ और साहस से नवीन नीतियों का सूत्रपात किया, जो भारतीय भावना और परम्परा के अनुरूप थी। उस काल में भारत जिस धार्मिक और सामाजिक परिवर्तन की हलचल से गुजर रहा था उसका भी अकबर की धार्मिक नीतियों के निर्माण पर भारी असर पड़ा था।<sup>7</sup> अकबर के उदार दृष्टिकोण और व्यवहार ने धार्मिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता एवं समन्वय की प्रवृत्तियों को बड़ा चल दिया। अकबर की इस नीति ने उसकी साम्राज्यी सत्ता को जन-आधार प्रदान किया, जो उसके

पूर्व की सल्तनतों को प्राप्त नहीं हुआ था, जिनकी सत्ता भारत पर विदेशी जुए के समान ही रही। किन्तु अकबर के दृढ़ प्रयत्नों के बावजूद भी उसकी उदार नीतियों का कट्टरपंथियों द्वारा विरोध ही नहीं हुआ बल्कि उसके काल में भी समय-समय पर ऐसी घटनाएँ होती रही जो भारतीय मानस को आघात पहुँचाने वाली थी। यह स्वाभाविक था कि विदेशी दासता एवं धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध सघर्षरत राजपूत सभ का नेतृत्व करने वाले मिसोदिया वंश का उत्तराधिकारी प्रताप (जिस वंश को सम्पूर्ण दिल्ली-सल्तनत काल के कार्य-कलापो एवं परिवर्तनों का ज्ञान था) अपना दृष्टिकोण स्थिति के गहन और परिपूर्ण अध्ययन और भविष्य में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रख कर बनाता।

भारत में अकबर ने अपने साम्राज्य का प्रारम्भ युद्धवन्दी हेमू का वध करके और 'गाजी' (काफ़ीरों का वधिका) की उपाधि धारण कर के शुरू किया।<sup>8</sup> मुबारक, मोर हवशी, लिज्जत, मिर्जा मुकीम और याकूब जैसे उदारवादी प्रयत्न शिया धर्म को मानने वाले लोग अत्याचार के शिकार हुए। बदायुनी लिखता है कि न केवल गैरमुसलमानों बल्कि सभी मन के विरोधियों को भी डूट कर मार डालने का रिवाज प्रचलित था (यह स्थिति १५६१ ई के पूर्व तक रही)। यहाँ तक कि १५८८ ई में जब एक शिया धर्मान्तरापी को फाँस करने वाले मुन्नी को फाँसी की सजा दी

7 Sri Ram Sharma The Religious Policy of the Mughal Emperors, Page-18

8 Ibid, Page 11

गई तो लाहोर के लोगो ने मृत शिष्या की कब्र को अपवित्र किया ।<sup>9</sup> अब्दुलनबी ने काजी की शिका-यत पर एक ब्राह्मण का इस्लाम की निन्दा के दोष के कारण वध कर दिया । लाहोर के गवर्नर हुसैन खां ने, जो १५७६ में मरा, हिन्दुओं के लिये अपनी बाँहों पर विभिन्न रंगों के पेवन्द लगाने, घोड़ों पर सवारी नहीं करने देने जैसे अपमानजनक नियम लागू कर रखे थे । अबूल फजल और वदायुनी आदि समकालीन लेखक इस बात के साक्षी हैं कि १५६३ ई० तक कई हिन्दू बलात् मुसलमान बनाये गये थे । जब अकबर ने टोडरमल को वित्त मन्त्री बनाया तथा मानसिंह को मुगल सेनापति बना कर महाराणा प्रताप के विरुद्ध भेजा तो बड़ा विरोध हुआ और अकबर को हिन्दुओं की सेवाओं के उपयोग और राजपूत का राजपूत के विरुद्ध उपयोग आदि तर्क देकर विरोध को शान्त करना पड़ा था । हल्दीघाटी के युद्ध में वदायुनी और आसफखान का वार्तालाप प्रसिद्ध

है 10 १५८१ ई० में मूरत में कतिपय पुर्तगीज बन्दियों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के आघार पर जान बखी गई । १५७२-७३ ई० में जब कांगडा विजय किया गया तो नगरकोट के मन्दिर की देवी का छत्र तीरो से छेद दिया गया, २०० गायों का वध किया गया और उनका रक्त मन्दिर की दीवारों पर छिड़का गया । उसी वर्ष हुसैन-कुलीखा लाहोर से मसूद हुसैन और अन्य बन्दियों को सोंगो सहित गाय के चमड़े में बन्द करके दरबार में हाजिर हुआ ।<sup>12</sup> ऐसी घटनाएं उस समय घटीं जो उस काल की प्रचलित कट्टर धारणाओं एवं मनोवृत्तियों की द्योतक हैं ।

### धार्मिक उदारता और स्वतन्त्रता का पोषण

राजस्थान के राजपूत और मेवाड़ के विसो-दिया इतिहास में धार्मिक उदारता और समन्वय के लिये प्रसिद्ध रहे हैं । वे शिव एवं शक्ति के उपासक होते हुए भी बौद्ध धर्म, जैन धर्म, वैष्णव

9 Akbarnama, Vol II, Page 46

10 युद्ध करते समय जब प्रताप के राजपूत सैनिकों और मुगल सेना के राजपूत सैनिकों के मध्य फर्क करना कठिन हो गया तो वदायुनी ने यह बात एक अन्य मुगल सैनिक आसफखान से कही तो उत्तर मिला— राजपूत किसी भी ओर का मारा जाय, इससे इस्लाम का लाभ ही है । मानसिंह को मुगल सेना का सेनापति बनाने का वदायुनी भी विरोधी था, किन्तु जब उसने मानसिंह को प्रताप के विरुद्ध बड़ी वीरता और चातुर्य से लड़ते देखा तो प्रसन्न होकर बोला कि हिन्दू द्वारा इस्लाम की तलवार धारण करने की मुल्ला शैरी की बात सही है ।

11. Badayuni, Vol II, Page 162.

12 Akbarnama, Vol II, Page 46.

कबर के शासन के सम्बन्ध में कुछ और बातें भी विचारणीय हैं— राज्य भाषा विदेशी फारसी भाषा थी । १००० जात और सवार से ऊपर के १३७ मन्सबदारों में हिन्दू केवल १४ थे । मुगल फौजों में तब भी मध्य एशिया के लोगों की बड़ी मात्रा में भर्ती की जाती थी और उनको ही प्रधानतः जिम्मेदारी के पद दिये जाते थे ।



धर्म और इस्लाम धर्म के प्रति सहिष्णु बने रहे और उनको अपने मत-प्रचार की स्वतन्त्रता दी। प्रताप ने इस विरासत की बड़ी पवित्रता से निभाया। यही कारण था कि प्रताप को हकीम-खाँ सूर का सहयोग और जालोर के ताजखाँ की मित्रता मिली। प्रताप द्वारा अब्दुल रहीम खान-खाना के स्त्री बच्चों की पूरी हिकाजत और सम्मान के साथ वापस लौटाने की बात इतिहास प्रसिद्ध है। प्रताप श्रवण उसके अनुयायियों का एक भी ऐसा कृत्य इतिहास में नहीं मिलता जिससे धर्म-अन्धता और कट्टरता प्रकट होती हो। यद्यपि प्रताप और उसके सहयोगी १५६८ ई० में अकबर द्वारा चित्तौड़ में किये गये ३०००० व्यक्तियों के सहार को कभी नहीं भूल सके। तत्कालीन स्थितियों में प्रताप का अकबर के प्रयोजन के प्रति सशक्ति रहना पूरी तरह स्वाभाविक था।

प्रताप की आज्ञाकारी निर्मूल नहीं निकली। अकबर की मृत्यु के बाद ही असहिष्णुता और कट्टरता ने पुनः सिर उठाया और औरंगजेब के काल में पुनः भोवण स्थिति पैदा होगई। मनुष्य जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु होती है उसकी आत्मा की स्वतन्त्रता, उसके विश्वास और विचारों की स्वतन्त्रता। उस पर जब प्रहार होता है तो वीर और साहसी लोग प्राणार्पण करके भी मुका-

बला करते हैं और जो लोग ऐसा नहीं कर पाते हैं वे पराधीन दास हो जाते हैं। प्रताप ने जो निर्णय लिया और निश्चय किया उसको अन्तिम दम तक निभाया। इतिहास साक्षी है कि प्रताप का निर्णय गलत नहीं था।

### विदेशी दासता के विरुद्ध संघर्ष

मुगल तुर्कों और पठानों की भाँति विदेशी जाति के लोग थे, जिन्होंने आक्रमण करके उत्तरी एवं मध्य भारत पर अधिकार कर लिया था। अकबर ने पठान शक्ति के ह्रास, पठानों व हिन्दुओं के वैमनस्य और राजपूत एवं अन्य हिन्दू शक्तियों के गृह-कलह का अपनी दूरदर्शिता एवं कूटनीतिज्ञता से लाभ उठाकर मुगल शक्ति को बलवान बना लिया था। प्रताप अन्य राजपूत राजाओं की भाँति मुगलों की दासता स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था। राजस्थान के राजपूत और प्रधानतः मेवाड़ के राजपूत विदेशी सत्ता के खिलाफ निरंतर संघर्ष करते रहे थे और उसके अस्थायी स्वरूप और शासन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए कार्यवाही करते रहे थे। प्रताप की अपने वंश के गौरवपूर्ण इतिहास का अहसास था और महाराणा छुम्भा और साँगा जैसे पूर्वजों की परम्परा और आदर्श उसके सम्मुख थे।<sup>13</sup> मेवाड़ को साँगा और प्रताप के बीच के काल में तथा उसने पूर्व

13 अनुल फजल लिखता है—राणा की इस बात का घमट था कि वह उस कीर्तिमान वन में उत्पन्न हुआ है, जिसके पूर्वजों ने इस देश पर प्राचीन काल में शासन किया था। अपनी स्थिति की दृष्टि, भूमि के विस्तार और राजपूत सहयोगियों की बड़ी संख्या के कारण, जो कि स्व भिक्षु की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग करने की उद्यत हैं, प्रताप की दृष्टि पर पर्दा गिर गया है।



अलाउद्दीन खिल्जी के समय विदेशी जाति के प्रभुत्व का संकट देखना पड़ा था, मेवाड़ी या तो लड़ते रहे या उन्होंने सम्मानजनक सुलह आदि अवश्य करली, किन्तु दासता कभी स्वीकार नहीं की।

प्रताप ने निश्चय ही परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अकबर के साथ किसी प्रकार की सम्मानजनक सधि के लिये प्रयत्न किया। यही कारण था कि प्रताप ने अकबर द्वारा प्रेषित चार-चार दूतमंडलों का पूरा स्वागत किया और तीसरे राजदूत भगवन्तदास के साथ प्रताप ने अपने कुंवर अमरसिंह के साथ मेवाड़ का दूतमंडल भी आगरा भेजा।<sup>14</sup> किन्तु अकबर प्रताप को भी उसी स्थिति में आधीन बनाना चाहता था, जिसमें कि अन्य राजपूत राजा थे। उस स्थिति का अर्थ था मेवाड़ का महाराणा मुगल दरबार में हाजिर होकर अपनी सेवाएं अर्पित करे, दरबार में मुगल शिष्टाचार के अनुसार सिद्धा करे, मन्सबदार बनकर मुगल साम्राज्य के विस्तार एवं दृढ़ता के लिये अपनी शक्ति एवं सेनाओं का उपयोग करे और मेवाड़ को मुगल साम्राज्य की जागीरी भूमि के रूप में स्वीकार करे। (अकबर ने राजपूत राजाओं पर अपनी कन्याओं का विवाह उसके साथ करने के लिये सीधा दबाव डाला हो उसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, इसलिये यह मान्यता अस्वीकार्य है कि अकबर की ओर से प्रताप पर इस प्रकार का कोई भी दबाव डाला गया हो।)

प्रताप इस स्थिति को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था।

तत्कालीन राजस्थानी साहित्य, राजपूत धारणाओं एवं परम्पराओं तथा तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन करने से डा० त्रिपाठी का यह मत सही प्रतीत नहीं होता कि अन्य राजपूत राजाओं ने ईमानदारी, विश्वास और विवेक से तथाकथित “मुगल संघ” में शरीक होना स्वीकार किया। डा० त्रिपाठी Mughal Imperial Confederation के स्वरूप को कितना ही महत्व दें, वह भारतीय परम्पराओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप राज्य-संघ नहीं था। अकबर के साम्राज्य का आधार केन्द्रीय निरंकुश राज्य सत्ता, स्वेच्छाचारी शासन और उसमें सम्मिलित विभिन्न राज्यों द्वारा अपनी स्वतंत्रता का पूर्ण समर्पण था। अकबर की तमाम धार्मिक एवं राजनैतिक उदारता के बावजूद अकबर के साम्राज्य का प्रधान तत्व केन्द्रीय सत्ता का निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी स्वरूप बना रहा। यह बात फारसी त्वाहीखो से भी स्पष्ट हो जाती है। बीकानेर राजघराने से सम्बन्धित एक तत्कालीन ऐतिहासिक महत्व का ग्रन्थ “दलपत विलास” मुगल दरबार में सेवारत राजपूत राजाओं की असह्य एवं अपमानजनक स्थिति की वास्तविकता को प्रकट करता है।<sup>15</sup> लगभग सभी राजपूत राजा मन्सबदार बना कर अपनी सेनाओं सहित अपने राज्यों से दूर मुगल अभियानों में भेज दिये जाते थे। उनके राज्यों के

14. Akbarnama, Vol III, p. 92.

15. दलपत विलास, सं० रावत सारस्वत पृ० ६५-१०५

भीतर और मुगल दरबार में निरंतर ऐसे षडयन्त्र चलते रहते थे, जिससे राजपूत राज्यों की आंतरिक स्वायत्तता नाममात्र की रहती थी। मुगल शासन पद्धति अधीनस्थ राजाओं के वंशाधिकारों को सिद्धान्त रूप में नहीं मानती थी। ऐसे राजा सिद्धान्त रूप में मुगल जागीरों के स्वामी थे। उनके राज्य मुगल जागीर के रूप में थे। जब कोई राजा मरता तो उसके उत्तराधिकारी को सम्राट द्वारा उत्तराधिकार की सनद दी जाती थी। ऐसे मौकों पर मुगल बादशाह द्वारा कभी कभी वंश परम्परा के अनुसार हकदार के स्थान पर अन्य को उत्तराधिकारी बना दिया जाता था। बीकानेर, जोधपुर आदि राज्यों की घटनाएं यह भी प्रकट करती हैं कि जब भी कोई राजपूत राजा थोड़ा-बहुत स्वतंत्र रूप अपना लेने की चेष्टा करता, उसके लिये अपना राज्य खोने का खतरा पैदा हो जाता था।

राजपुताने के अन्य राजाओं ने मुगल आधीनता स्वीकार तो की किन्तु प्रसन्नता एवं विश्वास से नहीं, परिस्थितियों की मजबूरी और अपने राज्यों को कायम रखने की दृष्टि से। अकबर की भेद नीति एवं सैन्यशक्ति ने उन्हें झुका दिया। राजपूतों के गृह कलह एवं अकबर की प्रलोभन नीति के कारण राजपूत सरदारों तथा राजाओं में आगरा दौड़ के लिये होड़ लग गई। अकबर का दरबार समस्त राजपुताना के राजनीतिक षडयन्त्रों का केन्द्र बन गया। एक समकालीन राजस्थानी कवि ने इस स्थिति को इन शब्दों में प्रकट किया—

आलाप राग गारडू अकबर,  
दे पैतीस असट कुल दाव ।  
राण सेस वसुधा कथ राखण,  
राग न पातरियो अहराव ॥<sup>६</sup>

अकबर ने राजपूत भावनाओं तथा उनके स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए अपनी राजपूत-कूटनीति निर्धारित की। एक ओर अकबर ने आधीन राजपूत राजाओं के पास उनके राज्य रहने दिये और उनके धार्मिक विश्वासों का आदर किया, दूसरी ओर उनमें दरबारी प्रलोभनों के लिये तथा बादशाह का कृपापात्र बनने के लिये गौरवविहीन प्रतिस्पर्धा पैदा की। राजाओं के बीच तथा प्रत्येक राज्य के सरदारों और राजाओं के बीच गुटबाजी और वैमनस्यता उत्पन्न की। समय-समय पर उनके राज्यों में आन्तरिक हस्तक्षेप किये। वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले राजा अकबर के निकट के कृपापात्र बने और दरबार में अधिक प्रतिष्ठा हासिल की और वे दरबारी षडयन्त्रों में अपनी सुरक्षा और प्रभाववृद्धि की दृष्टि से अधिकाधिक भाग लेने लगे। संक्षेप में अकबर की कूटनीति ने राजपूत सभ को सदा के लिये पगु बना दिया, राजपूत शक्ति को छिन्न भिन्न कर दिया, राजपूतों को उनके परम्परागत शौर्य एवं आत्म-गौरव से विहीन कर दिया और उनके बीच अधिक गहरा वैमनस्य और कटुता उत्पन्न कर दी।

प्रताप अकबर की भेद नीति का शिकार नहीं हुआ, यह उसकी शक्ति से भयभीत नहीं हुआ और

न उसके दरवारी ऐश्वर्य के प्रलोभन का शिकार हुआ। उसके विपरीत उसने मुगल-दासता के विरुद्ध संघर्ष का विगुल बजाया। तभी समकालीन राजस्थानी कवि जाड़ा मेहडू ने कहा—

हाथी बंध घणां घणां हैमर वध  
कसूँ हजारो गरव करौ ।  
पातल राण हसै त्यां पुरसां  
भाड़ै महला पेट भरौ ॥<sup>17</sup>

एक अन्य कवि के शब्दों में—

गिरपुर देख गवाड़, भमिया पग पग भाखरौ ।  
मह अजसै मेवाड़, सह अजसै सीसोदिया ॥<sup>18</sup>

### क्षेत्र धर्म की रक्षा—

समकालीन और बाद के राजस्थानी साहित्य ने महाराणा प्रताप को एक आदर्श वीर के रूप में प्रस्तुत किया है। उसने प्रताप को क्षत्रियत्व के रक्षक के रूप में देखा है। भारत की क्षत्रिय जाति की सदा से कुछ आदर्श परम्पराएँ रही, जिनकी राजस्थान के राजपूतों में मान्यता रही और वे उनका पालन करते रहे। वंश गौरव एवं आत्म सम्मान की रक्षा, विदेशी दासता के विरुद्ध एकता और संघर्ष, स्वतंत्रता-संघर्ष में सर्वस्व त्याग और बलिदान, प्रतिज्ञापालन, चारित्रिक उच्चता, शरणागत को अभयदान आदि बातें क्षत्रियत्व के सिद्धांत की मुख्य आधार थी।

मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य क्षत्रियों में उत्पन्न स्वार्थपरता, संकीर्ण भावना, नैतिक पतन

पारस्परिक फूट और विलासप्रियता आदि बातों के लिये राजपूतों को कोमता है। प्रताप के समकालीन राजस्थानी कवियों ने प्रताप को सच्चा क्षत्रिय और क्षेत्र-धर्म का रक्षक माना है जबकि अकबराधीन राजपूत राजाओं को उन्होंने अपने क्षुद्र स्वार्थों नैतिक पतन और विलासिता के कारण पराधीनता स्वीकार करने के लिये कोसा है। डा० त्रिपाठी, डा० शर्मा, डा० रघुबीरसिंह आदि का यह मत भ्रामक है कि प्रताप के आदर्श में सिसोदिया लोगों के गौरव की रक्षा की ही भावना रही। उनका यह मत प्रतापकालीन विचारकों के मत से मेल नहीं खाता, जिन्होंने प्रताप के संघर्ष को न केवल मेवाड़ की स्वतंत्रता और सिसोदिया वंश की आन-वान की रक्षा का संघर्ष माना है बल्कि प्रताप को विदेशी मुगलों के खिलाफ देश की रक्षा के लिये लड़ने वाले, क्षेत्र-धर्म की रक्षा के लिये संघर्ष करने वाले तथा स्वाभिमान और स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वाले योद्धा के रूप में देखा है। यही कारण है कि एक और ग्वालियर का तवर राजा रामसाह और उसके परिजन तथा हकीमखाने सूर जैसे योद्धा प्रताप के पक्ष में युद्ध करते हुए मारे जाते हैं, विभिन्न खापों के राजपूत प्रताप की सेना में एकत्रित होते हैं, राजस्थान भर से स्वतंत्रताप्रिय राजपूत, चारण आदि मेवाड़ में आते हैं; और इतना ही नहीं प्रताप के इस संघर्ष में मध्यकालीन युद्धों में सामान्यतः निष्क्रिय और उदास रहने वाली जनता तमाम प्रकार का त्याग करके प्रताप को अटूट और

17. वही, पृष्ठ ३८

18. वही, पृष्ठ ५७

अदम्य वफादारी के साथ सहयोग प्रदान करती है, दूसरी ओर अकबर के आधीन हो गये राजपूतों एवं अन्य लोगों में भी प्रताप के सघर्ष के प्रति हमदर्दी और प्रशंसा की भावना मिलती है ।

विचारणीय बात है कि अकबर के तमाम प्रयत्नों, शक्ति सिंह जगमल, सगर आदि भाइयों के मेवाड़ त्याग तथा मेवाड़ की भीषण बरबादी के बाद भी मेवाड़ के सामन्त वर्ग में कोई फूट नहीं पड़ी और मेवाड़ के लोग आतंकित अथवा प्रलोभित नहीं किया जा सके । बीकानेर के कर्मचन्द की भाति मेवाड़ के भामाशाह को भी रहीम खानखाना द्वारा मुगलों की ओर मिलाने की चेष्टा की गई, किन्तु उसको सफलता नहीं मिली । यह सब प्रताप के व्यापक राष्ट्रीय आदर्शों के कारण ही सम्भव हुआ । इसी कारण मारवाड़ के राव चन्द्रसेन, जालोर के ताजखा, सिरोही के राव सुरताण, बूंदी के दूदा, ईडर के नारायणदास तथा अन्य छोटे राज्यों के साथ मुगल विरोधी मोर्चा बनाना सम्भव हुआ । प्रताप के आदर्शों के सम्बन्ध में पृथ्वीराज राठोड़ ने, जो स्वयं अकबर का सेवक था, यह विचार प्रकट किये हैं :-

जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार ।  
रह राखियो खत्री धर्म राणी, साराले बरतै संसार ॥

मुगल विरोधी दीर्घकालीन संघर्ष में प्रताप ने अन्त में जो सफलता प्राप्त की, वह भी इतिहास का एक अनूठा उदाहरण है । अकबर की सम्पूर्ण शक्ति और कूटनीति प्रताप को कुचलने में असफल

रही और जब थोड़ा सा अवसर मिला तो प्रताप ने कुछ ही महीनों में न केवल पहाड़ी प्रदेश बल्कि अधिकांश मैदानी भाग भी वापस जीत लिया ।

### प्रताप और अकबर

हम आज आधुनिक प्रजातन्त्रीय युग में रह रहे हैं । आज से लगभग चार सौ वर्ष पुरानी धारणाओं और कार्य-कलापों में हम वर्तमान युग की मान्यताओं के दर्शन नहीं कर सकते और यदि ऐसा करते हैं तो हम इतिहास के साथ न्याय नहीं करेंगे । डा. रघुवीरसिंह जब यह कहते हैं कि राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निष्पक्ष अनुदर्शन करने पर राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्शों की सकीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मकता की नीति में रचनात्मकता का अभाव दृष्टिगत होता है तो उनकी यह मान्यता ऐतिहासिक संदर्भ को भुला देती है । प्रताप के कार्यों को युग के संदर्भ में देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने एक विशिष्ट आदर्श, प्रयोजन और उद्देश्य को लेकर सघर्ष किया । वह आदर्श मेवाड़ तथा तिसोदिया वंश की सीमाओं में बन्धने वाला आदर्शनहीं था बल्कि आभारतीय था । प्रताप भूतकाल की ऐतिहासिक घटनाओं से अवगत था और उस काल का राजनैतिक वातावरण भी उसके सम्मुख स्पष्ट था । वह अकबर के साथ सनभौते की सीमा तक जाना चाहता था, किन्तु भविष्य भी उसके सम्मुख झाँक रहा था । वह उदारता, सहिष्णुता, नैतिकता और चारित्रिक उच्चता की दृष्टि से आदर्श व्यक्तित्व था । इन

गुणों में वह अकबर से बड़ा-चढ़ा था। उदारता एवं सहिष्णुता के वातावरण-निर्माण की दृष्टि से अकबर चेष्टा कर रहा था किन्तु अकबर जिस घेरे में बन्द था, वहाँ क्या ये मूल्य स्थायी रह सकते थे ? प्रताप का विरोध नकारात्मक नहीं था बल्कि उसका संघर्ष स्वतन्त्रता, स्वायत्तता और आत्म-गौरव के मूल्यों की रक्षार्थ रचनात्मक संघर्ष था। उसने अकबर की उदारता और सहिष्णुता की नीतियों पर कभी आघात नहीं किया और उसने स्वयं कभी भी अनुदार और कट्टर व्यक्ति की भाँति व्यवहार नहीं किया। उसका संघर्ष रक्षात्मक था, उन बातों के लिये जिनको अकबर की निरंकुशता स्वीकार नहीं करना चाहती थी। अकबर की निरंकुश सत्ता में भावी विघटन और कट्टरता के बीज छिपे हुए थे जो आगे जाकर पुनः फूटे। भारतवर्ष की एकता सदैव अनेकता (Unity in diversity) की मान्यता में रही। अकबर ने राजपूताने के राजाओं से जो सन्धि की, उसमें उसकी यह मान्यता नहीं रही। उसने राजपूताने में फूट के बीज बोये, राज्यों को कमजोर किया और उनके परम्परागत गौरव और विशिष्टताओं पर आघात किया। अन्यथा अकबर और प्रताप के बीच सम्मानजनक सन्धि कभी असम्भव नहीं होती।

### निष्कर्ष

डा. आशीर्वादीलान श्रीवास्तव ने ठीक ही कहा है कि प्रताप भारत की तात्विक भावना (Elemental Spirit) का प्रतीक था। यह भावना सदैव राष्ट्र की स्वतन्त्रता और गौरव की

रक्षा के संघर्ष में आगे रही है। महाराणा प्रताप राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और गौरव की भावना से प्रोत्-प्रोत् था, यद्यपि उसने यह भावना एक छोटे से क्षेत्र में बड़ी शक्ति का मुकाबला करते हुए प्रदर्शित की।

यह प्रताप के उच्च आदर्श ही थे, जिन्होंने प्रताप को भारत की भावी पीढ़ियों के हृदय में प्रतिष्ठित किया और जिनके कारण वह भारतीय जनता का अमर प्रेरणा-श्रोत बन गया। भारत में जब भी अन्याय और जुल्म के खिलाफ आवाज उठी, प्रताप का स्मरण किया गया। स्वयं छत्रपति शिवाजी के लिये प्रताप ने एक आदर्श उदाहरण का कार्य किया। ब्रिटिश-विरोधी स्वातन्त्र्य संघर्ष में बंगाल से लेकर गुजरात तक और सुदूर कर्नाटक तक महाराणा प्रताप के अनुपम स्वातन्त्र्य संघर्ष और वलिदान के उदाहरण ने जन-जन को उत्साहित किया, बन और विश्वास दिया और स्वतन्त्रता के लिये सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा दी। यह कम महत्त्व की बात नहीं है कि भारतीय इतिहास का महान सम्राट, विशाल साम्राज्य का स्वामी और शक्तिशाली शासक अकबर भारतीय जनमानस में वह स्थान नहीं ग्रहण कर सका जो महाराणा प्रताप ने प्राप्त किया है।

प्रताप के विचारों की उदारता, सिद्धान्तों और आदर्शों की महानता, चरित्र की पवित्रता, व्यवहार की नीतिमत्ता तथा स्वतन्त्रता के लिये उनके अटल निश्चय, अप्रतिम त्याग और बलिदान ने उसको भारतीय इतिहास का अमर व्यक्तित्व बना दिया है।



# महाराणा प्रताप सम्बन्धी कतिपय जनश्रुतियां

—देव कोठारी

महाराणा प्रताप के जीवन से सम्बन्धित अनेक जनश्रुतियां मेवाड़ में प्रचलित हैं। इनमें से कुछ जनश्रुतियों ने तो मेवाड़ के इतिहास में स्थान पा लिया है। बहुत सी अभी तक मौखिक रूप से प्रचलित हैं। उन सबको संकलित कर क्रमानुसार दिया जा रहा है जो प्रताप सम्बन्धी सामग्री एकत्रित करते समय प्राप्त हुई हैं।

## १. चेटक की खरीदना

प्रताप जब राजकुमार थे, कंधार का एक व्यापारी नीला 'चेटक' और 'नाटक' नाम के दो घोड़े बेचने के लिये नगर में लाया। घोड़ों की विशेषताएं सुन कर प्रताप ने व्यापारी को बुलाया और घोड़ों की परीक्षा करने के लिये नाटक घोड़े को एक बड़े मैदान में खड़ा करके उसके खुरों को लोहे की किसी मजबूत वस्तु के साथ जमीन में गाड़ दिये। इसके बाद प्रताप घोड़े पर सवार हुए तथा चाबुक लगा कर एड लगाई। घोड़े के चारों खुर वहीं गड़े हुए रह गये और लहलुहान घोड़ा मैदान में दौड़ता रहा। घोड़े को रोक कर ज्यों ही प्रताप नीचे उतरे घोड़ा वहीं गिर कर मर गया। प्रताप ने प्रसन्न होकर दोनों घोड़ों का मूल्य देकर नीले चेटक को खरीद लिया। इसी नीले घोड़े चेटक के लिये प्रसिद्ध है कि वह एक टांग कट जाने पर भी हल्दीघाटी के मैदान से प्रताप को बचा कर ले गया और तब प्राण त्यागे।

## २. प्रताप व शक्तिसिंह का मनमुटाव

एक बार प्रताप व शक्तिसिंह अन्य दरबारियों के साथ पास ही के जंगल में शिकार खेलने गये। जंगल में उन्हें हरिन नजर आया और तत्काल दोनों ने तीर छोड़े। तीर एक साथ हरिन के लगे, हरिन मर गया। हरिन के पास प्रताप व शक्तिसिंह पहुँचे तो दोनों के बीच विवाद हो गया कि किसके तीर से हरिन मरा है? विवाद इतना बढ़ा कि दोनों वहीं तलवारें निकाल कर लड़ने लगे। किसी दरबारी का उन्हें छुड़ाने का साहस नहीं हुआ किन्तु एक वृद्ध राजपुरोहित यह न देख सका। पास में जा कर समझाने लगा परन्तु दोनों भाई नहीं माने, इस पर राजपुरोहित ने फटार निकाल कर यह कह कर अपने सीने में घुसेड़ दी कि तुम्हें नर खून की आवश्यकता है तो यह लो। राजपुरोहित की लाश देख कर दोनों का क्रोध शान्त हुआ। प्रताप ने शक्तिसिंह को इस पर मेवाड़ से चले जाने को कहा। शक्तिसिंह अकबर से जा मिला।

## ३. प्रताप व मानसिंह का वैमनस्य

अकबर की ओर से मानसिंह प्रताप को समझाने के लिये उदयपुर आया। प्रताप ने उदयसागर की पाल पर उठे एक भोज दिया किन्तु राजपूतों के नियम के अनुसार भोज में प्रताप सम्मिलित नहीं हुए और अपने पुत्र अमरसिंह को भोज

दिया। मानसिंह ने प्रताप के नहीं आने का कारण पूछा तो बताया गया कि उनके सिर में दर्द है। इस पर मानसिंह अपना अपमान समझ कर उठ गया तब तक प्रताप भी वहाँ आ गये उन्होंने कहा कि जो अपनी वहन बेटियो को मुगलो के साथ ब्याह देते हैं उनके साथ हम भोजन नहीं करते। इस पर मानसिंह ने कहा कि मैं आपके सिर-दर्द का इलाज करने के लिये शीघ्र ही आऊंगा। उसी समय किसी ने कहा कि आप आते समय अपने फूफा को भी लेते आवे। प्रताप ने भी कहा कि अगर आप स्वयं की ताकत से आयेंगे तो आपका स्वागत मालपुरा के वहाँ करेंगे और अकबर की सेना के साथ आये तो जहाँ सम्भव हुआ वहाँ करेंगे।

#### ४. प्रताप व शक्तिसिंह का मिलन

हल्दीघाटी के युद्ध से प्रताप भाला मान (बीदा) के कहने से जब लौट पड़े तो दो मुगल सैनिकों ने प्रताप का पीछा किया। शक्तिसिंह ने जब यह देखा तो भाई का प्रेम उमड़ आया और मुगल सैनिकों का पीछा किया। आगे एक नाले की लाँघ कर प्रताप और चेटक तो आगे बढ़ गये किन्तु शक्ति ने मुगलो को वहीं मार गिराया और नाला लाँघ कर 'ओ नीला घाड़ा रा असवार' की जोर से आवाज लगाई। प्रताप रुक गये। शक्तिसिंह पास आकर प्रताप के पैरों में गिर पड़ा। उधर चेटक युद्ध में पैर कट जाने से घायल हो गया था वहीं मर गया। शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा प्रताप को दे कर वहाँ से रवाना कर दिया और स्वयं

मरे दोनों मुगल सैनिकों में से एक का घोड़ा लेकर वापस युद्ध स्थल पर आ गया।

#### ५. प्रताप की प्रतिज्ञा

मेवाड़ पर मुगलों के आक्रमणों से प्रताप के अन्य सामन्तों के साहस में कमी आने लगी। ऐसी स्थिति में प्रताप ने सब सामन्तों को एकत्रित कर उनके सामने रघुहुल की मर्यादा की रक्षा करने और मेवाड़ को पूर्ण स्वतन्त्र करने का विश्वास दिलाया और प्रतिज्ञा की कि जब तक मेवाड़ को स्वतन्त्र नहीं करा लूंगा तब तक राजमहलो में नहीं रहूंगा, पलंग पर नहीं सोऊंगा और पच धातु (सोना, चादी, तांबा, पीतल, और काँसा) के बर्तनों में भोजन नहीं करूंगा।

#### ६. कुंभलगढ़ के कुंभों में जहर

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद प्रताप कुंभलगढ़ जाकर पुनः लड़ाई की तैयारी करने लगे, तब शाहवाज खा ने आकर कुंभलगढ़ घेर लिया और एक सामन्त को रुपये और जागीर का लालच देकर अपने पक्ष में करके उससे कुंभलगढ़ के बड़े कुएं के पानी में जहर मिलवा दिया। जब मौतें होनी शुरू हुई और प्रताप को पता चला तो किले को कुछ विश्वस्त लोगो को सम्हला कर पीछे के रास्ते से पास के जंगल में चले गये। शत्रुओं के भयकर आक्रमणों को देख कर बाद में किले के फाटक खोल दिये गये। राजपूत मारे गये और किले पर शाहवाजखा का कब्जा हो गया।

#### ७. प्रताप बाल-बाल बचचे

कमलनाथ-आवरगढ़ में जब प्रताप रह रहे थे, रात्रि को शत्रुओं के आने का समाचार मिला।



प्रताप रात्रि में ही कुछ विश्वस्त सैनिकों को लेकर उधर रवाना हुए। रास्ते में एक भील-भीलनी मिले। उन्होंने प्रताप को उधर जाने से रोका किन्तु प्रताप नहीं माने। साथ के सैनिकों के समझाने पर प्रताप वापस लौट पड़े। सुबह होने पर जब जाने वाले सैनिकों व शत्रुओं के बारे में समाचार मालूम कराये गये तो पता चला कि शत्रु तो भाग गये किन्तु सत्र राजपूत सैनिक घायल पड़े हुए हैं। उन्हें वहाँ से गढ़ में मंगवा कर उपचार किया गया। बाद में उन भील व भीलनी की तलाश की गई किन्तु वे नहीं मिले।

#### ८. माली को मौत के घाट उतारा

मेवाड़ में मुगल सैनिकों को कहीं से रसद सामग्री न मिल सके इस उद्देश्य से एलान करवा दिया गया कि कोई भी व्यक्ति खेतों में कुछ भी न बोये। ऊटाना (वल्लभनगर) गांव में वहाँ के एक माली ने मुगल सैनिकों के बहकावे में आकर अपने खेत में कुछ सब्जियाँ बो दी। प्रताप को जब इस बात का पता चला तो स्वयं ऊटाला गये, स्थिति का पता लगाया और जब उन्हें सत्यता पर विश्वास हो गया तो सब्जी बोने वाले माली को मौत के घाट उतार दिया।

#### ९. प्रताप द्वारा राज-मर्यादा का पालन

अकबर की यह इच्छा हुई कि अपनी शान पर अड़े रहने वाले प्रताप के जगन के जीवन के बारे में उसे कुछ जानकारी मिले। इस उद्देश्य से उसने अपने एक वफादार व्यक्ति को राजपूत का वेश पहना कर मेवाड़ भेजा। वड़े प्रयत्न के बाद

वह व्यक्ति एक दिन प्रताप के निवास स्थान पर पहुँचा। उसने देखा कि प्रताप एक ऊँचे पर्वत पर बैठे हुए हैं तथा पास में बैठे सामन्तों को एक एक दोना भोजन का दे रहे हैं। अन्त में प्रताप ने स्वयं लिया और फिर सब खाने लगे। यह बात जब अकबर को मालूम हुई तो प्रताप के जंगल में भी इस मर्यादा पालन तथा अपने साधियों के साथ इस स्नेह और समानता की भावना से बड़ा प्रभावित हुआ।

#### १०. वनविलाव द्वारा रोटी छीनना

धोलिया पहाड़ में जब प्रताप रह रहे थे उस समय उन्हें खाने के लिये अनाज नहीं मिल पा रहा था। बड़ी मुश्किल से उन्होंने 'मोल' नाम के घास के बीजों को एकत्रित कराया और दो तीन रोटियाँ बनवाई। इसमें से एक रोटी का टुकड़ा लेकर उनकी राजकुमारी खा रही थी। उसी समय जंगल से एक वनविलाव आया और वह रोटी का टुकड़ा छीन कर भाग गया। रोने की आवाज सुन कर जब प्रताप उधर आये तथा उन्हें जब स्थिति मालूम हुई तो बड़ी गनानि हुई और उन्होंने अकबर से सन्धि करने के लिये पत्र लिखा।

#### ११. हकीम की आदर्श भावना

एक बार प्रताप के साथी सामन्तों की कुछ औरतें सैनिकों के हाथ पड़ गईं। मुगलमान सैनिक उन्हें बहा ले गये हैं यह पता नहीं लग रहा था। दूसरे दिन रात्रि को एक मुगलमान हकीम घोड़े पर बैठ कर प्रताप के पास आया और बोला, मुझसे यह देखा नहीं जाता कि आपके सामन्त जब मुगलमान



शाहजादियां पकड लाये थे, आपने उन्हें ससम्मान वापस लौटाया था। किन्तु आज आपके शत्रु आपकी वहन बेटियों की इज्जत लूटने पर उतारू हैं। मेरे साथ चलिये और उन्हें छुड़वाइये। प्रताप अपने विश्वस्त सैनिकों को लेकर हकीम के साथ गये और रात्रि में ही शत्रुओं पर आक्रमण कर औरतो को छुड़वा लाये। प्रताप हकीम की आदर्श भावना पर प्रसन्न हुए।

## १२. यजमानों को रोटी देना और लडकी की मृत्यु

प्रताप और उनका परिवार दो तीन दिन से भूखा था। कहीं से अनाज लाकर कुछ रोटियां बनाई और सबको अपने अपने हिस्से की रोटियां दे दी किन्तु प्रताप की लडकी ने अपना हिस्सा गाम की अपने छोटे भाई को देने के लिये सुरक्षित रख लिया। कुछ देर के बाद कुछ यजमान आये किन्तु प्रताप के पाम देने व खिलाने के लिये कुछ भी नहीं था। लडकी स्थिति को समझ कर बचाया हुआ हिस्सा ले आई और प्रताप को दे दिया। जब यजमान वह रोटी खाकर चल दिये तो उसके कुछ ही क्षण बाद लडकी की मृत्यु हो गई।

## १३. अकबर की मूर्छे काटना

एक बार उदयसागर के पास अकबर अपने परिवार के साथ विश्राम कर रहा था। प्रताप के सामन्तों को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने प्रताप से निवेदन किया कि अकबर को अपनी शक्ति बताई जाय। प्रताप सामन्तों की बात रखने के लिए मध्य रात्रि में नाव में बैठ कर अकबर के पड़ाव

की ओर रवाना हुए। रास्ते में एक 'सिगोतरी' (स्थानिय देवी) प्रताप को मिली। उसने प्रताप को उसकी शक्ति प्रदान की। प्रताप ने अकबर के डेरे में जाकर सोये हुए अकबर की एक ओर की मूर्छा काट दी और वहां जमीन पर 'प्रताप' लिख कर आगये।

## १४. अमरसिंह की प्रताप की फटकार

एक बार मध्य रात्रि में अचानक तेज वर्षा होने लगी और अमरसिंह की भोपड़ी से पानी टपकने लगा। इस पर अमरसिंह व उसकी पत्नी की वहां से दूसरी जगह सोना पड़ा। इस पर अमरसिंह की पत्नी ने कहा कि यह मुसीबत कब तक रहेगी? अमरसिंह ने बताया कि जब तक दाईजी राज चाहेंगे। प्रताप ने यह बात सुनली। सुबह होने पर अमरसिंह को अपने पास बुलवाया और फटकार सुनाई। अमरसिंह इससे बड़ा शर्मिन्दा हुआ।

## १५. मेवाड़ की पगड़ी का गौरव

एक चारण अकबर के दरबार में गया। अकबर को सलाम करते समय उस चारण ने अपने सिर से पगड़ी उतार कर हाथ में ले लिया और फिर सलाम किया। इससे अकबर बड़ा अप्रसन्न हुआ और सिर से पगड़ी उतारने का कारण पूछा। चारण ने कहा कि यह पगड़ी मेवाड़ के महाराणा प्रताप की दी हुई है इस कारण यह झुक नहीं सकती। इस पर अकबर प्रसन्न हुआ और चारण को बहुत इनाम दिया।

## १६. मृत्यु के समय प्रताप की चिन्ता

प्रताप मृत्युशय्या पर लेटे हुए थे । दर्द अधिक था किन्तु साथ चिन्तित भी बहुत थे । पास बैठे सामन्तों ने चिन्ता का कारण पूछा तो प्रताप ने बताया कि मेरे मरने के बाद क्या अमरसिंह सेवाड़ की रक्षा कर पायगा ? यह सुन कर सामन्तों के साथ अमरसिंह ने स्वतन्त्रता के इस संघर्ष को जारी रखने का व्रत लिया । इससे प्रताप की बड़ी शान्ति मिली । थोड़ी ही देर बाद प्रताप ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया ।

## १७. गाड़िया लोहारों द्वारा प्रतिज्ञा-पालन

‘चित्तोड़गढ़ को जब तक शत्रुओं के शासन से मुक्त न कर लेंगे तब तक चित्तोड़गढ़ में प्रवेश नहीं करेंगे,’ इस प्रकार की प्रतिज्ञा प्रताप के साथ उनके कुछ सामन्तों ने की थी । इस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिये कुछ इन सामन्तों ने बड़े पैमाने पर लोहे के शस्त्र बनाने आरंभ कर दिये । वे प्रताप को शस्त्र देते रहे । वे प्रताप के साथ घूमते रहते और जहाँ भी विश्राम लेते वहीं शस्त्र बनाना

आरंभ कर देते । प्रताप की मृत्यु के बाद भी उन्होंने शस्त्र बनाना और घूमते रहना नहीं छोड़ा । धीरे-धीरे इनका परिवार बढ़ गया और साथ में गाड़ियाँ रखने लगे और जब चित्तोड़गढ़ को जीतने की कोई आशा नहीं देखी तो इन्होंने खेती के औजार बनाने आरंभ कर दिये । आज भी ये चित्तोड़गढ़ में प्रवेश नहीं करते ।

## १८. प्रताप द्वारा अकबर का आतिथ्य

एक समय अकबर ने प्रताप के आतिथ्य-सत्कार की परीक्षा लेने की ठानी । वह फकीर का वेश धारण कर प्रताप के निवास पर पहुँचा । प्रताप ने उसका सत्कार किया । उस दिन प्रताप के पास भोजन नाम मात्र के लिये भी नहीं था । बड़े सकट में पड़े । घर पर आया हुआ महमान भूखा लौट जाय तो बड़ा पाप लगे । उन्होंने अपने इष्टदेव श्रीएकलिंग का स्मरण किया । उनकी कृपा से उसी समय पाँच पकवान की थाल प्रकट हुई, जिससे अकबर को तृप्त किया । जंगल में भी प्रताप को इस महमानवाजी का देख कर अकबर बड़ा आश्चर्यचकित हो कर लौटा ।



## प्रताप महिमा

जन्म उसका हुआ था जगती के मगल को  
अमित अमंगल के दगल को दलने ।  
घरणी के धारण का कारण जो धर्म--दभ,  
उसके विरोधी खल--मण्डल को मलने ।  
‘श्रीपति’ जो भारतीय वैभव--विलुण्ठन को  
निहले लुटेरे, उन्हें चगुल में कलने ।  
भारत को गारत की करने बढा था, उस  
शत्रु के अपार सैन्य सागर को यलने ॥

# गुजराती साहित्य में महाराणा प्रताप

—डा० भ्रमरलाल जोशी

गुजरात और राजस्थान दोनों प्रदेशों का शताब्दियों से सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। भौगोलिक सीमाओं के सामीप्य के साथ-साथ प्रारम्भ से ही दोनों के आचार-विचार, रीति-नीति, वेष-भूषा कला-विकास, भाषा और साहित्यिक मूल-स्रोत प्रायः समान ही रहे हैं।<sup>1</sup> दोनों प्रदेशों को भाषाएं अपभ्रंश के एक ही रूप से विकसित हुई हैं। सदियों पूर्व राजस्थान की कई जातियां गुजरात में और गुजरात की कई जातियां राजस्थान में जाकर बस गई हैं पर उन्हें प्रादेशिक भिन्नता कभी महसूस नहीं हुई है। गुजरात और राजस्थान के कई राजकुलों की धमनियों में एक ही वंश का रक्त प्रवाहित हो रहा है। मेवाड़ का राजवंश सौराष्ट्र से सम्बद्ध है।<sup>2</sup> इस प्रकार मेवाड़ और गुजरात दोनों प्रदेशों का शताब्दियों से सांस्कृतिक सम्बन्ध बना हुआ है। गुजरात के एक साहित्यकार ने मेवाड़ और गुजरात के राजवंशों का सम्बन्ध

बताते हुए कहा है कि मेवाड़ के महाराणाओं को जब तक सौराष्ट्र की राजकुमारी मिल सकती है तब तक वे किसी और का सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते थे।<sup>3</sup>

मेवाड़ी वीरों के शौर्य, दृढ़निष्ठा, देशभक्ति, उदारता, टेक, स्वामी—भक्ति आदि पर गुजरात सुग्ध है। गुजरात में बापा रावल, कुंभा, मीरा, हमीर, सांगा, प्रताप और राजसिंह को लेकर प्रचुर साहित्य निर्मित हुआ है। इसमें से भी प्रताप पर तो अनेक साहित्यकारों की दृष्टि पहुँची है। प्रताप के शौर्य एवं उनकी देश भक्ति पर यहां के इतिहासकार ने अपरिमित श्रद्धा—सुमन चढ़ाये हैं।<sup>4</sup> प्रताप जैसे मेदपाटीय वीरों के संबंध में गुजरात का एक साहित्यकार तो यहां तक लिखता है कि रामायण और महाभारत के योद्धा अपने स्वार्थ के लिये लड़े जबकि मेवाड़ के योद्धाओं ने अपने देश की रक्षा के लिये प्राण न्योछा-

- 1 'सौराष्ट्र अने राजस्थान ना आचार विचार एक सरखा, सस्कार, शौर्य अने सौंदर्यपण सरखा मेवाड़नी मछगंधा की भूमिका।
  - 2 एमां ये मेवाड़ना राणा तो छे. सौराष्ट्रवासी मूल वल (वल्लभपुर) ना वतनी—मेवाड़नी मछगंधा, भूमिका।
  - 3 मेवाड़पति ने ज्या सुधी सौराष्ट्रनी राजकुवरी सांपडती त्यां सुधी अन्य राजकुवरीओना ओकल स्वीकारता नहि—मेवाड़ नी मछगंधा, भूमिका।
  - 4 विसोदियामां राणा प्रताप जेवा सद्गुण, उरुधभाव अने पराक्रमोनुं दर्शन त्यार पछीनो बीजो कीई पण राजपूत करावी शक्यो नथी—मेवाड़नी संध्या, पृ० १०
- 'प्रतापसिंह मां एक महत्वनो गुण ए हतो के तेमना वीरस्वमां नीचतानुं चिन्ह जणानु नथी, प्रतापसिंह, पृ० ६, ले० डा० रा० मेहता—

कर किये हैं। यह कहते हुए गौरव की अनुभूति होती है कि गुजरात के साहित्यकारों ने मेवाड़ को पवित्र वीर-तीर्थ के रूप में निरूपित किया है।

गुजराती में महाकवि नर्वंद (सन् १८३३—१८८६) ने 'नर्म गद्य,' भाग २ (पृष्ठ ४०४—४०७) में देश के जागरण काल में सबसे पहले मेवाड़ एवं महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में संक्षेप में मेवाड़नी हकीकत नाम से लिखा। इसके बाद कई गुजराती साहित्यकार इस ओर अभिमुख हुए। 'जूनी घंघादारी रंगभूमि' सस्या ने प्रताप पर लिखित नाटकों को गुजरात तथा महाराष्ट्र अनेक नगरों में अभिनीत किया। गुजरात विद्यापीठ ग्रंथालय अहमदाबाद की रीजनल कॉपीराइट लाईब्रेरी में छोटी-बड़ी कई देशी नाटक कम्पनियों की 'प्रताप नाटक ना गायनो', 'प्रताप नाटकना गायनो अने टुकसार', 'अश्रुमति' आदि के रूप में कई छोटी पुस्तिकाएँ सुरक्षित हैं। जिनमें नाटक का कथासार तथा गीत हैं। इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि प्रताप का चरित गुजरात में बहुत पहले से कितना लोकप्रिय हो चुका था। गुजराती में प्रताप पर लिखित नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ, जीवनचरित्र आदि उपलब्ध होते हैं।

### नाटक

प्रताप संबंधी गुजराती नाटकों में गणपतराम राजाराम भट्ट कृत प्रताप नाटक (१९२१ ई.)

नारायण हेमचन्द्र द्वारा अनुवादित बंगाली नाटक अश्रुमति (१८८७ ई.), डाह्या भाई घोलशाजी कृत अश्रुमति (१९०८ ई०), कविकान्त कृत सलीमशाह (अप्रकाशित), मणिभाई भूलाभाई पटेल कृत प्रतापसिंह, दौलतराम कृपाराम कृत महाराणा प्रताप, जयंतिलाल मेहता कृत मेवाड़ना सिंह अने बीजी वातो, भवेरचन्द मेघाणी द्वारा अनुवादित बंगाली नाटक राणो प्रताप (१९३४ ई०) मूलशंकर मारिकयलाल कृत (संस्कृत नाटक) प्रतापविजयम् प्रधान हैं।

प्रताप नाटक गुजराती साहित्य की कृतियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है। यह नाटक गुजरात के विद्यालयों में अनेक वर्षों तक पाठ्य पुस्तक के रूप में चर्चता रहा है और कई सस्याओं द्वारा अभिनीत हुआ है।

कथावस्तु की दृष्टि से यह नाटक कवि नर्वंद के नर्मगद्य की मेवाड़ नी हकीकत एवं टांड कृत राजस्थान पर आधारित है। नाटक की कथा इतिहास-प्रसिद्ध है। प्रताप की स्वतन्त्रता अकबर को खटक रही थी। मन्सिंह ने कई प्रलोभन देकर प्रताप को अकबर के दरबार में लेजाने का प्रयत्न किया किंतु अन्त तक वह असफल हो रहा। मन्सिंह अग्रसन्न हुआ। प्रताप को हल्दीघाटी में मुगलों ने लोहा नैना

5 भारत के रामायणमें बछाएला जोड़ा तो मात्र तेमना स्वयं ने मटेज प्रयात कई गया, पर मेवाड़ ना राजपूतो तो पोताना उत्तम प्रकारना सदगुणो मटे प्रयात गया छे'

-मेवाड़नी जाहोजलानी, पृ. ० ५ ले० थी बिट्टभाई घननी भाई

पड़ा। मानसिंह प्रताप को जीवित कैद करना या मारना चाहता था पर सफल नहीं हो सका। प्रताप युद्ध समाप्त होने के बाद कुम्भलगढ़ एवं फिर पहाड़ों में चले गये। अंत में युद्ध के साधन एवं अर्थ के अभाव के कारण उन्होंने मेवाड़ छोड़ने का निश्चय किया। भामाशाह मेवाड़ के अर्थपति थे। उनके पास अपना पूर्व संचित काफी द्रव्य था। आपत्ति के समय उन्होंने अपनी समस्त निधि प्रताप को समर्पित कर दी। प्रताप ने उस द्रव्य से पुनः सेना संगठित की और युद्ध में विजय प्राप्त की।

नाटक का प्रधान रस वीररस है। वीर रस के अनेक अनुभाव एवं हावभावों का नाटक में सफल निरूपण हुआ है। हल्दीघाटी के युद्ध में मुगलों से लोहा लेने के लिए राजपूत सेना तैयार खड़ी है। सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा है। ऐसे समय 'राजा बाराट' अपनी जोशीली वाणी में प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं कि वीरो ! खड्ग खोल कर ऐसी हुंकार करो कि मुगलानियों के गर्भ गिर जाए --

कीकियारी करो कारमी खड्ग धरि,  
गर्भ मुगलाणीना जाय तूटी।

देह तृण एवं मिट्टी के समान तुच्छ है। युद्ध में विजयी वीरों को ही यश रूपी हेम कुंभ (चुवर्ण घट) की उपलब्धि होती है। अतः वीरो ! इस अवसर पर चूको नहीं और अपनी 'नाक' (सम्मान) के लिए अपना सिर होड़ में लगा दो।

गात्र ने माटीना पात्र जेवु गरो,  
हेमनो कुंभ जश आप वूफे,  
नाकने काज निज शीश अपें वधुं  
शरीर ने तरणनी तुल्य जागो।

नाटक में जोधपुर, जयपुर आदि राजघरानों को मुगलों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कोसा गया है। प्रताप की पत्नी महारानी को एक आदर्श वीर क्षत्राणी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रताप --- महारानी सम्वाद बहुत रोचक एवं भावोत्तेजक बना है। महारानी प्रताप की रण के लिए विदा करते समय मंगल कामनाएँ करती हुई कहती है कि युद्ध में वे समस्त शत्रु-दल को भवानी के खप्पर में होम कर विजय प्राप्त करें। वे अपने शर में राम के वाण की अमोघ शक्ति प्राप्त करें --- ..... आदि।

कथ कोडामणा । लउं भला भामणा  
जुद्धमा जइ भलो जश जमावो,  
शत्रुदल खरमा ते खपावो,  
रामना वागनु दल बसो वाणमा  
खड्ग मां कालिना खड्ग जेवु ।  
इन्द्रना वज्रनूं जोर भाले हजो  
ढाल हनुमान तनु होय तेवु ।

अश्रुमति नाम से दो नाटक गुजराती में प्रकाशित हुए हैं। प्रथम है रविन्द्रनाथ ठाकुर के बड़े भ्राता ज्योतिन्द्रनाथ कृत बंगाली नाटक 'अश्रुमति' का नारायण हेमचन्द्र द्वारा गुजराती अनुवाद। इस कल्पित नाटक के प्रधान पात्र हैं --- प्रताप की

कुंवरी अश्रुमती और अकबर-पुत्र सलीम । कथा-वस्तु हल्दीघाटी के युद्ध से प्रारम्भ होती है । युद्ध के बाद एक मुगल सेनापति फरीद अश्रुमती का अपहरण कर लेता है और उससे विवाह करना चाहता है । अश्रुमती सलीम को चाहती है जबकि प्रताप का भ्राता शक्तिसिंह कवि पृथ्वीराज से उसका विवाह करना चाहता है । सम्पूर्ण कथानक में ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा की गई है । नाटक में प्रताप को धीर, हठप्रतिज्ञ और स्वातंत्र्य प्रेमी योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया गया है । नाटक के अन्तिम भाग में मृत्यु शैया पर पड़े हुए जब प्रताप अन्तिम श्वास गिन रहे थे वे अश्रुमती को आजन्म ब्रह्मचारिणी रह कर शिवाराधना का प्रायश्चित्त विधान करके दम तोड़ते हैं । डाह्याभाई घोलशाजी भवेरी कृत अश्रुमती नाटक की कथावस्तु कुछ भिन्न है । उसमें प्रताप का मुगलों द्वारा कैद किया जाना, शक्तिसिंह एवं पृथ्वीराज द्वारा अपहरण से मुक्ति आदि घटनाएँ दी गई हैं । स्पष्ट है इन नाटकों की घटनाएँ इतिहास सम्मत नहीं हैं ।

प्रतापसिंह नाटक की कथावस्तु 'प्रताप नाटक' के समान ही है कुछ नये स्त्री पात्र जोड़ दिये गये हैं । राणो प्रताप की कथावस्तु भी टाड कृत राजस्थान पर आधारित है । इसमें मुगल राजकुमारियों से सम्बन्धित कल्पित घटनाओं का समावेश किया गया है तथा अकबर की कामुकता, नवरोज का मेला और पृथ्वीराज की पत्नी का अपने सतीत्व को रक्षा जैसी बातें भी प्रस्तुत की गई हैं । प्रतापविजयम् संस्कृत नाटक में

हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन अत्यन्त ही मार्मिक एवं वीररस के भावों से श्रोतप्रोत है ।

### उपन्यास

गुजराती साहित्य में महाराणा प्रताप के जीवन और आदर्शों को आधार बना कर कई उपन्यासों की रचना की गई है । इनमें मुख्य हैं— रमणलाल वसन्तलाल देसाई कृत शौर्य तर्पण (१९५१ ई०) वसन्त कृत मेवाड़ की सध्या (१९०८ ई०), ना० वि० ठक्कर कृत हल्दीघाटी नुं युद्ध (१९०६ ई०), छगनलाल अमयाराम कृत प्रतापी प्रताप (१९४६ ई०) गोपालजी वीरमजी कृत मेवाड़ केसरी (१९५२ ई०) तथा डाह्याभाई रामचन्द्र मेहता कृत वीर श्रेष्ठ महाराणा प्रताप-सिंह (१९१४) । शौर्य तर्पण के लेखक रमणलाल वसन्तलाल देसाई गुजराती के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं । मेवाड़ के राजवंश को लेकर आपने तीन उपन्यास लिखे हैं— 'मेवाड़ की अरुणोदय' 'पहाड़ की पुष्पो' और 'शौर्य तर्पण' ।

मेवाड़ की अरुणोदय बापा रावल को लेकर लिखा गया है । पहाड़ की पुष्पो में महाराणा उदयसिंह तथा उनकी प्रियेसी मालिन नन्दिनी के प्रेम का विस्तारपूर्वक चित्रण किया गया है । तीसरा उपन्यास शौर्य-तर्पण प्रताप के चरित्र से सम्बद्ध है । प्रताप के राज्याभिषेक होने से लेकर उनके अन्तिम क्षणों तक का इसमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । उपन्यास में प्रताप के साहस, शौर्य, और अटूट सत्य का बड़ा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

प्रताप अन्तिम दम तक स्वतन्त्र रहने की अपनी 'अण्णम टेक' पर दृढ़ रहते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ से ही एक अवान्तर प्रेम कथा भी चलती है, वह है सामन्त-पुत्री गौतमी एवं खालियर के तंवर राजकुंवर शालिवाहन की प्रेम-कथा। इस कथा में कुंभलगढ़ के रक्षक देवराज की खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह विश्वासघात करके कुंभलगढ़ मुगलों को दे देता है। गौतमी इसका बदला उसका वध करके लेती है। उपन्यास के अन्तिम भाग में प्रताप भामाशाह के द्रव्य से मेवाड़ पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी मेवाड़ का हृदय चित्तोड़ उन्हें प्राप्त नहीं होता है। प्रताप की आशा अधूरी ही रह जाती है।

उपन्यास में अनेक मर्मस्पर्शी दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं। प्रताप मातृभूमि मेवाड़ को त्यागने के लिए तैयार हो रहे हैं। मेवाड़ से विमुक्त होने से पूर्व प्रताप की वीर पत्नी अश्रु-जल से भगवान् सूर्य का तर्पण करती है। प्रताप के पूछने पर वह उत्तर में कहती है—“महाराज ! हजी सूर्य अस्त थया नथी बीजा / कोईनुं नहि तो आपणा आ सनातन पूर्वजनुं एकाद बिंदु बडे तो तर्पण करवुं पड़े-ने ? (पृ० २६२)

चरित्र—चित्रण की दृष्टि से प्रताप, भाला सरदार, कुंवर शालिवाहन, वभ्रु, देवराज आदि महत्वपूर्ण पात्र हैं। उपन्यास में प्रताप के चरित्र का विकास अच्छी तरह हो पाया है। वे एक ओर जहां बत्सल प्रजा-पालक हैं तो दूसरी ओर कठोर शासक भी।

मेवाड़नी संध्या अथवा प्रेमनी आहुती भी प्रताप के जीवन से सम्बन्धित उपन्यास है उनके जीवन के अन्तिम दिन बड़ी निराशा में व्यतीत हुए। प्रताप मेवाड़ की किसी भी भांति स्वतन्त्र रखना चाहते थे। पर उनके बाद उन्हें अन्धकार ही दिखाई पड़ता था। दो कुवरों से एक अजीतसिंह एक युवती के प्रेम में पड़ कर युवती के साथ ही पूर्णा नदी में समाधि ले चुका था। और दूसरे अमरसिंह में भी कोई विशेष दृढ़ता नहीं दिखाई दे रही थी। लेखक ने कृति का नाम 'मेवाड़नी संध्या' रखा है, क्योंकि प्रताप की लेखक ने मेवाड़ की उस अन्तिम किरण के रूप में देखा था जिसके अस्त हो जाने के बाद मेवाड़ की धरती सदा के लिए वीर-विधुरा हो गई। 'प्रेमनी आहुती' जो इस उपन्यास का दूसरा शीर्षक है उसका संबंध कुंवर अजीतसिंह और उसकी प्रेयसी लक्ष्मी की प्रेम-कथा से है जिसका कि उपन्यास में विशेष महत्व है। पूर्णा नदी के तट पर अजीतगढ़ आज भी दोनों के प्रेम का साक्षी माना जाता है।

प्रताप के यश के वर्णन में लेखक ने यत्र-तत्र प्रताप सम्बन्धी प्राचीन राजस्थानी भाषा के पृथ्वीराज, दुरसा आडा आदि द्वारा रचित दोहों का प्रयोग भी किया है।

ऐतिहासिक घटनाओं को लेखक ने अपनी कल्पनानुसार परिवर्तित कर दिया है। उपन्यास की भाषा अलंकृत एवं प्रांजल है। इसमें वीर एवं शृंगार दोनों की धाराएँ समान गति से प्रवाहित हुई हैं।



मेवाड़ केसरी याने हिंदवी सूर्य रचना में पद्य का मिश्रण होने से इसे हम चपूकाव्य भी कह सकते हैं। सूर्य वंश का प्रभाव बतला कर बापा रावल से ही कथा प्रारम्भ की गई है। प्रताप एवं मानसिंह का काव्यमय संवाद भाव-पूर्ण एवं प्रभावोत्पादक है। प्रताप मानसिंह से कहते हैं कि यवनों के उच्छिष्ट से तोंद बढ़ा रखी है, किसी दिन मर्द से पाला पड़ेगा तो गत बिगड़ जायगी।

यवनो की जुठ से वढ़ायो घरीर ताको,  
पारखो पडेगो जवे, मरद वो मुछालो है। (पृ. ६१)

प्रताप के अंतिम क्षणों का वर्णन अतीव कारुणिक है।

‘उदयपुरना वीर श्रेष्ठ महाराणा प्रताप’ उनके जीवन पर आधारित इस उपन्यास में प्रताप के व्यक्तित्व को लेकर लेखक ने जो कुछ कहा है वह काफी महत्वपूर्ण है। प्रताप को उपन्यासकार ने सच्चे वीर के रूप में चित्रित किया है। वह कहता है ‘प्रतापसिंह मा एक महत्वनो गुण ए हतो के तेमना वीरत्व मा नीचतानुं चिन्ह जणानुं नथी’ (पृ. ६)। वीर तो कई होते हैं पर उनकी वीरता अनतिकता आचरणों के कीचड़ में फंसी हुई होती है। मानसिंह ऐसा ही था जिसकी वीरता परवशता के कर्दम में फंसी हुई थी। स्वधर्म पर ही आघात करना वीरोचित काम नहीं है।

काव्य

राजस्थान में जिस प्रकार डिंगल-साहित्य निर्मित हुआ है, उसी प्रकार गुजरात में भी

चारणो-साहित्य लिखा गया है। डिंगल की भांति यह भी प्रायः वीरों के यशोगान से ही सम्बद्ध है। संभव है प्रस्तुत विषय पर गुजरात के चारणो, भाटों और बाराटो ने पर्याप्त लिखा हो। चारणो साहित्य पर गुजरात के साहित्य-कार श्री भवेरचन्द मेघाणी की ‘चारणो घने चारणो-साहित्य’ रचना मिलती है, पर इसमें भी प्रस्तुत विषय पर विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है। गुजरात में कई हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार भी हैं। संभव है उनमें भी अनुसन्धित्सुओं को बहुत कुछ मिल सके। मुझे प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित दो रचनाएं प्राप्त हुई हैं:—

१. पुरोहितनी राजभक्ति तथा २. हल्दीघाटी नुं युद्ध।

दोनों रचनाएं गुजरात के प्रसिद्ध कवि अददेशर फरामजी खबरदार की हैं। दोनों ही अतीव प्रसिद्ध एवं रसपूर्ण रचनाएं हैं। ये रचनाएं पाठ्य पुस्तकों में भी वर्षों से चल रही हैं।

पुरोहितनी राजभक्ति रचना ‘आपणा खड काव्यो’ संग्रह में छपी है। आखेट के समय प्रताप और शक्तिसिंह में पहले कुछ कहा-सुनी हो जाती है और फिर दोनों खड्ग तान कर एक दूसरे पर टूट पड़ते हैं। राजवंश की रक्षा के लिए अन्त में पुरोहित अपनी बलि देता है। कवि ने बड़ा मर्म-स्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है—

... कूदी कूदा उछली उछली, सिंह शु रग राखे,  
राता ताता उभय कुंवरो, युद्ध नेपुण्य दाखे,  
ऊभा ऊभा अवरजन सौ ध्रूजता मीट मांडे,  
वृक्षो ध्रूजे ऊभेलां, अनिल घूघवतो घोर त्यां घोष पांडे



राजभक्त पुरोहित से यह दृश्य देखा न गया  
और उनका द्वन्द्वयुद्ध रोकने के लिए अपने प्राण  
उत्सर्ग कर दिये—

भोंकीने ते कटारी भट निज उरमा त्यां पड़ी रक्त डूवे  
लड़ता कुँवरो मध्ये विप्रनो देह तर्फडे

दूसरी कविता “हल्दीघाटी नुं युद्ध” है।  
इसका कथानक खड काव्य के जितना व्यापक है।  
प्रताप अपने सरदारों का युद्ध के लिए आह्वान  
करते हैं:-

वीरा ! भट चालो रणमा  
हर हर हर नादे घूमता,

प्रताप का आह्वान सुनते ही चूँडावत, सांगा-  
वत, राठोड, सिसोदिया, भाला, चौहान, परमार  
आदि सहस्रों वीर मुगल सेना पर मृगों पर सिंह  
की भांति दूट पड़े। भीषण मार-काट शुरू हुई।  
वीरों के रुंड-मुंडो से घरती पट गई। अकेले  
प्रताप की मार से सैकड़ों वीर घरती पर लोट गये।

आकाश घरा त्या कंघ्या,  
रणक्षेत्रे आरभायो,  
ढगना ढग वीरो पडता,  
लडता अगणित मोगल ने,

×

×

×

डोल्या चोडे ब्रह्माड !  
शो भीषण हत्या काड !  
नहि शबनो काइ सुमार,

×

×

×

राणाए राखी रंग,  
निज अश्वे मारी छलंग ,

×

×

×

छे प्रताप केरुं आज ।  
ते घुमो रह्यो सिंह राज,

सम्पूर्ण कविता वीर रस से पूर्ण है। अन्त  
में कवि प्रताप को लेकर कहता है कि उनका यश  
और उनके वीरोचित कर्मों को भारत सदा याद  
रखेगा--

राणाए ते दिन अते,  
पण जगते जोयो त्हेनी ,  
नथी भारत जन कदी भुल्यां ,  
सहु स्मरे प्रताप अने ते ।

कवि अन्त में कहता है कि प्रताप के शौर्य  
के इन गीतों का जो स्मरण करेगा वह जीवन के  
किसी भी क्षेत्र में असफल नहीं होगा, निराश नहीं  
होगा, ‘करमाएगा’ नहीं अर्थात् म्लान नहीं होगा--

छे घन्यज तम तलवार ,  
कदी करमाशे पलवार ?  
तमशौर्य गीतो नरनार,  
शूरा बावीश हजार

इतिहास

गुजराती में प्रताप विषयक दो इतिहास ग्रन्थ  
मिलते हैं—

- १ मेवाड़ नी जाहोजलालो
  - २ मेवाड़ना अणमोल जवाहिर याने आत्मबलिदा ।
- प्रथम ग्रन्थ १५ प्रकरणों में विभक्त है।  
सूर्य वंश की उत्पत्ति से लेकर महाराणा राजसिंह

तक के मेवाड़ के राजवंश का इसमें वर्णन किया गया है। इतिहासकार मेवाड़ का 'जाहोजलाली' (जैभव) का काल महाराणा राजसिंह तक ही मानता है, अतः इसमें राजसिंह तक का ही वर्णन किया गया है। जैसा कि स्वयं लेखक का कथन है उसने यह ग्रन्थ जाति, धर्म, संप्रदाय आदि के संकुचित घेरे से मुक्त रहकर तटस्थ दृष्टि से लिखा है। इस ग्रन्थ के मूल-स्रोत हैं--कनैल टॉड कृत राजस्थान, उनके संपर्क में आने वाले अनेक राज वारोड, चारण और भाट, मेवाड़ की यात्रा करके लौटे हुए अनेक यात्री। अध्ययन से लगता है कि ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। इसकी कई आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं। लेखक को इसकी आठवीं आवृत्ति उपलब्ध हुई है। ग्यान्हवा प्रकरण महाराणा प्रताप से सम्बद्ध है।

दूसरा ग्रन्थ 'मेवाड़ ना अणमोल जवाहिर याने आत्म बलिदान' है। जो काफी बड़ा होने पर भी उतना महत्वपूर्ण नहीं है। इसमें महाराणा कुंभा से लेकर महाराणा फतहसिंह तक का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में स्थान स्थान पर ऐतिहासिक स्थानों के चित्र भी दिये गये हैं। जैनियों की उदारता का वर्णन काफी बड़ा-चड़ा कर किया गया है, जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाराणाओं के वर्णन के साथ जैनियों का कीर्ति-गान करना प्रमुख प्रयोजन रहा है।

इनके अतिरिक्त 'चारणो अने चारणी-साहित्य' में पृ० १८८ पर चारण कवि केशरीसिंह सोन्याणा के 'प्रताप चरित्र' ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है, जो प्रकाशित हो चुका है।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त 'भारतना भडवीरो', 'भारतना वीर पुरुषो' जैसे अनेक ग्रन्थों में प्रताप विषयक कहानियाँ, जीवन चरित्र आदि प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। प्रताप पर गुजरात में बालसाहित्य भी लिखा गया है 'वीररस-पूर्ण छोटी छोटी बालपुस्तिकाएँ' पुस्तकालयों में काफी संख्या में संग्रहीत हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि गुजराती में ही नहीं अपितु देश की बगला, मराठी, आदि इतर भाषाओं में भी समान काल में प्रताप पर साहित्य लिखा गया है। प्रताप पर ही नहीं किंतु शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह आदि पर भी प्रचुर साहित्य निर्मित हुआ है। इस साहित्य निर्माण के पीछे एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है, स्वतन्त्रता के लिए देश को जाग्रत करना। १९ वीं सदी में देश को स्वतन्त्र बनाने की एक प्रचंड लहर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो गई थी। प्रताप, शिवाजी गुरु गोविन्दसिंह जैसे स्वतन्त्रता-प्रिय वीरों के माध्यम से साहित्यकारों ने इस स्वार्थ-लहर को चेतनाशील एवं आन्दोलित बनाये रखने का यत्न किया। प्रताप पर जो साहित्य देशव्यापी भाषाओं में लिखा गया, उसके पीछे भी साहित्यकारों की यही बलवती भावना रही थी। अवश्य ही साहित्यकारों ने अपना दर्शन कल्पना एवं अतिशयोक्ति का सहारा लेकर, ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ मरोड़ करके तथा कहीं कहीं भद्दे रूप में भी प्रस्तुत किया है।

# महाराणा प्रताप : कुशल शासक, चतुर कूटनीतिज्ञ एवं योग्य सेनापति

- डा० देवीलाल पालीवाल

भारतीय इतिहास के महान् साम्राज्य निर्माता और विजेता सम्राट अकबर के विरुद्ध लगभग २० वर्षों तक सफल युद्ध का संचालन करने वाले और विशाल साम्राज्य के मध्य एक टापू के समान स्थित मेवाड़ की स्वतन्त्रता को कायम रखने वाले महाराणा प्रताप के कूटनीतिक, प्रशासनिक, एवं सैनिक गुण इतिहासकारों की दृष्टि से उपेक्षित रहे हैं। इतिहासकारों ने प्रताप के आदर्श, सघर्ष और त्याग एवं वलिदान की चर्चाएँ तो गईं की है किन्तु प्रताप के व्यक्तित्व के गुणों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है और प्रायः यह मान लिया गया है कि प्रताप में एक कुशल शासक के गुणों का अभाव था। अकबर और प्रताप के व्यक्तित्वों की तुलना करते हुए डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव कहते हैं, "यद्यपि प्रताप के राज्य की भूमि, भौतिक साधन और जनशक्ति अकबर से अत्यधिक कम थी, फिर भी वह साहस, वीरता, चरित्र की दृढ़ता, देशभक्ति सैनिक प्रतिभा और वास्तव में नेतृत्व के सभी गुणों में अकबर के समकक्ष था, प्रताप में कमी थी तो सिर्फ रचनात्मक योग्यता, दृष्टि की व्यापकता, राजनैतिक अन्तर्दृष्टि और राजनीतिज्ञता की।" किन्तु प्रताप का दीर्घ-

कालीन अटूट सघर्ष, सफलता तथा परिणाम एवं तत्कालीन ऐतिहासिक प्रमाणों का अध्ययन प्रताप के उन गुणों को प्रकट करते हैं, जिन्हें डा. श्रीवास्तव अपने अध्ययन में एक जगह अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते हैं,<sup>2</sup> किन्तु दूसरे स्थान पर उनको अस्वीकार करते हैं। यह सही है कि प्रताप अकबर के मुकाबले एक अत्यन्त ही छोटे राज्य का स्वामी था, उससे उसके शासकीय गुण कम नहीं हो जाते बल्कि उसकी सैनिक एवं राजनैतिक सफलताओं के कारण, उसके वे गुण अधिक उजागर होते हैं।

## कुशल शासक

१५७२ ई० में प्रताप के राज्यारोहण के समय मेवाड़ का समस्त मैदानी भाग, माडलगढ़ एवं चित्तौड़गढ़ सहित, मुगलों के आधीन था और सिर्फ पर्वतीय भाग ही राणा के अधिकार में था। मैदानी भाग को वापस हासिल करना एक दुःसाध्य कार्य था, किन्तु पर्वतीय भाग की मुगल सेनाओं से रक्षा करना भी उतना ही कठिन कार्य था। १५६८ ई० में चित्तौड़-पतन के लगभग चार वर्ष बाद गोगूदा में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु हुई उस समय तक पहाड़ों में घत्र-तत्र विचरण के

1 A, L. Srivastava Akbar the Great, vol I, P 197

2 Ibid, P 222-224

बाद महाराणा ने गोगूदा को सामरिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से प्रधान केन्द्र स्थल बनाया था। इसके अतिरिक्त उदयपुर और कुम्भलगढ़ दो अन्य प्रधान स्थान थे जहाँ मेवाड़ की सैन्य टुकड़ियाँ एवं प्रशासनिक अधिकारी रहते थे। उदयसिंह के काल में ही उदयपुर को अपेक्षाकृत कम सुरक्षित स्थान होने से मेवाड़ की राजधानी नहीं रखने का निर्णय कर लिया गया था।

महाराणा प्रताप का राज्यारोहण गोगूदा में हुआ और जशन कुम्भलगढ़ में मनाया गया। उसके दो वर्ष पूर्व १५७० ई० में अकबर के नागौर दरबार तक राजपूताना की लगभग सभी बड़ी शक्तियाँ अकबर के अधीन होगई थी। गुजरात विजय के बाद अकबर ने मेवाड़ के दक्षिणी भाग में स्थित शेष छोटी राजपूत शक्तियों को विजय कर मेवाड़ के पर्वतीय भाग को घेर लेने का निश्चय किया ताकि यदि प्रताप मुगल अधीनता स्वीकार न करे तो मुगल सेनाएं चारों ओर से मेवाड़ के पर्वतीय भाग में प्रविष्ट होकर प्रताप को पराजित कर सके। अकबर मेवाड़ को अकेला कर घेरने में अवश्य सफल हुआ, किन्तु उसकी प्रबल सैन्य शक्ति और कूटनीति प्रताप को पराजित करने और भुगताने में सफल नहीं हुई।

प्रताप और उसके सहयोगियों ने मेवाड़ की स्वतन्त्रता की रक्षा का निश्चय तो कर लिया किन्तु दुर्गम एवं विकट पर्वतीय प्रदेश में दीर्घकालीन युद्ध के लिये समुचित प्रशासनिक, सामरिक एवं आर्थिक व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं था।

प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से प्रताप के सम्मुख कई समस्याएँ थी—

१. मुगल सैनिकों से रक्षा के लिए स्वयं के परिजन, स्त्री-वच्चों और सामन्तों के परिजनों को ऐसे सुरक्षित स्थलों पर रखना जहाँ उनकी रक्षा हो सके और उनका भरण-पोषण भी हो सके और सकट के समय उनको तत्काल स्थानांतरित किया जा सके।

२. राज्य के कोष, शस्त्रागार, अन्न भण्डार आदि के लिये सुरक्षित स्थलों की व्यवस्था करना।

३. राज्य की अर्थ व्यवस्था, पैदावार, उद्योग धन्धे, व्यापार आदि की पर्वतीय भाग में इस भाँति व्यवस्था करना, जिससे मेवाड़ का समस्त सैन्य संगठन सुचारु रूप से संचालित किया जा सके, जन-जीवन की सामान्य आवश्यकताएँ पूरी की जा सकें और साथ ही शत्रु को उनका लाभ न मिल सके।

४. प्रशासनिक एवं सैन्य व्यवस्था का इस भाँति विकेंद्रीकरण करना कि शत्रु के आक्रमण उसको एक साथ छिन्न-भिन्न न कर सके।

५. सैन्य व्यवस्था को इस भाँति संगठित एवं संचालित करना, जिससे कि अल्प सँख्या में होते हुए भी पर्वतीय भाग में बहुसंख्यक मुगल सेना की कार्यवाहियों को बेकार कर सके और उसका अधिकाधिक विनाश कर सके।

६. पर्वतीय भाग में रहने वाले सम्पूर्ण जन-समुदाय के दैनिक जीवन एवं कार्य-रूप को इस

भांति संचालित करना कि वे अपना व्यवसाय कर सकें, स्वयं की सुरक्षा कर सकें और शत्रु को हानि पहुंचा सकें ।

७. एक ऐसी तीव्रगामी संदेशवाहक व्यवस्था तथा गुप्तचर व्यवस्था का गठन करना जो शत्रु की गतिविधियों के बारे में अदृढ़ रूप से सूचना दे सके ।

८. पर्वतीय भागों में सैनिक आवश्यकताओं की दृष्टि से माल, असबाब ढोने की समुचित व्यवस्था करना ।

महाराणा प्रताप ने बड़ी चतुराई, कौशल और दृढ़ता के साथ मेवाड़ की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को सामरिक आधार [ war-footing ] पर रखा । निस्संदेह ही अरावली पर्वतमाला में रहने वाली आदिवासी भील जाति ने प्रताप की अनेक समस्याओं को हल करने में बड़ा सहयोग दिया ।

राजपूत परिवार के स्त्री-बच्चों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व इन लोगों ने इतनी खूबी से निभाया कि एक बार भी ऐसा अवसर नहीं आया जबकि कोई स्त्री-बच्चे मुगल सैनिकों के हाथों में पड़े हो ।<sup>3</sup>

इसी भांति रसद आदि लाने-लेजाने, संदेश-वाहन और गुप्तचर विभाग के कार्य-संचालन में भील लोगों ने बड़ा सहयोग दिया । ये पहाड़ों के गुप्त और विकट मार्गों से परिचित थे और बिना थके भीलों तक पहाड़ों की चढ़ाइयां पार कर लेते थे । किलकारी मारकर अथवा ढोल बजाकर संकेतो द्वारा वे एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर संदेश पहुँचा देते थे । इसके अतिरिक्त इनका सबसे बड़ा गुण था, वफादारी । शत्रु कभी भी इनसे गुप्त भेद प्राप्त नहीं कर सका । ये लोग एक साथ पहाड़ी में खेती करते, अक्सर आने पर धनुष-बाण आदि लेकर लड़ते और संदेश लाने-लेजाने का कार्य करते रहते ।

अरावली पर्वतमाला के घने स्यानों में जगह जगह पर गुप्त कन्दराएँ विद्यमान हैं, जहाँ पर प्रताप ने कोष, शस्त्र तथा अन्य साधन जमा रखे । ऐसी कन्दराओं में चावंड के पास की जावरमाला, गोगून्दा के पास की मायरा और मचीन आदि की गुफाएँ प्रधान हैं । प्रताप का घन अथवा सैन्य सामान कभी शत्रु के हाथ में पड़ा हो, ऐसी घटना नहीं मिलती ।

अरावली के इस भाग के कई पर्वत बीस-बीस मील लम्बे और छ-छः मील तक चौड़े हैं जिनमें

- 
3. मान्यता है कि राजपूत परिवारों के स्त्री-बच्चों को छुपाने के घने पर्वतीय भूभाग से सटी हुई अरावली पर्वतश्रेणी में कमलनाथ पर्वत पर रखा गया था । यह पर्वत इतना विशाल है कि इस पर पानी की बहुतायत है और कृषि हो सकती है । इस पर्वत पर जगह जगह पर खडहर मिलते हैं । संकट के अवसर पर भील लोग उनको शीघ्रता से अन्य स्थान पर पहुँचा देते थे । एक बार ऐसे ही संकट के अवसर पर पानरवा का ठाकुर महाराणा प्रताप की वृद्ध माँ को पीठ पर लादकर पहाड़ लांघ गया । उससे पानरवा के ठाकुर की 'राणा' पदवी मिली । [ सावलदान आशिया की बही के आधार पर ]

पानी और खाद्य सामग्री की बहुतायत रहती है। इसके अलावा इन पर्वतों के मध्य पठारी भाग अत्यन्त उपजाऊ है। इस भाग में वर्षा अच्छी होने से अकाल बहुत कम पड़ते हैं। मुगल आक्रमणों के बावजूद प्रताप ने कृषि पैदावार की ऐसी व्यवस्था रखी जिससे उसके हजारों सैनिक कभी भी खाद्य सामग्री के अभाव में नहीं रहे। जब कभी मुगल सेना का अभियान होता घाटियों में बसने वाले लोग बड़े पर्वतों के घने भागों में चले जाते जिनमें घुसना मुगलों के लिए सस्ती मौत को बुलावा देना होता था।

यह प्रताप की प्रशासनिक कुशलता का ही परिणाम था कि बीस वर्ष तक ३०० मील के छोटे पर्वतीय घेरे में मुगल सेनाओं के अनवरत आक्रमण-प्रवाहों एवं विध्वंस के बीच भी उमका शासन जीवित रहा। उसकी व्यवस्था छिन्न-भिन्न नहीं हुई और उसके सहयोगियों एवं जनता का मनोबल सदा दृढ़ रहा।

### योग्य सेनापति

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रताप ने अपनी सेना का नवीन ढंग से गठन और संचालन किया। प्रताप की सेना के मुख्य रूप से दो भाग ही रहे-पैदल सेना एवं घुड़सवार सेना। मेवाड़ की सेना कई टुकड़ियों में विभाजित की जाकर देश के महत्वपूर्ण सामरिक स्थानों पर तैनात की गई। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद सामान्यतः छापामार (guerrilla) युद्ध-प्रणाली का उपयोग किया

गया। इस प्रणाली के अनुसार मुगल-सेना का सीधा मुकाबला नहीं किया जाता था। सैनिक टुकड़ी गुप्त स्थान से निकलकर तेजी के साथ मुगल थानों अथवा, हमलावर सेनाओं पर यकायक हमला करती, मुगल सैनिकों को मारकर और रसद, शस्त्र आदि लूटकर तेजी के साथ वापस गायब हो जाती थी।

प्रताप की छापामार युद्ध-प्रणाली से मुगल सेना सदा आतंकित रही। गोगूँदा से जिस दुर्दशा के साथ मानसिंह मेवाड़ से लौटा यह सर्व विदित है। मेवाड़ में मुगल थाने कभी भी सुरक्षित एवं स्थायी नहीं रहे। मुगल सेना का रसद-मार्ग सदैव असुरक्षित रहा। प्रताप ने जमीन फूँको नीति का, जिसे आधुनिक काल में scorched earth policy कहते हैं, अनुसरण किया। जिस भू-भाग पर मुगल सैनिक आधिपत्य जमा लेते वहाँ के लोग अपना माल अमबाब लेकर पर्वतों में चले जाते, साथ में कृषि आदि बरबाद करके जाते और कुछ भी उपयोगी सामान शत्रु के लिये नहीं छोड़ते थे। यही कारण था कि मेवाड़ में हर मुगल अभियान असफल हुआ और मुगल सैनिक पर्वतों के घने भागों में प्रविष्ट होने से सदा कतराये।

प्रताप के सैनिक साधारण वेशभूषा वाले होते थे और तीव्र गति (swift march) और यकायक आक्रमण (sudden attack) में प्रवीण होते थे। उनका साधारण भोजन प्रायः वे कपड़े में लपेट कर कमर पर बाँध कर रखते थे, जिससे तेजी से एक स्थान दूसरे स्थान के लिये

प्रस्थान करने में सरलता रहती थी। प्रताप की सैन्य व्यवस्था सदा इतनी सुसंगठित रही कि शत्रु कभी भी चैन से नहीं रहा। इतना ही नहीं समय समय पर मेवाड़ के सैनिक, मेवाड़ के बाहर, गुजरात, मालवा, आमेर आदि इलाकों में यकायक घावा मार कर मुगल सेना को नुकसान पहुँचाकर और लूटमार करके सुरक्षित लौट आते थे। शस्त्रास्त्रों का निर्माण, अश्वशालाओं की व्यवस्था, सैनिकों का प्रशिक्षण, सेनाओं के लिये खाद्य-सामग्री तथा अन्य वस्तुओं की समुचित व्यवस्था, सेनाओं का अनुशासन, विभिन्न सैन्य टुकड़ियों के बीच समन्वय और केन्द्रीय संचालन आदि सभी कार्य बड़े सुनियोजित प्रकार से चले, जिसके परिणामस्वरूप प्रताप की सफलता पर सफलता मिली और जन-जन की कम से कम हानि हुई। प्रताप के समय में, चित्तौड़-पतन के बाद, योद्धाओं की एक नवीन पीढ़ी भी खड़ी हो गई। दिवेर के युद्ध की विजय के यही कारण थे और जब सन १५८६ में अकबर का ध्यान राजपूताना से हटकर उत्तरपश्चिम की ओर गया तो कुछ ही समय में चित्तौड़ और मांडलगढ़ को छोड़ कर प्रताप ने मेवाड़ का लगभग सम्पूर्ण मैदानी भाग भी विजय कर लिया। प्रताप के बाद जब १५९७ ई० में अमरसिंह गद्दीनशीन हुआ तो उसके पास पूर्ण शस्त्रास्त्र से सज्जित यथेष्ट मात्रा में सेना विद्यमान थी।

प्रताप की रक्षात्मक युद्ध-व्यवस्था में समय समय पर मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करने की नीति शामिल थी, जिसका प्रयोजन मुगलों को जन-घन की हानि पहुँचाने और मेवाड़ी सेना के लिए रसद,

शस्त्रास्त्र आदि प्राप्त करने के अतिरिक्त मेवाड़ पर आक्रमण करने वाली शत्रु-सेनाओं का ध्यान बटाना और उनके आक्रमण में शिथिलता पैदा करना था। जब मुगल सैनिक कुंभलगढ़, गोगूँदा आदि स्थानों में उलझे होते, उस समय प्रताप और उसकी टुकड़ियाँ मालवा, गुजरात आदि इलाकों की ओर घावा मारते होते थे। महाराणा प्रताप का चावड को मेवाड़ की राजधानी बनाना उसके उत्तम रणनीतिज्ञ होने का प्रमाण है। चावड की उपजाऊ घाटी चारों ओर घनी, विशाल एवं विस्तृत पर्वतमालाओं से घिरी हुई है। इस घाटी में प्रवेश करने के मार्ग अति दुर्गम एवं विकट हैं। इससे यहाँ पर शत्रु सैनिकों के आकस्मिक आक्रमण का भय नहीं रहता था और शत्रु के प्रवेश को रोकना आसान होता था। यहाँ शत्रु के पहुँचने पर राजधानी की सम्पूर्ण व्यवस्था को इससे सटे हुए अरावली के अत्यन्त विकट भाग छप्पन प्रदेश के गुप्त भागों में लेजाना आसान होता था। इस घाटी की उपजाऊ भूमि और पानी की बहुतायत के कारण राज-परिवार, सैनिकों एवं उनके परिजनो के जीवन-यापन की दृष्टि से पूरी सुविधा रहती थी।

चावड को राजधानी बनाने से अकबर की मेवाड़ को घेरकर अकेला करने की नीति भी असफल होगई। यहाँ रहने से प्रताप के लिये सिरोही ईडर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, गुजरात आदि प्रदेशों से निकट सम्पर्क बना रहा। इन प्रदेशों के मुगल विरोधी तत्वों का सहयोग प्राप्त करना आसान हो गया, यहाँ तक कि इन प्रदेशों के मुगलाधीन शासकों से भी समय-समय पर मदद प्राप्त करना संभव



हुआ। इसके अतिरिक्त अपनी दक्ष गुप्तचर व्यवस्था की सहायता से यदा कदा मेवाड़ से बाहर निकल कर गुजरात और मालवा के प्रदेशों पर आक्रामक आक्रमण करना भी आसान हुआ।

## सफल कूटनीतिज्ञ

महाराणा प्रताप की सफलता का कारण उसका कुशल प्रशासन और वक्षतापूर्ण सैन्य व्यवस्था तो थी ही, उसके साथ उसकी दूरदर्शिता-पूर्ण कूटनीतिज्ञता भी उसकी सफलता में बड़ी सहायक हुई। प्रताप जानता था कि विशाल मुगल साम्राज्य के साथ संघर्ष में कोरे रक्षात्मक युद्ध करने मात्र से सफलता नहीं मिलेगी। प्रताप समय समय पर अपनी शक्ति और सामर्थ्य तथा चतुराई से ऐसे कूटनीतिक प्रयत्न करता रहा, जिससे अकबर को मेवाड़-विजय में बराबर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मूल रूप से प्रताप की कूटनीति का उद्देश्य अकबर की राजपूतों सम्बन्धी कूटनीति को निष्फल करना और मेवाड़ के रक्षात्मक युद्ध को सफल बनाना था।

१- प्रताप ने अपने मुगल-विरोधी संघर्ष को विदेशी दासता के विरुद्ध संघर्ष का स्वरूप प्रदान किया। उसने एक हद तक पठान-मुगल शत्रुता का लाभ उठाने का प्रयत्न भी किया। उसने तमाम मुगल विरोधी तत्वों को एकजुट करने का प्रयत्न किया। उसने क्षात्र-धर्म की रक्षा का नारा बुलन्द कर सामान्य राजपूतों एवं जनता का समर्थन हासिल किया। महाराणा प्रताप की इस नीति के कारण ही हकीमखां सूर एवं जालोर के

ताजखां का सहयोग मिला, राजस्थान के कई भागों से मुगल विरोधी तत्वों ने मेवाड़ में आकर प्रताप को सहयोग दिया तथा सिरोंही, ईडर, जोधपुर, डूंगरपुर आदि इलाकों की विद्रोही शक्तियों से प्रताप की मैत्री स्थापित हुई। यहाँ तक कि मुगल सेवा को स्वीकार करने वाले शासकों एवं अधिकारियों पर भी प्रताप की नीतियों का प्रभाव पड़ा।

२ प्रताप के राज्यारोहण के प्रारम्भिक चार वर्ष पर्यन्त मेवाड़ का पर्वतीय इलाका मुगल आक्रमण से बचा रहा, इसका श्रेय प्रताप के कूटनीतिक प्रयत्नों को है। १५७२ ई० के वर्ष, जबकि प्रताप महाराणा बना, अकबर के सिये बचे खुचे राजस्थान के राज्यों, प्रमुखतः मेवाड़ को अपने आधीन करना आवश्यक हो गया था और उसके सिये सैनिक अभियान चलाना भी सरल हो गया था। १५५२-७३ में अकबर ने चार दूतमंडल मेवाड़ भेजे, उसमें मानसिंह और भगवन्तदास तो सैन्य इस इलाके में भेजे गये, जिन्होंने मेवाड़ से सटे हुए अन्य राज्यों को आधीन किया। उनका सैन्य मेवाड़ के स्वतंत्र इलाके में प्रवेश करना आक्रमण करने के तुल्य ही था। किन्तु प्रताप ने उनको रोक कर उनसे युद्ध मोल नहीं लिया, क्योंकि मेवाड़ को युद्ध की तैयारी की दृष्टि से समय चाहिये था। प्रताप ने सन्धि प्रस्तावों का स्वागत किया, इन मंडलों से वार्तालाप किया और उन्हें आदर-सत्कार देकर विदा किया। तीमरे दूतमण्डल के साथ प्रताप ने अपने कुवर अमरसिंह को वार्ता जारी रखने की दृष्टि से मुगल-दरबार भेजा। प्रताप के ये प्रयत्न उसकी दूरदर्शिता, धैर्य और चतुराई के



प्रमाण हैं। इन चार वर्षों में प्रताप ने-जो साम-रिक एवं कूटनीतिक तैयारियां की, उनके आधार-पर ही वह आगामी दस वर्षों तक निरन्तर लड़ता रह सका।

३. मुगल-विरोधी दीर्घकालीन संघर्ष में भीषण संकटों से पड़ कर भी प्रताप ने धैर्य आत्म-विश्वास और विवेक से मुंह नहीं मोड़ा। उसने एक ओर सम्मानजनक संधि के लिये अपना द्वार खुला रखा, दूसरी ओर उसने मुगल विरोधी तत्वों से सदैव मेल बनाये रखा। एक बार प्रताप की सेना ने अकबराधीन डूंगरपुर के रावल आस-करण पर चढ़ाई की, उस समय प्रताप का सह-योगी एवं अकबर विरोधी जोधपुर का राव चन्द्रसेन डूंगरपुर में ठहरा हुआ था। रावल पहाड़ों में चला गया, किन्तु राव चन्द्रसेन वहां से नहीं डिगा। प्रताप और चन्द्रसेन से आरम्भ से ही मेल था। जब प्रताप को पता लगा तो मेवाड़ की फौजें डूंगरपुर से वापस बुला ली गई। सिरोंही का राव सुरताण-महाराणा द्वारा मनोनीत राव कल्ला को हटा कर सिरोंही का शासक बन गया था। किन्तु प्रताप ने सुरताण से शत्रुता मोल न ली क्योंकि वह मुगल विरोधी संघर्ष में प्रताप का साथ दे रहा था। प्रताप का भाई जगमाल, जो अकबर की सेवा में चला गया था, सिरोंही पर मुगल-आक्रमण के समय लड़ता हुआ मारा गया। इस घटना के बावजूद प्रताप ने राव सुरताण से अपने मंत्री सम्बन्ध बनाये रखे और उन्हें अधिक दृढ़ करने हेतु उसने अपने पुत्र अमरसिंह की कन्या का विवाह उससे करने की बात चलाई। इस पर प्रताप का भाई सगर नाराज होकर मेवाड़ छोड़

कर चला गया, किन्तु प्रताप ने उसके कारण सिरोंही से सम्बन्ध नहीं बिगाड़े।

४. जिस भांति अकबर मेवाड़ तथा अन्य राजपूत राज्यों को छोड़ कर आने वाले राजकुमारों सरदारों, मन्त्रियों आदि को पनाह देकर ऊँचे-ऊँचे पद देकर उनका साम्राज्यी हित के लिए उपयोग करता था, उसी प्रकार प्रताप ने भी विभिन्न राज्यों के विद्रोही तत्वों को अपनी ओर मिला कर उपयोग करने की नीति अपनाई। बूंदी के शासक सुर्जन हाड़ा द्वारा अकबर की आधीनता स्वीकार करने पर उसका पुत्र दूदा मेवाड़ आकर कई वर्षों तक प्रताप का सहयोगी बन कर मुगलों के विरुद्ध लड़ता रहा। इसी भांति डूंगरपुर के रावल आसकरण द्वारा मुगल आधीनता स्वीकार करने पर उसका पुत्र सहसमल मेवाड़ चला आया। प्रताप ने उसको डूंगरपुर की गद्दी पर बिठाने की चेष्टा भी की। जोधपुर का राव चन्द्रसेन कई वर्षों तक मेवाड़ में या उसके आस-पास के इलाकों में प्रताप का सहयोगी बन कर लड़ता रहा।

५. प्रताप ने मुगल आधीनता को स्वीकार कर लेने वाले राज्यों, मुख्यतः मेवाड़ की सीमा में सटे हुए राज्यों के शासकों से अनावश्यक झगडा मोल नहीं लिया। उसके विपरीत उसने उनकी मज-दूरियों को ध्यान में रखते हुए उनका साथ निरन्तर सम्पर्क रख कर उनसे यथा-संभव गुप्त सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

इस भांति महाराणा प्रताप न केवल एक शूरवीर, साहसी और बलिदानी योद्धा था बल्कि उसमें कुशल शासक, चतुर कूटनीतिज्ञ एवं सुयोग्य रणनीतिज्ञ के सभी गुण विद्यमान थे।

# महाराणा प्रताप से संबंधित कतिपय ऐतिहासिक स्थान

—देव कोठारी

मेवाड़ की पवित्र धरती के कण-कण में भारत के सपूत महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं उसके बलिदानी जीवन की अमर कहानी का जयघोष आज भी व्याप्त है। यहां की अरावली पर्वत श्रेणियों में उसके संघर्षमय जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक स्थल प्रताप के अपूर्व शौर्य, अलौकिक साहस, अदम्य स्वाभिमान, अकथनीय त्याग एवं अटल आत्मविश्वास के प्रेरणास्पद प्रमाण हैं। इसी देशभक्ति से प्रेरित होकर प्रताप के समकालीन जैन कवि पदमसागर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जगद्गुरु काव्य' में अकबर के आगे इज्जत बेचने वाले अन्य हिन्दू राजाओं की कड़ी भर्त्सना की थी और प्रताप के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की थी।<sup>1</sup>

प्रताप के स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित ऐतिहासिक स्थलों में से हल्दीघाटी, कुम्भलगढ़, उदयपुर, आदि के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इस लेख में प्रताप के जीवन से सम्बन्धित कतिपय ज्ञात-अज्ञात ऐतिहासिक स्थानों के बारे में परिचय दिया जा रहा है जो उनके संघर्षमय जीवन के कार्यस्थल रहे हैं तथा जिनके बारे में अभी तक पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं है।

## १. गोगुन्दा:—

यह स्थान उदयपुर से २२ माईल दूर उत्तर-पश्चिम में अरावली पहाड़ियों से घिरे हुए मैदान में बसा हुआ है। यहां से हल्दीघाटी ११ माईल दूर पूर्वी पहाड़ों में है तथा कुम्भलगढ़ २० माईल दूर उत्तर-पश्चिम के पहाड़ों में बसा हुआ है। इस प्रकार यह गांव उदयपुर, कुम्भलगढ़ और हल्दीघाटी से आने वाले मार्गों के मध्य में आ गया है। इस गांव के चारों ओर लगभग दो-दो माईल की दूरी पर अरावली पहाड़ व उसकी उच्च-श्रेणियां आ गई हैं। यह बीच के मैदानी एवं पठारी भाग पर बसा हुआ है। चारों दिशाओं में से किसी भी दिशा से इस गांव में आने के लिए विस्तृत चढ़ाई पार करके आना पड़ता है। यह सामरिक दृष्टि से बड़ा सुरक्षित स्थल है।

एक जनश्रुति के अनुसार इस गांव को बसाने का श्रेय गोगुनराम महता (ब्राह्मण) को है। महाराणा क्षेत्रसिंह (वि०सं० १४२१-१६) से पूर्व इस गांव का उपयोग ईंडर (गुजरात) के शासक मेवाड़ की ओर अपनी अन्तिम चौकी के रूप में करते थे। महाराणा उदयसिंह व प्रताप के समय यह गांव खालसे में था।

१. केचिद् हिन्दुत्वा बलश्रवणतस्तस्य स्वपुत्रीगण,  
गाढाभ्यर्चनया ददत्य विकला राज्यं निज रक्षितुम्,  
केचित्प्राप्तमिन्दुकान्तरचन मुक्त्वा पुरः पादयो,  
पेतुः केचिद्वानुगा. परमिमे सर्वेऽपि तत्सेविन.  
[ वि०सं० १६४६ में पदमसागर कृत 'जगद्गुरु काव्य' ८८ ]

गांव के दक्षिण में वर्तमान राजराणा २ के पुराने व नये महल हैं। प्रचलित धारणा के अनुसार इन महलों का उत्तरी-पूर्वी भाग जो बाद में रनिवास एवं राजराणा के रहने का स्थान रहा वह महाराणा उदयसिंह (वि०स० १५६४-१६२८) के समय विद्यमान था। इन महलों के दक्षिण में उस समय काफी बड़ा मैदान था जहाँ अब नये महल हैं। आज भी गोगुन्दा में भील लोगो की वाहुल्यता है। पुराने महलों के उत्तर-पूर्व में बड़ा मैदान आ गया है। कहा जाता है कि हल्दीघाटी से प्रताप को पीड़ा करता हुआ मानसिंह जब गोगुन्दा आया था, उस समय उसके सैनिकों का पड़ाव इसी मैदान में डाला गया था। महाराणा उदयसिंह ने वि०स० १६२८ का दशहरा गोगुन्दा में मनाया था और यहीं पुराने महलों में उनका स्वर्गवास हुआ था। मानसिंह, अकबर और शाह-वाजेयां जब-जब दलबल सहित गोगुन्दा आये<sup>३</sup> तो इन्हीं महलों में अपना मुकाम बनाया था।

#### (क) उदयसिंह का दाह-संस्कार स्थल:—

गोगुन्दा के नये महलों के ठीक दक्षिण में दो फलांझ दूर तालाब के किनारे पठारी भाग पर बहुत सी छतरियां बनी हुई हैं जहाँ एक बड़ी किंतु जीर्ज-शीर्ण छतरी स्थित है। यह छतरी महाराणा उदयसिंह के दाह-संस्कार की जगह है। उसी स्थान पर मेवाड के सरदारों द्वारा प्रताप को गद्दी

पर बिठाने का निश्चय किया गया था।<sup>४</sup>

#### (ख) प्रताप के राजतिलक का स्थान:—

पुराने महलों के उत्तर में लगभग एक फलांझ दूर महादेव का मन्दिर, महादेव का कुआ (बावड़ी) व इन दोनों के मध्य एक चबूतरा तथा चबूतरे के पश्चिमी भाग पर जुड़ी हुई चार खम्भों की एक छतरी अवस्थित है। यही स्थान प्रताप के राज-तिलक का है। कहा जाता है कि राजवंश के इष्ट-देव भगवान् महादेव की साक्षी में छतरी वाले स्थान पर प्रताप को आसीन कर उनका राजतिलक किया गया था। उसके बाद प्रताप महलों में प्रविष्ट होकर गद्दी पर बैठे। इस स्थान पर प्रति वर्ष प्रताप-जयन्ती का मेला लगता है।

#### २. माथरा की गुफा:—

हल्दीघाटी का रास्ता गोगुन्दा के पूर्वी पहाड़ों में से है। इन पूर्वी पहाड़ों को 'लाम' कहते हैं। 'लाम' के सकड़े रास्ते को लांघकर भूताला गाव का घाटा पार करते हुए हल्दीघाटी की ओर जाया जाता है। 'लाम' को लांघने के बाद ही पूर्व में लगभग डेढ़ माइल लम्बी छोटी-मोटी घाटियों को पार करने के बाद चारों ओर पहाड़ों से घिरी हुई एक नाले के पास एक पोली पहाड़ी के अन्दर गुफा है जिसको माथरा की गुफा कहते हैं। इस गुफा की ओर से यहाँ से ६ मील दूर हल्दीघाटी जाया जा सकता है। इस

२. यहाँ के राजराणा भालावश के हैं तथा बडौसादडी एवं देलवाडा के राजराणा की वंश-परंपरा से सम्बन्धित है।

३. वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ, १५३, १५६, १५७।

४. वही, द्वितीय भाग, पृष्ठ १८५।

गुफा के लिये प्रसिद्ध है कि हल्दीघाटी के युद्ध के समय यहाँ की गुफा को शस्त्रागार बनाया था और बहुत से सैनिकों को यहाँ रखा था। इसके ऊँचे पहाड़ों के शिखर से १०-१२ माईल दूर से आते हुए व्यक्ति नजर आ जाते हैं किन्तु विशेषता यह है कि इस गुफा के पन्द्रह-बीस फुट दूर खड़ा हुआ या झुका हुआ व्यक्ति इस गुफा को नहीं देख सकता है।

अन्दर से यह गुफा अंधेरी है और इतनी बड़ी है कि अन्दर २०० के लगभग व्यक्ति बैठ सकते हैं। गुफा में देवी का स्थान है, जिसे महाराणा की कुलदेवी कहा जाता है। गुफा के बाहर ही एक छोटा पानी का नाला है जो वर्ष भर बहता रहता है।

### ३. धोलियाजी के महल व राणागांव—

गोगुन्दा से दक्षिण में महाराणा उदयसिंह के दाहसंस्कार स्थल से कोई आधा माईल दूर 'राणा' गांव पठारी भाग में बसा हुआ है। इस गांव के दक्षिण में एक माईल दूर धोलिया पहाड़ की तलहटी में कुछ खण्डहर हैं जिन्हें राणा महल एवं राणी कोट कहा जाता है। इन खण्डहरों के उत्तर में 'माल' नामक विशाल मैदान है जहाँ अब घास उगती है। धोलिया का जंगल बहुत घना है, जंगली जानवरों का यहाँ बाहुल्य है।

गोगुन्दा और 'राणा' गांव के लोगों के अनुसार यहाँ के महलों में महाराणा प्रताप और उनका परिवार रहता था। लोगों ने बताया कि ये राणा महल व राणी कोट वही स्थान है जहाँ प्रताप की घास की रोटी भी नहीं मिली थी तथा

उनके किसी पुत्र के हाथ से बनबिलाव घास की रोटी छीन कर भाग गया था। राणा गांव का नाम राणा कीका (प्रताप) के निवास करने से ही पडा माना जाता है। राणा महल में राणा और राणी कोट में रानिया और सामन्तों की स्त्रियाँ रहते थे। राणा गांव के दक्षिण में 'उमर' फल के पेड़ हैं। वहाँ एक बड़ा पुराना पेड़ है जिसके लिये प्रसिद्ध है कि सकटकाल में उसके नीचे प्रताप बैठ कर उमरे खाकर दिन निकालते थे।

### मचीन :—

हल्दीघाटी से उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग १३ माईल दूर, गोगुन्दा से उत्तर की ओर लगभग १२ माईल दूर तथा कुम्भलगढ़ से लगभग १५ माईल पूर्व की ओर कटार स्थान के निकट यह एक गांव है। इस गांव से दो फर्लाङ्ग दूर एक बड़ी पहाड़ी है जो पास के अन्य पहाड़ियों से जुड़ी हुई है। इस पहाड़ी पर कुछ खण्डहर और एक बड़ी गुफा है। गुफा के पास ही अब आश्रम भी है, पास में पानी का कुण्ड है। यहाँ के खण्डहरों को मचीन गांव के लोग महाराणा प्रताप के महल बतलाते हैं। इन खण्डहरों से व पहाड़ी की चोटी से कुम्भलगढ़, गोगुन्दा, हल्दीघाटी आदि का लगभग १०-१५ माईल दूर तक का क्षेत्र नजर आता है। मचीन गांव के लोगो ने बताया कि यहाँ के महलों में रहते हुए अमरसिंह के पुत्र हुआ था जिसका 'अरमा' यहीं एक चट्टान पर पूजा गया था। इस चट्टान पर कुछ लाल-पिले दाग नजर आते हैं। जिनकी यहाँ के लोग उसी काल के बताते हैं। गुफा के अन्दर अंधेरा व दुर्गन्ध बहुत है।

बताया जाता है कि इस गुफा में घुसने के बाद ४-५ माईल दूर पश्चिम की ओर निकला जाता है। लोगों ने बताया कि जब कभी भी बादशाह की फौज इधर आती तो प्रताप व उनके साथ के लोग ऊपर के महलों से आकर इस गुफा में घुस जाते और गुफा को पार कर आगे निकल जाते। इस गुफा के लिये यह भी कहा जाता है कि यहां नाथ सम्प्रदाय के मत्स्येन्द्रनाथ ने आकर घोर तपस्या की थी। मचीन गांव का नाम मत्स्येन्द्रनाथ के नाम से पड़ा माना जाता है।

रोहिड़ा :— जरगा पहाड़ से दक्षिण-पूर्व में लगभग ७ माईल दूर यह गांव बसा हुआ है। यह स्थान मचीन से ४ माईल दूर, गोगुन्दा ८ माईल दक्षिण-पूर्व में तथा कुंभलगढ़ १० माईल उत्तर-पश्चिम में है। यह गांव भी पहाड़ की तलहटी से बसा हुआ है। पहाड़ी पर जो खण्डहर हैं यहां के लोगों के अनुसार वे महाराणा प्रताप के महल हैं। यहां प्रताप और उनके साथी कष्ट के समय आकर रहे थे। गांव के पास ही पानी का एक छोटा सा नाला है।

उवेश्वर :— गोगुन्दा से २० माईल दक्षिण-पूर्व में उदयपुर से १६ माईल पश्चिम में तथा कमलनाथ से २० माईल उत्तर-पूर्व में एक ऊंची पहाड़ी पर स्थित एक छोटा तीर्थ स्थान है। यहां का जगल भयानक व डरावना है। उदयपुर से इस स्थान पर पहुँचने के लिये सज्जनगढ़ के पास से एक सड़क धार नामक गांव तक जाती है। धार से आगे तीन मील की विकट चढ़ाई है। चढ़ाई पार कर लेने

के बाद शिवजी का एक मन्दिर आता है, पास ही पानी का कुण्ड भी है। इस मन्दिर से ढलान की ओर खण्डहर है। इन खण्डहरों के लिये भी कहा जाता है कि महाराणा प्रताप के महल हैं। प्रताप सकट के समय यहां आकर रहे थे। खण्डहरो की हालत मचीन, रोहिड़ा व धोलिया के खण्डहरो के समान है।

कमलनाथ-आवरगढ़ :— प्रताप के जीवन से सम्बन्धित यह एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह उदयपुर से सड़क के रास्ते से ४३ माईल पश्चिम में अरावली के सघन पहाड़ों में उच्च शिखर पर स्थित है। यहां से गोगुन्दा उत्तर की ओर ४० माईल दूर सड़क के रास्ते से व ३२ माईल दूर पहाड़ी रास्ते से हैं, यहां से चावण्ड लगभग ४२-४३ माईल दूर दक्षिण-पूर्व में पहाड़ी रास्ते से हैं। गुजरात की सीमा १५-२० माईल पश्चिम में है।

कमलनाथ की तलहटी में देभाणा गांव है। पहाड़ पर चढ़ने के लिए वहां से देवटा का घाटा पार करना पड़ता है। लगभग आधा माईल चढ़ने के बाद कुंभजर नामक पौराणिक स्थान आता है। यहीं आवरगढ़ का प्रथम दरवाजा था ऐसा मघवास गांव के लोगों ने बताया। यहां से आगे बढ़ने पर रावण-टुंक-वानर टुक नामक दो पहाड़ियाँ एक दूसरे की ओर झुकी हुई नजर आती हैं यहां आवरगढ़ का दूसरा दरवाजा था ऐसी मान्यता है। यहां से आधा मील और चढ़ाई चढ़ने के बाद कमलनाथ महादेव का मुख्य मन्दिर, सराय व दर्ब भर बहने वाला पानी का झरना आता है। यहां से मुख्य

आवरगढ़ की प्रथम चढ़ाई आरम्भ होती है जो लगभग एक माईल है। चढ़ाई समाप्त होते ही खण्डहर आते हैं। इन खण्डहरों में चार-पांच कमरे और बाहर बड़ी चौपाल हैं। ये खण्डहर महाराणा प्रताप के महल बताये जाते हैं। पास ही पानी का बड़ा तालाब है इस तरह के कुल बारह तालाब ऊपर बताये जाते हैं।

प्रथम तालाब से कुछ आगे बढ़ने के बाद मुख्य आवरगढ़ की दूसरी चढ़ाई आरम्भ होती है। इस चढ़ाई में स्थान स्थान पर अनेक खण्डहर हैं। ये खण्डहर प्रताप के सैनिकों के रहने के स्थान रहे होंगे। लोग इन्हे प्रताप के महलों के नाम से ही पुकारते हैं। जब चढ़ाई समाप्त होने की होती है दो बड़े-बड़े बड़ के पेड़ आते हैं, दोनों बड़ के पेड़ों के मध्य ५०-६० गज की दूर है। इन बड़ के पेड़ों के लिये प्रसिद्ध हैं कि इनके ऊपर प्रताप के बाल-बच्चों के झूलने लगे हुए रहते थे। यहां से और ऊपर चढ़ने के बाद चढ़ाई समाप्त हो जाती है यहां के खण्डहर अधिक महत्वपूर्ण हैं। एक ऊँचे स्थान पर बड़ा गोल चबूतरा बना हुआ है। प्रचलित मान्यता के अनुसार चबूतरा महाराणा प्रताप का मुख्य निवास स्थान था। इसकी स्थिति को देखने से लगता है कि यह सभा स्थल रहा होगा। यहां से १५-२० माईल दूर तक के चारों ओर का नीचा भाग और पहाड़ नजर आते हैं। यहां से पूरा आवरगढ़ उसका परकोटा, नीचे के सारे खण्डहर, तालाब आदि नजर आते हैं। इस गोल चबूतरे के आस-पास में और भी खण्डहर हैं जिनके लिये प्रसिद्ध है कि ये प्रताप के घोड़ों व

हाथियों को बांधने के स्थान हैं। यहीं एक बुर्जनुमा खण्डहर है जिसे होली बुर्ज कहते हैं। कहा जाता है कि प्रताप के समय यहां होली जलाई जाती थी। अब भी इसी स्थान पर होली कमलनाथ मन्दिर के पुजारी द्वारा जलाई जाती है। यहां होली जलने के बाद ही आस-पास के गांवों में होली जलती है।

आवरगढ़ १२ माईल के घेरे में बसा हुआ है जिसके चारों ओर परकोटा हैं। अधिकांश स्थानों पर परकोटा अब गिर चुका है। आवरगढ़ कभी अच्छी बस्ती रही होगी। यह स्थान अरावली के सर्वाधिक सुरक्षित स्थानों में से है। यहां शत्रु का पहुँचना दुर्लभ है। पहाड़ियां इस तरह चारों ओर आ गई हैं कि शत्रु उन्हीं में बराबर चक्कर काटता रहता है किन्तु आवरगढ़ में प्रवेश नहीं कर पाता। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद प्रताप अपने घायल सैनिकों को लेकर इसी स्थान पर आये थे और यहीं उनका इलाज कराया था। कोल्हारी गांव यहां से दक्षिण में ३ माईल दूर बसा हुआ है।

सम्पूर्ण पहाड़ जंगल से भरा है। पानी की बहुतायत है और आंवला अटेडी, आम, कारया करणजी आदि पेड़ों की यहां बहुतायत है।

हरिहर मन्दिर, बदराना:— कमलनाथ-आवरगढ़ से उत्तर-पूर्व में लगभग १० माईल दूर बदराना गांव के मध्य में हरिहर का मन्दिर है। मान्यता है कि इस मन्दिर का निर्माण महाराणा प्रताप ने जब वे कमलनाथ-आवरगढ़ में रहते थे कराया। इस मन्दिर का निर्माण वि. सं १६३५

में हुआ (यह निर्माण सम्बत् वर्तमान पुजारी ने गोमून्दा के किसी भाट की वही में लिखा हुआ देखा है) । यह मन्दिर बहुत बड़ा है तथा महाराणा राजसिंह के समय में इसका पुनः निर्माण हुआ है । हरि [विष्णु] और हर महादेव की यह एक ही मूर्ति काले संगमरमर की और बड़ी कलात्मक है ।

**जावरमाला:-** उदयपुर से ऋषभदेव जाने की सड़क पर उदयपुर के दक्षिण-पूर्व में टीडी नामक गांव है । यहां से उत्तर-पूर्व में चार माईल दूर जावर गांव बसा हुआ है जो महाराणा कुंभा के समय बहुत अधिक आबाद था । जावर गांव के दक्षिण में एक छोटी नदी है और नदी के दूसरी ओर पहाड़ पर जावर की छोटी बस्ती बिखरे हुए घरों के रूप में हैं । इस बस्ती से दक्षिण की ओर ऊंची पहाड़ियां हैं, इन पहाड़ियों की ओर एक पगडंडी जाती है, इसी पगडंडी पर आगे बढ़ने के बाद एक गुफा आती है जिसका मुंह पूर्व की ओर है तथा आस पास में छोटे-मोटे पौधे उगे हुए हैं । इस गुफा के लिये प्रसिद्ध है कि महाराणा प्रताप इसमें रहे थे ।

गुफा के अन्दर जाने के लिये सीढ़ियों नुमा जगह से नीचे उतरना पड़ता है । सीढ़ियों नुमा

यह रास्ता समाप्त होते ही एक चौड़ी जगह है जहां १५०-२०० व्यक्ति बैठ सकते हैं । यहां अंधेरा है । गुफा की छत व उसके भाजू-बाजू में कुछ इस प्रकार के छेद हैं जिनसे हल्की रोशनी व हवा अन्दर आ सकती है । जावरमाला की इन पहाड़ियों में प्रताप और अकबर की सेना के मध्य कई मुठभेडे हुई थी ।<sup>5</sup>

**चावण्ड -** उदयपुर से ऋषभदेव जाने वाली सड़क पर ही टीडी से आगे परसाद गांव आता है । इस गांव से लगभग ६ माईल दूर पूर्व की तरफ अरावली पहाड़ियों के पठारी भाग में चावण्ड गांव बसा हुआ है । चावण्ड और जावरमाला की दूरी लगभग ८-९ माईल है और एक ही अरावली पर्वत शृंखला से जुड़े हुए हैं । कमलनाथ यहां से ४२-४३ माईल दूर उत्तर-पश्चिम की पहाड़ियों में है ।

चावण्ड जिस पहाड़ी इलाके में बसा हुआ है वह 'छप्पन' का इलाका कहलाता है । पहले यह छप्पनियों राठौडों का बतन था । छप्पनियों राठौडों राठौड सोनिंग के वंशधर थे ।<sup>6</sup> इसी वंश परम्परा में प्रताप के समय यहां लूणा चावडिया राज्य करता था जब उसने वहां आतंक फैलाना शुरू किया तो प्रताप ने आक्रमण कर उसे वहां से भगा दिया<sup>7</sup> और चावण्ड को अपना निवास स्थान बना दिया ।

5. ओभा-उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ३६

6. मुहम्मद नैरासी की ख्यात, अनुवादक-राम नारायण दूगड, प्रथम भाग, पृष्ठ ३

7. वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ ११८



चावण्ड गांव से लगभग आधा माईल दूर पहाड़ी पर प्रताप के महल बने हुए हैं। जो अब खण्डहरों के रूप में उसके साक्षी है। यहां के खण्डहरों में कमरे, चौपाल, घुड़साल, चबूतरे, सामन्तो व सैनिकों के रहने की बस्ती आदि हैं। खण्डहरों को देखने से पता चलता है कि इनमें से सब या अधिकांश मकान कच्चे रहे होंगे। महलों की अब केवल दिवालें ही बची हुई हैं जो पाच-छ फीट से अधिक ऊंची नहीं हैं। इन खण्डहरों के निचले भाग में चामुण्डामाता का मन्दिर बना हुआ है। यह मन्दिर महाराणा प्रताप ने ही बनवाया था। इसको देखने से लगता है कि इसकी वाद में समय-समय पर मरम्मत हुई है।

प्रताप का दाह-संस्कार स्थल.— महाराणा प्रताप की मृत्यु चावण्ड में हुई थी।<sup>१</sup> चावण्ड के लोगो ने बताया कि एक बार प्रताप जब जावर-माला के जंगलो में शिकार को गये थे तब वहां घनुष की प्रत्यक्षा खींचते समय पेट की आंत चढ़ गई थी जो उनकी मृत्यु का कारण बन गई।

चावण्ड गांव से लगभग १॥ माईल दूर बण्डोली गांव है उसके पास जो नाला बहता है, उसी नाले के किनारे प्रताप का दाह-संस्कार किया गया। इस स्थल पर स्मारक स्वरूप एक छतरी बनी हुई है। यह छतरी आठ खम्भों की व श्वेत पाषाण की बनी हुई थी। किन्तु यह जीर्ण-शीर्ण होने से अब इसकी मरम्मत करवा दी गई है। उपसहार-महाराणा प्रताप के ये कर्मस्थल अरावली पर्वतमाला के ३०० मील के वृत्ताकार घने भाग में

अवस्थित है। इस भाग में दसियों ऐसे छोटे-मोटे खडहर, गुफाए आदि हैं जिनका सम्बन्ध स्थानीय जनश्रुतियां महाराणा प्रताप से स्थापित करती हैं।

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित इन स्थानों में से कुछ तो ऐसे हैं जो तीस-चालीस मील पर्वतीय पट्टी से घिरी हुई उपजाऊ समतल घाटियों में स्थित हैं, उदाहरणार्थ चावण्ड, गोगून्दा, उदयपुर की घाटियां। ये घाटियां भी प्रायः तीस-चालीस मील के वृत्ताकार में फैली हुई हैं। इन घाटियों में पानी की बहुतायत है और कृषि-भूमि अत्यन्त उपजाऊ है। इनमें पहुंचने के मार्ग संकड़े, दुर्गम और विकट हैं। ऐसे मार्गों की (जिन्हें देशज भाषा में 'नाल' कहते हैं) सैनिक टुकड़ियों द्वारा नाकेबन्दी की जाती थी।

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित अन्य स्थान ऐसे हैं जो घनी पर्वतीय पट्टियों के भीतरी बनीय भागों में हैं, जहां शत्रु द्वारा दुर्गम मार्गों को पार कर घाटियों में प्रवेश करने के बाद भी पहुंचना कठिन होता था। ऐसे स्थान लगभग सभी अरावली के विशाल पर्वतों में हैं, जहां पानी का बाहुल्य है और उनमें कृषि योग्य छोटी-छोटी समतल भूमि की पट्टियां आ गई हैं।

विशेष बात यह है कि स्थल-स्थल पर पाये जाने वाले इन खण्डहरों में सर्वत्र शिव अथवा शक्ति से सम्बन्धित ध्वस्त अन्य मंदिर मिलते हैं, जिनमें से अधिकांश परित्यक्त हैं, किन्तु ऐसे कई धार्मिक खण्डहरों पर पुनर्निर्माण कार्य भी किया गया है।



प्रताप के वीरत्व, साहस, तप, त्याग और बलिदान से युक्त कार्य भारतीय इतिहास के ज्वलंत अध्याय है। स्वतंत्रता तथा सस्कृति की सुरक्षा के लिये किये गये महाराणा प्रताप के कार्यों से भारतीय सदैव प्रेरणा ग्रहण करते रहेगे।

—महाराणा भगवत्सिंह, उदयपुर

अवसरवाद से कभी समझीता न करना प्रताप के जीवन और उसकी भूमि का आदर्श रहा है। स्वतन्त्र भारत में भी हमें इस आदर्श का अनुसरण करना है।

प्रताप के साथ ही जिन भीलों ने अपना सर्वस्व होम कर दिया और जिनके प्रताप से प्रताप बना, हमारे इतिहास ने उन्हें ही मुला दिया है। अब हमें मान और मविष्य के इतिहास का निर्माण करते वक्त इस भूल को नहीं दुहराना है, और उन्हें भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो, इसके लिये अपना कर्तव्य पूरा करना है।

—माणिक्यलाल वर्मा

# महाराणा प्रताप सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य

महाराणा प्रताप के जीवन को आधार बनाकर भारतीय व विदेशी भाषाओं में काव्य, नाटक, उपन्यास, जीवन-चरित्र, आदि विविध रूपात्मक साहित्य का सर्जन हुआ है। यहाँ उपलब्ध कृतियों की सूची लेखक के नाम सहित दी जा रही है।

इन कृतियों में हिन्दी-राजस्थानी भाषा की कृतियों की सूची श्री अग्रचन्द नाहटा, मराठी भाषा की प्रो. सु. श्री. क. नडे, गुजराती भाषा की डॉ. अमरलाल जोशी, बंगाली भाषा की प्रो. सुखमय मुखोपाध्याय, उडिया भाषा की प्रो. गोपालचन्द्र मिश्रा, कन्नड भाषा की श्री नगेश हत्वार और तेलुगु भाषा की प्रो. के. वी. आर. नरसिंहम् से साभार प्राप्त हुई है।

— सम्पादक

## हिन्दी

### काव्य

#### नाम कृति

#### लेखक

#### प्रकाशक

- |                       |                       |  |
|-----------------------|-----------------------|--|
| १. प्रताप             | ठा. रणवीरसिंह शक्तावत | सामन्त साहित्य सदन, ठि. पीपलाज, केकडी (राज०) |
| २. हल्दीघाटी          | श्यामनारायण पाण्डेय   | इण्डिया प्रेस, इलाहाबाद                      |
| ३. महाराणा का महत्त्व | जयशंकरप्रसाद          | भारती भण्डार, इलाहाबाद                       |
| ४. रणवीर प्रताप       | गोकुलचन्द्र शर्मा     | भार्गव प्रिंटिंग वर्क्स, चन्दौसी             |
| ५. भारत सूर्य         | दिनेश मिश्र           | साहित्य मण्डल, गोदिया                        |

### नाटक

- |                       |                       |                           |
|-----------------------|-----------------------|---------------------------|
| ६. प्रताप प्रतिज्ञा   | जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द | हिन्दी भवन, इलाहाबाद      |
| ७. महाराणा प्रतापसिंह | राधाकृष्णदास          | नागरी प्रचारिणी सभा, काशी |
| ८. महाराणा प्रताप     | नरोत्तम व्यास         | हरिदास वैद्य, कलकत्ता     |

### जीवन-चरित्र

- |                    |                             |                          |
|--------------------|-----------------------------|--------------------------|
| ९. महाराणा प्रताप  | प्रो. लक्ष्मीचन्द्र, एम. ए. | भारतीय भवन, लाहौर        |
| १०. महाराणा प्रताप | श्रीराम शर्मा, एम. ए.       | मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर |

११. प्रताप चरित्र

बाबूराम नारायण

उपन्यास

१२. महाराणा प्रताप

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

व पोपुलर ट्रेडिंग कं० कलकत्ता

विविध

१३. वीर प्रताप

लाला भगवानदीन

ग्रन्थगार, काशी

१४. वीर शिरोमणी महाराणा प्रताप

गो. ही. श्रीभक्त

अजमेर

१५. हल्दीघाटी की लड़ाई

हरिदाम माणिक

माणिक का. काशी

१६. हल्दीघाटी की एक रात

शिशुपालसिंह

मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, हैदराबाद

१७. महाराणा प्रताप

राजेन्द्र शंकर भट्ट

जयपुर

१८. महाराणा प्रतापसिंह

मुंशी देवीप्रसाद

जैन प्रेस, लखनऊ

१९. राणा प्रतापसिंह

चन्द्रशेखर पाठक

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

२०. महाराणा प्रतापसिंह

नन्दकुमार देव शर्मा

श्री० प्रेस, लखनऊ

२१. प्रणवीर प्रताप

विनोद

राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

२२. प्रतापसिंह

सतीशचन्द्र मिश्र

२३. प्रतापी प्रताप

हरिशंकर शर्मा

गीतम ब्रदर्स कानपुर

२४. महाराणा प्रताप

कामता प्रसाद

सा. साधना प्रकाशन, पटना

२५. महाराणा प्रताप

गुप्त राकेश

देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली

२६. महाराणा प्रताप

न्यादरसिंह

देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली

२७. महाराणा प्रताप

प्रेमचन्द

सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

२८. मानव प्रताप

देवराज 'दिनेश'

आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

२९. महाराणा प्रताप

विश्वनाथ

राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

३०. हल्दीघाटी

मनहर चौहान

## डिगल पिगल (राजस्थानी)

काव्य

३१. प्राचीन डिगल काव्य में

डॉ देवीलाल पालीवाल

अरुणिमा प्रकाशन, उदयपुर

महाराणा प्रताप

३२. प्रताप चरित्र

केसरीसिंह बारहठ, सोन्याणा

श्रीसवाल प्रेस, कलकत्ता

३३. प्रताप यश चन्द्रोदय

कविराव मोहनसिंह

भट्टयानी चौहटा, उदयपुर



५५. हल्दीघाट चे युद्ध

वालोपयोगी

५६. वीर प्रताप

स. दि वझे

श्री मो श्रीटी

### गुजराती

काव्य

५७. पुरोहित नी राजभक्ति

५८ हल्दीघाटी नु युद्ध

अदेशर फरामजी खबरदार

अदेशर फरामजी खबरदार

नाटक

५९. प्रताप नाटक

६०. प्रतापसिंह

६१. महाराणा प्रताप

६२. मेवाड ना सिंह अने बीजी वालों

६३. अश्रुमती

६४. राणी प्रताप

गणपतराम राजाराम भट्ट

मणिभाई मूलाभाई पटेल

दौलतराम कृपाराम

जयनीलाल मेहता

डाह्याभाई घोलशाजी भवेरी

भवेरचन्द मेकणी

उपन्यास

६५. शौर्य तर्पण

६६. मेवाड नी संध्या

६७. हल्दी घाटी नु युद्ध

६८. प्रतापी प्रताप

६९. मेवाड केसरी

७०. उदयपुर ना वीर श्रेष्ठ महाराणा प्रताप

रमणलाल वसन्तलाल देसाई

वसन्तभाई

ना वि ठक्कर

छगनलाल अमथाराम

गोपालजी वीरमजी

डाह्याभाई रामचन्द्र मेहता

### बंगाली

नाटक

७१. राणा प्रताप

७२. प्रतापसिंह

७३. अश्रुमती

गिरीशचन्द्र घोष

द्विजेन्द्रलाल राय

ज्योतिन्द्रनाथ टंगोर

उपन्यास

७४. प्रतापसिंह

दामोदर मुखर्जी

अन्य

७५. नवभारत हल्दीघाटी	जतीन मुखर्जी
७६. मान्तरेर सायना-राणा प्रताप	हरन चन्द्र रक्षित

उड़िया

७७. राणा प्रतापसिंह (जीवन चरित्र)	गोडवरीस महापना
७८. राणा प्रताप	दधानिधि मिश्रा

कन्नड

७९. अमर प्रताप	जी मरुडय्या, एम. ए
८०. भार्यकीति (चरित्र)	वासुदेवय्या
८१. राणा प्रतापसिंह	प. लि. वे गलगनाथ
८२. राणा (नाटक)	सा. शि मरु या

तेलुगु

८३. राणा प्रतापसिंह (नाटक)	वेदुला सत्यनारायणम
८४. राणा प्रतापसिंह (नाटक)	श्राई. यज्जनारायणम
८५. राणा प्रतापसिंह चरित्रम् (काव्य)	वेंकटसेशा शास्त्री

संस्कृत

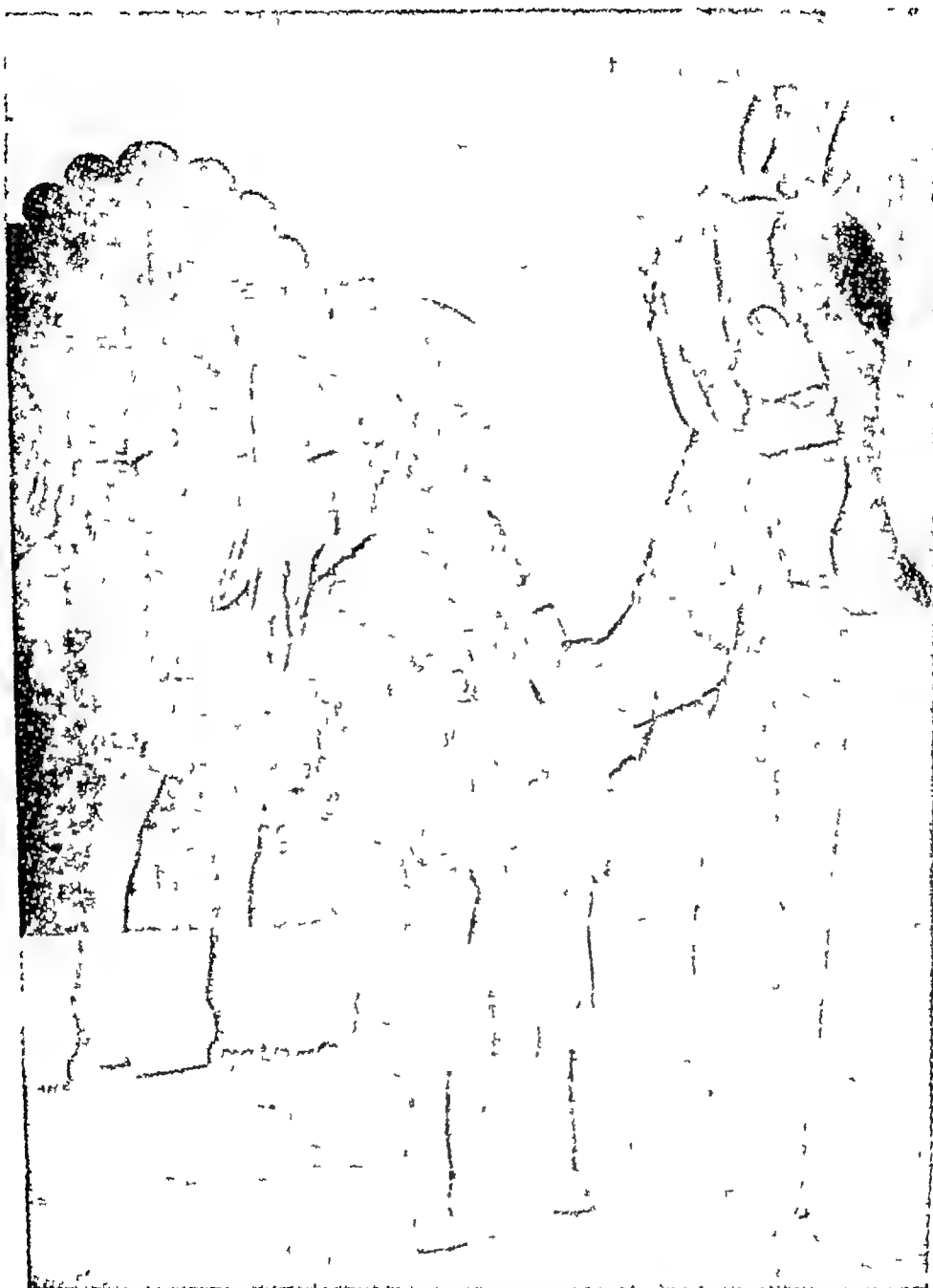
८६. प्रतापविजयम् (नाटक)	मूलशकर माणिक्यलाल
-------------------------	-------------------

ENGLISH

87. Rana Pratap (Drama)	E L. Turnbull
88. Delhi and Huldighati (Drama)	N. G Mukherjee
89. Pratap the Great (Poems)	H S. Mordia
90. Maharana Pratap	SriRam Sharma
91. Rana Pratap. The lion of Rajasthan	G. V. Subba Rao

Where the mind is without fear  
     And the head is held high,  
         Where knowledge is free;  
 Where the world has not broken up  
     Into fragments by narrow domestic walls,  
 Where words come out from the depth of truth,  
 Where tireless striving stretches into arms  
     Towards perfection;  
 Where the clear stream of reason  
     Has not lost its way  
     Into the dreary desert sand of dead habit;  
 Where the mind is led forward by thee  
     Into ever widening thought and action,  
     Into that heaven of freedom my Father,  
         Let my country awake.

—Rabindranath Tagore



महाराणा प्रताप के प्रिय चेटक के लवाजमे से सुसज्जित अश्व





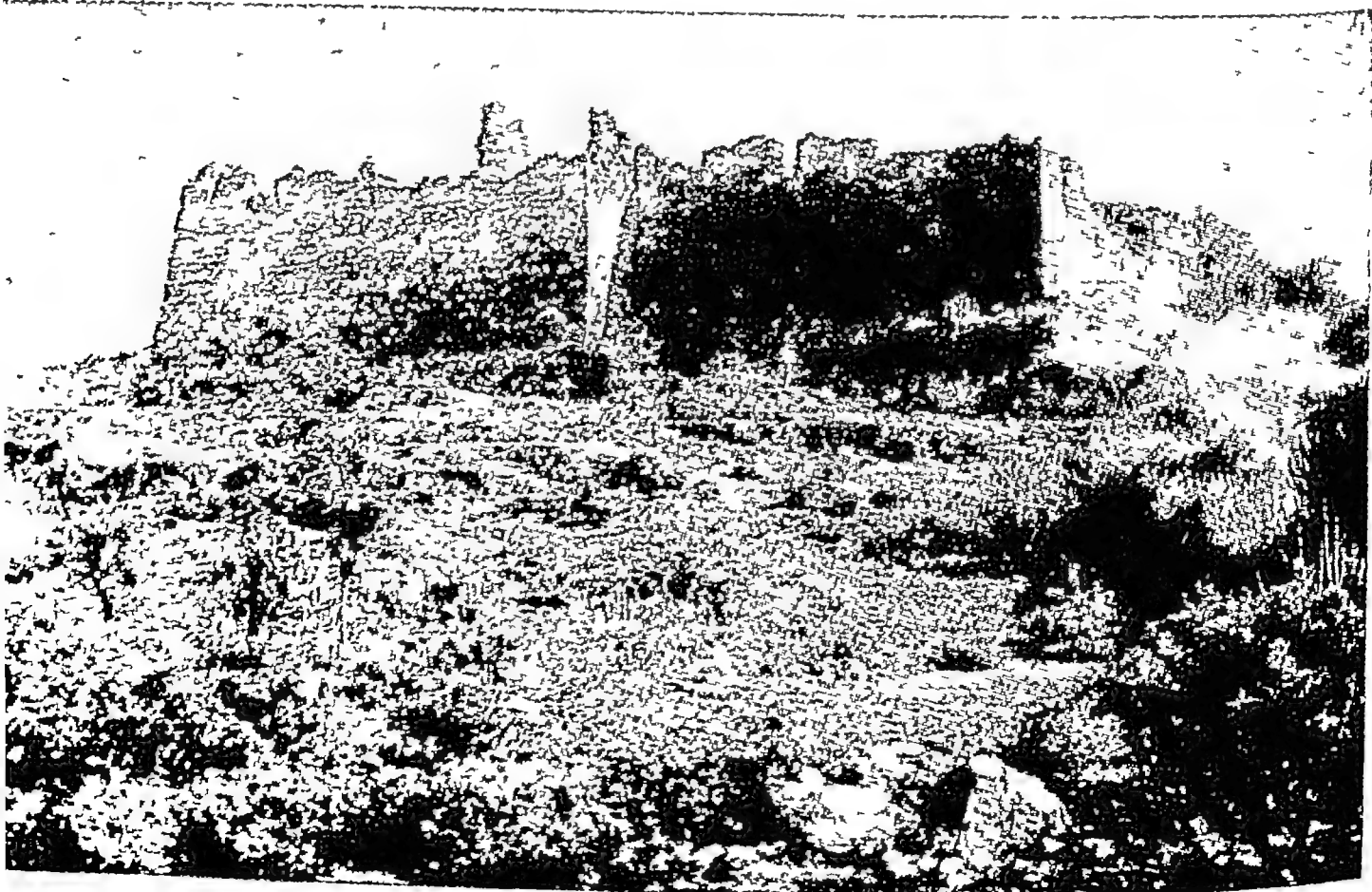
चेटक का चवूतरा, हल्दीघाटी



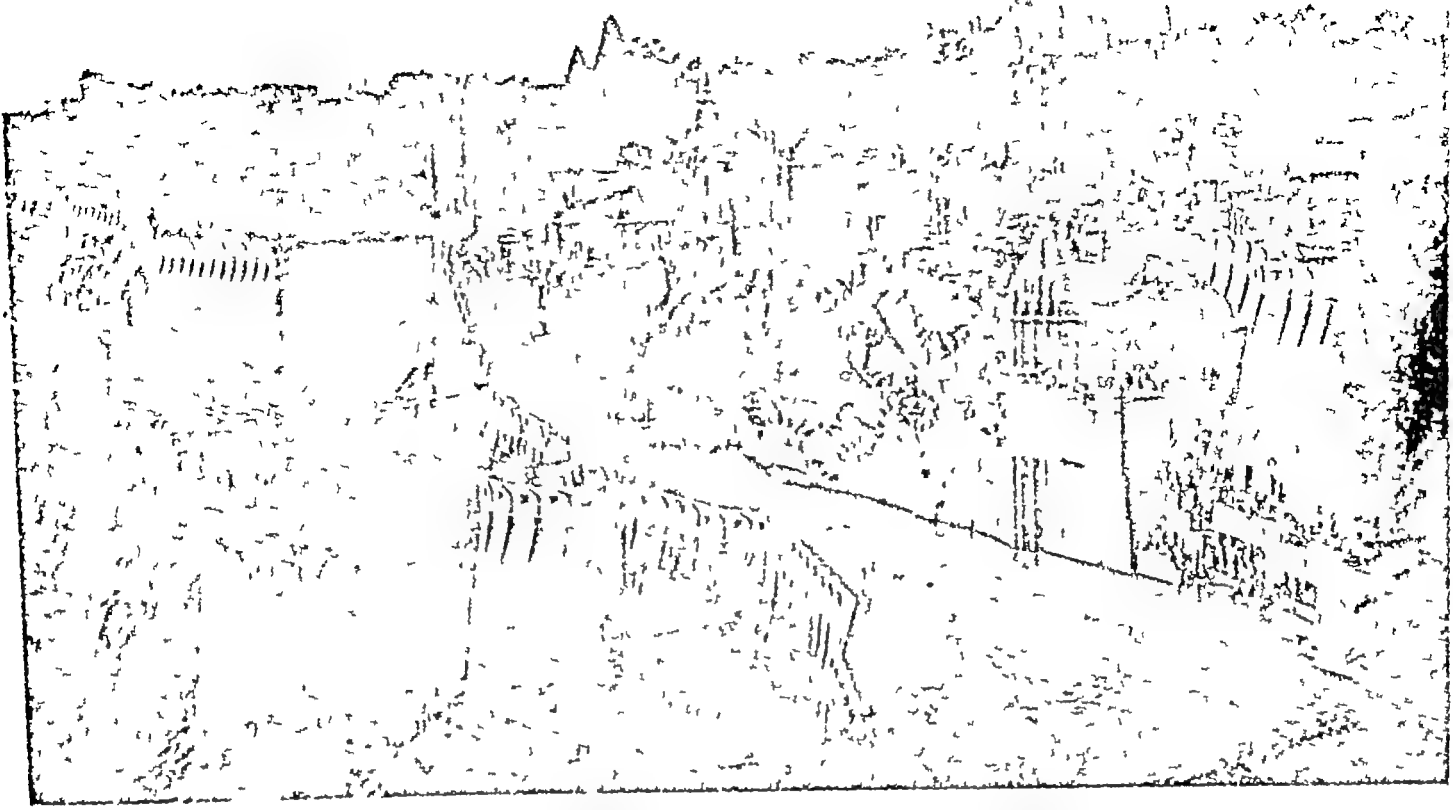
वीदा भाला की छतरी



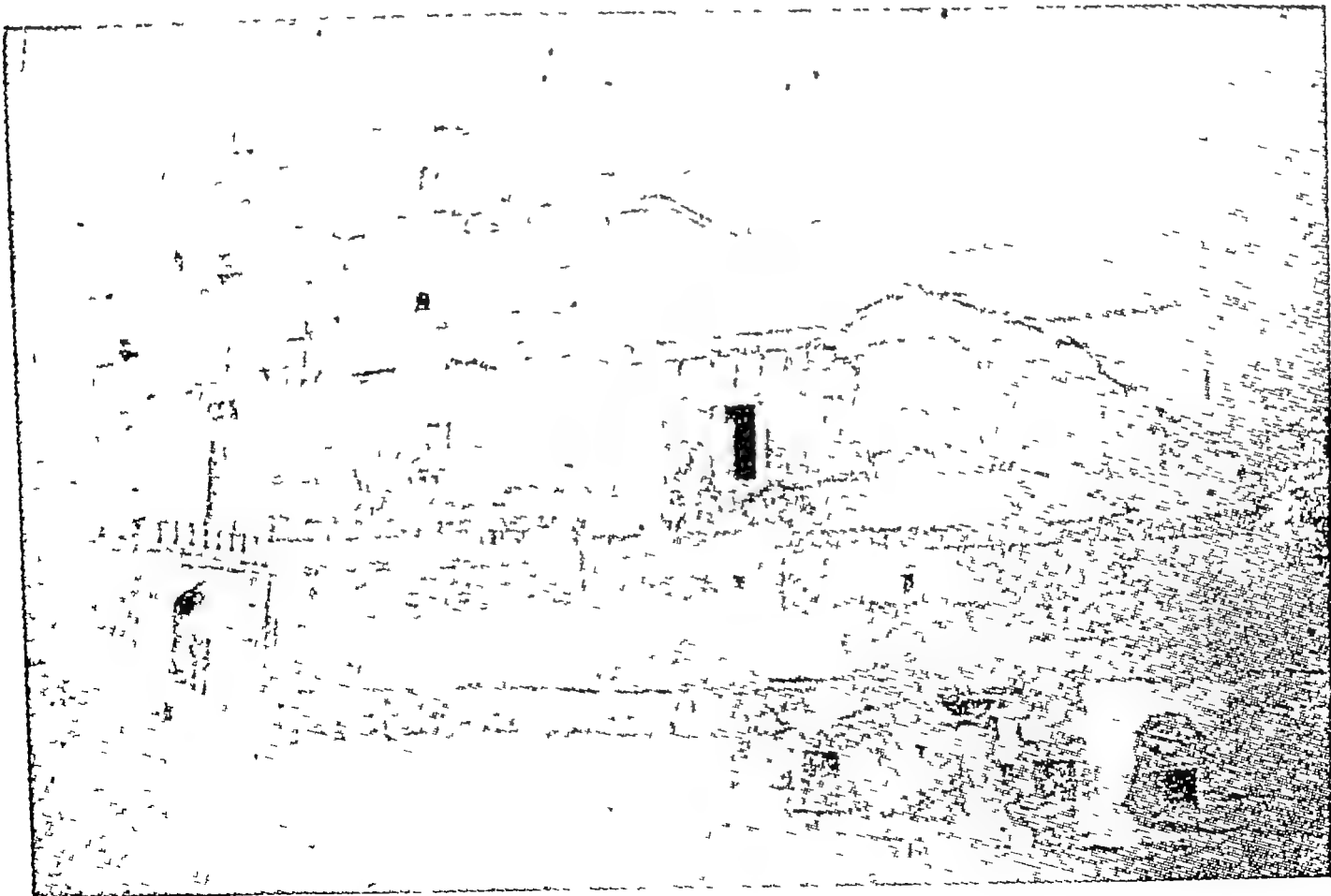
हल्दीघाटी का युद्धक्षेत्र जो वर्तमान में रक्त तलाई क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है



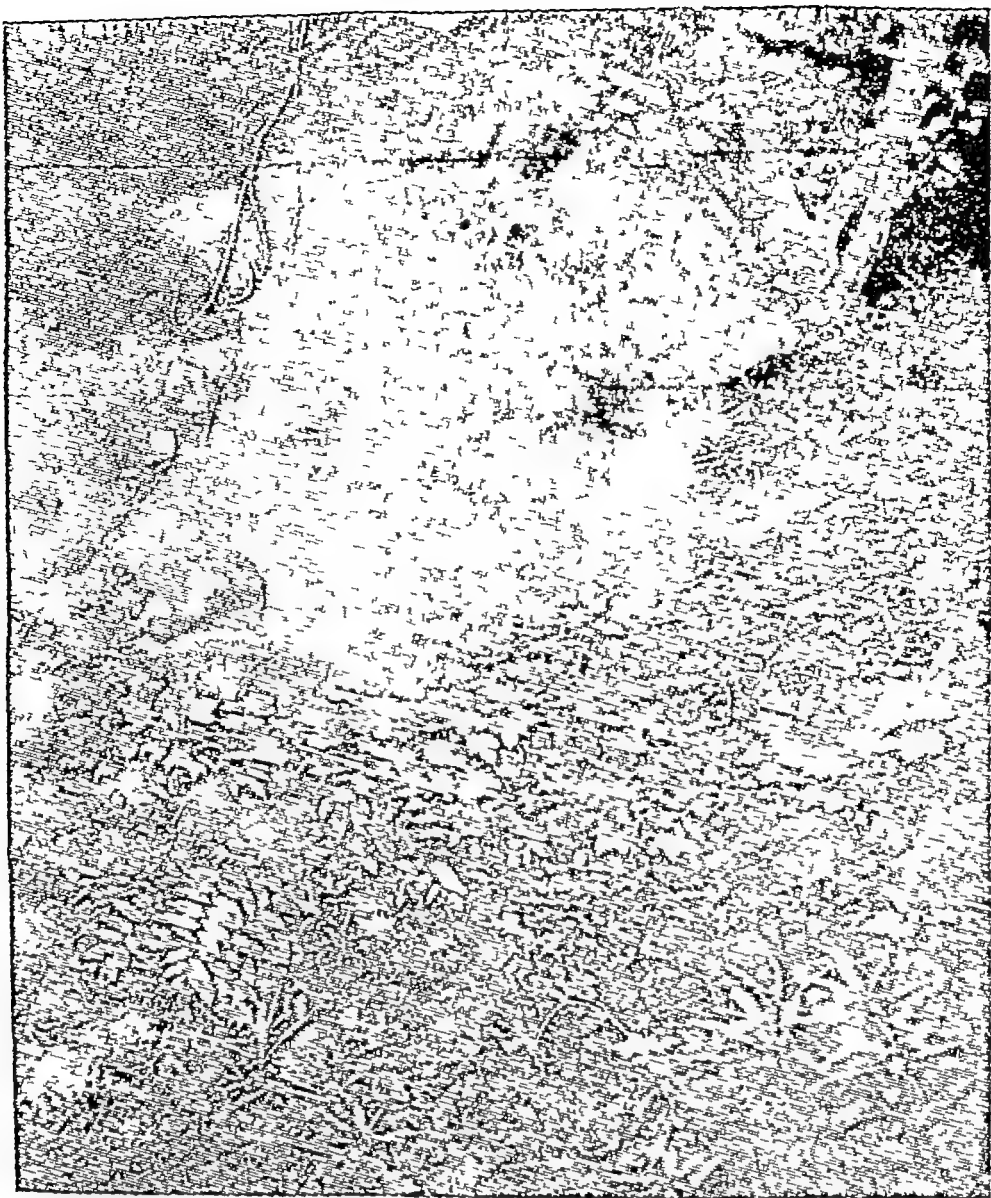
चावण्ड स्थित प्रताप के महल जो अब खण्डहरावस्था में है



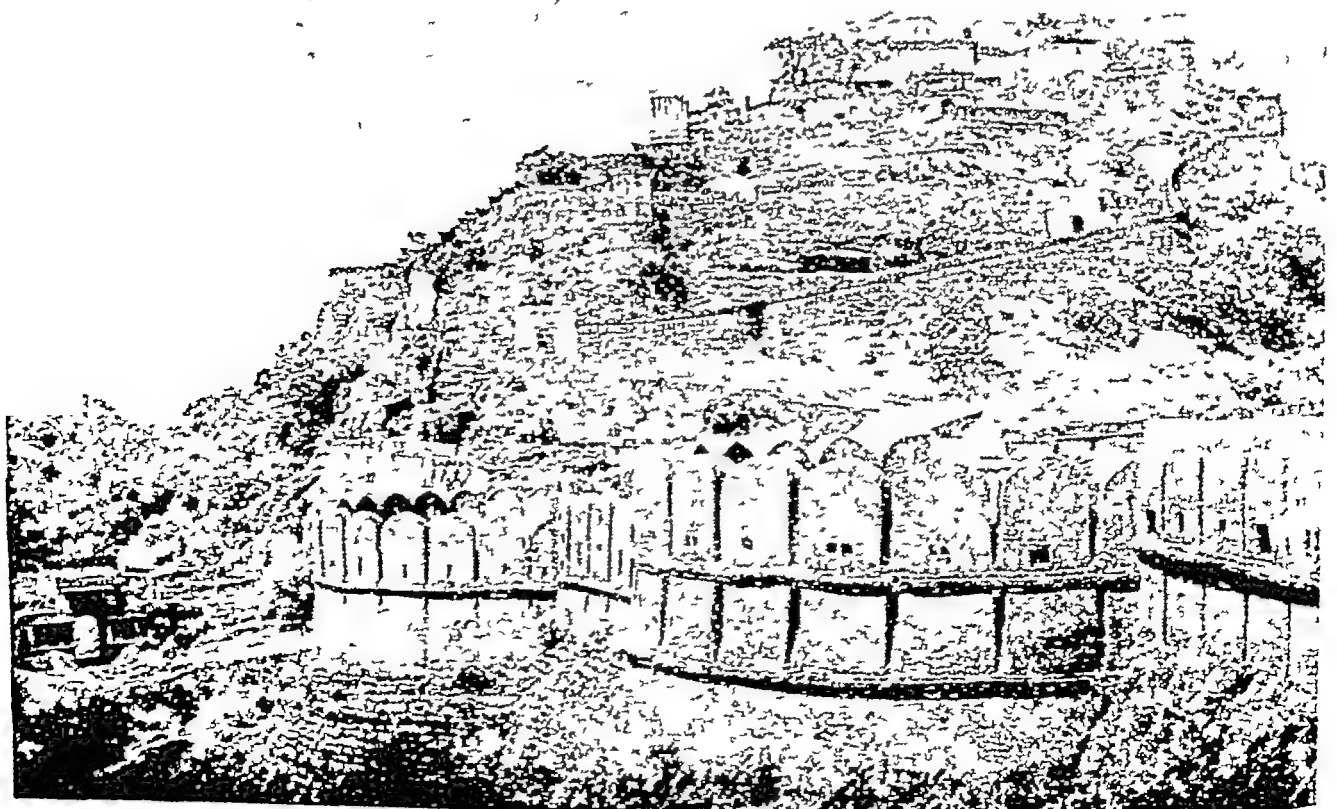
वीर भूमि चित्तौड़गढ़ • किले का एक विहंगम दृश्य



गोगून्दा स्थित महाराणा उदयसिंह व प्रताप के महल (वर्तमान  
मे गोगून्दा राजा का निवास स्थान है)

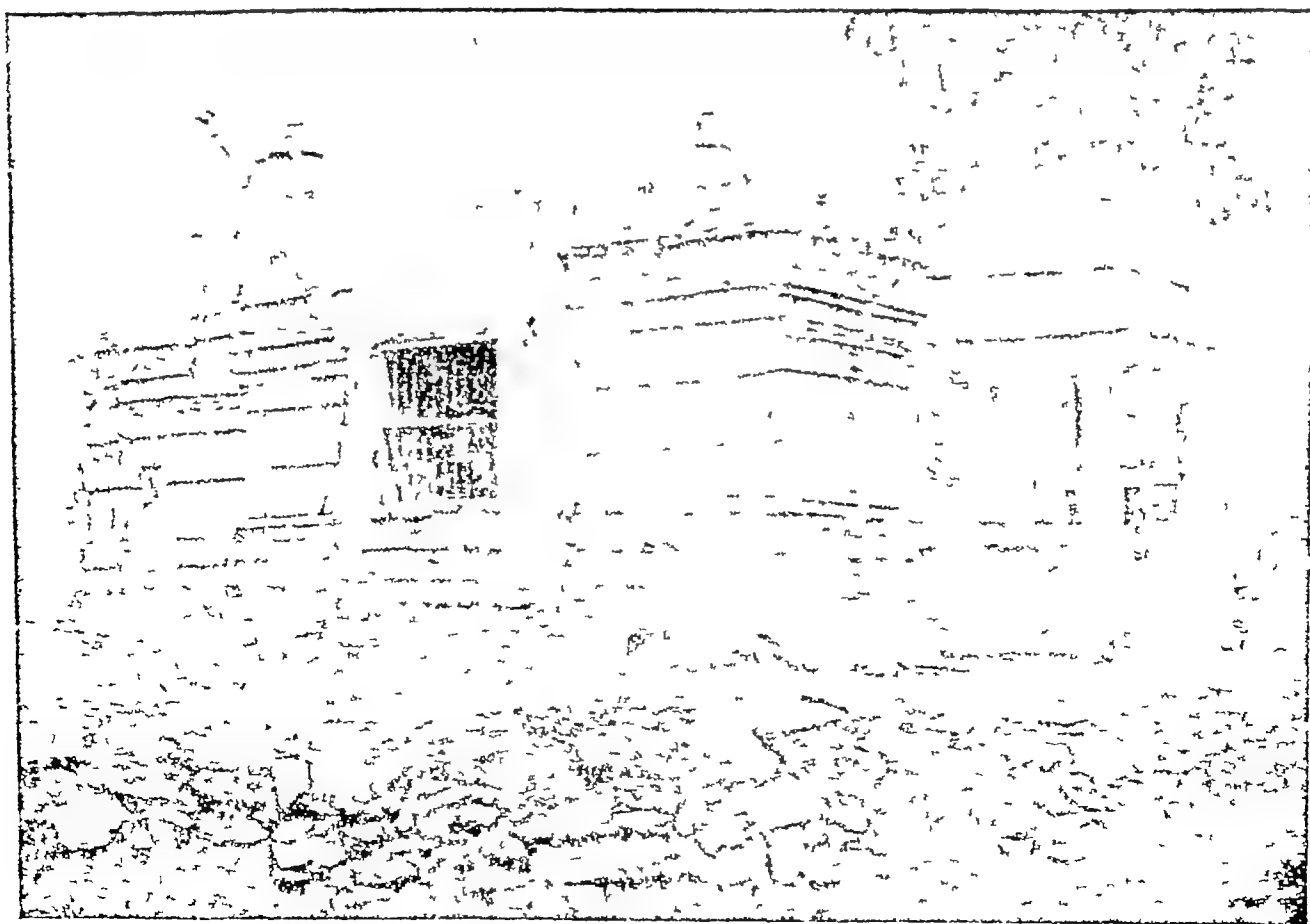


जावर के पहाडो मे स्थित गुफा, प्रताप के  
परिवार का आश्रय स्थल



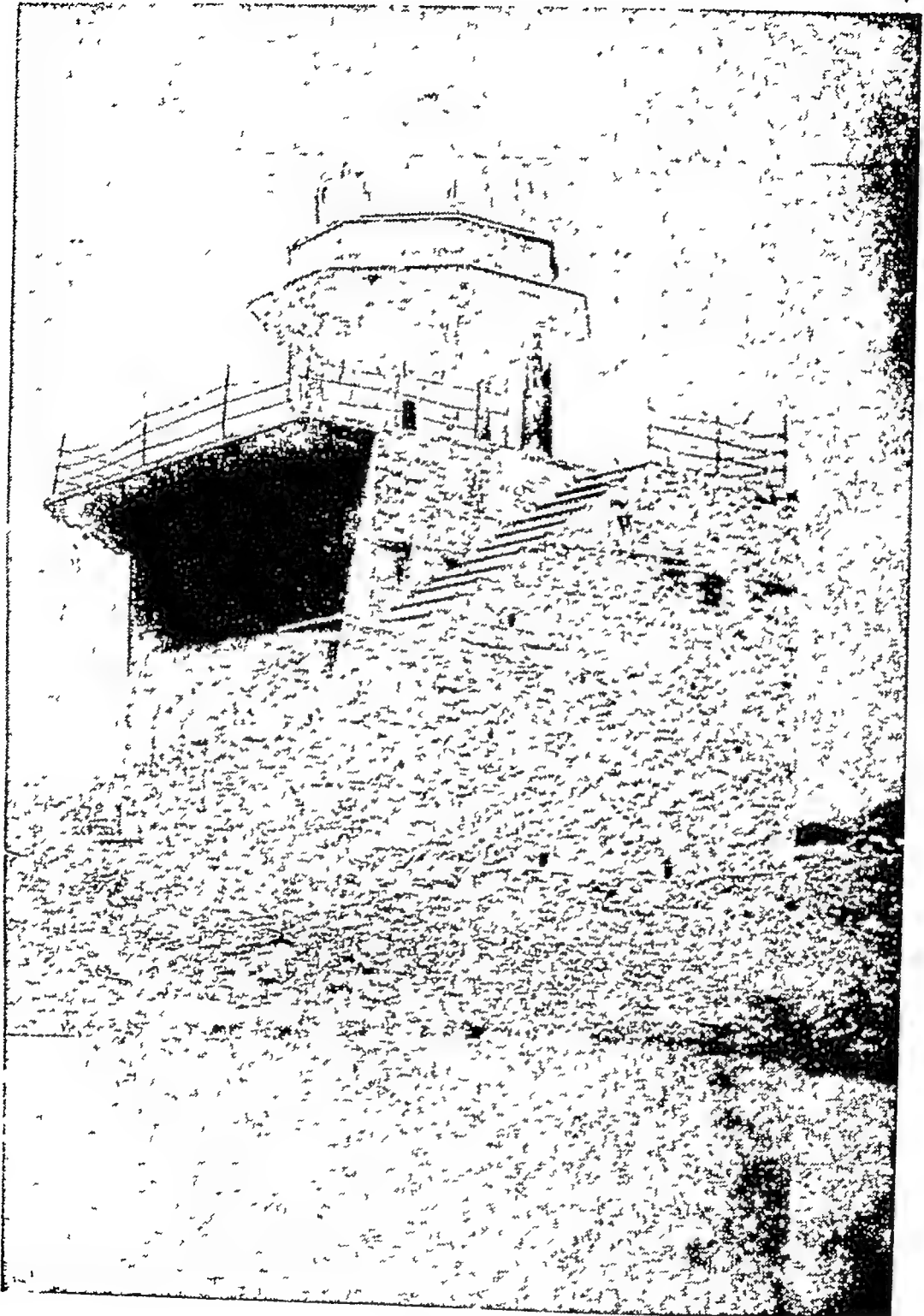


उदयपुर स्थित मोतीमगरी पर महाराणा प्रताप के महल जो अब खण्डहरावस्था में है



चावण्ड में प्रतापकालीन चामुण्डा माता का मन्दिर





चावण्ड स्थित महाराणा प्रताप का दाह सस्कार स्थल



हल्दीघाटी युद्ध के समय अर्जुन प्रिय साथी चेतक की मृत्यु पर महाराणा प्रताप का श्रवण रदन  
और अर्जुन अर्जुन शक्तिविह का पुनर्मिलन





- संस्कृत काव्य
- डिगल व पिगल काव्य
- फुटकर काव्य
- ख्यात, वात, वंशावली
- पट्टे, परवाने व शिलालेख

मौलिक स्रोत

द्वितीय — खण्ड



# संस्कृत काव्य

पं० जीवंधर

अमरसार

## परिचय

पं० जीवंधर की एक रचना उपलब्ध हुई है—अमरसारः । इसके रचना—संवत् (सं० १६८५) के आधार पर इनका जीवन—काल महाराणा जगतसिंह, प्रथम, का शासन—समय (वि० सं० १६८४—१७०६) ठहरता है ।

जीवंधर की यह कृति उन्हें उच्चकोटि का कवि सिद्ध करती है । उक्तिवैचित्र्य, छंदों की सुयोजना एवं भाषा की प्राञ्जलता उनकी इस रचना की विशेषताएँ हैं ।

अमरसारा संस्कृत भाषा का एक प्रौढ़ काव्य है । इसमें महाराणा प्रताप के आंशिक वर्णन के बाद महाराणा अमरसिंह, प्रथम (वि० सं० १६५३—१६७६) की जीवन—चर्या के बारे में सविस्तार जानकारी दी गई है । अन्त में महाराणा कर्णसिंह (वि० सं० १६७६—१६८४) और जगतसिंह, प्रथम (वि० सं० १६८४—१७०६) का संक्षिप्त उल्लेख हुआ है । हंगरसिंह महाराणा अमरसिंह (प्रथम) का अमात्य था, जो नीति—निपुण, विद्वान, उदार एवं विद्वानों का आदर करने वाला व्यक्ति था । अमरसार में इसके सवध में भी घत्र तत्र अच्छी सामग्री का समावेश हुआ है ।

यहाँ प्रताप सम्बन्धी अंश प्रस्तुत किया जा रहा है ।

## अमरसार

तस्मिन्ननेकवरराजमहाधिराज-

पट्टावलावनुपमानगुणैकभूमौ ।

ये निर्जितारिनिचयोदयसिहराणः

जातो हसन्सुरपमात्मविभूति शक्त्या ॥५५॥

नित्य- नतामरनरोरगनायकेन

यः शभुनावनिरमारमणकृतोसौ ।

सौदर्यधैर्यपरमाय्यंगुणौघभूमिः

स्वज्ञानकोशलमिह प्रकटं विधातुं ॥५६॥

तत्पट्टसिधुविधुर्ज्ज्वलकीर्तिराय्यं

दासीकृताखिलमदोद्धतवैरिभूपः ।

सद्युक्तिरुत्तममतिर्वरविक्रमाद्यो

जातः प्रतापवरसिहसुनामराणः ॥५७॥

यत्प्रतापवरदीपशिखायां

म्लेच्छभूपतिपतगगणोयं ।

सर्व्वदिक्ज्वलदधूमरमाया

नाशित्रो न मणितुं भुवि शक्यः ॥५८॥

दीपाद्दीप इव द्रुमा [द्]द्रुम इव प्रायोनुरूपो महान्

शूरोदारगभीरधीरसुगुणैरापूर्णगात्र शुचि ।

देवैः स्वेश इति नृपैरधिप इत्युद्यत्फणीद्रोरगैः

दृष्ट्वा श्रीपत एव भूमिवलये जातः प्रतापांगजः ॥५९॥

इति वंशवर्णनं संपूर्णम् समाप्तम् । अथ प्रतापवर्णनं लिख्यते ॥

हस्त्यस्वमर्त्येदुसुशखचक्र-

प्रवालमुक्तामणिमुख्यचिह्नैः ।

स्वेशत्वमालोक्य तनौर्यदीये

ऐश्वर्यमुख्यैः श्रियते गुणौघैः ॥६०॥

विशालमुद्यद्वरभालमस्य

प्रतापलक्ष्म्यैकनिवासभूमि ।

निरीक्ष्य मिथ्याभिमतोद्धतत्वे

त्यजति चान्ये भुवि पार्थिवौघाः ॥६१॥

कारुण्य पूर्णेक्षणसन्निपाते

समागतो यः सुजनस्समेतात् ।

संदु खतापैरखिलैर्विमुक्तो

ग्रीष्मस्थलान्मत्स्य इवाब्धिनीरे ॥६२॥

वचांसि यस्यामृततोधिकानि

निपीय कणजिलिभिर्मनुष्याः ।

न दुर्जनव्याधिजवेदनौघैः

दुःखंति भूमौ च कदापि काले ॥६३॥

## सारांश

शत्रुओं पर विजय पाने वाला महाराणा उदयसिंह प्रताप का पिता था । उसके वैभव के आगे इन्द्र का वैभव भी तुच्छ था ।

महाराणा प्रताप बुद्धि में श्रेष्ठ, पराक्रमी और सधीर था । वह अपने वश-सिंघु का चन्द्रमा था । उसकी कीर्ति उज्ज्वल थी । मदोद्धत सभी शत्रु-राजाओं को उसने अपने अधीन कर लिया था ।

प्रताप एक सज्ज्वल दीप है । उसकी लौ में जो म्लेच्छ-भूषति रूप पतंग जल मरे हैं, उनकी गिनती कौन कर सकता है ?

उम प्रताप के पुत्र हुआ अमरसिंह । वह अपने पिता की तरह उदार, पराक्रमी, दयावान् और धैर्यशाली था । उसकी वाणी अमृत तृप्त्य थी, जिसे पीकर प्रजा-जन दुर्जन लोगों से उत्पन्न व्याधियों से सदा बच लिए बचे रहते थे ।



संस्कृत काव्य

पं० सदाशिव

राज रत्नाकर

## परिचय

पं० सदाशिव महाराणा राजसिंह, प्रथम, (शासन काल स० १७०६-२७), के समकालीन संस्कृत कवि थे। ये नागर जाति के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम कृष्णजित् था। उपलब्ध सामग्री के आधार पर इनका पूर्व-वंश-क्रम इस प्रकार मिलता है:—

विद्याधर  
|  
गोपाल  
|  
मंडन  
|  
कृष्णजित्

उक्त चारों व्यक्ति संस्कृत के विभिन्न विषयों के अच्छे विद्वान् थे। अपनी वंश-परंपरा के अनुरूप सदाशिव नागर ने भी संस्कृत का अच्छा पांडित्य अर्जित किया। इन्होंने वाराणसी में रह कर व्याकरण, गणित, छंदशास्त्र आदि विषय पढ़े थे। इनके गुण मानुजित् थे।

पं० सदाशिव संस्कृत भाषा के श्रेष्ठ कवि थे। इनका लिखा एक ग्रन्थ मिला है—राजरत्नाकर। यह ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से तो श्रेष्ठ है साथ ही मेवाड के इतिहास की दृष्टि से भी इसका अत्यधिक महत्व है। इसमें मेवाड के आदिकाल से लेकर महाराणा राजसिंह, प्रथम (वि० स० १७०६-२७) तक का संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त मिलता है।

यहां प्रताप सम्बन्धी अंश प्रस्तुत किया जा रहा है।

## राज रत्नाकर महाकाव्यम्

तत्पुत्र पृथिवीपतिः पृथुयशा पुण्य पवित्राशयो  
लोकालोकमहीधरातरमहीव्याप्तप्रतापातप ।  
सध्यङ् सत्कविना बुधेन विलसत्पद्माकहस्ताबुज  
श्रीपूपेव विराजमानमुकुटो राणा प्रतापोऽभवत् ॥२२॥

इति श्रीराजरत्नाकरे महाकाव्ये मदाशिवकृतौ महाराणाचरित्रे षष्ठं सर्गं ॥६॥

य चान्नसत्रमकरोन्नजभुक्तिकाले  
सायं प्रभातसमये च नृप प्रतापः ।  
अचद्रतारक मिलातप यस्तदाद्या—  
स्तं निर्वहन्ति किल राणाकुलावतसा ॥१॥

निर्जित्य बाहुवलतः किल पौरूहता  
कुंभोद्भवाश्रितदिश तरसा जिगीषु ।  
श्री भारमल्लसुतजो नृपमानसिह—  
स्तभ्यालये महति मार्गवशादुपेत ॥२॥

आमन्त्रित स समयाक्षरदेवगेहे  
भोक्तु नृपः सपृतनः किल मानसिहः ।  
श्रीचित्रकूटपतिना सह भोक्तुकामो  
मार्गं व्यलोकत च तस्य सुधर्ममूर्ते ॥३॥

अत्यादृतोऽपि न समेति यदा स भोक्तु  
श्रीमेदपाटविषयेऽवरवशदीपः ।  
क्लृप्तस्तदा किमिति नेत इति स्वकीया—  
नागतुकः स्म परिपृच्छति वृद्धपुंसः ॥४॥

अत्रांतरे श्रवसि कोपि जनोऽस्यराज्ञ  
स्वास्थे निधाय वसनाचलमित्यगादीत् ।

सक्षत्रिया महति राजकुले प्रजाता  
नो भुजते यवनसगवता सहैते ॥५॥

इत्थं निशम्य कटुवाचमदीनसत्त्वो  
राजोदतिष्ठदरुणायितनेत्रकोणः ।  
स्मश्रु प्रमृज्य करजेन सवाहनीकः  
शीघ्रं जगाम च चकत्तनेशगेह ॥६॥

तस्मिन्गते नरपतौ नरदेवमुख्यः  
प्रक्षाल्य वेषम किल विष्णुपदीपयोभिः ।  
मृद्गोमयेन परिलिप्य च भाडजात  
निष्काश्य तद्विनिदधे च पुनर्नवीनं ॥७॥

तद्गूढचारिपुरुषस्य मुखान्निशम्य  
प्रज्वालितोऽग्निरिव कूर्मपतिर्वभूव ।  
दिल्लीश्वर प्रणिहिता पृतनोमुपेत्य  
प्रत्यागमच्च रणकर्मविशेषदक्षः ॥८॥

यां क्षत्रितां हि शुचिकर्मतय[१]विधत्से  
तां दर्शयेह रणभूमिगतोऽस्त्रपातैः ।  
एपोहमेमि रणमीक्षुरिति प्रलेख  
सप्रेष्य वीरवरवेश्मनि सज्ज आसीत् ॥९॥

एतद्विवोध्य नृपलेखनमाप्त गर्व-  
कोपादभूदुदयसिंहसुतो हरिश्च्रीः ।  
इत्थ विलेख्य यवनेशचमूपमुख्यं  
स्वानाजुहाव च ह्येभनरोष्ट्रपालात् ॥१०॥

अतःपुरेषु पुरतः पुरुषीभवतः  
श्मश्रुणि पाणिजतलैः कति नोल्लिखति ।  
संग्रामकृत्रकरिशोणित्शोणतीरे  
वीरव्रतं चरति भूमितले स वीरः ॥११॥

म्लेच्छेश्वरो हि पुशरुस्तव भागिनेयो

राठोडकस्य यवनेश्वरषोरमाख्यः ।

इत्थं महायवनसगवतो महीपान्

सत्क्षत्रियाव्यवहतौ कथमाद्रियते ॥१२॥

तात्कालिकं समधिगम्य ततो मुहूर्त्तं

वादित्रघोषवधिरीकृतदिग्विभागः ।

योद्धुं स कूर्मपतिसैन्यकसन्मुखाध्वा

वेगाद्ययाबुदयसिंहसुतो हरिश्रीः ॥१३॥

शयक्त्यायुधाः शतसहस्रकमश्ववारा

लख्य [क्ष] त्रयं किल पदार्तिजनाः किराताः ।

दत्ताबलाश्चशतपचकमाजिधीरा

एतद्वलं समभवत्किल राणापक्षे ॥१४॥

नीलाजनाचलनिर्भयवर्नैरयोऽश्म—

प्रक्षेपणज्वलनयत्रघरैः प्रचडैः ।

स्थूलाननैरपयगोभिरिवाकितं-यत्

कौर्मं हि तद्वलमभूत्तुगुणं ततोपि ॥१५॥

नीरोपकठमधिगम्य महाद्यमा ये

कूर्मस्य राणनृपतेर्वरराजपुत्राः ।

युद्धश्रमश्रमयितुं धृतखाद्यवस्त्रा—

स्ते तेनरे पटकुटीरधिवासयोग्या ॥१६॥

प्रातः पुनर्ध्वनति चाहवतूर्यघोषे

हस्तिध्वजे प्रचलति ध्वजिनीमुखेच ।

गोला निपेतुरयसोज्वलनप्रयुक्ताः

कालास्यसूचवणिकणा इव कोपमुक्ताः ॥१७॥

मुञ्चति यावदयसोऽयुतमश्ववारा

गोलानुखबुधनियोजिततीव्रवेगान् ।

तावत्ततोप्यधिकशीर्यधराः स्वयत्रे

क्री-खे (?) [च] चूर्णमपरे बिभराबभूवुः ॥१८॥

प्रक्षेपणीयकमयोगुटिकास्त्रमाशु  
 क्षिप्त्वा निवर्तितहया रुधिराढ्यदेहाः ।  
 चक्रुः पलायनमलोकितपृष्ठभागाः  
 खट्वासु मुत्कण [ मत्कुण ] गणा इव पारसीकाः ॥१६॥

कौचिज्जनी ज्वलनयत्रकमर्मरध्रे  
 वह्नि विधाय युधि सन्मुखमाव्रजन्तौ ।  
 तद्गोलकेन युगपत् क्षतभालदेशौ  
 अश्वा निपेततुरधोश्रुकणाविवाक्ष्णः ॥२०॥

कालांजनावलनिभा अथ सन्नियुक्ताः  
 सप्तायुत समिति राणपुरदरेण ।  
 भिल्ला महाबुदघटारवतीव्रवेगा  
 भल्लान् ववर्षुररिसैन्यमहीतलेषु ॥२१॥

केचिद्वनद्रुमगणातरितात्मदेहा  
 ग्रावोच्चसानुपरिलघनसह्यपादाः ।  
 आकर्णकृष्टधनुषो नतपूर्वकायाः  
 शत्रोरधिध्वज निचिक्षिपुराशुगौघान् ॥२२॥

हूणार्वाताशमिति सन्मुखवेगभाजा  
 नासापुटे प्रविविशुर्विशिखाः सपुखाः ।  
 व्योमाध्वगेश्वर भया घृततीव्रवेगाः  
 प्रक्षाश्रया गिरिबिलेष्विव काद्रवेयाः ॥२३॥

वारणैर्हतस्त्रिभिरिभो युधि कुम्भभागे  
 दानासृगा वहन्नेरजितपूर्वकायः ।  
 यच्छंखलाहतगतिः समुवाह घोरः  
 शृङ्गात्रयोल्लसित [ त ] गैरिकशैललीलां ॥२४॥

दंतावला विगतवाह्यरदा महेभा ।  
 हूणोद्भवा ह्यगणा रवणा नराश्च ।  
 आकर्णकृष्टसुधनुभिरहा किरातैः  
 के के रणे रणमुखानकृताः शरव्याः ॥२५॥

भग्नेषु तेषु रणतो निजसैनिकेषु  
 छिन्नायुधेषु पतितेषु रणांगणेषु ।  
 अश्वायुताष्टकवृतो युधि मानसिहो  
 योद्धुं पुनः स्वयमयात्किरिपृष्ट संस्थः ॥२६॥

क्षुण्णं रजो ह्यपदं रणभूमिजात  
 सङ्घर्षितं हि रथचक्रपरिभ्रमेण ।  
 संवादितो द्विरदकर्णविबुद्धवानै—  
 न्यारोधयत्तपनवाजिविलोचनानि ॥२७॥

ते क्षत्रिया युयुधिरे शरशक्तिपातैः  
 कीक्षेयकैर्वहुतरैर्यमदंष्ट्रकाभिः ।  
 अग्न्योन्यनामवलभर्त्सनजातकोपै—  
 दंष्ट्राधरा त्रिकृतभालभयकराश्च ॥२८॥

श्रीचित्रकूटपतिरप्यविसह्यतेजा  
 अप्यावृतः परिमिते न पुरःसरेण ।  
 हर्यक्षवत् स परिहायभटान् संमस्ता  
 नवावतीपरिवृढद्विपसमुखोऽभूत् ॥२९॥

धावद्गजं ह्यविहेषणलोहगोल—  
 प्रक्षेपणीज्वलनयत्रकघोरघोषं ।  
 उधु (द्वू)मवूलिवदनीकमहो तदासी—  
 त्सध्यामिलत्प्रलयसिधुरयोपमानं ॥३०॥

तत्सांपरायिकमभूत्तुमलं कृपाण—  
 प्रक्षेपणोपलगदाद्युगकुंतपातैः ।

उद्यत्पतत्करभवाजिमहेभवीरं

मत्तांतकभ्रमणकुहं नमां मिषाढ्यं ॥३१॥

छित्वा शिरासि बहुश प्रतिपक्षभाजां

कौक्षेयकेन चपलाप्रतिमेव राणः ।

छत्र ध्वज च दशभिर्निशितै क्षुरप्रै-

श्चिच्छेद कूर्मनृपते नृपतिः सरोषः ॥३२॥

कूर्माधिपोपि दशभिस्तुरग तदीय-

बाणैर्जघान पुरुषार्थकदृप्तचेताः ।

राणेश्वरस्तमपहाय हय द्वितीय-

मुच्चैःश्रवःसमजव [द्रु?] तमारोह ॥३३॥

श्रीचित्रकूटपतिना प्रहितप्रष(स)क्तो

हस्तं निष्कृत्य बत हस्तिपकस्य तस्य ।

आस्थालय तमरिवारणकु भक्षे

मूर्ज्जन् गिरिस्थेशलभश्चियमाप सद्यः ॥३४॥

वामेन यावदप्रहितप्रहितं प्रष(स)क्त

हस्तेन हस्तिक उच्छ्रितमुद्धरेत् ।

राणेश्वरस्तमिषुभिर्दशभिर्धनुर्ज्या-

माकृष्यतावदलुनादपर कर सः ॥३५॥

भ्रष्टाकुशं शरविलूनकर निष्रण (ष्ण)

क्षीण गलद्रुधिरधारमनुष्णिषं च ।

यतारमस्य करिणो नृपतिर्गजस्य

स्कधान्यपीपतदयोमुखपचकेन ॥३६॥

तस्मान्मतगजनियतरि पातिते स

ज्याका निष्कृत्य विशिखे शिखिपिच्छपुंखे ।

कूर्माधिपोप्युदयसिहसुत सरोष-

माच्छादयद्धन इवावुकणैरगोद्रं ॥३७॥



चापं विलूय यवतेशचमूपहस्त—

व्यासक्तकांडमिषुभिस्त्रिभिरुग्रतेजाः ।

राणेश्वरोपि वरमौक्तिकमालशोभी

कोपाञ्जघान तदुरः सरपंचकेन ॥३८॥

भ्रष्टायुधे द्विरदपृष्टनिषण (ण) देहे ।

कूर्माधिपे बत चिचेनतां (?) प्रयाते ।

स्वाश्व निक्षिप्य करिमूर्द्धनि राणराजः

शक्त्यावधीदुदयसिहसुतो हरिश्रीः ॥३९॥

शक्त्याहतो घृतिमता तदसह्यपीड—

श्चीत्कारदर्शितरद्वयमूलदेशः ।

उद्धूतकर्णविवरश्रव उष्णारक्त—

स्तस्मात्पलायत गजो घृतमानसिंहः ॥४०॥

तस्मिन्पलायितवत्ति द्विरदे नरेन्द्रे

भ्रष्टायुधे च पतिते गतचेतनाके ।

सर्प कुटिस्थमपहाय घनं विहस्ता—

स्वेस्तांसमस्तनसुभटा रणतः प्रणेशु ॥४१॥

अरिपटभवनाद्गृहीतवित्तः

पुनरवलोकितसंपरायभूमिः ।

स समरविजयी ययौ

महोराडुदयपुराभिमुखः प्रतापसिंहः ॥४२॥

इति श्री राजरत्नाकरे महाकाव्ये सदाशिवकृती महाराणाचरित्रे - प्रतापसिंहचरितं नाम सप्तमः सर्गः । ७॥

## सारांश

महाराणा प्रताप उदयगिह का पुत्र था । वह यशस्वी और सूर्य के समान तेजस्वी था । उसके प्रताप का ताप सर्वत्र व्याप्त था । प्रातः और साय उसने जो अन्न-सत्र किया, उसे महाराणा अब तक निमा रहे हैं ।

एक बार दक्षिण-पूर्व दिशा को जीत कर राजा मानसिंह, जो भारमल का पौत्र था, प्रताप के घर पहुँचा । प्रताप ने उसे सेना महित भोजन के लिये आनन्वित किया ।

मानसिंह जब भोजन करने के लिये बैठा, तब वहाँ महाराणा उपस्थित नहीं था । उसने प्रताप की प्रतीक्षा की और बार-बार बुलावा भी भेजा । आखिर जब प्रताप नहीं आये तो उसने लोगों से पूछा कि बात क्या है ? तब घीमे से किरी ने यह बताया कि तू कि प्रताप उच्चकुल के क्षत्रिय है और आपका संपर्क यवनो ने है, आपके साथ बैठकर भोजन न करने का यही कारण है ।

यह सुनकर मानसिंह नाराज हो गया । वह वहाँ से उठ गया और सैन्य रवाना होकर वादशाह अकबर के पास पहुँचा ।

मानसिंह के चले जाने पर प्रताप ने घर को गगाजल से धुलवाया, गोमय-मिट्टी में निपवाया और मटके आदि सब फिफवा दिये । मान ने जब अपने गुप्त-चरो द्वारा यह बात जानी, तब वह आग बबूला हो गया और शाही सेना लेकर प्रताप से युद्ध करने के लिए आया ।

मानसिंह ने महाराणा को पत्र द्वारा कहलाया कि आपने पवित्रता से जिस क्षत्रियत्व को कायम रखा है, उसे रणभूमि में उतर कर और खून बहाकर दिखावें। मैं देखने के लिए उत्सुक हूँ ।

यह सुनकर महाराणा की क्रोधाग्नि भडक उठी । उसने अपने सैन्यबल को तैयार किया । उसकी सेना में एक लाख अश्वारोही, तीन लाख पैदल भील और पाच सौ हाथी थे । मानसिंह की सेना इससे तिगुनी थी ।

दोनों के बीच घोर संग्राम छिड़ गया । तोपें आग बरसाने लगी । महाराणा ने दुश्मन पर भाले बरसाने वाले सात हजार भीलों को जोड़ रखा था । शाही सैनिक भाग खड़े हुए ।

यह स्थिति देख कर मानसिंह हाथी पर बैठा और आठ हजार घुड़सवारों को लेकर रणभूमि में उतरा ।

युद्ध ने फिर भीषण रूप लिया । प्रताप ने शस्त्र-प्रहारों से कई शत्रुओं के मस्तक काट दिये । मान का छत्र और ध्वज भी उसने नष्ट कर दिया ।

प्रताप के युद्ध-कौशल को देख कर मानसिंह के क्रोध की सीमा न रही । उसने महाराणा के घोड़े को बाणों से मार डाला । महाराणा तब दूसरे घोड़े पर बैठ कर लड़ने लगा और उसने मानसिंह के हाथी के महावत के दोनों हाथ काट दिये ।

लड़ाई भयंकर रूप से चलती रही । अन्त में प्रताप ने अपने अश्व को मान के हाथी के मस्तक पर चढ़ा दिया । मान का हाथी तब चीत्कार करता हुआ वहाँ से भागने लगा । मानसिंह निहत्था हो गया । उसके होश उड़ गये । यह देखकर शाही सेना रणभूमि से भाग खड़ी हुई ।

प्रताप विजयी होकर उदयपुर की ओर खाना हुआ ।

संस्कृत काव्य

रसाध्वोड भट्ट

राजप्रशस्ति, अमरकाव्य

## परिचय

‘राजप्रशस्ति’ और ‘अमर-काव्य’ दोनों का रचयिता रणछोड भट्ट है । यह कठौड़ी कुलोत्पन्न तैलंग ब्राह्मण था । इसके पिता का नाम भवसूदन और माता का बेणी था । अपने पिता भवसूदन के समान ही वह संस्कृत का अच्छा विद्वान् था । महाराणा राजसिंह [वि० स० १७०६-३७], महाराणा जयसिंह [वि० स० १७३७-५५] तथा महाराणा अमरसिंह द्वितीय [वि० सं० १७५५-६७] के दरबार में उसका अच्छा सम्मान था । उसने ‘राजप्रशस्ति’ व ‘अमर काव्य’ के अलावा दो अन्य प्रशस्तियाँ भी लिखी थी, जिनमें से एक देवारी की त्रिमुखी बावड़ी पर लगाने के लिये और दूसरी एकलिंगजी के इन्द्र सरोवर पर लगाने के लिये थी ।

**राजप्रशस्ति:-** महाराणा राजसिंह ने उदयपुर से ४० मील उत्तर में राजसमुद्र नामका एक सुन्दर सरोवर बनवाया था । इसी राजसमुद्र के नोचोकी नामक घाट पर काले पत्थर की २५ बड़ी-बड़ी शिलाओं पर यह राजप्रशस्ति महाकाव्य उत्कीर्ण है । इसके निर्माण का आदेश महाराणा राजसिंह ने दिया था किन्तु महाराणा जयसिंह ने वि० स० १७४४ में इसे शिलाओं पर उत्कीर्ण कराया था । इस महाकाव्य का रचनाकाल वि० स० १७१८-३८ के मध्य है । ग्रन्थ में कुल २४ सर्ग तथा ११०६ श्लोक हैं । इसका मुख्य विषय महाराणा राजसिंह [वि० स० १७०६-३७] का जीवन चरित्र एवं राजसमुद्र का निर्माण है । प्रथम पाँच सर्गों में मेवाड़ के प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है । महाराणा प्रताप सम्बन्धी प्रस्तुत अष्ट चतुर्थ सर्ग में श्लोक संख्या २१ से श्लोक संख्या ५० तक आया है ।

**अमरकाव्य:-** यह रणछोड भट्ट का प्रसिद्ध ग्रन्थ है । इसकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं । कवि ने इसका निर्माण महाराणा राजसिंह [वि० स० १७०६-३७] के पौत्र महाराणा अमरसिंह द्वितीय [वि० स० १७५५-६७] के शासनकाल में किया था, किन्तु यह पूर्ण नहीं हो पाया । सम्भवतः बीच में ही कवि का देहान्त हो गया । इसमें मेवाड़ के आदिकाल से लेकर महाराणा राजसिंह [वि० स० १७०६-३७] तक के राजाओं का संक्षिप्त वर्णन है । यह ग्रन्थ ‘राजप्रशस्ति’ से छोटा है । कुल श्लोक संख्या लगभग २५० है । इसमें सर्ग तथा श्लोक-क्रम अव्यवस्थित हैं किन्तु ‘राजप्रशस्ति’ से इसकी भाषा प्रौढ़ तथा विषय सामग्री अधिक व्यापक है । यहाँ प्रताप सम्बन्धी अष्ट प्रस्तुत किया जा रहा है । सुविधा के लिये श्लोक संख्या का क्रम एक से ही रखा गया है ।

## राजप्रशस्ति

प्रतापसिंहोप नृपः कच्छवाहेन मानिना ।  
 मानसिहेन तस्यासीद्गमनस्यं भुजेविधी ॥२१॥  
 शक्रवर प्रभोः पाश्वे मानसिहस्ततो गतः ।  
 गृहीत्वा तद्वलं ग्रामे लम्बनीरे गमागतः ॥२२॥  
 तयोर्युद्धमभूद्घोरं लोहकोष्ठगतस्य स ।  
 मानसिहस्य कुम्भीद्रकुम्भेणुमपराक्रमः ॥२३॥  
 ज्येष्ठ प्रतापसिहस्य श्रमरेणभिधः सुतः ।  
 कुंत शकुन्तवेगोय मुमुचाणलोचनः ॥२४॥  
 राणाप्रतापसिंहोय मानसिहस्य हस्तिनः ।  
 कुम्भे कुन्त मुमोचामु पश्चाद्दती पलायितः ॥२५॥  
 समयेन प्रतापेन शक्तिसिंहोस्य सोदरः ।  
 मानसिहस्य सगस्थो दृष्टवैव स्नेहतोवदत् ॥२६॥  
 नीलाश्वस्याश्ववारत्नं पश्चात्पश्य प्रभो ततः ।  
 प्रतापसिंहो ददृशे श्वमेकमथनिर्ययी ॥२७॥  
 ततो द्वौ मुगली वीरी मानसिहेन वेगतः ।  
 प्रेषितौ शक्तिसिंहोपि गृहीत्वाज्ञा महाबलः ॥२८॥  
 मानसिहस्य मुगली प्रतापेन्द्रेण सगरः ।  
 चक्रतु श्रीप्रतापेन शक्तिसिहेन तौ ततः ॥२९॥  
 निहतौ हितकारीति शक्तिसिंहः सहोदरः ।  
 राणेनोक्त शक्तिसिंहवंशस्तद्राणवल्लभः ॥३०॥  
 शक्रवर इहायातस्ततश्चक्रे स सगरः ।  
 प्रतापसिंहं वलिना मत्वा शेखसुनामकः ॥३१॥  
 सास्थाप्यात्र सुत ज्येष्ठमागरा प्रतिनिर्ययी ।  
 श्रमरेश खानखानादाराणां हरणव्यधात् ॥३२॥

सुवासिनीवत्सातोष्य प्रेषयामास ता पुन ।  
 खानखानस्याद्भुतं तज्जात शेखूमनस्यपि ॥३३॥  
 ततः शेखू जहांगीरनामा दिल्लीश्वरोभवत्  
 पुनरत्रागतो युद्धं कृत्वा खुरमनामकं ॥३४॥  
 सस्थाप्यात्र सुत स्वीयखड्गं कृत्वा प्रतापिनं ।  
 प्रतापसिंहं चतुर शीतिसैन्यैवृतंगतः ॥३५॥  
 दिल्ली प्रति प्रतापेशो घट्टे देवरनामके ।  
 सुलतानं सेरिमारव्यं चकंताख्यं गजस्थितं ॥३६॥  
 दिल्लीशस्य पितृव्य त वीक्ष्याभूत्संमुखस्ततः ।  
 सोलकिभृत्यश्चिच्छेद गजार्हि पडिहारकः ॥३७॥  
 प्रताप[प]सिंहो राणेंद्रो रणे रावणविक्रमः ।  
 शकुंतवेगः कुतेन कंभिकुंभ वभंज सः ॥३८॥  
 पपात कुंभी तुरगमारुरोहाथ सेरिमः ।  
 अमरेशः स्वकुंतेन न्यहनत्सेरिमाभिधं ॥३९॥  
 सकुतः सशिरस्त्राणवर्माश्वं तमखडयत् ।  
 अमरेश कराकृष्टः सकुतो न विनिस्त ॥४०॥  
 ततः प्रतापेंद्राज्ञातो दत्त्वा लत्ता पदेन सः ।  
 कुत चकर्षामर्षेण कुंताप्त्या हर्षमादधे ॥४१॥  
 दर्शनीयः स येनाह निहितः सेरिमोवदत् ।  
 प्रतापसिंहस्तच्छ्रुत्वा प्रेषयत्कचिदुद्भट ॥४२॥  
 भटं तं वीक्ष्य तेनोक्तं नायप्रेष्यः सएव तु-  
 राणेंद्रः प्रेषयामास अमरेशं रणोत्कटं ॥४३॥  
 तं दृष्ट्वा सेरिमोवाच सोयमस्ति मयेक्षितः ।  
 युद्धकाले नभोभूमिव्यापिशीर्षशरीरवान् ॥४४॥  
 देवानेनहतोहं हि यास्ये स्थानं शुभं तत ।  
 कोसीथलाद्येषु चतुरशीतिप्रमितागताः ॥४५॥

स्थानपालाः प्रतापेद्रो महोदयपुरेवसत् ।  
 दानं ददौ कोपि भाटः प्राप्योष्णीषादिकं धनं ॥४६॥  
 प्रतापसिंहादिल्लीशं द्रष्टुं यातस्नदंतिके ।  
 यदा प्राप्तस्तदाबद्धं तदुष्णीष करेदधत् ॥४७॥  
 गत्वा सलामं कृतवान्दिल्लीशेन तदेरितं ।  
 किमिदं सोवदद्राणाप्रतापोष्णीषमित्यतः ॥४८॥  
 न घृता मूर्ध्निन्द दिल्लीशस्तुतोष ज्ञापिताशयः ।  
 तदा समस्ते जगति सर्वोर्हिद्वतुषष्ककैः ॥४९॥  
 अनम्रः श्रीप्रतापेद्रो वीर इत्युक्तमौचिती ।  
 इतिराणाप्रतापस्य प्रतापः कथितो मया ॥५०॥

इति श्रीराजप्रशस्त्याह्वये महाकाव्ये वीराङ्के चतुर्थः सर्गः ।



## सारांश

प्रतापसिंह राजा हुआ । भोजन के प्रसंग को लेकर प्रताप और मानसिंह के बीच वैमनस्य हो गया । तब असन्तुष्ट मानसिंह बादशाह अकबर के पास गया और वहाँ से शाही सेना लेकर प्रताप से युद्ध करने खमनार नामक गाँव में पहुँचा ।

प्रताप और मानसिंह के बीच भीषण संग्राम छिड़ा । मानसिंह हाथी पर लोहे के बने हौदे में बैठा था । प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने मानसिंह के हाथी पर भाले से वार किया, बाद में प्रताप ने भी वार किया । हाथी भाग खड़ा हुआ ।

उस समय की बात है, सहोदर ने शक्तिसिंह जो मानसिंह के सगे थे, प्रतापसिंह से कहा कि हे नीले घोड़े के सवार ! पीछे तो देखो । प्रताप ने अपने पीछे एक अश्व देखा । प्रताप वहाँ से निकल गया । तदनन्तर मानसिंह ने उसके पीछे तत्काल दो मुगल सैनिकों को भेजा । शक्तिसिंह भी मान की आज्ञा लेकर उनके पीछे हो लिया । वे मुगल वीर प्रताप से लड़ रहे थे । तभी शक्तिसिंह वहाँ जा पहुँचा प्रताप और शक्तिसिंह दोनों ने उन मुगलों को मार डाला ।

बाद में अकबर आया । उसने युद्ध किया । लेकिन प्रताप बलशाली था । इसलिए वहाँ अपने ज्येष्ठ पुत्र शेखू को छोड़ कर वह आगरा की ओर चला गया ।

अमरसिंह ने खानखाना की स्त्रियों का हरण किया । परन्तु इन्हें बहिन-देठियों की तरह सन्तोष देकर वापस भेज दिया । इस बात पर खानखाना और शेखू को आश्चर्य हुआ ।

शेखू 'जहाँगीर' नाम से दिल्ली-पति बना । वह फिर आया और उसने प्रताप से युद्ध किया । वह अपने पुत्र खुर्रम को वहाँ नियुक्त कर तथा प्रताप को चौरासी थाणों से घेरकर दिल्ली की ओर चला गया ।

तदनन्तर प्रताप ने देवेर नामक घाटे में बादशाह के काका सेरिमा सुलतान चकता को देखा । वह हाथी पर था । प्रताप ने उसका सामना किया । सोलकीभृत्य पडिहार ने सेरिमा के हाथी के पैर काट डाले और प्रताप ने कुम्भस्थल को भाले से फोड़ दिया । हाथी घराशायी हो गया । सेरिमा घोड़े पर चढ़ा । किन्तु अमरसिंह ने भाले से प्रहार कर उसके, उसके घोड़े के तथा उसके टोप-वस्त्र के एक साथ टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।

सेरिमा के भाला ऐसा लगा कि वह खींचने पर भी नहीं निकला । तब प्रताप की आज्ञा पाकर अमरसिंहने ठोकर देकर उस भाले को खींच निकाला । सेरिमा दम तोड़ रहा था । उसने चाहा कि

अन्तिम समय में यह अमरसिंह को एकाग्र कर देने । अमरसिंह को भोजनकर प्रताप ने उसकी यह इच्छा पूरी करवाई । अमरसिंह को देवदर नेरिया ने कहा कि सब मुझे निश्चित स्वर्ग प्राप्त होगा ।

नेरिया के मृगद्वारा में उपरीत पीनासी बाग़ों, जो कोसीमन आदि रथानों पर बैठाए गये थे, उड़ गये ।

सावराण प्रताप उदयपुर रहते सगा । हरदिन उसने किसी भाट को, पगड़ीपन आदि प्रदान किये । एकदिवस यह भाट बादशाह में मिलने दिल्ली पहुँचा । जब यह बादशाह के सामने उपस्थित हुआ, तब उसने महाराणा की दी हुई अपनी पगड़ी फिर से उतार कर हाथ में रगड़ी, फिर सनाम किया । बादशाह ने पूछा कि ऐसा क्यों ? भाट ने उत्तर दिया कि यह पगड़ी महाराणा द्वारा प्राप्त हुई है, इसलिये सनाम करने समय इसे मेरे सम्मुख पर नहीं रहने दिया । बादशाह समझकर बादशाह प्रसन्न हुआ । सबने यही कहा कि प्रताप भाट को रीति है ।

## अमरकाव्य

गते शते षोडश एकहीन—  
त्रिशदगतेऽब्दे शुभफाल्गुनेऽभूत् ।

प्रतापसिंहस्सबलस्सपक्षो  
वसन्त्स गोगूदपुरे नरेन्द्र

प्रतापसिंहः प्रवभौ यशस्य—

वृतः क्षितित्राणकृतेतिशस्यः ।

प्रतापसतापितशत्रुभूष.

स्वकांतकांत्याजितकामरूपः

॥ २ ॥

प्रतापपूर्णो भु [वि] सिंहतेजा

भूयादय चेतसि तद्विचार्य ।

विशेषणादिस्थपदप्रयुक्तं

तन्नाम घाता विदधे यथार्थं ॥ ३ ॥

प्रतापसिंहः प्रथमं कुमारपदशोभितः ।

रानाभिधानविसदघर सावलदास एकं ॥ ४ ॥

तद्भ्रातरं करमसी चोहानं हतवान् रणे ।

वभज द्वागङ्गभुवं निजाधीनामिमां व्यधात् ॥ ५ ॥

सलूवरिस्थराठोडाञ्जित्वा छप्पनमग्रहीत् ।

गोखंवराद्रैर्वाली[ञ्जित्वा] तद्गोढवाडहत् ॥ ६ ॥

दिल्लीश्वरेण प्रवरेण सृष्टे

तिष्ठन्महाविद्ध एव घोरः ।

तत्सैन्यरुद्धः कृत [वु] द्विरुद्धः

अनम्रनाम्मी पदवी दधानः ॥ ७ ॥

म्लेच्छेन साक मिलन न कुर्या—

मिति प्रतिज्ञा स्वपितुः सुरक्षन् ।

चक्रे न वाय मिलन च सेहे

अनेककालावधिविद्धर तत् ॥ ८ ॥

श्रीराणोदयमिहारव्यश्चित्रकूटस्थित ।

सौभाग्यशोभाभट्यानीनाम्नी राज्ञी गुणान्विता ॥ १६ ॥

सगरादिमुताना तु माता यन्तद्वशवदा ।

ज्येष्ठप्रतापसिंहाख्यपुत्रस्य जननी नवा ॥ १० ॥

ज्ञात्वेत्युदयसिंहेन्द्रश्चित्रकूटतटास्थिते ।

कस्मिंश्चिन्निकटे ग्रामे वासयामास त सुत ॥ ११ ॥

भट्टियानीकराद्भुजस्त्वयमत पुरःस्थितः ।

प्रतापसिंहाय सदा—शुन्त[?]परिपूरित ॥ १२ ॥

पुटक प्रेषयन् दिव्यतोष तस्य पर व्यधात् ।

प्रतापसिंहपुटकाद्द्रोणान्कृत्वा ददर्श सः ॥ १३ ॥

दशभ्यो राजपुत्रेभ्यो बुभुजे तत्स्वय ततः ।

कारयित्वा रसवती नित्य निजगृहे तथा ॥ १४ ॥

प्रतापसिंहस्तै साक राजपुत्रैस्तथेतरे ।

कृत्वा पक्ति मुदा चक्रे भोजन पक्तिपावनः ॥ १५ ॥

तदुत्तर लब्धराज्य कृत्वा रसवती सदा ।

द्विवार राजपुत्रेभ्यो द्रोणान्दत्त्वाथ पूर्ववत् ॥ १६ ॥

प्रतापसिंहो बुभुजे एकपक्तिस्थितैः सह ।

राजपुत्रैः पवित्रैश्च रीतिरेखाभवत्ततः ॥ १७ ॥

प्रातस्तथा सायमपि द्विजानां

सद्भोजन चातरभक्तिवर्ज्यं ।

वदेग्नहोत्रेण समानमुक्तं

प्रतापसिंहे विचार्य चित्ते ॥ १८ ॥

वारद्वय पालयितुं च लोकान्  
 ममालये तिष्ठतु मानुषाणां ।  
 समर्द्धशोभापि सदेति रात्रौ  
 दिने रसवत्यकारि ॥१९॥

नैतादृशी सर्ववसुधरायां  
 नानेकदेशीयनृपालयेषु ।  
 न राणवशेपि च भूमिभर्त्रा  
 अपूर्वभूता रसवत्यकारि ॥२०॥

कुलीनपावित्र्यमयैश्च तत्र  
 राजन्यवंशैरखिलैः समेतः ।  
 कृताद्रिको वा कृतवैश्वदेवो  
 भुजन्तृपो भाति युधिष्ठिरा या ॥२१॥

सायमनेकवस्तुस्तोमान्नयुग्द्रोणकदानधन्या  
 प्रतापसिंहो गोगुन्दापुरे राज्यं व्यधात् व्रजन् ।  
 प्रेम्णोदयपुरे पूर्णोदयसागर उत्सुकः ॥२२॥  
 शते षोडशके त्रिंशन्मितेब्दे गुर्जरस्थिते ।  
 मानसिंहो मेदपाटे आयातः पुनरुद्भटः ॥२३॥

अथैकदा प्रोद्धतमानसिंहः  
 प्राघूर्णिकीभूतमभूतपूर्वं ।  
 निमत्रयामास सुग्रमत्र  
 प्रतापसिंह प्रचुरप्रतापः ॥२४॥

उदयसागरनामजलाशय—  
 प्रविलसत्तट उत्कटमानसः ।  
 रसवतीकरणाय तदादिशत्  
 द्विज[ज]नानवनीशरिरोमणि ॥२५॥  
 तदा नरैस्तत्र तु पाकशाला  
 कृता प्रयुक्ता सकलैवशाला ।

मिष्टैः शुभान्नैघृ तपक्कयुक्तै —

ह्यादिपेयादिकभोज्यस ॥ २६ ॥

आकारितस्तत्र तु मानसिंहः

समागतो भाग्यमिहेति जानन् ।

सुभोजनं राणमहीश्वरेण

सहैकपत्नी मम भावि तस्मात् ॥ २७ ॥

गते शते षोडश एकहीन त्रिणदगतेऽब्दे शुभफाल्गुनेऽभूत् ।

मुदोपविष्टः सुविशिष्टशिष्टः

कुलीनराजन्यपवित्रपत्नी ।

महासने वीरगणैः समेतः

स मानसिंहो विरराज सिंह ॥ २८ ॥

प्रतापसिंहो बहुवस्तुसिद्धयै

उच्चैः समुत्सार्य विशालचाल ।

बाह्वो समाज्ञायति स्वकीय—

समस्तलोकेभ्य उदारवीरः ॥ २९ ॥

स्वर्णादिपात्रेषु समस्तवस्तुनि

सूदैः परिवेषितानि ।

अपूर्वं रूपानि च तानि दृष्ट्वा

सुविस्मय प्राप स मानसिंहः ॥ ३० ॥

स मानसिंहो निजगाद वाक्यं

प्रतापसिंह प्रति देव शीघ्रं ।

आयाहि पत्नी शुभभोजनार्थ—

मुच्चांसने चोपविशत्विति ॥ ३१ ॥

प्रतापसिंहस्तु तदीयवाक्यं  
 चक्रे श्रुत वाश्रुतवत्तदेव ।  
 पुनर्जगादाथ स मानसिंहः -  
 स्तदेव वाक्यं महता स्वरेण ॥ ३२ ॥

राणेश्वरो मे जठरे स्मिष्टभार  
 इत्यब्रवीत्कर्मनरेशपुत्र ।  
 कुमारस्त्वायात्त्वदत्तदेति  
 प्रतापसिंहस्तु पुनर्वभापे ॥ ३३ ॥

सवस्तुसिद्धिं विदधाति धन्यां  
 श्रुत्वाखिल निर्मलमानसः सः ।  
 ज्ञात्वा तथैवेति च मानसिंह—  
 इचकार सद्भोजनमादरेण ॥ ३४ ॥

वीरैः प्रवृद्धैस्तु तदा तदीयं  
 प्रतापसिंहाशयशौर्यविद्भिः ।  
 कृतो विचारो मनसा दृशा च  
 मिथो न युक्तात्र भुजिक्रियेति ॥ ३५ ॥

कुर्मेशपुत्रस्य वृत्ते प्रवीरं  
 रेव विचारेथ विचक्षणैस्तु ।  
 राणेन्द्रवीरैरपितद्विचारं  
 ज्ञात्वा दृशा तान्प्रति सूचित च ॥ ३६ ॥

एतादृशेस्मिन्समये त्वभोजने  
 भान्येष युष्माकमनर्थ उत्कटः ।  
 एव विचार्योचितमत्र यद्भवे—  
 त्कार्यं भवद्भिस्तु तदेव दक्षिणैः ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वेति रागोष्णरवीरतत्त्वं  
 । कुर्मेशपुत्रस्य महीप्रवीरै ।  
 विचारित चेति विचारदक्षै—  
 ३८ ॥ १ ॥ ३८ ॥ ३८ ॥ ३८ ॥ ३८ ॥

उत्थानमस्माभिरित कृतं चेत्—  
 । निजोदुपद्रवस्तत्र महास्तदास्यात् ।  
 भुजिक्रिया तत्र कृतेति संव—  
 ३९ ॥ १ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥ ३९ ॥

ततस्तु शुद्धाचमन समस्तै—  
 । सहमानसिहेन सहैव सर्वे ।  
 ययोचितस्थानकृतोपवेशाः—  
 ४० ॥ १ ॥ ४० ॥ ४० ॥ ४० ॥ ४० ॥

जिष्णोः सभायां त्रिदशा यथैव  
 । ततः सभामडपमध्यशोभी ।  
 प्रतापसिहोतिपवित्रवीरः—  
 ४१ ॥ १ ॥ ४१ ॥ ४१ ॥ ४१ ॥ ४१ ॥

दत्त्वाथ कपू रविराजितानि  
 । तांबूलवृन्दानि स तानि तेभ्यः ।  
 संप्रेषयामास जस्मानसिहं—  
 ४२ ॥ १ ॥ ४२ ॥ ४२ ॥ ४२ ॥ ४२ ॥

प्रतापसिहोय तदा जवेन्—  
 । ततोऽपि तस्वात्तारिभिः कोरयतिस्म सूदैः ।  
 उल्लेखनं वा रसवत्यवन्या—  
 ४३ ॥ १ ॥ ४३ ॥ ४३ ॥ ४३ ॥ ४३ ॥



प्रक्षालनं भूरिविलेपनं च  
 पवित्रमृत्स्ना शुचिगोमयैश्च ।  
 अत्राथ गंगाजलसेकमुच्चैः  
 पाकं ततः कारयति स्म तत्र ॥ ४४ ॥

कृत्वा ततः पुण्यदवैश्वदेव  
 कुलीनवीरैः सहितोत्तिकाले ।  
 मुदाकरोत् भोजनमत्र राणा—  
 प्रतापसिंहः प्रचुरप्रतापः ॥ ४५ ॥

श्रुत्वेति वार्ता परिपूर्णकोप—  
 स्तदा स्वकीयान्परिपृच्छति स्म ।  
 कूर्मेशपुत्रः किमिदं तदोक्तं  
 तेष्वेव केनोपि वयोधिकेन ॥ ४६ ॥

हेतुं शृणुष्व क्षितिपाल पुत्र  
 कोपो विधेयो न मयि, त्वया तु ।  
 म्लेच्छेशमानीय गृहेथ तस्मै  
 कन्यां प्रयच्छति कलत्रदोला ॥ ४७ ॥

अथार्पयंत्येव सुखेन लब्धये  
 जवराति तृप्त्यै ।  
 ये कच्छवाहादिनृपा अनच्छा—  
 स्तान्मानयंत्यत्र पवित्रवीराः ॥ ४८ ॥

न राणावंश्याः किमु भोजनानि  
 कुर्वन्ति तैः साकमिमे कथंचित् ।  
 श्रुत्वा वचस्तत्किल मानसिंहः  
 कोपाकुलस्मश्रुमुहुःस्पृशश्च ॥ ४९ ॥

जगाम दिलीश्वरपार्श्वमेव  
 वार्तामिमां तत्र जगाद सर्वा ।  
 प्रतापसिंहस्य महोन्नतत्व  
 श्रुत्वैव कोपावणवक्रनेत्रः ॥ ५० ॥

अकब्बर. कोपवरस्तदास्मै  
 , -ददौ स्वकीय ध्वजि ...\*  
 \_\_\_\_\_  
 \_\_\_\_\_ ॥ ५१ ॥

\*इमके बाद हस्तप्रति का एक पन्ना उपलब्ध नहीं है ।

\_\_\_\_\_ल तूर्णमेव ।  
 हस्तिस्थित. साश्रितलोहकोष्ठः  
 सेनायुतः सगररगमाप ॥ ५३ ॥

तत पर ते मिलिते ध्वजिन्यो  
 हिन्दूपतिम्लेच्छपभृत्ययोश्च ।  
 ततो महादु दुभिधारनादे—  
 ब्रह्माण्डभाडे किमुदीर्णमेव ॥ ५४ ॥

ततो महाचारणवदिभाटा—  
 श्वक्कूरणोत्साहदपद्यपाठ ।  
 वितेनिरे सैधववाद्यनाद  
 वादित्रनाद समरोत्सवेत्र ॥ ५५ ॥

ततो महोत्साहमया पदात्तयो  
 युद्ध महत्ते प्रथमं वितेनिरे ।  
 सवह्निशस्त्राश्च ततो महाभटा—  
 स्ततोश्ववारा करसक्तशयः ॥ ५६ ॥

ततो महानालिकया प्रयुक्ता ।

गोलावली ज्वालयतिस्मलोकान् ।

कुं तैर्मिथो जघनुरमंदवीरां

राशेन्द्रकूर्मेश्वर पुत्रयोस्ते ॥ ५७ ॥

खड्गैश्च कुन्तैर्बहुवह्निशस्त्रैः ।

प्रतापसिंहस्य महाभटास्ते ।

द्राड्मानसिंहस्य च वीरवर्याः

सैन्यामिथो जघनुरमंदरोषाः ॥ ५८ ॥

राठोडराजद्वूतकच्छवाह-

मनेकवशोदितहिन्दुहृद्यं ।

महाखुरासानि च छत्रकर्त्ता

पलायनोद्यन्मुगलालिगोल ॥ ५९ ॥

पठानपुष्टं विलसद्रुहेल

तन्मानसिंहस्य हि धन्यसैन्य ।

प्रतापसिंहस्य महाभटास्ते

निजघ्नुरग्रा गतविघ्नमेव ॥ ६० ॥

झाला विशालं भृतचाहुवाण

सीसोदिया य परमारजुष्ट ।

राठोड़नानान्वयवीरवर्यं

प्रतापसिंहस्य बल बलोग्रं ॥ ६१ ॥

ते मानसिंहस्य महाप्रवीरा

जघ्नुर्नितांत घनरोषभाजः ।

एव तदा तत्र बलद्वयस्य

चक्रुर्महोग्रं समरं प्रवीरा ॥ ६२ ॥

एवं निकृत्वं प्रतनाद्वयं त-

दसख्यसंख्यं खमनोरमध्ये ।

तूष्णीं प्रप्रणामेन रक्तवत् —

वर्णा नदीमावो धमनाणा ॥६३॥

स्तुतवन्महादेवकाङ्क्षतुल्य —

महावीर्यजन्मकाविरता ।

दयानाडयन्ता सा नल गवभूव

यथाधीभया वर्णाना नदीया ॥६४॥

गते क्षणे पौड्गले सुख्य

द्वात्रिंशत्तमे नचि म पि जयते ।

पते तथा मन्मथिकाविराहि

दिल्लीयमेवेन नृपो निरुद्ध ॥६५॥

गिरिस्थितं त्रिदशमं

प्रतापीयं म तन पविष्ट ।

तन प्रादुष्टाव नूरुत्तवाचान्

दिल्लीय हिमशेखरेश्वरीरान् ॥६६॥

निवाच्यामाम न ते प्रविष्टा

यदा सभे ॥ प्रतभूवन्महा ।

ते कच्छवाहा मुगला पठाना—

रततो भेदोन्वेयैर्नि म्म रागा ॥६७॥

पुत्रैर्युत तूवरजानिवाहन

मराममाहि युधि चाहवाणकान्—

भालादिकान् खाडितवत एव

तनिने गर्तं तूवर मंडल दिवि ॥६८॥

विमंडिताना यवतेश्वरस्य

महाभटपा गुणना विवातु ।

विद्याविनोदी सगणेश्वरोपि

शक्तो न कीन्यं प्रभवेत्समर्थ ॥६९॥

ती पाश्वर्कणी भवतो यथैव  
 रणे यथा भीमसुयोधनौ च ।  
 यथैव ती राघवरावणौ च  
 राणेशकूर्मेशसुतौ तथा साः ॥७०॥

द्विषच्चमूमण्डलमेव कुण्डं  
 द्रध्यान्हतद्वेषणबाहुवारान् ।  
 स्थाली च प्रात्राणि हता हितानां  
 महाकरालाश्च कपालमालाः ॥७१॥

वह्निप्रतापं किल रानवस्य  
 दर्वी च कट्टारकमुत्कट च ।  
 स्तवं कराल करवालमेव  
 कृत्वैव वृन्दारकवृन्दतुष्ट्यै ॥७२॥

प्रतापसिंहो रचयाचकार  
 गलं निषेध नरमेघमेव ।  
 अथाश्वमेघं निहताश्ववार—  
 मनेकवार रिपुवारणे छ ॥७३॥

प्रतापसिंहस्य पुर सरस्स  
 उद्दडासांढावत एव वोर ।  
 स डोडियाजातिभवश्च भीमो  
 भीमप्रभावः समरेषु भीमः ॥७४॥

सेनावृत्त वीक्ष्य स मानसिंह  
 गजस्थित संश्रितलोहकोष्ठं ।  
 सिंह प्रकोष्ठ किल लोहकोष्ठे  
 पूर्वोक्तवाक्यं विवदत्सु इत्यय ॥७५॥

विशिष्टकट्टारकमुत्कटाक्षः  
 चिक्षेप पादे क्षतकारितस्य ।

एव विधायैव जुहारशब्द

स्वस्याजगादेति जगत्प्रसिद्धम् ॥७६॥

अकव्वरस्य पार्श्वेगादमरेशः कुमारकः ।

यदातदा मानसिंहो डोडियाभीममुष्पकै ॥७७॥

अमरेशस्य वीरे.— <sup>१</sup>सह वार्ता क्रतौलवकु ।

कांश्चिद्वात्तमिकथयत्तदा<sup>२</sup> भीमोवदत्क्रूधा ॥७८॥

भवांस्तत्र समायातु मया घोररणे तदा ।

जुहारस्तत्र कर्तव्यः पूर्वोक्त वाक्यमित्यहो ॥७९॥

प्रतापसिंहोथ परप्रतापः

परपराप्रापित पूर्णतापः<sup>३</sup> ।

तन्मानसिंहस्य करीन्द्रकु भे

विज्ञेय कुन्तं च शिवेव शुम्भे ॥८०॥

पलायनेच्छ प्रवभूव कुम्भो

सस्थापितो वीरवरैः कथंचित् ।

तथापि कोष्ठाच्च न निःसृतोभूत् ।

स मानसिंहो विगताभिमान ॥८१॥

प्रतापसिंह त्वथ संस्वस्थं

तन्मानसिंहस्य महोग्रवीरान् ।

एकाकिनं वीक्ष्य विस्मयन्ता

तन्मानसिंहोत्तमपत्स संस्थः ॥८२॥

प्रतापसिंहस्य सहोदरोदय<sup>४</sup>

सशक्तसिंहो वदतिस्म हाधूर्त् ।

१. वीरैः

२. काश्चिद्वात्तमिकथयत्तदा

३. परम्पराप्रापितपूर्णतापः

४. सहोदरोदयं

नीलाश्ववारेत्यथ पश्य पश्चा—

प्रतापसिंहश्च ततः पश्य ॥८३॥

पश्चाज्जगामाथ स मानसिहः

प्रोवाच वीरान् प्रति याति शत्रु ।

गजं निहत्यापि भटा कोपि हत्वा<sup>५</sup>

ने<sup>६</sup> गतोप्यनुगन्तुमेने ॥८४॥

श्रुत्वा तौ मुगली महान्ती

स शक्तिसिंहोप्यनुयात एक ।

प्रतापसिहः स च शक्तिसिंहो

मार्गे रणे मार्गणमोक्षदक्षौ ॥८५॥

निहत्य वीरौ मुगली स्वसैन्ये

मुदा प्रविष्टौ बहुमोदजुष्टौ ।

ततः प्रभृत्येव स शक्तिसिह

प्रतः पसिहस्य महान्प्रियोभूत् ॥८६॥

रणभुवि समुपेत धन्यसेनासमेत

वज्रगतयवनेन भूपतिर्मानसिह ।

यवनबलनिदान-म्लेच्छनाथैकतान

दलितसमरमानः शौर्यशाणततान ॥८७॥

श्रीरंभ्य सूर्योदयत प्रभूते

सूर्यास्तकालावबिबन्धयुद्धे ।

राणेशकूर्मैर्गन्तुर्त्तस्वसैन्ये

दृष्ट्वा श्रमाढ्यौ शिविरे प्रविष्टौ ॥८८॥

५. भटवचकोपि हन्तुं

६ न

उत्तालवेतालगणः प्रभूतः—

भूतव्रजोऽबालशृगालजालं ।

उह डवान्दडधरः प्रचण्ड—

स्तप्तोभवत्तृप्तियुता धरास्त्रैः ॥८६॥

भूभारहीनाभवदेव भव्या

शेषो भरक्लेशविहीन आसीत् ।

स्वर्गेतिवाहाः सुरकन्यकाना

वीरौघसमर्द्धमयश्चनाकः ॥८७॥

मांससृजां वृन्दमहो समृद्धं

शोयं भटनामतुलं प्रवृद्धं ।

तद्युद्धमासीज्जगति प्रसिद्ध

प्रतापसिंहस्य यश प्रसिद्धम् ॥८८॥

तदैकवर्षविधि सवितेने

स मानसिहो रणमानपूर्णः ।

प्रतापसिंहस्य गिरिस्थितस्य

पश्चाद्व्रजन्सगररंगमुग्र [ ८९ ]

ततः कुमार त्वमरेशसज्ञं

सगे गृहीत्वैव महादरेण ।

गतो यदा माडिलमडलात्ते

स मानसिहो बहुमानपूर्णः ॥९०॥

त्वमानयैवात्र [ म ] हाकुमार

मुक्वेत्यहं तत्र समागमिष्ये ।

सप्रेम्य दूत निजमानसिहो

निवारितो नूनमकब्धरेण ॥९१॥

श्रुत्वा विलक्ष किल मानसिह

स प्रेषयामास गृहे कुमार ।



कृत्वादरं श्री अमरेशसज्ञं

स्वयं तु दिल्ली प्रति संजगाम ॥६५॥

ततो गृहीत्वा खलु एष वीरः

खड्गान्तकास्योर्वरितो कथंचित् ।

स्वकीयसेनां खलु खडितागीं

समानसिंहोऽकबरस्योपाश्रये ॥६६॥

पराक्रमं स्वं निजगाद गत्वा

श्रुत्वा विहस्याथ तुरष्कनाथ ।

तदावदत्तं किल लोहकोष्ठे

स्थितोसि तेनोर्वरितः कथंचित् ॥६७॥

अकञ्चरोयात्र समानगा

महारणं सोपि चिर चकार ।

प्रतापसिंह बलिनं हि मत्वा

ततः प्रविष्टोभवेदागरायां ॥६८॥

बेखूसुनामाऽकबरस्य पुत्रो

ज्येष्ठे सुसैन्यो रणसच्चरित्र ।

समाययी चात्र रण वितेने

प्रतापसिंह बलिनं स मेने ॥६९॥

दिल्लीपतेर्लोच्छगणैश्च हिन्दू—

वृन्दैरमन्दैः प्रबलैश्च सैन्यैः ।

संस्थानसैन्य प्रतिदिक्षु रुद्धो

बाणालये रुद्ध इवानिरुद्धः ॥१००॥

एतादृशे स्मिन्समये प्रताप—

सिंहोऽमदावादभुवं वभञ्ज ।

गोगूरक सांभरिकं धंधेरा

येक रणस्तभ मखंडयत्सः ॥१०१॥

जित्वा तरवराघीश तन्नीशानानि वाग्रहीत् ।  
लालसोटि चाटसूँ च वभञ्ज रिपुभजनः ॥१०२॥

प्रतापसिंहे यवनावनोश—  
सैन्यै निरुद्धेऽप्यनिरुद्धशौर्ये ।  
जगाद गर्वेण हि खा खाना—  
नामा स दिल्लीश्वरसेवकस्तु ॥१०३॥

हिंदूपतीद्रो भवता स्वकीयो  
रक्षार कटुम्बो बहुयत्नपूर्व ।  
म्लेच्छेशसैन्यै [स्तु] भवान्निरुद्ध—  
स्तथैव रुद्धो भवदीय— ॥१०४॥

प्रतापसिंहस्त्विति तस्य वार्ता  
श्रुत्वैव दूत प्रति सजगाद ।  
प्रोक्तं हित मे खलु खानखाना—  
वीरेण वाच्य वद तत्र गत्वा ॥१०५॥

तत कदाचिन्दहुर्धैर्यशौर्यं  
प्रतापसिंहशयवि [जवर्य] ।  
ज्येष्ठ कुमारस्त्वमरेशनामा  
म्लेच्छातिमानक्षयकारिधामा ॥१०६॥

जग्राह वैसेरपुराज्जवेन  
स खानखानस्य कलत्रमाला ।  
आनीयतास्तत्र सुवासिनीवत्  
(वस्त्रैरनर्घ्यै) रपि भूषणीघै ॥१०७॥

समानयामास च भव्यभोज्यै—  
गते कियत्यथ तत्र काले ।  
ताः खानखाना शिबिराय तोषा—  
त्स प्रेषयामास विशेषशौर्यः ॥१०८॥

स खानखानस्य चकार चित्ते  
 महाविचित्र कृतमानभग ।  
 दिल्लीश्वरस्याप्यमरेशनामा  
 विशेषतो भूरिमय प्रसंग ॥१०६॥

शेखू सुरताणकुमारवोर—  
 स्तदागराया स जगाम वेगात् ।  
 ततश्च दिल्लीश्वरतां स लब्ध्वा  
 इहा जगामाथ चकार युद्ध ॥११०॥

प्रतापसिंहेन पुनः प्रताप  
 प्रतापसिंहस्य परं विदित्वा ।  
 सैन्यैश्चतुःस्कूर्जदशीतिसख्यै  
 प्रतापसिंहं स चकार रुद्ध ॥१११॥

विल्पा..... जहांगीर  
 सस्थाप्य तं खुरमनामपुत्रं ।  
 तदागरायामविशत्सशंकः  
 प्रतापसिंहः प्रबलो विशंकः ॥११२॥

सब्दादशाष्टावधिजायमाने<sup>७</sup>  
 प्रतापसिंहो दृढविद्धरे हि ।  
 श्रम दधानो न गताभिमानः  
 संदर्शयामास महाप्रभागं<sup>८</sup> ॥११३॥

गते शते षोडशके प्रतापो  
 च सत्रयस्त्रिंशदभिर्यवर्षे ।  
 श्रीकु भमेरेऽष्टयुगं च पंच—  
 त्रिंशन्मितेन्द्रे च विद्ध रोभूत् ॥११४॥

७ सद्वादशाष्टाब्दावधिजायमाने

८ महाप्रभावं

डोलाणमध्ये तदुवास सप्त —

त्रिशन्मितेव्देप्य तु वा वद्रसः ।

गते शते षोडश [के] सुचत्वा—

त्रिशन्मितेव्देवसदितस्य भूपः ॥११५॥

प्रतापसिंहस्य तु कुंतमूर्द्धि

स्थितेति देवी शकुनी जगाद ।

रान त्वया मासिन<sup>१</sup>एव शत्रु—

जानीहि चित्र शकुनि त्वयोक्त ॥११६॥

प्रतापसिंहोवदन्न तेन

प्रोक्त हि सैन्यं नृपतिस्तदोचे ।

कथं स आयाति तदापितेन

प्रोक्तां मयानेय इहाथ भूप ॥११७॥

आनीयतामित्यवदत्तदा द्राक्

स सेरिमाख्यस्य गृहे जगाम ।

तत्रोक्तवानद्य प्रतापसिंहः

अत्यल्पलोकोसि भवान्प्रयाहि ॥११८॥

श्रुत्वेति मात्रा स निवारितोपि

सपूर्वहार्दस्य गिरास्य वेगात् ।

स सेरिमा शाकुनिकं निजाग्रे

घृत्वा महासैन्ययुतः प्रतस्थे ॥ ११९ ॥

त सेरिमाख्यं सुलतानमेव—

मानीय वा शाकुनिको जगाद ।

प्र तापसिंहेति प्रतेथ योग्य

यतः कुरुष्वेति धराधवात् ॥ १२० ॥

सप्तमैः सप्तहयप्रतापैः

सभीकसंकल्पितशुद्धजीवै ।

वीरव्रताढ्यैर्दृढराजपुत्रैः

महाकुलीनैः पतिभक्तिमक्तैः ॥१२१॥

सवेष्टितः सागररगतुष्टः

पुत्रैर्वृतो वाप्यमरेशमुख्यैः ।

देवेरघट्टे स्थित आगतं द्राक्

तं से (रि) माख्यं सुलतानमुग्र ॥१२२॥

दिल्लीपतेर्मुख्यपितृव्यमेतं

महाचकत्तोभिधमत्तमत्तं ।

सस्थानपालप्रसरस्य नार्थं

सेना समुद्रेण विराजमानं ॥ १२३ ॥

महागजारूढमरूढभाग्यं

हिंदूतुल्लकोग्रमहाभटाद्यं ।

दृष्टा ददातुः स्थलमेव तस्य

आगच्छतो मारणतर्कमस्य ॥१२४॥

कुर्वंत खर्वन्ति दधत्सुगर्वं

तन्मारणार्थं च समुद्यतान्स्वान् ।

वीरान्निवार्याप्यनिवार्यवीर्यं

प्रतापसिंहः स्थित एव हतुं ॥ १२५ ॥

तदोन्नतं वीक्ष्य गजं तदीयं

सोलंकिभृत्यः पडिहारवीरः ।

स स्वामिधर्मी करिणोग्रपादौ

चिच्छेद सोभूभट्टविनीववक्रः ॥१२६॥

हयं कुमारोप्यम गजस्य

द्रागदतयोः स्थापितपादयुग्मम् ।

कृत्वा तु कुन्तेन जघान कुम्भे

तं कुम्भिनं शुम्भनिशुम्भशीर्यः ॥१२७॥

वितिन्नमुत्कुम्भयुगोपमानं

कुम्भी स्वकुम्भद्वयमेव जावुन् ।

चीत्कारकारी सभयश्चकपे  
 स्थानेश मुख्येपि च पूर्णं कप ॥१२८॥  
 कुमारशौर्यं खलु सेरिमाख्य  
 दृढ कुमारोप्यमरादिसिंहः ।  
 कांतेन कु तेन शकु तवेगा—  
 जजघान त भूरिभटैः समेतं ॥१२९॥  
 कुन्त स कृष्टोपि च सेरिमाख्य—  
 वक्ष स्थितो निःसरतिस्म नातः ।  
 ऊचे प्रतापोथ निधेहि लत्ता  
 निःसारयामास तथाऽमरेश ॥१३०॥  
 ततस्तु दिल्लीपतिसैन्यपाले  
 कलिन<sup>१०</sup> काले कवलीकृतोहि ।  
 प्रतापसिंहस्त्वमरेशमुख्य—  
 पुत्राप्तिराजन्ययुतो विरेजे ॥१३१॥  
 स सेरिमाख्यः सुलतानपूर्वो  
 निपातितः सगररगभूमौः ।  
 खसेन्नुवावेति स दर्शनीयो  
 येनेह वीरेण हि पारितोस्मि ॥१३२॥  
 प्रतापसिंहेन हि कोपि वीरः  
 सदर्शितस्येन न मानितः सः ।  
 तदेरितः श्री अमरेशनामा  
 तेनोक्तमेषोस्ति विशेषमास्मिन् ॥१३३॥  
 वदामि तस्मिन्समये मयायं  
 नभ क्षितिर्व्यापिशिरः शरीरः ।  
 दृष्टो विशिष्टः सुर एव वाऽयं  
 शस्त्रेण पूतोस्मि ततः कृतार्थः ॥१३४॥

इत्युक्तवानेव ततः सुशीतं .

स याचयामास जलं प्रतापः ।

सहेमशृंगारगगागनीर

तस्मै ददौ सोथ निपीय मुक्तः ॥१३५॥

॥ कोलापकं ॥

श्रु त्वेति तां युद्धविचित्रवार्त्तां

वार्त्ताहरैरार्त्ततरा सुभीताः ।

कोशीस्थलार्धे महास्थलोषे .

ये स्थानपाला स्थितवन्त उग्राः ॥१३६॥

पलाप्य याताः किल यत्रतत्र

ते सर्व एवापि च खर्वगर्वाः ।

याताश्चुतः स्फूर्जदशीतिसख्याः

द्राक्स्थानपाला क्वचिदत्र चित्रम ॥१३७॥

प्रतापसिंहस्य पराक्रमस्य

प्रसूत्वरस्येवलमीरणस्ये ।

वसमीरणस्य ह गी भवन्म्लेच्छ—

वलं सुवगा ॥ १३८ ॥

दुज्जीय यातं बहु यत्र तत्र

प्रतापसिंहस्य महावल ख ।

देशं त्व शेषं सुवसं निधाय

तदोद र्यं तु पुरे प्रविष्टः ॥१३९॥

उवास चैवासदतुल्यतेजाः

चतुर्विंशतिवर्षाणि अष्टमासं धुजानि च ।

सार्धाशीतिदिनान्येप राज्यं कृत्वा क्षितौ ततः

॥१४०॥

गते शतो पौडशके त्रिपञ्चाशन्मितेब्दके ।

माये प्रतापसिंहेद्राख्यो राणराजो दिव गतः

॥१४१॥

## सारांश

महाराणा प्रताप बलशाली और यशस्वी था । उसका रूप-सौंदर्य कामदेव से भी बढ़कर था । अपने प्रताप से उसने शत्रुओं को सतापित कर रखा था । पृथ्वी की रक्षा के लिए उसने जो उद्यम किया, वह प्रतिशय प्रशंसनीय रहा । वि० सं० १६२६ के फाल्गुन शुक्ल पक्ष में उसकी गद्दीनशीनी हुई ।

जब प्रतापसिंह कवरपदे में था, तब उसने 'रणभूमि' में चौहान करमसी को मारा और वागड-घरती को अपने अधीन बनाया । उसने सलूमबर के राठौड़ों को जीत कर उनसे छप्पन प्रदेश लिया, गोडवाड़ियों से वाली को जीता तथा उनसे गोडवाड छीना ।

युद्ध छेड़कर जब बादशाह ने उसे घेर लिया, तब भी प्रताप ने अपना धैर्य नहीं खोया । उस समय उसे अनम्र पदवी मिली । महाराणा उदयसिंह ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं म्लेच्छ से सन्धि नहीं करूंगा । प्रताप ने भी उस प्रतिज्ञा की सुरक्षा की, यद्यपि उसे सुदीर्घ समय तक शत्रु लडना पड़ा ।

प्रताप का पिता [उदयसिंह] चित्तौड़ में रह रहा था । उसकी राणी भट्यानी भी थी, जिससे सगर आदि पुत्रों ने जन्म लिया था । उदयसिंह उसके वशीभूत था । उसने यह सोचकर कि वह [भट्यानी] प्रताप की जननी नहीं है, चित्तौड़ की तलहटी में स्थित निकवर्ती गांव में प्रताप के रहने का प्रबन्ध कर दिया साथ में दस अन्य राजपूत भी दिये । तथा वह स्वयं भट्यानी के साथ अन्तःपुर में रहने लगा ।

उदयसिंह प्रताप के लिए हमेशा एक 'पुटक' [=पेटिया ?] भेज कर सन्तोष कर लेता था । प्रताप उस पुटक के दोने बनाकर सबों को देता और तब स्वयं रसोई बनाकर, सबों के साथ एक पक्ति में बैठकर, भोजन करता । प्रताप ने यह परंपरा आगे भी निभाई जिसने भविष्य में एक रीति का रूप ले लिया । इस परंपरा का पालन सुबह-शाम, दोनों समय, किया जाने लगा ।

प्रतापसिंह गोगूँदा में रह कर राज्य कर रहा था । वि० सं० १६३० में, गुजरात से लौटते हुए, मानसिंह मेवाड में आया ।

प्रताप ने मानसिंह को अपना मेहमान बनाया और उसे भोजन के लिए निमंत्रण दिया । उदयसागर के तट पर रसोई तैयार की गई, नाना प्रकार के पकवान बने ।



मानसिंह को जब निमन्त्रण मिला, तब उसने यह सोचकर कि आज मैं महाराणा के साथ एक पक्ति में बैठकर भोजन करूँगा, अपने भाग्य की सराहना की ।

वह प्रसन्न होकर पवित्र राजपूतो की पक्ति में बैठा । साथ में उसके अन्य योद्धा भी थे । सोने आदि के पात्रों में विविध पकवान परांसे गये । देखकर मान को बड़ा विस्मय हुआ ।

तब मान ने प्रताप को कहा कि आइये, उच्चासन ग्रहण कर भोजन कीजिये । लेकिन प्रताप ने उसके इस कथन को सुना—अ सुना कर दिया । मान ने ऊँची आवाज में अपनी बात फिर दोहराई । तब प्रताप ने कहा कि मेरे तो उदर में व्याधि है, फिर कुमार अमरसिंह आ ही गया है ।

मानसिंह ने निष्कपट-भाव से प्रताप का उत्तर सुना और उसे सही समझ कर आदरपूर्वक भोजन करना प्रारम्भ किया । किंतु जो वुजुर्ग योद्धा थे, वे अपने स्वामी [प्रताप] के आशय को समझ गये और आपस में सकेन देने लगे कि मानसिंह के साथ हमें भोजन करना उचित नहीं है । इस बात को मान के वीर माँप गये । लेकिन उन्होंने सोचा कि यदि हम इस समय बिना भोजन किये उठे तो बड़ा उपद्रव होगा । इस कारण वे सब के सब, लज्जा से अपनी आखें और मस्तक झुकाए, भोजन करते रहे ।

भोजनोपरान्त मानसिंह एवं उसके योद्धाओं ने आचमन किया । तत्पश्चात् वे महाराणा की सभा में अपनी-अपनी जगह बैठे । महाराणा ने उन्हें कर्पूर मिश्रित तावूल देकर बड़े स्नेह से विदा किया ।

माने के चले जाने पर प्रताप ने तुरत अपने अनुचरो द्वारा पाकशाला को गंगाजल आदि से पवित्र करवाया और नई रसोई बनवाई । तब अपने वीरों के साथ प्रसन्नता पूर्वक उसने भोजन किया ।

मानसिंह को इस बात का जब पता चला तब वह बहुत नाराज हुआ । उसके पूछने पर कि महाराणा ने ऐसा क्यों किया, उसके लोगो में से किसी वुजुर्ग ने बताया कि हे राजकुमार आप मुझ पर नाराज न हो ! कारण मैं बताता हूँ । बात यह है कि कछवाहे आदि जो राजा अपनी पुत्रियों का विवाह बादशाह से करते हैं और उसे 'कलत्र-दोला' भेंट करते हैं, उन्हें ये वीर अपवित्र मानते हैं । तब ये उनके साथ भोजन क्यों करेंगे ?

यह सुनकर मान कोपाकुल हो उठा । वह बादशाह के पास पहुँचा । उसने उसे सारी बातें कही । प्रताप का महान् उन्नतत्व सुनकर बादशाह की आँखों में भी क्रोध उतर आया ।

फिर मानसिंह शाही सेना लेकर प्रताप में युद्ध करने के लिये आया । दोनों के बीच घमानान लड़ाई हुई । दोनों पक्षों के अमर्त्य सैनिक मारे गये । खमणोर के बीच इतना रक्तपात हुआ कि चनाम नदी का पानी लाल हो गया । वि० स० १६३२, शुक्ला सप्तमी को शाही सेना ने महाराणा को घेर लिया । महाराणा हल्दी घाटी पहुँचा । शाही सेना ने पीछा किया । प्रताप ने तब चौहान, भाला आदि राजपूतों को साथ में लेकर तबल रामशाह और उसके पुत्र शालिवाहन को लड़ने के लिए भेजा । भीमराय युद्ध हुआ, जिसमें शत्रुओं को मार कर दोनों पिता-पुत्र मारे गये ।

तदनन्तर प्रताप स्वयं रणभूमि में उतरा । उसके आगे डोडिया जाति का साँढावत भीमसिंह था । उसने मान को हाथी पर, लोहे के बने हींदे में, बैठा देखा । उसने उसके हाथी के पाँव को कटारी से घायल किया और पूर्वोक्त कथन का स्मरण कराते हुए कहा कि यह मेरा 'जुहार' है ।

जुहार वाला बात प्रगल्भ है । हुआ यह था कि जब मानसिंह अकबर के पास गया था, तब उसने डोडिया भीम आदि लोगों से बात की थी । उस समय उसके मुँह से कोई ऐसी बात निकल गई, जिससे भीमसिंह नाराज हो गया था । भीमसिंह ने तब यह कहा था कि आइयेगा, युद्ध भूमि में जुहार करूँगा ।

जब भीमसिंह कटारी से प्रहार कर चुका तब प्रताप ने मान के हाथी के कुंभस्थल पर भाला फेंका । हाथी ने भागना चाहा, पर शाही वीरों ने उसे जैसे-तैसे रोका । मानसिंह हींदे से बाहर नहीं निकला ।

शाही सैनिकों को मारते हुए प्रताप मानसिंह के नजदीक पहुँच गया । उसे अकेला देख कर सहोदर शक्तिसिंह ने कहा—“हे, नीले घाँडे के सवार ! पीछे तो देखो !” सुनकर प्रताप वहाँ से निकल गया ।

प्रताप को जाते हुए देखकर मान ने अपने योद्धाओं से कहा कि शत्रु और हाथी को मार कर वह जा रहा है, उसे कोई योद्धा मार नहीं सका । उसका पीछा करो ! यह सुनकर दो मुगल योद्धा और शक्तिसिंह प्रताप के पीछे दौड़े । प्रताप और शक्तिसिंह—दोनों—ने मिलकर उन मुगल सैनिकों को मार डाला । शक्तिसिंह अपनी सेना में लौट आया । वह तभी से प्रताप का प्रिय बना ।

इस प्रकार महाराणा ने, रण-भूमि में, बादशाह के वशीभूत मानसिंह को, जिसके साथ बड़ी शाही सेना थी, अपने शौर्य का परिचय दिया। वह युद्ध ऐसा हुआ कि संसार में उसकी प्रसिद्धि हो गई तथा प्रताप का यश फैल गया।

तब मानसिंह एक वर्ष पर्यंत, प्रताप का, जो उस समय पहाड़ों में रह रहा था, पीछा करते हुए, युद्ध करता रहा। तदनन्तर वह कुमार अमरसिंह को बड़जत साथ में लेकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। वह माडिल परगने तक गया ही था कि अकबर का दूत उसके आस धा पहुंचा। उसने कहा—“कुमार को छोड़ कर आप दिल्ली चले। बादशाह स्वयं यहां आएंगे।”

अकबर का यह विलक्षण समाचार पा कर मान ने अमरसिंह को आदर पूर्वक घर भेज दिया और स्वयं दिल्ली की ओर चल पड़ा।

बादशाह के पास वह अपनी टूटी फूटी बची सेना लेकर पहुंचा। जब उसने अपने पराक्रम की कथा सुनाई तो बादशाह हंसा। उसने कहा—“तुम तो लोहे के होदे में बैठे रहे, इस कारण जैसे जैसे बच सके हो।”

इसके बाद अकबर आया और लम्बे अरसे तक लड़ता रहा। किन्तु प्रताप की बलशाली समझ कर वह आगरा की ओर लौट गया। फिर उसका ज्येष्ठ पुत्र शेखू आया। लड़कर उसने प्रताप को घेर लिया।

प्रताप ने तब अहमदाबाद, गोगूरक, मामरिका, घघेरा, रणथमौर आदि नष्ट कर दिये। उसने तरवराघोश को जीतकर उसके निशान छीने और लालसोटि तथा चाटसू को ध्वस्त कर दिया।

प्रताप शाही सेना से घिरा हुआ था। यह देखकर बादशाह के सेवक खानखाना ने कह-लाया कि ऐसी स्थिति में आप अपने कुटुंब की रक्षा का पूरा ध्यान रखें। उत्तर में प्रताप ने खानखाना को कहा कि आपने मेरे हित की बात कही है।

तदनन्तर, किसी समय, आशय को समझने में निपुण अमरसिंह वैसेरपुर से खानखाना की स्त्रियों का हरण कर लाया। उसने उन्हें बहिन-बेटियों की तरह वस्त्राभूषणों एवं उत्तम भोजनादि से सन्तुष्ट कर कुछ समय तक अपने यहां रखा। बाद में वे खानखाना के शिविर में पहुंचा दी गईं। खानखाना को तब बड़ा विस्मय हुआ। अमरसिंह ने इस तरह बादशाह के गर्व को नष्ट कर दिया।

तदुपरान्त शेखू आगरा की तरफ रवाना हुआ । वह जब बादशाह बना, तब पुनः यहाँ आया और प्रताप से लडा । उसने चौरासी थाणे बिठाकर महाराणा को घेरा । पश्चात् वह अपने पुत्र खुरम को वहाँ रखकर आगरा पहुँचा ।

महाराणा बारह वर्षों तक कठोर युद्ध करते-करते थक गया था, परन्तु उसने स्वाभिमान नहीं खोया । वि० स० १६३५ में कुमलमेर में युद्ध हुआ । स० १६३७ में वह डोलाण में रहा ।

तब शकुनी ने बताया कि महाराणा के भाले के सिरे पर देवी अवस्थित है । इस कारण प्रताप ने अब शत्रु को मारा ही समझो । इस कथन पर प्रताप को आश्चर्य हुआ । उसने कहा—“वताप्रो, शत्रु कैसे आएगा ?” शकुनी ने कहा—“शत्रु को मैं लाऊँगा ।” तब प्रताप ने कहा कि आप जल्द ले आवें ।

शकुनी सेरिमा के घर पहुँचा । उसने कहा कि आज प्रताप के पास सेना अधिक नहीं है । आप शाघ्र चलें । यह सुनकर, जो भी उसे उसकी माँ ने रोका, सेरिमा साथ में बड़ी-सी सेना लेकर चल पड़ा । महाराणा के साथ उसके पुत्र आदि थोड़े लोग थे । फिर भी उसने सेरिमा से युद्ध किया ।

सेरिमा देवेरनामक घाटे में पहुँचा । वह हाथी पर था । उसके साथ भरपूर सेना थी । सोलकि भृत्य पडिहार ने तब उसके हाथी के अगले दो पाव काट दिये । हाथी घराणायी हो गया । कुमार अमरसिंह ने भी तुरन्त हाथी के दातों पर अपने पैर जमाकर कुम्भस्थल को भाले से विदीर्ण कर दिया । भाले प्रहार कर उसने स-सैन्य सेरिमा को मार डाला ।

भाला सेरिमा की छाती में ऐसा लगा कि वह खींचने पर भी नहीं निकला । प्रताप ने कहा—“लात देकर खींचो !” अमरसिंह ने वैसा ही किया । भाला निकल आया ।

मरते-मरते सेरिमा ने अमरसिंह के दर्शन करने चाहे । प्रताप ने उसके पास किसी अन्य योद्धा को भेजा । उसे देख कर सेरिमा बोला—“यह नहीं है । उसीको भेजो ।” तब अमरसिंह उसके पास गया, जिस देख कर सेरिमा ने कहा कि इसी वीर के शत्रु से मैं पवित्र हुआ हूँ । अन्त में उसने पानी मागा । प्रताप ने गंगाजल से भरा सुवर्ण कलश लेजा कर उसे दिया । पीकर उसने मोक्ष प्राप्त किया ।

यह विचित्र घटना सुन कर कोशीयल आदि स्थानों पर नियुक्त थाणे उठ भागे । प्रताप-सिंह का यश फैल गया ।

तदनन्तर प्रताप उदयपुर में रहने लगा । उसने चौबीस वर्ष, आठ महीने और ८०½ दिन (?) राज्य किया । वि० स० १६५३ में उसकी मृत्यु हुई ।

.. Had Mewar Possessed her Thucydides or her Xenophon, neither the wars of the Peloponnesus nor the retreat of the 'ten thousand' would have yielded more diversified incidents for the historic muse, than the deeds of this brilliant reign amid the many vicissitudes of Mewar. Undaunted heroism, inflexible fortitude, that which "keeps honour bright," perseverance,— with fidelity such as no nation can boast; were the materials opposed to a soaring ambition, commanding talents, unlimited means, and the fervour of religious zeal; all, however, insufficient to contend with one unconquerable mind.

—James Tod



..Had Mewar Possessed her Thucydides or her Xenophon, neither the wars of the Peloponnesus nor the retreat of the 'ten thousand' would have yielded more diversified incidents for the historic muse, than the deeds of this brilliant reign amid the many vicissitudes of Mewar. Undaunted heroism, inflexible fortitude, that which "keeps honour bright," perseverance,— with fidelity such as no nation can boast; were the materials opposed to a soaring ambition, commanding talents, unlimited means, and the fervour of religious zeal; all, however, insufficient to contend with one unconquerable mind.

—James Tod

राजस्थानी-काव्य

---

साद्वमाला

झूलराणा महाराणा प्रतापसिंघजी रा



## परिचय

सादू माला महाराणा प्रताप के समकालीन चारण कवि थे । वीकानेर के छठे शासक महाराजा रायसिंह ( वि० सं० १६३०-६८ ) की इन पर विशेष कृपा थी । इनकी कवित्व शक्ति से प्रभावित होकर रायसिंहजी ने इन्हें दो बार पुरस्कृत भी किया था । इनका रचनाकाल वि० सं० १६३० से १६७० तक माना जाता है । अब तक इनकी तीन रचनाएं ( १ ) भूलणा महाराज रायसिंहजी रा ( २ ) भूलणा महाराणा श्री प्रतापसिंहजी रा ( ३ ) भूलणा अकबर पातसाहजी रा, तथा लगभग ६० फुटकर गीत व छप्पय मिलते हैं । इनमें से अधिकांश की हस्तलिखित प्रतियाँ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में संग्रहीत हैं ।

‘भूलणा महाराणा श्री प्रतापसिंहजी रा’ लगभग ३०० पक्तियों का काव्य है । इसमें मेवाड़ के रावल वप्पा ( वि० सं० ७६१ ) से महाराणा प्रताप तक के शासकों का पहले उल्लेख करके हल्दीघाटी के युद्ध का कवि ने श्रीजस्विनी माया में विशद वर्णन किया है । माया ढिगल है ।

प्रस्तुत भूलणा रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की प्रतिलिपि के आधार पर यहाँ दिया जा रहा है । डा० देवीलाल पालीवाल के पास उपलब्ध दूसरी प्रति से पाद टिप्पणियों के रूप में यथा स्थान पाठान्तर भी लगा दिये गये हैं ।

## झूलणा महाराणा प्रतापसिधजी रा

चापे रावल एकलिंग की पूज बघाणा ।  
गगानीर पन्नालिया सू लम्बा पांणां ।  
तुमुम मदार कलार के सिर मुगट घरीणां ।  
नव नुरियन्द प्रमन धये मोटा दिवाणा ॥ १ ॥

रावल देवल मेदिया दे रागुम रीणा ।  
भोली चक्रव्य भाखिया डाहा बोर्वाणा ॥  
नव ते मद्रविसधरा दीधी नूमाणा ।  
हविप्रारी बागारखी हीदू हिदवाणा ॥ २ ॥

थापिया<sup>१</sup> राव पिराग बड राणा नुरराणां ।  
मदवा<sup>२</sup> गग प्रवीत नरं वर घर<sup>३</sup> लापाणा ।  
मोकल कूभा<sup>३</sup> वाहिगा<sup>३</sup> वाग<sup>४</sup> थापाणां ।  
मेतल वार<sup>५</sup> प्रसिध<sup>६</sup> यीय वरता<sup>७</sup> वेग्राणा<sup>८</sup> ॥ ३ ॥

रायां मानस जठमा<sup>९</sup> माना<sup>१०</sup> महाराणा ।  
वेठा पाट सग्रामसिध<sup>११</sup> घर छत्र छत्राणा<sup>१२</sup> ॥  
हीदू मोडण हीदवां तोडण तुरकाणां ।  
गूजर वै मिर गोरीयां दे पसर पयाणां ॥ ४ ॥

गलीया चम्पानेर गढ माहे मेहलाणा ।  
कीध ल्हसकर पाछिला ना नीर निवाणां ॥  
मागण मायर मालगिर<sup>१३</sup> उपर उध्राणां<sup>१४</sup> ।  
पिलची दल पपरीया साहे सुरतांणां ॥ ५ ॥

- 
- १ थापियां २ घर ३ कूभा वाहिगा ४ वाग ५ वारु  
६ प्रसिध ७ वरता ८ वेग्राणां ९ अठुमा १० सत्ता  
११ सग्रामसी १२ घरणां १३ मागरे १४ ऊर्ध्वाणां ।

चीतौड़ाँ वावर विनै<sup>15</sup> मैदाँन मंडाँणाँ ॥  
 लाँवी वाँह गुसाँइयाँ कुण वास समाँणाँ<sup>16</sup> ॥  
 अवसे<sup>17</sup> चितै आदमी हर अवर कराँगाँ  
 धूम विछूटा तेण दिन लज वदीपाँ ॥ ६ ॥  
 मोटाँ<sup>18</sup> सूल सग्रामसो सुरथाँन<sup>19</sup> सिधाँणाँ ।  
 जिन्हूँ<sup>20</sup> तप अलषसे<sup>21</sup> तपराज कराँणाँ ॥  
 विकमाईत<sup>22</sup> रतनसिघ<sup>23</sup> वारा वौलाणाँ ।  
 उदैसीव नरसीव नर सिर चमर दुलाँणाँ ॥ ७ ॥  
 अमर अपूढ मयद मै नह माण मलाँणाँ ।  
 विजे पजर सरणाईयाँ हीदू हीदवाँणाँ ॥  
 पाहाडाँ मेवाड काँ रषवाला राणाँ ॥  
 भपे लज वगसीये जामल केकाँणाँ ॥ ८ ॥  
 च्यारे कूट उग्राहीये पगाँ ऊवाणाँ ।  
 उदोयासिघ समचरै चीत्रोडाँ राँणाँ ।  
 गई पहदी दहूँ चराँ दिल्ली पुमाणाँ ॥ ९ ॥ १ ॥  
 कन्हड़दे हमीरदे माता पपिराणी ।  
 वदी छोड सयामसिघ पूठी दादाँणी ॥  
 जेणतिला जिम पीलीया पू दालम धाँणी ।  
 नर जाया परतापसी चुणवा चत्रपाणी ॥ १ ॥  
 सूरज किरण प्रगटीया किर रंण विहाँणी ।  
 अन राँणे भेली कीवी पातल विलसाँणी ॥  
 माँणद जुग जाणीया जाणदै माँणी ।  
 अकबर माह समचरै आसत आपाँणी ॥ २ ॥

---

15 विनेह 16. ऊची ताणां 17 अरु 18. मोटो  
 19. सुरथांण 20 जिणह 21 यलषसे 22 विकताईत  
 23 रतनसी ।

कुण रात पोगी अणो के भांत बिर्ताणी ।  
 पगे पेत प्रतापसी ते नूं तुष्टाणी ॥  
 ह पातल हं वाहू हृमन हिदवांगी ॥  
 रांगो चाई हीदवा ऊनगीया पांगी ॥ ३ ॥  
 करि छोड़ी अनि ठाकुरे जे दीह जूवाणी ।  
 रांग भली मुरतांग सू तोउरा लगतांगी ॥  
 बाघो राउ प्रतापमिघ कीर्वा मन भांगी ।  
 पाहाडा मेवाटका फीजा पुरमांगी ॥ ४ ॥  
 रांग बिन्ता टांग मिर एहीबीमांगी ।  
 बीजा टाटम बीज ज्यू रम लीघा तांगी ॥  
 रांग पांगी गीया जिम हीरा वांगी ॥ ५ ॥ २ ॥  
 दीना हाथ जरादीया लांताह घमाटे ।  
 पुरमांगी समागरा पग धार घराडे ॥  
 पती त जूभो पापरा वरहाम वणाटे ।  
 बगतर पास उजेलीयै कजरा डर वाडे ॥ १ ॥  
 पर पंडवेम परतापसी पंडवेम पछाडे ।  
 पारी आया पापता महमाल अषाडे ॥  
 बिच पैसे क्षीसीदीयो बाघारे वाडे ।  
 सीह जिमी परतापसी ज्या अवम उजाडे ॥ २ ॥  
 मेवाडी घर मारवा कुण घायी वाडे ॥  
 पापर पांचाली पती बैठी वां वाडे ।  
 चहुवाणा जड ऊबडे पहलै परवाडे ॥  
 ते रिण रीधल राण सू कुण निग्रह नाडे ॥ ३ ॥  
 विण पालीयै प्रतापसी मेवाड उजाडे ।  
 गिरीस वादन जाँणही<sup>24</sup> नालेर न फाडे<sup>25</sup> ॥

पैर पवेड़ा वाहीया किम अम्बा भाड़ै ।  
 ठाहर ठाहर वाहराँ<sup>26</sup> पँचाहर पाड़ै ॥४॥  
 राणो थाँणाँ आगली ऊभौ आषाडै<sup>27</sup> ।  
 भडै पेत वुहारीयै<sup>28</sup> षडै ऊषाडै ॥  
 दिली देस नरेश सूँ मँडो मेवाडे ॥५॥३॥  
 राँण<sup>29</sup> वसीठ<sup>30</sup> परीठवे<sup>31</sup> सुरताँण सुमेले ।  
 तुलिवा मासू<sup>32</sup> दूसिरा कुण चढिया चेलै ॥  
 वात करदा वारीया जा किरा ही केलै ।  
 राणम भूल र<sup>33</sup> आवता मुष साह उत्रेले ॥ १ ॥  
 मे अर<sup>34</sup> देस उथाँमीया षड आप<sup>35</sup> अचेलै ।  
 अकवर अवराँ ठाकुराँतिरा<sup>36</sup> हेलत हेली<sup>37</sup> ॥  
 हीदूपत भाला हथा भुज भारथ भेलै ।  
 मूहडै राणो मारका मारहथाँ<sup>38</sup> मेलै ॥ २ ॥  
 घर वैठो भारी घडी<sup>39</sup> अकवर ऊत्रेले ।  
 राँणो माण न छडही असपत आगे लै ॥  
 साह आलम सीसोदियो परहड परेलै ।  
 फौजाँ आँमो साँमही ले जगम जेलै<sup>40</sup> ॥३॥  
 मेवाडो मेले नही ये वात<sup>41</sup> उषेलै ॥४॥  
 साह प्रधाना पूछीया जाय फिरो विचालां ।  
 केहा बोल कबोल<sup>42</sup> की<sup>43</sup> राणा खतालां ॥  
 राणाँज अपर<sup>44</sup> भाषीया वदलै विसटाला ।

---

26 ठाहराँ 27 रखाड़ै 28 जुहारियो 29 राँण  
 30 वसीठ 31 परठवे 32 मोसौ 33 भूल से  
 34 अरि 35 आय 36 त्यरा 37 हेल त्यहेलै  
 38 हथ्यां 39 घडे 40 मेलै 41 दात 42 कवल  
 43 कियै 44 अखर

तिरे 45 न जवै पदकार लग क्यांही कालां ॥१॥

तव 46 पूदालम पीजीया 47 समनेर गभालां ।

दन दुरता 48 पीपीया 49 जू कत 50 कमाता ॥

कावण लागा पूदकार मुय भाल विराला 51 ।

रांण कहा ऊभा रहै मक परवत माला ॥२॥

है पुढ दूजै मेदनी ऊपल आफालां ।

हुई दरगह 52 दाणवां दल चाल विचाला 53 ॥

भेर दमामा काहुला वजे द्रुहाला ।

देम विदेमो राममीर लग गोड बगालां ॥ ३ ॥

पन कावल दल बदक स्याम चढीया चुगलालां ।

भार निघाहर बेहडा कसि विहर कठाला ॥

घाट पाट चियै मेदपाट (पछी, दताला ।

जीण पडे श्रीराकिया तग करे कठाला ॥ ४ ॥

तडे तरण नागरा जय गिरे बगाला ।

भरो दरगह दाणवा मीरा विकराला ॥

अनि अनि 54 जाति बहादरा चौह भाति बगाला

हीलो हल भेला हुवा किर नवसौ नाला ॥५॥

सागण की वावर सरम 55 तोसू किम टालां

अकवर पातल ऊगरे आरभ अचाला ॥

भापि 56 असक चढायता नह सण्या पालां ।

कावलिया श्रीराकीया 57 पांना पुगताला ॥६॥

मेवाढी घर नपीया सिर परवत माला ।

---

45 त्यैके 46 तद 47 खोजिया 48 दूरतां 49 ज्यूपीया

50 कतक 51 उवराला 52 दरगी 53 मीरां

विकराला 54 अन अन 55 सयरवर 56 लख

57 अराकिया

कैसिर<sup>58</sup> ऊठ प्रतापसी लसकर देठाला ॥  
तैज ग्रहे भिड धूणीया तै चली टाला<sup>59</sup> ॥७॥ ॥५॥

तू<sup>60</sup> सांगो तू<sup>61</sup> रायमल आपाणै वारै ।  
अरिजण उठ प्रतापसीह पालत्रु<sup>62</sup> पुकारै ॥  
तो विण<sup>63</sup> कमण अजान बाह विचत्रां दलवारै ।  
रांण पषी सुरताण सूं कुण पघर<sup>64</sup> पचारै ॥ १ ॥

दल दहं वेढन<sup>65</sup> जाणही कुण जीपे हारै ।  
ऊडा पाव प्रतापसी कुले<sup>66</sup> लाज संभारै ॥  
मीठा जेण सवादीया मुह ढोया पारै ।  
घणे न थोडा ठेलीया करतार विचारै ॥ २ ॥

वीले कष अलष सोई जल पथर<sup>67</sup> तारै ।  
वागड वग उपाडीया मै षग करारै ॥  
मो वस<sup>68</sup> माडव मालवो घर भूंचे म्हारै<sup>69</sup> ।  
राण उजाडै वनसपति सुरतांण सवारै ॥ ३ ॥

जल जामल परतापसी षल मुगलां ठारै<sup>70</sup> ।  
दल सुरताणा सांफले तूं वेढ विचारै ॥  
तै दूभर सिर मडीया सीतावर सारै ।  
भेवासी परतापसी ल्हसकर<sup>71</sup> तो लारै ॥ ४ ॥

तूफ तणे सिर पाघडो मुष मूछ तुहारै ॥ ५ ॥

राण प्रधान परीछनी<sup>72</sup> जुव घातम पाघर ।  
देहन पूरा वैरीया बल छाडे नींसर ॥  
फोजा जोर न पूजही कर भारथ भाषर ।

---

58 केहर 59 चाली डाला 60 ती 61 ती 62 पाल तूजि 63 तोन्यण  
64 पावर 65 दोय विढेने 66 कुल 67 पाथर 68 वसि 69 घर भुच  
म्हारै 70 मंगल ढारै 71 लसकर 72 परीवनी

जू<sup>73</sup> मरजाद न बघ हो दल फट<sup>74</sup> नागर ॥  
 पद देवे बल हारीया जो किणही कावर ॥ १ ॥  
 राण कटै जाणीजमी निर हंते अमर ।  
 वा [र] रीयां<sup>75</sup> आऊ<sup>76</sup> में ऊजली [अमर] ॥  
 जैन भुअ डटा भटीया जू बाल केसर<sup>77</sup> ।  
 मोलू भीट मपेगीये नुरतांण नमहर ॥ २ ॥  
 हं पट जाऊ चापटै बंगाल वरावर ।  
 हं चढ जाऊ नाम ही गढ लहै न गिरवर ॥  
 भीतरला आलोज बय नभलांणा बाहिर ।  
 तादली<sup>78</sup> पन्तापनी ऊभी जुघ आदर ॥ ३ ॥  
 मामो<sup>79</sup> उदीवामीघ की है गी गुड पापर<sup>80</sup> ।  
 नाग्यद्रहो लागण न दे<sup>81</sup> रज मेवाडवर ॥  
 मृडो नूर प्रतापनी रव जोयो अमर ।  
 बयो प्रवाटी मांमुही न गयी गिर कदर ॥ ४ ॥  
 बाको राण प्रतापनी पाधरें विसमर ॥ ७ ॥  
 बीठा पाट प्रतापनी मिनांन करेवा ।  
 सिर फुनेल विनेपिया लगा ममलेवा ॥  
 गगाजल तातो कीयी संपाटो देवा ।  
 वार कपूर विलासीया मिर कुंभ हुनेवा ॥ १ ॥  
 राण अगुछे उठीया चरणोदक लेवा ।  
 चालि द्वारें पधारीया नारायण सेवा ॥  
 नयणे गुरडामण तणो दरसण देवेवा ।  
 परमे नाथ मुनाथ श्रीय<sup>82</sup> दिम<sup>83</sup> वले विडेवा ॥ २ ॥  
 हर अपर फुरमावीया तस काम करेवा ।

---

73 दल 74 फाटै 75 आदरियो 76 आहूव 77 केहर 78 सादूलो  
 79 सामहो 80 कौह गीगूडी पाथर 81 नक्यूं 82 सनाथ थये 83 देस



सिंघासण आसण कोयी जूसण पहरेवा ॥  
 असिसै देवे निजर उगिहारी एवा ।  
 भल हल कमल प्रतापसी पल विमल वहेवा ॥ ३ ॥

पाघ सरोवर<sup>84</sup> जमघजा<sup>85</sup> वांधी वांधेवा ।  
 जल यक ताई अरगजै भडल भीजेवा ॥  
 अलोल भमर भणकीया तै परमल पेवा ।  
 राण कथूरी<sup>86</sup> कुमकुम्भी घ्रांघण ऊषेवा ॥ ४ ॥

पहरे होर पजार भूषल<sup>87</sup> पड<sup>88</sup> कलह करेवा ।  
 पहरे राग पनाग पेट मीजू मेलेवा ॥  
 वगतर हाथल कठ टोप वप जड़ जुडेवा ।  
 केलपुरो उठोयी कलह जमदाढ़ जड़ेवा ॥ ५ ॥

अगलूणा उग्राहसी किलवासूँ केवा ।  
 वाधी कमर हमीर हर ऊजली करेवा ॥  
 पडीयालग परतापसी कसीयो कलहेवा ।  
 दाणव<sup>89</sup> अवर डोलीया भुजडड डहेवा ॥ ६ ॥

राण छत्रोसैडावीटी वाली विलसेवा<sup>90</sup> ।  
 आयी उदीयासीघ की पर दल परणेवा ॥ ७ ॥  
 चढीया राण प्रतापसी पापर पट होडै ।  
 नाल पडै रे ताल सूँ वृज पाए फोडै ॥  
 नरद विलेपे नापोयो केका करोडे ।  
 घोडै चढीयो पचमुप कुण राणी रोडै ॥ ८ ॥

से जीपे ओली<sup>91</sup> गिरा घर पाये गोड़े ।  
 राण न जानै भाषरे अणदीघे रोडे ॥  
 देघी सागा वावरा कुल मारग दोडै ।

---

84 सरोवर 85 जसघजा 86 किसतूरी 87 अजार स खल 88 कलह

89 दायण 90 वतीसे डाविया वाडी विलसेवा 91 सेजाये बोले

वरिवामे मिर मरीया नखरो भोडे ॥ २ .

गोरी जिण दिन चौत्रगट तुम्का राव तोडे ।  
तिण दिन कीया जेमली ज्यू हणमत पोडे ॥  
साम मुल्ल<sup>93</sup> नीमोदिया आगां गठीडे ।  
अगपन नू माघी अवर तो जिम कुण तोडे ॥ ३ ॥

उर धरकं पिमुणा तणा तो चढीये घोडे ।  
फौज कवानी कव<sup>94</sup> नू गज दंत मरोडे ॥  
बीजो<sup>95</sup> बगाना तणा कुण मूढा मोडे ।  
राण निवाहर पेरीय धर बाहर धोडे ॥ ४ ॥

[तुर] का ऊपर बाजीया<sup>96</sup> चचन<sup>97</sup> चीतीडे ।  
राण मुलका सं घणो धर हई गोडे ॥  
राण र वदा मांमुहा पड आयो चीडे ॥ ॥८॥

हलद्रीघाटी ऊपर दल बाज<sup>98</sup> अवाई ।  
मूडाहल डडाहलां दमाम घुराई ॥  
नामा राण दिवारिया नीसांण बघाई ।  
दोय दल देठाल हुवा सोजता<sup>99</sup> पाई ।  
फौज वरवर<sup>100</sup> निजर भर अर पाघर<sup>101</sup> आई ॥ १ ॥

गज पय सावण घटा दामण दरसाई ।  
काली भीवट<sup>102</sup> कूजरा ऊपडी अछाई ॥  
राण वपर अस पपरै हैजफ हलाई ।  
चामड डक सवाहीया हक नारद वाई ॥ २ ॥

जोगण पफर मडीया पल रत<sup>103</sup> अवाई ।  
नाला<sup>104</sup> गोला परीया<sup>105</sup> की सोर सभाई ॥

---

93 कदल 94 बाजां 95 ताजियां 96 चचाल 97 बाजि 98 सोभंतों  
99 वरावरि 100 अरि पाछरि 101 मी घट 102 रत 103 न्यालू गोला  
104 पूरिया

सोर पलीता गड़डोया<sup>105</sup> हथ नाल हवाई ।  
घर पडसादे परवताँ किर गैण गजार्ड ॥ ३ ॥

विच सिलहाँ फूटै पतंग छटे चिलवाई ।  
उ [-ाँ] डी पल प-डाँकीया धाइ देष पराई<sup>106</sup> ॥  
वामन<sup>107</sup> चूके वाहताँ जाय साच सराई ।  
काढे सेल सिलाहराँ पिड पवग<sup>108</sup> पुलाई ॥ ४ ॥

चाके हाके चाढीया भण<sup>109</sup> भाई भाई ।  
उर वारे मेलीया<sup>110</sup> अणी दल ऊपर दाई ॥  
पैठा जाँण प्रलव दल जल लका खाई ।  
ऊपर दूभर वोरिया कथ राँण रहाई ॥ ५ ॥

साच मना सीसोदिया श्रीनाथ सहाई ।  
आवव उदीयासीध ऊत दल विचित्र वघाई ॥  
अनडे घाटे श्रीघ<sup>111</sup> कल कीध नकाई<sup>112</sup> ।  
पातल पंढवेसाँ पडी मैदान लडाई ॥ ६ ॥ ६ ॥

सागण वावर वडाधर आषियात उवारी ।  
विण<sup>112</sup> आचार वसधरा पतसाह पियारी ॥  
अकवर साह प्रतापसी दिल हुई पारी ।  
घरती कारण भूवीया आपाँणी वारी ॥ १ ॥

रीठ पडे पंभणोर सिर फौजाँ हलकारी ।  
लाग<sup>113</sup> पडण पंचाहरण कल थई करारी ॥  
रेण भडाँ घड<sup>114</sup> लोटीया आरोग<sup>115</sup> अकारी ।  
डाल विछूटे डाडगाँ तूहे<sup>116</sup> तरवारी ॥ २ ॥

आवव दूक उडाढीया सिर चोट दडारी ।

105 गड्डियड 106 ऊचंडिया उपडाँखिया घाय देख पराई

107 वाण न 108 पमग 109 भणि 110 मिलिया 111 न्यकाई

112 तिरण 113 लाग 114 घड़ 115 आरेण 116 बूट

हूँ करंगल वरघना हूलवार सचारी ॥  
 कुण आपे वीठी ग्रहे घर ऊपर म्हारी ।  
 माल कलोधर माझीया आयी हलकारी ॥ ३ ॥

राणी रोमाणी धर्मे कुण पठ पचारी ।  
 राण भला बोलाविया<sup>117</sup> नुरताण उघारी ॥  
 मेल फलां हुल सावलां गलवाह कटारी ।  
 तेलारि<sup>118</sup> सीसोदिया पीयो भारय भारी ॥ ४ ॥ १० ॥

राण भला बोलाविया नुरताण पयांणे ।  
 बाहिला वगान दल तो ऊपर आणे ॥  
 तू<sup>119</sup> जुटि जांणे जवन दल तूहीज तुटि ताणे ।  
 धारी वार प्रतापसी मसार सजाणे ॥ १ ॥

तें मेवास पछाडिया वाणास ऊवांणे ।  
 तें वेवें दल आरिया<sup>120</sup> धारालं<sup>121</sup> घांणे ॥  
 ते दल नाथ वजाळीया पल हाथ प्रमाणे ।  
 थारी कीयो<sup>122</sup> राण साह जुग सगली जांणे ॥ २ ॥  
 साते दिस<sup>123</sup> सभलावसी ए वात विहांणे ॥ ११ ॥

वाही वल वीजी कीयो रामायण राणे ।  
 राण सहाय छतीस वस आया यलगारां<sup>124</sup> ॥  
 आडा कमधज ओढीया<sup>125</sup> परहुंडा धारि ।  
 मुगलां पैली मोहरी तू चर तिण वारां<sup>126</sup> ॥ १ ॥

भर माथे भाला तराणे भाला जूझारि ।  
 काम तराणे किणीआगरां माथे परमारां<sup>127</sup> ॥

---

117 बोलाविया 118 सीलारि 119 तं 120 ओरिया  
 121 धाराला 122 कीयो 123 दस ही दिसा 124 यिलगारां  
 125 ओढिया 126 तों वरत्यण वारां । 127 पर मारां

अगी चहुवाणां ओरोया<sup>128</sup> चचल चौधारां ।  
दूभर माथी डोडीया ऊडीया अपारां<sup>129</sup> ॥ 2 ॥

सिघ ढोया सोलो कीया अति वाँण<sup>130</sup> अगारां ।  
नरनायक नी जोडीया पायक पछिहारां<sup>131</sup> ॥  
साची<sup>132</sup> सूरतन तणी परतीत पमारा ।  
गीडा गैहलीता तणै सूर तन सभारां ॥  
वालीसा वगाल दल हैजप<sup>133</sup> हथीयारां ॥ ३ ॥

पाव मुहे पडोया लगां तूटै तोपारां<sup>134</sup> ।  
राणी विचै रिहाँ मणो<sup>135</sup> वणीयो तिणवारां ॥  
होका<sup>136</sup> कीयां हलकारतै आपणा अयारां ॥ ४ ॥

सिर चढोवी<sup>137</sup> सीसोदीयो सोहीयी सेलारां ।  
आलूभै अत्रावली वणोयी तिणवारां<sup>138</sup> ॥  
रिडै रगत्र सगत्र<sup>139</sup> पत्र भरोया कर भारां ।  
पाल वहै लुहिराल का पडनाल पयारा ॥ ५ ॥

लट छूटा तूटा कमल धर<sup>140</sup> फूटा धारां ।  
जाणक मट उपटीया<sup>141</sup> विच हट रगारा ॥ १२ ॥

राण विछूटे वादले मुष कमल निराले ।  
भल हलियो फीजा विचै जे ही किरणाले ॥  
वूडी भार विचार सार छड डडै काले ।  
पोलै सोनी धार भल कूभाथल भाले ॥ १ ॥

पाट हमत परतापसी आही<sup>142</sup> आभाले ।  
फाडे गज भाखर समेत पापर प्रोचाले<sup>143</sup> ॥

---

128 वोरिया 129 वोडिया अयारा 130 अगवाँण 131 पर-  
मारां 132 मारां 133 हैजम 134 तोखारां 135 रहवणी  
136 हेक 137 चढते 138 सूरं सिरदारां 139 रेडे रगत  
सगत 140 घट 141 उपट्टिया 142 आयो 143 पूंचाले

जटोर्षी राँण अचावर्त अणीयाँ तालँ ।  
पायो राणी<sup>144</sup> पोतवान वरली बाँहाँ ॥ २ ॥

अणी ठण्ठके घट सूँ कंठ सोभावाँ<sup>145</sup> ।  
अवर्त काढी गाछटे हर सोला<sup>146</sup> भालँ ॥  
वारण निर आर्याण मुह मगल ऊँहाँ<sup>147</sup> ।  
काढी सेढाँ मेनती नूअर्त चलू आलँ<sup>148</sup> ॥  
मेननिसाणी कटोया<sup>149</sup> पाले रुहिरालँ ।  
उतरियो सारग की नारग प्रजालँ ॥  
गिर जटा घर घर हरँ जल गगा नालँ ॥ १३ ॥

आघ<sup>150</sup> पढे लनकर उभै समहर मवाटी ।  
केकाँणा केवाण मुँह थोथी नेट निवडो ॥  
पढवेसा लागो पतो अममर भीभाडो ।  
हुल हाथल है वै<sup>151</sup> दला पड भोक भराडी ॥  
[भां]जे कंव अगधीया अर<sup>152</sup> घड़ा विनाडो ।  
परगह<sup>153</sup> पापतीया पडे थोथो<sup>154</sup> आप उघाडो ॥  
लागो लापण हर घणी वह सद बावाडो<sup>155</sup> ।  
औलपीयो असपत दले असचार औनाडो ॥ २ ॥

भार निवाहर दुहुँ भुजे मडीयो मेवाडो ।  
नीचो बोल न आणीयो जे ऊँचीताडो ॥  
प्राभी पातल पर दला असपत भीभाडो ।  
दीह अवाडी की करँ श्री नाथ सवाडो ॥ ३ ॥

थोथो नागद्रहे निसहरे कुरपेत अपाडो<sup>156</sup> ॥ १४ ॥

---

144 छाई राणी 145 भालँ 146 सवलां 147 ऊँहाँ  
148 काढी सेलां डाम ढलति चुवतै चुगलालँ । 149 सिलयो  
राँगे कट्टिया 150 घाक 151 वहै 52 अरि 153 परिगह  
154 थय 155 ववाडो 156 कराडो

कवत ॥

तूँ उतर भड घड किवाउ, आटो पुरसाणा ।  
 सुरताणा केवाण मुंह, तै मलीया माणा ॥  
 असपत घडा पभणोर, सिर धरणी वर दधह ।  
 चकता तणा चटावीया, सौह केवा कमधह ॥  
 तुडताण डाण चढताहरे, पुरसाणी फाजा पिमो ।  
 मूभने<sup>157</sup> हाथ मडाड़ीया<sup>158</sup>, हवै पाथ परनापसी ॥ १ ॥

इति प्रतापमिषजी रा मूर्ति प्रग्य ॥

लिखित वारहट किशोरदानन जोधपुर मध्ये विक्रम संवत १६७२ प्रथम  
 वैसाख सुद्ध ३ ईस्वी सन् १६१५ तारीख १७ अपरेल —

हस्तलिखित पुस्तक प्रगने पाली रा गाम वसी रा आसीया चारण नुमेरदान  
 री से नकल कीदी । विक्रम संवत १८६३ रा दुनिक मावण वद ६ ने गाम भदोरा  
 रा सांडू चारण हूंणूदान जी गाम भदोर लिखी तिण पोयो री आ नकल छै ।

---

157 मू डने 158 मडाविया

## सारांश

बाबा रावन ने एकलिंग भगवान की पूजा अर्चना की। उसमें देवाधीदेव प्रसन्न हुये व उन्हें यह भूमि (मेवाड़) प्रदान की। राजवंशों में श्रेष्ठ इन राणाओं के वंश में मोरल, कुम्भा व चेतन अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। इन वंश में आठवीं शासक गायमल हुआ जिसका उत्तराधिकारी संग्रामसिंह था। संग्रामसिंह ने बाबर से युद्ध किया। धर्म का परित्याग करने की अपेक्षा (युद्ध में कट कर) मर जाना ही श्रेष्ठकर है। अतः (यही समझ कर) संग्रामसिंह बाबर से युद्ध करके नुरलोक विचार गए। महाराणा संग्रामसिंह के उपरान्त क्रमशः रतनसिंह, विक्रमादित्य एवं उदयसिंह मेवाड़ के अधिपति हुए। महाराणा उदयसिंह के उत्तराधिकारी सूर्य की किरणों के सहस्र महाराणा प्रताप हुए जिनने ग्रन्थकार का नष्ट किया। दिल्ली के नरेश के साथ इसका युद्ध हुआ। प्रताप ने सन्देश बाबर को आगरा के पास भेजा।

बादशाह ने सोचा कि राणा सम्भवतः भूल से (मेरा विरोधी बन कर) आ गया है। (क्योंकि) मैंने तो घने-तो घनघुओं के देशों को नष्ट किया है। अकबर प्रताप को भी अन्य ठागुरों की भांति ही समझना था। विशाल साम्राज्य वाले अकबर ने सोचा कि राणा अपनी शान को नहीं छोड़ेगा। अकबर राणा को आधीन करने के उद्देश्य में फौज लेकर पहुंचा। अकबर ने अपने प्रधानों से कहा राणा में जाकर सन्धि की शर्तें तय करलो। लेकिन राणा ने उलट्टे विप-युक्त वचन कहे अर्थात् सन्धि हेतु तत्पर नहीं हुआ। अतः अकबर को अपनी तलवार सम्माननी पड़ी। राणा ने भी भयंकर रूप धारण कर लिया, व पर्वतों के मध्य जाकर खड़े हो गए, इसमें पृथ्वी धरने लग गई। इस युद्ध में अनेक जाति के योद्धा एकत्रित हो गए थे। सब ने मिल कर सोचा कि यह तो बाबर व बागा के बीच जैसी स्थिति बनी थी वैसी ही बन गई है। अकबर अमर्य सैन्य दल लेकर प्रताप पर चढ़ आया था। मेवाड़ भूमि पर काबुली, ईराकी, खान, खुरासानी आदि कई (जाति के) लोग आ गए। केशरीसिंह के सहस्र राणा प्रताप ने उठकर सेना को देखा। अपने घरों को छोड़कर जूझने हेतु अनेक योद्धा आ पहुँचे। राणा ने भयंकर युद्ध किया।

राणा प्रताप स्नान करने के लिए पाट पर विराजे। स्नान के उपरान्त नारायण के दर्शन व पूजा करने मन्दिर के द्वार पर गए। राणा प्रताप अपने दरबार में बैठे अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। राणा ने युद्ध परिवेश धारण किया। अपने दल को लेकर मुगलों का दर्प दमन करने हेतु आ पहुँचा।



हल्दीघाटी के मैदान में प्रताप अपने अश्वारोही दल सहित पहुँचा । दोनों दल सामने आ पहुँचे । युद्ध आरम्भ हुआ । मयकर मारकाट होने लगी । योद्धाओं ने ऐसा युद्ध कभी नहीं देखा जैसा राणा प्रताप ने देखा है । समगौर के मैदान में मयकर घात-प्रतिघात होने लगे । वैसे तो मुगल दल बहुत सेगी बघाव रहा था लेकिन राणा के नाम युद्ध स्थल जाने पर उनकी दशा अत्यन्त बुरी हो गई । क्षत्रियों के हत्तीमो तुल्य राणा की महायन्त्रा के लिए आ पहुँचे हैं । कमधज (राठौड़) टोडिया, चोहान, मोनफी, परमार आदि जानियों के योद्धा प्रताप की सहायता के लिए आए हैं । जब मिसौदिया प्रताप जाना लेकर आगे बढ़ता है तो कई मय-वारों की उसमें आते ऊलझ जाती है । रक्त से (योगनियों के) पात्र भर जाने है । रक्त की नदिया बहने लगती है । सिर कट कट कर गिरते हैं । ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई घड़ा फूट गया है व उसमें से जल की धारा बह निकली हो । प्रताप नगर रूप में पर्वनाकार हाथियों को हीरो सहित रोदता हुआ प्रगल्भ मुद्रा में आगे बढ़ रहा है । राणा आगे बढ़ा व उसके हाथ का माला महावत के लगा । उनका माला योद्धाओं की धराजायो कट रहा है । हाथियों के सिर पर जब वे प्रहार करते हैं तो हाथी चिंताग्ने है । राणा प्रताप की धाक में शत्रु सैन्य थर्रा रही है व छोटे मुह के बल पड़ाव मा मा कर गिर रहे हैं । कई शरीरों को राणा की तलवार ने काट डाला व मयकर रूप में बढ रही है । कई शत्रुओं के कपड़े काट डाले गए इससे वे तडकते हुए गिर पड़े । इनका शीर्ष देन शत्रु पहचान गए कि यह अश्वारोही विकट है । इसने मेवाड को अपनी दो भुजाओं पर धाम लिया है और उसे ऊपर उठाया है अर्थात् उसका गौरव बढ़ाया है । नागद्रहा कुक्षेत्र के समान हो गया है ।

हे प्रताप ! तूने (अकबर को) अपने मुँह से सुलतान नहीं कहा । समगौर के मयकर युद्ध में मुगल सेनाओं को पीछे खदेड़ दिया ।

राजस्थानी-काव्य

दुरसा झाढा

विरूढ-छिहत्तरी

## परिचय

दुरसा भ्राता का जन्म गाव धूंदला (जोधपुर) में विक्रम सं० १५६२ में हुआ। ये भ्राता गोत्र के चारण थे। इनके पिता का नाम मेहाजी था। दुरसाजी के बाल्यकाल में ही मेहाजी की मृत्यु हो जाने के कारण बगडो गाव के ठाकुर प्रतापसिंह ने इनका लापन-पालन किया। उदयपुर, जोधपुर, जयपुर एवं अकबर के दरबार में इनका बड़ा सम्मान था। कहा जाता है कि इनकी कवित्व-शक्ति से प्रभावित होकर अकबर ने इन्हें साग व करोड़ पनाय दिये थे। लोकप्रिय तथा यशस्वी कवि के साथ-साथ ये वीर योद्धा भी थे। इनके दो पत्नियाँ व चार पुत्र (भारमल, जगमल, सादूल व किसना) थे। ये प्रायः सबसे छोटे पुत्र किमना के साथ गाव पाँचटिया (जोधपुर) में रहा करते थे। वही विक्रम सं० १७१२ में इनकी मृत्यु हुई। इनके निम्न ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं :—

(१) विरुद छिहत्तरी (२) किरतार वावनी (३) राजा मानसिंघ जी रा भूलणा (४) श्री कुमार अज्जाजी नी भूवर गोरी नी गजगत (५) चाल कनेस माताजी रो छन्द (६) विविध फुटक गीत व छन्द।

प्रस्तुत 'विरुद छिहत्तरी' प्रताप की वीरता, प्रशंसा एवं अकबर की तुलना में प्रताप की महत्ता को स्पष्ट करने वाला छिहत्तर सौरठी का काव्य है। भाषा सुबोध एवं शुद्ध डिगन है।

## विरूद्ध छिहत्तरी

अलष पुरुस आदेस, देस वचाय दयानिघे ।  
वरणन करु विसेस, सुहृद नरेस प्रतापसी ॥ १ ॥

गढ ऊंचो गिरनार, नीचो आवू ही नही ।  
अकवर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी ॥ २ ॥

कलजुग चले न कार, अकवर मन अंजस युही ।  
सतजुग सम ससार, परगट राण प्रतापसी ॥ ३ ॥

अकवर गरव न आण, हिन्दु सह चाकर हुआ ।  
दीठो कोई दीवाण, करतो लटका कटहड़ै ॥ ४ ॥

सुणता अकवर साह, दाह हिये लागी दुमह ।  
विसमल्ला बदराह, एक राह कर दू अवस ॥ ५ ॥

मन अकवर मजबूत, फूट हीदवा वे फिकर ।  
काफर कोम कपूत, पकडू राण प्रतापसी ॥ ६ ॥

अकवर कीना याद, हिन्दू नृप हाजर हुवा ।  
मेदपाट मरजाद, पग लागो न प्रतापसी ॥ ७ ॥

मेछाँ आगल माथ, नमै नही नरनाथ रो ।  
सो करतव समराथ, पावै राण प्रतापसी ॥ ८ ॥

बुहा बडेरा वाट, वाट तिकण वहणो तिकण ।  
षाग त्याग षत्रवाट, पूरो राण प्रतापसी ॥ ९ ॥

चितवै चित चीतीड़, चिता जलाई सो चतुर ।  
मेवाड़ो जग मोड, पावन पुरुष प्रतापसी ॥ १० ॥

कदै न नामै कध, अकवर छिग आवै न ओ ।  
सूरज बंस संबन्ध, पालै राण प्रतापसी ॥ ११ ॥

अकवर कुटिल अनीत, और विटल मिर आदरे ।  
रघुकुल उत्तम रीत, पाले राण प्रतापसी ॥ १२ ॥

लोपे हिन्दू लाज, सगपण रोपे तुरकसूँ ।  
आरज कुल रो आज, पूंजी राण प्रतापसी ॥ १३ ॥

अकवर पथर अनेक, के भूपत मेला किया ।  
हाथ न लागो हेक, पारग राण प्रतापसी ॥ १४ ॥

सागो धरम सहाय, वावर सूँ भिडियो वेहद ।  
अकवर कदमां आय, पडे न राण प्रतापसी ॥ १५ ॥

आपे अकवर आण, घाप उचापे ओ थिरा ।  
वापे रावल वाण, तापे राण प्रतापसी ॥ १६ ॥

सुष हित स्याल समाज, हिंदू अकवर बस हुआ ।  
रोसीलो मृगराज, पजे न राण प्रतापसी ॥ १७ ॥

अकवर कूट अजाण, हिया फूट छोडे न हठ ।  
पगा न लागण पाण, पणधर राण प्रतापसी ॥ १८ ॥

है अकवर घर हाण, डाण ग्रहे नीची दिसट ।  
तजे न ऊची ताण, पोरस राण प्रतापसी ॥ १९ ॥

जाणे अकवर जोर, तो पिण ताणे तोर तिड ।  
आ बलाय है और, पिसणां पोर प्रतापसी ॥ २० ॥

अकवर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहै ।  
रजवट बट समराट, पाटप राण प्रतापसी ॥ २१ ॥

अकवर मारग आठ, जवन रोक राषी जगत ।  
परम धरम जस पाठ, पढियो राण प्रतापसी ॥ २२ ॥

अकवर समंद अथाह, तिहं झूवा हिन्दू तुरक ।  
मेवाडो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥ २३ ॥

अकवरिये इकवार, दागल की सारा दुनी ।  
अण दागल असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥२४॥

अकवर घोर अंधार, ऊ घाणा हिन्दू अवर ।  
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥२५॥

जग जाड़ा जूझार, अकवर पग चापै अधिप ।  
गो रापण गुंजार, पिंड मे राण प्रतापसी ॥२६॥

अकवर कनै अनैक, नम नम नीमरिया नृपति ।  
अनमी रहियो एक, पुहुमी राण प्रतापसी ॥२७॥

करै कुसामद कूर, करै कुसामद कूकरा ।  
दुरस कुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी ॥ २८ ॥

अकवर जग उफाण, तंग करण भेजे तुरक ।  
राणावत रिठ राण, पाण न तजै प्रतापसी ॥ २९ ॥

हलदीघाट हरोल, घमंड उत्तारण अरि घडा ।  
आरण करण अडोल, पहुँच्यो राण प्रतापसी ॥३०॥

धिर नृप हिंदूथान, लातरगा मग लोभ लग ।  
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥ ३१ ॥

सेला अणी सिनान, धारा तीरथ में घसे ।  
देण धरम रण दान, पुरट सरीर प्रतापसी ॥३२॥

ढिग अकवर दल ढाण, अग अग भगडै आथडै ।  
मग मग पाडै माण, पग पग रांण प्रतापसी ॥ ३३ ॥

दिल्ली हूंत दुरूह, अकवर चढियो एक दम ।  
राण रसिक रणरूह, पलटै केम प्रतापसी ॥३४॥

चीत मरण चाय, अकवर आधीनी बिना ।  
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ॥ ३५ ॥

तुरक हिदवां ताण, अकवर नाथो एकठा ।  
मेछा आगल माण, पाण पृषाण प्रतापसो ॥ ३६ ॥

गोहिल कुछ धन गाढ, लेवण अकवर लालचो ।  
कोटी दै नह काढ, पगधर राण प्रतापसो ॥ ३७ ॥

अकवर मच्छ अयाण, पूछ उच्छालण वन प्रवल ।  
गोहिल-वन गह राण, पायोनिधो प्रतापसो ॥ ३८ ॥

नित गुधलावण नोर, कुंभी नम अकवर कर्म ।  
गोहिल राण गभीर, पण गुवल न प्रतापसो ॥ ३९ ॥

उडै रीठ अणपार, पीठ लगा लावा पिसण ।  
देहीगार वकार पंठो उदियाचल पतो ॥ ४० ॥

अकवर दल अप्रमाण उदैनपर घेरं अनय ।  
बागा बल पूमाण, साहा दलण प्रतापसो ॥ ४१ ॥

देवारी सुर द्वार, अडियो अकवरियो अनुर ।  
लडियो भड़ ललकार, पोला खोल प्रतापसो ॥ ४२ ॥

रोके अकवर राह, ले हिन्दू कूकर लपां ।  
बीभरतो वाराह, पाडै घणा प्रतापसो ॥ ४३ ॥

देखो अकवर दूर, घेरो दै दुसमण घड़ा ।  
सागा हर रण सूर पौर न पिसै प्रतापसो ॥ ४४ ॥

अकवर तडफ आप, फतोकरण च्यारु तरफ ।  
पण राखो परताप, हाथ न चढै हमीरहर ॥ ४५ ॥

अकवर किला अनेक, फते किया निज फौज सू ।  
अकल चलै नह एक, पाघर लडै प्रतापसो ॥ ४६ ॥

दुविधा अकवर देख, किए विध सू घायल करै ।  
पमंगा उपर पेख, पाखर राण प्रतापसो ॥ ४७ ॥

हिरद ऊणा होत, मिर घूणा अकवर सदा ।  
दिन दूणा दसोत, पूणा ह्वं न प्रतापसी ॥४८॥

कलपे अकवर काय, गुण पूंगीवर गोड़िया ।  
मिणघर छावड़ माय, पडे न राण प्रतापसी ॥४९॥

महि दावण मेवाड, राड़ चाड अकवर रची ।  
विणे विपायत वाड, प्रधुल पहाड प्रतापसी ॥५०॥

वधियो अकवर गैर, रसत गैर रोकी रिपू ।  
कद मूल फल कैर, पावे राण प्रतापसी ॥५१॥

भागे नागे भाम, अमरत लागे ऊमरा ।  
अकवर तल आराम, पेजे जहर प्रतापसी ॥५२॥

अकवर जिसा अनेक, आहव अडे अनेक अरि ।  
असली तजी न एक, पकडो टेक प्रतापसी ॥५३॥

लघण कर लंकाल, सादूलो भूखो सुणे ।  
कुल वट छोड़ कृपाल, पेड न देत प्रतापसी ॥५४॥

अकवर मंगल अच्छ, माभल दल घूसी मसत ।  
पचानन पल भच्छ पटक छड़ा प्रतापसी ॥५५॥

दती दल सू दूर, अकवर आवी एकलो ।  
चीडे पल चक चूर, पल मे करै प्रतापसी ॥५६॥

चित मे गढ चित्तीड, राणा रै खटकै रयण ।  
अकवर पुन रो ओड, पेले दीड प्रतापसी ॥५७॥

अकवर करै अफड, मद प्रचड मारग लगे ।  
आरज भाण अखण्ड, प्रभुता राण प्रतापसी ॥५८॥

वट सू ओघट-घाट, घसियो अकवरियो घरणो ।  
डल चनण उपवाट, परमल उठी प्रतापसी ॥५९॥

बडी विपत सह वीर, बडी क्रीत पाटी वसू ।  
घरम घुरघर वीर, पोरस धिनो प्रतापसी ॥६०॥



वसुधा किय विद्यात, ममरथ कुल मिसोदियां ।  
राणा जस री रात, प्रगट्यो भला प्रतापसी ॥६२॥

जिण रो जम जग माहि, जिण जग धिन जीवणी ।  
लेणो अपजस नाहि, पणधर धिनो प्रतापसी ॥६३॥

अजरामर धन एह, जस रह जावो जगत मे ।  
दुख सुख दोनू देह, सुपन समान प्रतापसी ॥६४॥

अकबर जासी आप, दिल्ली पामी दूनरा ।  
पुन-रासी परताप, सुजस न जासी सूरमा ॥६५॥

सफल जनम सुदतार, सफल जनम जग सूरमा ।  
सफल जोग जगसार, पुर त्रय प्रभा प्रतापसी ॥६६॥

सारी वात सुजाण, गुण मागर गाहक गुणां ।  
आयोडो अवमाण, पातरियो न प्रतापसी ॥६७॥

छत्र धारी छत्रछाँह, धरम घाय सोयो घरा ।  
वाह गह्वारी वाँह, परत न तजै प्रतापमा ॥६८॥

अतिम येह उपाय, विसंभर न विसारिये ।  
साथे धर्म सहाय, पल पल राण प्रतापसी ॥६९॥

मनरी मनरै माहि, अकबर रै रहसी अकस ।  
नर वर करिये नाहि, पूरी राण प्रतापसी ॥७०॥

अकवरियो हत आस, अव पास भासै अधम ।  
नाणै हिये निसास, पास न राण प्रतापसी ॥७१॥

मन मे अकबर मोद, कलमाची धारै नकुट ।  
सुपना मे सोसोद, पले न राण प्रतापसी ॥७२॥

ऐ जो अकबर काह, सैधव कुंजर सांवठा ।  
वांसी तो वह ताह, पजर थया प्रतापसी ॥७३॥

चारण बरण चितार, कारण लख महमां करी ।  
धारण कीजै धार, परम उदार प्रतापसी ॥७४॥

आभा जगत उदार, भारत वरस भवान भुज ।

आतम सम आधार, प्रथवी राण प्रतापसो ॥७५॥

कवि प्रार्थना कीन, पंडित हूँ न प्रवीण पद ।

दुरसो आढो दीन, प्रभु तुव सरण प्रतापसो ॥७६॥

[ मु ग्राह्य भाषा, मुक्तक रचना एवं किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना-क्रम के नहीं होने से इसका सारांश यहां देना आवश्यक नहीं समझा गया है । ]

... ..There is not a pass in the alpine Aravulli  
that is not sanctified by some deed of Pertap,—  
some brilliant victory or oftener, more glorious  
defeat. Huldighat is the Thermopylae of Mewar;  
the field of Deweir her Marathon.

—*James Tod*

राजस्थानी-काव्य

---

विदुर वायवक

---

भामा-बावनी

## परिचय

‘मामा-बावनी’ का रचयिता विदुर बायफर या इमका उत्तम छन्द संख्या ५३, ५४ एवं ५५ में मिलता है यथा - ‘विदुर बायफर बग्याणी (५३)’ ‘मागीम विदुर इम उच्चर (५४)’ ‘आसीस विदुर इम उच्चर (५५)’ । इमने अधिक जानकारी रचनाकार के बारे में नहीं मिलती ।

‘मामा-बावनी’ सर्व प्रथम श्री भगरवन्द जी नाहटा ने बाबू श्री पूर्णचन्द्र जी नाहर (कलकत्ता) के संग्रह (गुटका सं० ६६) में प्राप्त कर ‘मोध-पत्रिका’ (घण्टे १४, अंक २ पृष्ठ १३५ से १४७ तक) में प्रकाशित कराई । इसकी पुष्पिका के अनुसार आशुष शुक्ला ११ संवत् १७३१ के दिन जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह के शासनकाल में मेरठ नगर में इसकी प्रतिलिपि की गई । छन्द संख्या ५३ के अनुसार इमका रचनाकाल वि० सं० १६४६, आश्विन शुक्ला पूर्णिमा है । श्री नाहटाजी के पास इमकी एक अन्य प्रति भी है जिसके अनुसार इमका रचनाकाल वि० सं० १६४८ है ।

इसमें कुल ५६ छन्द हैं । प्रथम छन्द में ऊकार-स्तुति है । दूसरे व तीसरे छन्द में मामाशाह के वंश, गुरु, धर्म, जाति आदि का परिचय दिया गया है । छन्द संख्या ४ से ५२ तक में मामाशाह को सम्बोधित कर नीति परक बातें कही गई हैं । अन्तिम चार छन्दों में इसका रचनाकाल, कविका नाम आदि दिया गया है । सापा टिगल-पिंगल मिश्रित राजस्थानी है ।

नीति-परक रचना होने के कारण इसे यहाँ पूरी नहीं दी जा रही है, केवल छन्द संख्या २ व ३ ही जो मामाशाह का परिचय प्रदान करते हैं, प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

## भामा-बावनी

नृमन गच्छ नागोरि ज्ञानि देपाल जिता गुर ।  
दया धम्म दाविये, देव चडवीस तिथकर ॥  
पिरियावटि पृथिराज, सांड भारमल्ल सुणिज्जे ।  
जमवत वावव जोड, करण कलीयाण कहिज्जइ ॥

ताराचन्द लखमण राम जिम, धित थो भण जोडी थ यो ।  
कुल तिलक श्रभग कावेडिया, भामो उजवालग भयो ॥ २ ॥

मूल पेड़ भारमल्ल, साख कावेडिया सोहइ ।  
पुत्र पौत्र परिवार, मउरि मभण दति मोहइ ॥  
लखमो नित लखगुणी, फालव्या सुइज फूल फल ।  
विस्तरियो जसवास, केर कवि करइ कतूहल ॥

विस्तारघणउ चिहूँ खड विचइ, जुगि आलंवाणि एहजण ।  
कलिकाल इत्रइ पीयल कुलइ, भामउ कलपत्तरु भवण ॥ ३ ॥

## सारांश

मामाशाह श्वेताम्बर जैन की नृमल गच्छ शाखा के मानने वाले थे । दया, धर्म, पौ रखने वाले श्रीर चौबीस तीर्थंकरों को मानने वाले देवान् इनके ज्ञानी गुरु थे । पृथ्वीराज के कुल में भारमल हुआ । भारमल से कावडिया शाखा निकली । भारमल के जसवंत, करण, कलियाण, ताराचन्द मामाशाह नामक पुत्र थे । पुत्र-पौत्र समेत लग्ना चौड़ा परिवार था । भारमल की पत्नी अनेक गुणों वाली थी जिससे उमका यश फला-फूला श्रीर सर्वत्र कीर्ति व्याप्त हुई । इस कलिकाल में पृथ्वीराज के कुल में मामाशाह कल्पवृक्ष के समान हुआ ।

राजस्थानी-काव्य

---

दयालदास कृत

राणा रासो



## परिचय

‘राणा रासो’ के रचयिता दयालदास भूतपूर्व मेवाड़ राज्य के राशमी जिले के गण्ड परगने के निवासी थे। फूलेरया मालियों के गढ़ पर इनकी राजमानी थी। ये राव जाति के साठ थे। इनके जन्म, मृत्यु या जीवन काल के बारे में इसमें अधिक जानकारी नयलब्ध नहीं होती।

यह ‘राणा रासो’ कब लिखा गया ? इसका उत्त्प्रेम प्राप्त ग्रन्थ में नहीं मिलता। इसकी एक प्रति साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर में मयहानम में उपलब्ध है। ग्रन्थ के अन्त में इसका लिपिकाल वि० सं० १६७५ बताया गया है। प्रारंभ के छन्दों में महाराणा जयसिंह [ वि० सं० १७३७-१७५५ ] तथा के मेवाड़ नामकी का नामोत्प्रेम हुआ है, किन्तु कवि ने महाराणा कर्णसिंह [ वि० सं० १६७६-१६८४ ] तक के काल की घटनाओं का वर्णन करके ग्रन्थ समाप्त कर दिया है। इसके बाद महाराणा जगतसिंह [ वि० सं० १६८४-१७०६ ] राजसिंह [ वि० सं० १७०६-१७३७ ] तथा जयसिंह [ वि० सं० १७३७-१७५५ ] का वर्णन नहीं किया गया है। इस दृष्टि से इसका लेखन काल अभी भी सदिग्ध है। साहित्य-संस्थान का शोध विभाग इस सम्बन्ध में खोज कर रहा है। अगर इसका लिपिकाल वास्तव में वि० सं० १६७५ ही सिद्ध होता है तो इसका रचनाकाल भी प्रताप की मृत्यु के लगभग बीस वर्ष बाद का ही होना चाहिये।

यह एक ऐतिहासिक काव्य है। इसमें मेवाड़ का आदिकाल से लेकर महाराणा कर्णसिंह के राज्याभिषेक तक का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसकी भाषा पिंगल और ढिगल मिश्रित है। ग्रन्थ में कुल छन्द ६११ है।

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ के छन्द संख्या २३६ से ४६४ तक अर्थात् पद्य संख्या ३२ से ६६ तक में आया है। प्रस्तुत अंश में से ऐसे अंश हटा दिये गये हैं जो ऐतिहासिक घटना क्रमों पर किसी प्रकार से प्रभाव नहीं डालते व कवि ने जिन्हें साहित्यिक रूप देकर विस्तृत किया है। मूल ग्रन्थ में २४६ तथा ३१८ संख्या वाले छन्द दो-दो हैं। अनुसन्धित्सुओं के हित को ध्यान में रख कर यहाँ प्रस्तुत अंश में भी छन्द क्रम में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

## राणा रासो

### बोहा

उदयासिध नरिंद ढर, उपज्यो पुत्तु प्रतापु ।  
जा जसु सुर नर नाग मुख, ज्यो जनमुख हरि जापु ॥२३६॥

सोंनगिरी जननी जन्यो, गन्यो अवनि महि एकु ।  
दांन दयन रन अरि मलन, चलन विनान विवेकु ॥२३७॥

सत्ति वचन रुचि सचरै, हुज दारिदयर दाउ ।  
जनरजन जग अवतर्यो, मनहु जुजिष्ठलु राउ ॥ २३८ ॥

भागनेयु भाटीनको, सकतसिंह लघु वंधु ।  
सुर आसुर सेंका करै, घरै धीर घर पंधु ॥ २३९ ॥

सुतन पच राठ्योरिके, सगर, अगर, जगमालु ।  
साहि पचाइनु जाहि वलु, निजु कीरति कहैं कालु ॥२४०॥

सिसुताई ते सगर को, दुष्ट दिष्ट अनुसारु ।  
सवगुन गनि कवि को कहै जिर योधन अवतारु ॥२४१॥

### कवित्त

सब कुमार कुमार रमै, चौगान चोज चढि ।  
वारी वारै विनोद मोद, क्रीडंत सैल कढि ॥  
सकल कला परबोन, दीन दारिद दुख भंजन ।  
सरस सपरधा मद्धि, विरस लाखनि धनु खजन ॥  
ऊदा नरिंद आनद मन, पिक्ख पिक्ख सुत सिध सम ।  
जेठो प्रतापु परताप करु, अजरु अमरु रजपट्ट रम ॥२४२॥

सुत संपूत सब जानि, रान जोगंत व्रतु मड्यो ।  
ऊरध पवनु चढाइ, प्राण मूरध मग छंड्यो ॥

वेद वचन परबांनि, सकलु हित सुक्रतु कीनो ।  
पाट ठाटि परतापु, छत्र छत्रीपति दीनो ॥

फिरि आन कान ससार, सुखु दुखु मलेच्छ छत्ती छयो ।  
वज्जै निसान हिंदवान हद, मद गयद महु सुक्कयो ॥ २४३ ॥

### पद्धरि

सुक्कहि गयद नीसान घुंक । घुक्कहि क लद कर फेर फुंक ॥  
चुक्कहि मयद चिक्कार फाल । दुक्कहि दमित तजि मित बाल ॥  
रूक्कहि भवन ससार सोर । डुक्कहि फनिंद करनाइ घोर ॥  
मुक्कहि अजाद महि सिंधु मेर । दुक्कहि विवांन चढिके कुबेर ॥  
भुक्कहि विरचि कर खिचि भूक । लुक्कहि तिलच्छि आतंक कंक ॥  
सव सभा जोरि परतापु साहि । नहि हिंदु जोन सम होन ताहि ॥  
सिर आतपवु आसन मयद । चल चालु चारु चांमर ठयद ॥  
तम तुच्छ तीनिगुन सुच्छ अग । उर मुत्तिहार जन धार गग ॥  
गहि गदा हत्य मनमत्य गात । कसि के क्रिपान अरिथान गात ॥  
जमडाढ वधि जमडाढ रूप । भुज दच्छि वाम अन्नेक भूप ॥ २४४ ॥

### दोहा

भूपनि भूप अनूप गति, पड बस विश्रामु ।  
गोपाचल पति अचल रन, दच्छिन भुज प्रभु रामु ॥ २४५ ॥  
सुनु सपूत ढिग साखां, तोवर तिहुं पुर कित्ति ।  
दिल्ली सुर कुरु जावलो, दस दिसि गुन अनमिति ॥ २४६ ॥

### गीतामालती

अनमिति कित्ति पवित्त अतर, रामु दच्छिनई भुजा ।  
महराजु राजुतु पंडवसी, रान रूख मुख रव रुजा ॥  
उत सभरेस नरेसुर, सग्राम राउ रजप्पती ।  
चिरु चंद्रपाट पगार रच्छकु, गांन कित्ति गजप्पती ॥  
दलपत्ति नंदु गयद गजनु, भार भंजन साहिनो ।  
चहुवांन रांन घुरा घुरघरु, इक्कु भर खिति खडनो ॥

पतिसाहि सालु विसालु द्वे कुल, चालु पार परदल ।  
प्रतिपालु स्वामिघरमु धावनु, धारु वीर बलीवल ॥२४७॥

### भुजंगीप्रियात

बलवीर भाला विराजतु वीदा ।  
सुने नाउ जा सूर के पूर सीदा ॥  
सहीथभु माना मड्यो मेरु मानो ।  
पुहमीति डूगा पवारं वरवानो ॥  
तिही मड मांडन क्लंपा सुतनं ।  
उरं सुद्ध स्वामी तु सोई उतनं ॥  
वरवीर वीरमनंद प्रताप ।  
कमघुज्ज के धाम स्वामी न जापं ॥  
मुत जेमला रामदासं रठ्योर ।  
पर भुमि जाकित्ति पाठ पठ्योरं ॥  
बली बागरी वीर चोहानु नाथा ।  
दुलीचा दुवीचा लरे वोथि वाथा ॥  
रुखं रान रावत्तु मीसोदु नेता ।  
चमूं साहिकी वाहि जाने प्रचेता ॥  
पवार पहार मुमा रखख सूव ।  
सभा रान की जान धीरज्ज धूणं ॥  
भर भीउ साडा सुता डोडियां को ।  
हित स्वामि तजावर वीरु नाको ॥  
मह मूडु पठानु तठान वेळ्यो ।  
सुनें साहिकी बात को गात अेळ्यो ॥  
तहा सेरखा खान को चाहवान ।  
लखे लोइन देत आ रानु मान ॥२४८॥

### दोहा

रांनु मानु छिन छिन करे, खेत जेत खग वारु ।  
तारा चहुँ सूरजु तहा, खडन तने पँवारु ॥२४९॥

### पद्धरि

परमिद्ध बीरु बीरे पवारु । खल खग्ग मग्ग खंडन गवारु ॥  
 चहुवाँनु रानु भरु बिजयराजु । अरिजन विहग कहूँ अंग वाजु ॥  
 पुरबिया वस आलमु रठ्योरु । पर अनी पिखिख भरु भिखिख भोरु ॥  
 परिहार पच्छि सेहूस कज्जु । सुनि नाउ ठाउ अरि सजे सज्जु ॥  
 अचला गुपालु कल्यानु मानु । परचड वस चोडा गुमाँनु ॥  
 भरु भाँनु माँनु सोनिंगरे सु । समानु रानु अपफँ असेसु ॥  
 निसि द्योस अंग संग जग जापु । मरजाद मेरु मामा प्रतापु ॥  
 अति अंगमान आजान बाहु । अमरा कुमार अरि देस दाहु ॥  
 परताप इद्रु सुर सभा भूप । अधिकै अधिवक तन तेज रूप ॥२४६॥

### सुरिल्ल

गजि भुजा गुजरात अकब्बर ।  
 बधि लए कर बीर सकब्बर ॥  
 फेरि चलयो करि फोज नियद्धर ।  
 सूकि सरित्त भरित्त घटे सर ॥२५३॥

### चौपाई

तिहि समअँ मति महा विसालू । मत्री खत्री टोडरमालू ॥  
 पेखन सो आयो परताप । रान खुमान मानु दिय आप ॥२५४॥

### दोहा

पाट पटवर पावडे, डारि वारि वित्तवाँन ।  
 भोजन धन सनमान भति, अति हितु राख्यो रान ॥२५५॥

### कवित्त

रान नरिद करिंदु, इक्कु राख्यो मुख अग्गह ।  
 लयो न टोडरमाल, चाल द्वापर वर जग्गह ॥  
 पच कोम पटुचाड, ताहि पातुल घर आयो ॥  
 चलि खत्री दर कूच कूच अकवर पद धायो ॥

सिरुवार सत्त घरि चरन सम, रम ठढोरहि नाइ सिरु ।  
दिल्ली सु पेम पूछतु तव रान खुमांन चरित्त चिरु ॥२५६॥

### चौपाई

संमत सम सोरह परतोस । चयो साहि सहु खत्री ईस ।  
राजा कहे सुनहु सुरितान । भैं सव सुने कुरान पुरांन ॥  
अंसो भयो न व्है है आनु । जीसो जग पर पातलु रानु ॥२५७॥

### कवित्त

धरमराज सम सत्ति मत्ति दध्धीच दत्त गत्ति ।  
पुरिखारथ जस रत्थ भरथ भर पंथ भीम भति ॥  
अहकार दस माथ पेज रघुनाथ कहै कवि ।  
विवक्रमु भोज करन्नु थान हिंदवान जानि रवि ॥  
राजाधिराज राजानि मनि उदेसिधु खु मान सुव ।  
नन कक सक आतकु मन भेदपाट आघाट भुव ॥२५८॥

भुवपत्ती छत्री सु वरी तोवरु त्रीनेतु तह ।  
गोपाचल थल नाथु माथु कुरु पड मड मह ॥  
रामसाहि राजाधिराज सिरताजु खाड नव ।  
ता गुन गुनन समत्थु सेसु के व्यासु व्यास भव ॥  
तिहि साँग पुत्तु अदभुत्तु इकु सूरु साहिवांहनु सुवर ।  
मानतु रानु प्रभु थान करि देत मानु दूख्लै न कर ॥२५९॥

### चौपाई

सुनि पुनि अलपु जलपु कहै साहि । दिली महि दुखु न दिखावे ताहि ॥  
आंन बहुत आखी सुविहानु । इक्कु राउ आडो चहुवानु ॥  
बोल्यो तो न हिमाऊ वापु । गहि गजो न जोन परतापु ॥२६०॥

### कवित्त

गजो रानु खुमानु, कहै मुख साहि अकब्बर ।  
सकल भूप बस भए, नही बस रानु सकब्बर ॥

भुमियाँ के परधानु, थान दै या दिन राखै ।  
 मूँछिनि मर धरि हाथ, नाथु दिल्ली को भाखै ॥  
 जीवन्तु जिम्मि मभह गड़ों, ज्यों न दलौ परताप दलु ।  
 सग्राम राउ सग्राम कों, इक्कु खित्ति खटकतु खलु ॥ २६१ ॥

### दोहा

खलक सुनत आई खबरि, करी पुकार पुकारि ।  
 रांना प्रबल प्रताप ने, दीन्हे देस प्रजारि ॥ २६२ ॥

### कवित्त

जारि बारि जालोर, ओर आभा करि डारिय ।  
 कोट ओट डिढ ढाहि, भीति भीतिनि सहु पारिय ॥  
 खहरि खम खन ढहरि, बहरि घर घूम घूमि मचि ।  
 फौज सिरोज फिराई, फूकि पूर फोरि तोरि तचि ॥  
 परताप रान परताप करि, भरि परताप प्रचड पहु ।  
 उडि खेह खित्ति खहलोकु, मुदि खंख भख महनत तहु ॥ २६३ ॥  
 कहइ साहि महमदु, जलालु जरि ज्वाल अकबबर ।  
 पकरि लेऊ परतापु, आपु गहि चापु सकबबर ॥  
 तोवर पर गज घट्ट ठट्ट फेरों फल अपफों ।  
 चकचूरो चहुवान, चित्ताचिता न तरपफो ॥  
 गढ मढ गिराई करि धूरि, घर घाँम घाँम घन कट्टिहो ।  
 सग्राम राउ सग्राम कहु, गाहि ताहि तन गट्टिहो ॥ २६४ ॥

### साटक

सोरठुं मरहठु मठु करिय, पैठानं ठठ्ठाठिक ।  
 कै कठुय कठेरियां ठट ढिला, रठुग रिठ्ठाधिक ॥  
 का भोजं करनाट कच्छ कदल किर्किधि विंध्याचलं ।  
 गजि मे गुजरात गौर गरुन घघूनि सिंधु बलं ॥  
 रुमी भुमिय भूमि भारि भगरं भभोरि भार खड ।  
 रोह कोह विछोह पीयत्तिय लोहव लोहं डडं ॥ २६५ ॥

पुवेयं परदेस पछिम मही पंचाल चंचालयं ।  
 अगे वांग कल्यांग अगि दगियं तिलिग मंतालयं ॥  
 मारुण मुलितान मालवलथं खंडेय मंडोवरं ।  
 उड्डोस गुडवांन मान मालियं मल्लार छडोवरं ॥  
 भज्जि भखर गखरे खग मगं गंजे अगंजे भर ।  
 सोहं साहि जलालु सालु सकल किती कराल धरं ॥२६६॥

### दोहा

ज्यूं हाटे पर की पुंजी, मींडनु, हत्थ जुंवार ।  
 डरियो कर मींडनु फिरै, कलमलि कंजक वारू ॥२६८॥

### दोहा

खल भल हल दल सजतकी, सब जन तन मन काज ।  
 रखत वखत उदमान निजु, सकल रहे सजि साज ॥२७२॥

### भुजंगीप्रियात

मतंग उत्तम सजे साहि गाजो ।  
 लखं लोइन जाति औराव लाजी ॥  
 किधौ पाइ पंख कुल अठु खाए ।  
 किधौ सद्दल बद्दलं स्याम आए ॥  
 किधौ पावस मावसं पूत जाए ।  
 किधौ अजन मंजन मजि लाए ॥  
 किधौ दिग्गज नेक रूप दिखाए ।  
 किधौ काल के बाल हवै क्रोध धाए ॥  
 तम ताम सतेज ओतार पाए ।  
 किधौ कज्जल कूट के जोट ठाए ॥  
 किधौ सिण्टि की स्यामता के बनाए ।  
 किधौ कुड चडी परीयो सुनाए ॥  
 भई ईस को रीसता के उपाए ।  
 बडे कोट सजोट तार्ते लुपाए ॥



किधौं कालिका सुंभ नीसु भ छेह ।  
 तहा रोस दोस धरी जांनि दैह ॥  
 जिन्है धावत ठावत पाइ पब्बै ।  
 नही चारु चिन्ह भए भूकु सबै ॥  
 धरा धधरै न धरे धीरधारी ।  
 धुरा लाजके साजकी दूरि डारी ॥  
 लसी दत की कति रत्ती न हीनी ।  
 कुहूने किधो चडिका चोरि लीनी ॥  
 किधो घोर अघेर की भीति बड्डी ।  
 ससी कौमुदी की खुटी तठु गड्डी ॥  
 चुवै पाट चोहूँ बसी बोह बाटं ।  
 चरखी दुखखी निरखी अघाट ॥  
 सदा सघ बधंति अदू विराजे ।  
 मद गंद अंध छपे छांह छाजे ॥  
 गहै खिति उखवारि डार न कज्जे ।  
 परै छार हत्थ उछारे तिखज्जे ॥  
 सनेन वने अखि ढंकी उछारी ।  
 लसी लेस मीरेस मीरासि नारी ॥  
 घन घूघर घोर घटा ठनक्क ।  
 कपी मड मंदि ति नैरी कनक्क ॥  
 भलक्कति भूलं दुक्कल कसब्बी ।  
 लखे कोतिकं मीर तज्जी तसब्बी ॥  
 लसे लाल ढाल मुरा तब्ब माही ।  
 झाँडा झाड डड सु सोमा सराही ॥  
 मनो तार खज्जूरि सम्मेत सैलं ।  
 चलै गैल मानो दलै ओनि ओलं ॥  
 सितासित पीत रत कीर पखी ।  
 वनी वैरखं वीजु आ भा असाखी ॥  
 सुनै गाज लाज समुद् जलद् ॥

भनै उप्पमा को नही मासु भद्दं ॥  
 लरै लोपि तो काल कुंचालु पारें ।  
 मही मदरं मेर को फेरि डारें ॥  
 सदा पूर सिद्धर भाल विसाल ।  
 मनो स्याम राती मडी मेघमालं ॥  
 किधौ भानवी भारती भोसु मेल ।  
 किधौ दामिनी दाम जीमूत भेलं ॥  
 इसे बीस हजार गे इक्क अगं ।  
 लगै माम मे कोस द्वै नीठि मगं ॥  
 कर कांन पोगं परै टुटि पव्वै ।  
 उडै तूल फूल समदेव सव्वै ॥२७३॥

### कवित्त

उडत देव दिग्गज अछेव अहमेव टेव गत ।  
 बुडत कूट चपि चारि खूँट छूटत अछूट सत ॥  
 जुडत जिच्छि नन सकत गच्छि कह रच्छि रच्छि हर ।  
 खुडत सेखु धरिआनु भेखु कलपत लेखु थर ॥  
 धर धरि धरनि धीरजु तजि डर हरि टुटि पतनु नभु ।  
 भर भरि विरचि यो उच्चरै थभि थभि कूरंभ प्रभु ॥२७४॥

### त्रोटक

कवि कोनु अकव्वर सेनु गने । सव सोभ कहत कहे न बने ॥  
 सवते पहिले सक सैद सजे । नग नाग डरान निसांन बजे ॥  
 कांस राग अदाग वखत्तारय । नहि आवत मान चखत्तारय ॥  
 दसतांन वित्तांन वनाड वन । पहुँची पहुँचेनि सुठोक ठन ॥  
 जरि जूसन मूसन हूर हिय । अन भग अगा अग सग किय ॥  
 जिरहे तिरहे जिय व्हे जतन । जनु कट्ठण फेरि चले रतन ॥  
 मन मनिय इक्क हजार मुखी । सजि टठुर टोपनि ओप सुखी ॥  
 सजि नेत सचेत ति चामरय । गज गाह अथाह ति डामरयं ॥  
 टडया वनि भिड भँडा अटर । कर कुत कमान कसे कटरं ॥

तरवारि तरक्कस तीर तह । जमुवा जम डाढ जमूर जह ॥  
 तुपक दुपकपनि सपिति सी । नव नारि लई नभ कंपनि सी ॥  
 सजि खान उजोर तिमोरखडे । लखिये चख अग सजोव गडे ॥  
 सजि कूरँभु मानु अमानु कय । जिहिँ पाइय पुव्व अपुव्व जय ॥  
 गजराज विराजत अग गजे । भहराइ भ भीखनु भूपु भजे ॥  
 चढिके परचड चले चकता । कुल दानव देव लखै थकता ॥  
 उजवक्क अतगति खग खरे । सरवानिय पनिय अग सरे ॥  
 अन नढ्ठ पठान कठान अग । किररानिय ककर नेम नग ॥  
 चढि गखर गुंगति डुगर से । गहि खग खँधारिय धीर धसे ॥  
 खुरसानिय जे मुलितानिय के । रिपु राह रुहिल्लरु रुमिय के ॥  
 नहिँ मात मयान मयाननि मे । फिरगी फुनि सार सयाननि मे ॥  
 हवसी अवसी सुनि हल्ल हक । तन पावस मावस रेनि तक ॥  
 जटि तेष चले सक सेख जदे । लहु दीरघ लादिय लोह लदे ॥२७८॥

### दोहः

लोह लदे जवनी जदे, पारसि वदे प्रवीन ।  
 कजलवास कस काबिली, कवो स्वाँमित लीन ॥ २७९ ॥  
 रावन राम मडी मनु देव दनो कुर-पड ।  
 रान पता पर पखरे, अकबर भर बलिबड ॥ ३०१ ॥

### वचनिका

जुरन जग अकबर अनभंग । दिय डेरा अजमेरि दुरंग ॥  
 अद्व निसा ऊरध आनदे । खाजु खिदिरि अकबर भर वदे ॥  
 करि अरदासि पास ही सोयो । सपने खाजु मोनदी जोयो ॥  
 भई अवाज खाज दरिगाह । ले ले जिमी जिती चित चाह ॥  
 पुनि सुनि जव पूछै तव एक । हमो कहाँ सो सुकुनु विवेक ॥  
 करो जग घट्ट कुम्भु कुम्भारी । तवन अवन वम रानु तुम्हारी ॥  
 सुनि धुनि पुनि जप्यो मुरितान । अदर तलव नही कछु आन ॥  
 गडो गोर जीवत सुनि माई । के गहि देहु रानु मो ताई ॥

पीरु कहै सुनि साहि दिवानै । ना तुम गडो न गजहु राने ॥  
सब मदार साई के मत्थे । आदि न अय आदम के हत्थे ॥  
जाग्यो भरकि साहि भुनसार । चित्त व्यापी चिता वेपारं ॥३०६॥

### सोरठा

चोबीसा चीतीर, उदैसिघु अकवरु अरे ।  
चोतीमा कलि ओर, चडि प्रताप जल्लाल दो ॥३०७॥

### पायाउल

सुन्यो साहि अजमेरु अकवरु । दल वल प्रवल दुरिद अठ्ठरु ढरु ॥  
इत भर रान धान थिरु साध्यो । मोगरु घाटु ठाटु वर गध्यो ॥  
जीन साल सजि जामिनि जग्गे । निहस निसान वीर रस वग्गे ॥  
सिलह सहित भख भोजन पावत । सिलह सहित निसि नैन लगावत ॥  
कहै सारिवाहनु तोवरु तव । गरव न होहु सरबु गाफिल अव ॥  
खीची रामु सरिमु तिहि भाखी । एकलिंग अव लहु रम राखी ॥  
अकवरु सबरु सदनु चडि आयो । करहु सु करहु वेगि अभि भायो ॥  
आपु दिवान कान गुदरावहु । फुनि सुनि ज्वाबु वेगि फिरि आवहु ॥  
रामा कहै भार तुम पितु भुज । आपुनु चलो कलो करिबे सुज ॥  
तिहि छिन तुरी तीनि पल नाए । द्वे असवार द्वार नृप आए ॥  
सब अरदासि दासि सहु जपी । तिह प्रभु पातल सरिसु परंपी ॥  
ज्यो मृगु मृगी जूथ महि गढो । त्यो रनिवासु पास नृप ठढो ॥  
ज्यो अछरी वीचं आखडलु । त्यो पति आसु पासु त्रिय मंडलु ॥ ३०८ ॥

### दोहा

त्रिय तन नैननि सेन दै, दीनी सब बहुराइ ।  
करि सनमान कुंवार को, भीतर लये बुलाइ ॥ ३०९ ॥  
पानदान आगे धर्यो, अरु घनसार बदाम ।  
कहै रानु कहो कुँवर जू किहि तुम आये काम ॥ ३१० ॥

### चौपाई

रान खुमान बैन सुनि कान । बोल्यो तव सारिवा सुज्यांन ॥  
 वव्वर कुल रवि अकबर साहि । चढि आयो चित चितन काहि ॥  
 सकतसिंह तिन संग सहाइ । कूरै भु मांनु अमानु कहाइ ॥  
 ज्यो जोखै अहि पति सिर भारु । पावे सो अकबर दल पारु ॥३११॥

### कवित्त

सुनि आगमु सुरितानु रांनु पश्तापु आपु हैसि ।  
 कह्यो कितो जवनेसु कहा करि है सुदैस धसि ॥  
 सकतसिँधु संग खान मान सजि कोटिनि लावे ।  
 सपत दीप नवखड मंड सत्यइ धरि धावे ॥  
 पद्धरे खेत तो खग्गु गहि नेत बंध खल खंढि हों ।  
 राजाधिराज रन राम वर जुद्ध सनमुख मडि हों ॥ ३१२ ॥

### वार्ता

यह कही श्री दीवान नगरै दीवे को हुकम दीनो । सिलहदारु हजुर ही  
 बुलाइ लीनो । असवारी के घोरे मंगाए । सब ठाकुरनि के बिलहने पठाए ।  
 आपुन सनघवघ भए । तब कर जोरि कु वारु तोंवरु सारिवाहनु कहत भए ।  
 यो श्री दीवानु कहा लरिका को डरपाऊँ । आपने इतवारी मत्री बुलाऊँ ।  
 दीवानु विचारि हैं सुकरि हैं । पुनि विचार की कामु विचारि ही  
 सुघरि हैं । यह सुनि धुनि सुनि पुनि दीवानु महाराजा राम साहि के पधारे ।  
 राजा जु सनमुख आइ पांवडे द्वारे । मन्दिर अन्दर ले सिधारे ॥३१३॥

### दोहा

बैठि तहां विनती करी, ही किनि लयो बुलाइ ।  
 आइसु डेड दिवान जू, सो सिर लेइ चढाइ ॥३१४॥  
 दोरि नकीव जहां तहां, खवरि दई लै नाम ।  
 मुनि घाए आए सकल, नृपति राम के घाम ॥३१५॥

### पद्धरि

सग्राम राउ संग्राम मेरु । अवनीकि आइ वैछ्यो कुवेरु ॥  
वर वीदु मानु भाला वईठ । पतिसाहि सोर लज्याय ईठ ॥३१६॥

### भुजंगी

तहां डोडिया भीउ हूगा पवार । परत्ताप भांने जु भो कोदवार ॥  
गुभ्यो संभरी सेरखा रान पास । चढ्यो चित्त चौंडावतं भाम भास ॥  
पता पूतु कल्यानु सग्यानु सूरु । दुरगू हरदासु चीहानु रुरो ॥  
सिजे खडनो हान चौहानु नाथा । भर भाखरोत प्रयागं समाथा ॥  
कमधुजु आलंमु जालिम्मु दंद । अरीहार ओनी परीहार नंद ॥  
करै सुद्ध टेहूहि मेहू कसांन । उठे हूदु आगे महगूदु खान ॥  
मुमा मानसिध उमा देह मानो । जूरे कृपु जैमालु खैमालु जानो ॥  
न हे वार पार कहे मडि नामा । भुवं भार कंधा परध्वानु भामा ॥ ३१७ ॥

### दोहा

भामामाह समेति सब, सुम्भट निकट नरेस ।  
सुर आये जनु अमुर वध, पुछन मंत्रु महेस ॥ ३१८ ॥

### चोपाई

राम नरिदहि पूछत रानु । करजुग जोरि कोरि सनमानु ॥  
परमराज तुम वसी पंडं । एक छत्र भुगतै अथखंडं ॥  
राजा जू जोई उच्चरें । सोइ हम हुंस्पार कै करें ॥ ३१९ ॥

### मुरिल

रान खुमान कहे ए वायक । उत्तर दीनों राम सु भाइक ॥  
मैं छिति छडी छोभ इही छल । आजु मुगल्ल इला अप्पर वल ॥ ३२० ॥

### दोहा

कांठो दे गिरवर गहो, माठो और विचारु ।  
फेरि घेरि चहु ओरते, मीरनि दे हे मारु ॥ ३२० ॥

### चोपाई

जितोक बुद्धि मेरे मन रही । तितो दिवान सरिसु हम कही ।  
अवजु विचार विचारह परे । सोइ खुमानु अहीरिवन करें ॥ ३२१ ॥

### दोहा

सुनि घुनि दुल्लहराम की, ताम हँस्यो सबु साथु ।  
दुरिद राम संकन लगै, पंकरि हाथ सों हाथु ॥ ३२२ ॥

विरध बहुतु जीयों चहें, ज्ञान अज्ञान अगान ।  
विनु मुगलनि निरवीर धर, आजु सुनी हम कान ॥ ३२३ ॥

रार बिचारि सबै रहे, क्यों न विचारी राम ।  
राजा पीठि रहाइ कै, निज जुरिये संग्राम ॥ ३२४ ॥

### चोपाई

यह सुनि पुनि राजाउर भख्यै । बहुतु जिये सोई बहु लख्यै ॥  
वहुरि बंदी हों मते अवूझू । प्रात दिवान पारिये जूझू ॥ ३२५ ॥

### दोहा

यह थपि अरु अरचै सबै, जपि जुहार दिय पान ।  
करि हँजूर गजु वाजि बिम, दरस मदे दीवान ॥ ३२६ ॥  
सुनी दोत के होत ही, जग रान सुरितान ।  
सूरनि के मुख नूर चढि, कातर नर कुम्हिलान ॥ ३२७ ॥

### कवित्त

जिहि रन राम नरिद दद हिमाऊ भज्यो ।  
वर हाडिया नसीर खांनु गहि खगह गज्यो ।  
सेरु साहिदलु दाहि ठोर खुटहार छुड़ाई ।  
नरवर करिवर वधि सेन अरि सीत जुड़ाई ।  
समसेर खान समसेर हनि रिवनि पव्वाउ पछारि पर ।  
सोपर उपाटि अरि काटि कर डाटि मीर घालेति घर ॥ ३२८ ॥

### दोहा

तिहि रन राम नरिंद मन, यह धारी निरधार ।  
सोस समपो रान घर, ईसु लहें उर हार ॥ ३२६ ॥

बाबू वीरू भदोरिया, फुंनि फदुलु चन्नभुज्जु ।  
खांडे राइ बुलाइ लिय, बुद्धसेनि रवण्ज्जु ॥ ३३० ॥

### वाधा

सकसिधा राठ्यौर समत्यं । ऋणदासु वागरिया तत्थं ॥  
डुंगर पित्थु तित्थु तिन साई । कीरति सिंघु सिंघ सम धाई ॥  
द्योलति खानु मानु दै लीने । नृप कुल करनु चरनु आधीने ॥  
ईसर अर पृहुकर पुनि आये । सुभट हेम कट्ट मुकट तहें ठाये ॥  
तह तोवर भगवान भुजाल । चिडवर वाच तु राचित चालं ॥  
अर राघो तोंवर तह बोले । जिनके वचन रवन अन डोले ॥  
अभैचद अभिदंद उछाह । विलहनिया तिन विरतु पुछाहं ॥  
हट्टु तने छीतर चहुवानं । देवीचंदु संभरी सानं ॥  
अर तोवर तिरनेतु दुरग । सुमिरतु वासु विचार सुरंगं ॥  
मिश्रु कल्यानु ज्ञान गुन मेर । तिनि सुं कहे रामु तिहि वेर ॥  
सबु सनमधु सुद्ध जोधाऊ । पाइनि परि सारिवा रहाऊ ॥  
ईसर तुंगु मिश्र कल्यान । पहुँचे जहँ सारिवा सुजानं ॥  
अति सादर आदर कर कीय । बैठत दूत वरावरि लीयं ॥  
कुँवर कहे किरपा क्यों कीनी । दाखहुँ सिख सुराम नृप दीनी ॥ ३३१ ॥

### दोहा

अपत दूत सपूत सुनि, सुनी पुरानी सारिवा ।  
राजमड भुजडड तो, पड वसु वर राखि ॥ ३३२ ॥

### गाथा

जग्गै रानु खुमान । भग्गै चोर रोर भय मान ॥  
वग्गै नद् निसान । डग्गै मग्ग कातर चित्तं ॥ ३५६ ॥



### भुजंगीप्रियात

डिगे कातर चित्त मित्त उदोतं । जंगो रानु खुम्मानु प्रभात होतं ॥  
 हुकंमं भुकमं निसानं वजान । महाघोर सौरं समुद् लजानं ॥  
 सजै आपु सनाह रनाह काजं । मिली मुच्छ भोहं अरोहं तवाजं ॥  
 वटै वारगोर जटे साज सोह । ठटे वखखरं पखखरं मुख लोह ॥  
 पटे पाट दबोट अबोट बंधे । चढे जत्य तत्थं कडे उद्ध कंधे ॥  
 जिन्हें धावत धाप व्हे की धरनी । लजी चंचला चचलाई चरनी ॥  
 हठे होड धावे हरावे हरनं । नठे जान पावें न पखी सरनं ॥  
 हनू फाल उच्छाल पुछाल थोरे । पवन गवन मन मान मोरे ॥  
 पनंगारि द्वै चारि जो देह धारे । परे होड पूरी व्हो नोठि पारे ॥  
 सज्यो राउ संग्रामु संग्राम सूरं । मनो उप्पटे अबु अबोधि पूर ॥  
 दयो दुंदु भी घाउ ढोलं ढनंकं । सहनाइ सुनाइ सिधू सनंकं ॥  
 भहनाइ भेरी नफीरी निसानं । चढे बीदुं मांना सु भ ला रिसानं ॥  
 सुनी राम राजा चढ्यो रानु साई । हुवं सोरु हीसान नीसान घाई ॥  
 डडा फूंक हत्थ जिते घान वाजे । तिते वज्जं वज्जिय रामु साजे ॥  
 रवद्दु सवद्दु तिनद्दु अवाजे । किधो एक ही बार तीलोक गाजे ॥  
 चढ्यो राम राजा वढ्यो तेजु गात । घनो कोनु जपे मनो भानु प्रातः ॥ ३६० ॥

### दोहा

प्रात पतग समान मुख, रातु चढ्यो मुख राम ।  
 सुत समेत आवन कहै, रान स्वामि के काम ॥ ३६१ ॥  
 फोज चली मुख फोज के, इलि पुहमी परि पावु ।  
 डग मग नग जग मे मडी, ज्यूं जल ठाली नाउ ॥ २६३ ॥

### कवित्त

डगमगातु ब्रह्मडु भड भोडर प्रदीप सम ।  
 डगमगातु हय सात जात आवंत ठडुकि ठम ॥  
 खगमगातु खन मुख जुद्ध उर सुद्ध विलोकन ।  
 सगमगातु सरकतु सेसु धुकत्त जनु धोकन ॥  
 परताप काज परताप कहै, राम साहि तोंवर चढत ।  
 भमकन वाज चमकत मुनि, जुगिनि गन जय पढत ॥ २६४ ॥

### दोहा

रान जुहार्यो रान नृप, सुत अरु सुभर समेत ।  
जिन आयो राजा द्रुपदु पडव परि करि हेत ॥ ३६६ ॥

### कवित्त

सज्यो रानु संगामु नामु जी जीह अकव्वर ।  
पंच सत्तु असवार सार की धार सकव्वर ॥  
सव वर वखतर वध वंघ सव वध इक्क मन ।  
ज्यो चढि आवै कालु चालु तो परिदे ईरन ॥

अरि दलन राइ दलपत्ति सुव ध्रुव समान चहुवान चित ।  
संभरि नरेस भुज सेसवर सारु भारु स्वामित्त हित ॥ ३६७ ॥

### दोहा

पडव सत्तु असवार सो, भाला वीदा मानु ।  
पच्चु सत्तु संगाम नृप, पचसत्तु प्रभु रानु ॥ ३६८ ॥

तिहु पुर कपि दयाल कहि, ज्योतर चल दल पानु ।  
हरदी की घाटी घस्यो, जिहिँ दिन पातलु रानु ॥ ३७२ ॥

### कुंडलिया

बाहुरि कहै कुँवार सो, सुधि आयो नृप राम ।  
तुम बहुरो हठु जिनि करो, हों आऊ ह्यां काम ॥  
हो आऊ ह्यां काम, सकलु कुलु सुत पुत्तियारो ।  
हम भूभक्त तुम फिरो, अबु याको न विचारो ॥  
अबु न या को पूतु, पूत बालकु हठ आहुरि ।  
बहुरि जुद्ध बहुवार, सुद्ध मन अवके बाहुरि ॥ ३७३ ॥

### दोहा

कहै सारिवां तातकत, कातरु बोलो बोलु ।  
सो प्रभु सुत को राखि है, ज्यो राखे भूगोलु ॥ ३७४ ॥

### दोहा

यह कहि हंकि तुरी चले हले दलेसुर सेल ।  
सिधु थले दिग्गज गले मले हत्थ दनु ऐल ॥३७६॥

### कुंडलिया

लघु दलु देरिव प्रताप तँह पूछतु राजा रामु ।  
तुमकि कहि तोंवर तहां मोहि मरन सू कामु ॥  
मोहि मरन सू कामु मतो जाने तिन पूछो ।  
सुत सुभरनि सम लहो होहुँ गरुवो कै तूछो ॥  
इच्छा होई सु करो न तो सुमिरो हरु बक अधु ।  
दानो सुन्यो कि देउ हो न जानो दीरघु लघु ॥३७७॥

### दोहा

महिला मिलनु दुल्ल भु हुवरन गहिला मन लाज ।  
खमसि खेत खम्हनोर के, दुहु दल बहुल अवाज ॥३७८॥

उत अकवर बब्बर तखत, बखत सबर उर रीस ।  
आइ अनी मुख पर उठो, हय हजार पचवीस ॥३८०॥

जिनके मुख लाली चढी, चढे सुने सुरितान ।  
ते अपने मुख राखियो, लाली क सहि दान ॥३८१॥

दस अकब्बर बब्बर दुरस, संग सहस दसमान ।  
चढि आवै राजा कहे, तस दनु समयो रान ॥३८२॥

यह कहि राम नरिद ने, हिय सुमिरी हर सिद्धि ।  
जो सुमिरी भारथु मँडे, पारथ भर बहु ब्रिद्धि ॥३८३॥

कोका कहरु अजीजु उत आन मानु कूरं भु ।  
सीद सहित पैदल सहित कियो जुद्ध आरंभु ॥३८५॥

चक्रव्यूह अकवर चमूं, अभिमनु तुंगु कुँवारु ।  
भर भादो जलधार जिमि, सिर पर वरस्यो सारु ॥४०३॥

अभिमनु मार्यो खटु सुभट, चकावूह चकत्तूरि ।  
 सब मिलि मार्यो सारिवा, असि सर सावल झूरि ॥४०४॥

वाह वाह अकबर कल्लो, रह्यो सारिवां खेत ।  
 राम साहि असि वरु गह्यो, कोह छोह सुत हेत ॥४०५॥

असि सावल सों कटि पर्यो, धर्यो परगन घाइ ।  
 तिनहि न रत्तो सारिवां, हरिव मिल्यो हरि राइ ॥४०६॥

फेरि करी एकय फिरि, फोज अकबर घाइ ।  
 सकल सिकिलि हिंदू तुरक, आइ परे अर राइ ॥४१२॥

दोरत राम नरिंद पर, नेकु न करी अवार ।  
 खेलत होरी खेल में, ज्यो गढ़ु लेंन गवार ॥४१३॥

गिरि गोवरधनु रामु नृपु, अकबरु डद्रु अपारु ।  
 तुपक तीर तरवारि तह, सेल सूल जलघारु ॥४१४॥

### मोतीदांस

परै जलघार पहार अपार । परै तिहिं ताक सिरप्पर साइ ॥  
 रूपे रन रामु नरिंदह पाइ । घपे घरि सैद अरे अर राइ ॥  
 रूपे चकता सकता गहि सार । कुपे तह कोकु अजीजु अपार ॥  
 कुपे अमु रख्खन कूरमु मांनु । करे असि सेल सकत्तिनि घांनु ॥  
 लई तुरसैं उरसों चिरु चपि । करै घन घाइ डरै कवि जपि ॥  
 हलक्किय मीर किलक्कि हुकारि । रलक्किय गोलक गज्जिय नारि ॥  
 खलक्किय खान निरवंग निवान । गलक्किय पेठि सुपेठ पठान ॥  
 भलक्किय खग विलगल टोप । चलक्किय चपि करिंदनि कोप ॥  
 ढलक्किय ढाल बलक्किय बाहु । घलक्किय घाइ अघाइ उछाहु ॥  
 उठ्यो तव पातलु रानु रिसाइ । गुठ्यो गहि तेग गयद निजाइ ॥  
 करै भुजडंड निवंड भसुंड । परै कटि सुंडय डुडय मुंड ॥  
 भरैभर ओभर तु ड निभुंड । विहडतु रानु मचे भकरुंड ॥४१५॥

### दोहा

मिरत रान भकरुंड मचि मीर समार्यो सारु ।

भुजवर आयो भीर को भाऊ कोपि कुंवारु ॥४१६॥

### भुजंगी

भगी भीर भाऊ श्रगाऊँ उकढ्यो । महा मोर मां भीनि के मुख चढ्यो ॥  
जिते जुध्ध जोधा जुरे स्वामि कामा । पचारे तिन्हे पेखि चारनु रामां ॥  
लरै रावु सग्रामु सग्राम वार । गनै कौनु जोन वहे रत्त खारं ॥  
लरै वीदु मानां खुमांना विलोके । करै एक के द्वै गजं ठट्ट रोके ॥  
लरै हंकि हम्मीरु गोइंदु घाये । भरै कुंड चडी उभै भीव जाये ॥  
लरै मानु सोनिगरा रांनु लखखे । गयदं हयदं मुखं तेग भखखे ॥  
सिरद्वारु सेहू सिरघ्वार सोधे । सवै सार अके तिवंके विरोधे ॥  
लयो लोहु गोपाल खैकाल काल । गयो साहिलों गाहि ढारतु ढालं ॥  
रूप्यो रामु राठ्योरु ठेलै करिद । बदै मार मार विदारे नरिदं ॥  
कुप्यो संभरी सूर सनाह कट्टे । डिगे मीर तूरभु कूरंभ कट्टे ॥  
दुरगू दुरग्गा दुषिदं गिरावे । करै चूर संमूर हूर घिरावे ॥  
मिरै भाखरोत प्रयागं प्रचड । नगा नाग खडे वहिडे भसुंडं ॥  
जगी खग ज्वाल जगा जोन गजे । रनं रांमु चोडा तनों भीर भंजे ॥  
मड्यो मेर मेरा तनो मीर मारै । तहा मांनु सीसोदिया जोन तारै ॥  
खल खान को खेरखां खेत खडे । सरं डंम्हरी सम्हरी रारि मंडे ॥  
लर लोह नेता हने नेत बघ । लुटे एक भुंभी उठे को कमघ ॥  
भिरै भांनु आंमांनु रान निहार्यो । भिरै भीउ सांडा तने भड्डु फारयो ॥  
अमू चूह चोडा हरो सूर सांगा । परै वत्थ नाथा करै पंति पांगा ॥४१७॥

### दोहा

कीरति सिध रठ्योर तव विने कशी कर जोरि ।

मेरो कोतिगु देखि द्विग जुरिये जग बहोरि ॥४२६॥

### कवित्त

रग जुर्यो कीरति रठ्योरु उठि वाग लाग वजि ।

गजि गंजे गजराज सीस सिरताज कध तजि ॥

उद्यम करत कमध कध देखै घर धावे ।

भक भक भक भभक्त रत्त भैरव रन गावे ॥

भयभीत भूत हरपूत सम भूम मयक सुमिरतु मृगु ।

मन नाथ हाथ कपत क्रमो माइ घाड मुंदेति द्विग ॥ ४३० ॥

### विराजा

द्विगन देव दिख्खे, भयानक भिख्खे । अर्भचदु ददुद, निकदे  
नरिदुद । अटे चाहुवांन लटे खानखान । भगू ईस जायो, घरे तेग घायो  
इते मीर मारे । तिते गैन तारे । रन रंस राघो, अर्यो अग आघो,  
चतुभुंज्ज चूरै, खिभ्यो खग भूरै । रिस राम दास, नरं नाग  
नास, दये प्रान दानं, गए भेदि भान, ॥ ४३१ ॥

### दोहा

प्रान दये प्रभु रान हित थान लहे हरि थान ।

तिख्खतवर तरवारि कटि दिख्खत पातल रान ॥ ४३२ ॥

रांन निरख्यो आपनो कटकु कट्यो चहुँ ओर ।

वान विखम वरसन लग्यो गहि कमान वरजोर ॥ ४३३ ॥

सादु करत सुर असुर जय, नादु करन मुनि आपु ।

जुगनि देति असीस मुख, जुग जीजहु परतापु ॥ ४५६ ॥

### कवित्त

जीजहु जुग परतापु तापु ता तनहि न लगो ।

जीजहु जुग परतापु पापु ता सुमिरत भगो ॥

जीजहु जुग परतापु आपु इकलिंग अगु विय ।

जीजहु जुग परतापु बापु हिंदवान अमल हिय ॥

परताप रान रनसिधु मथि सुजसु रेंनु लिय कट्टि कर ।

दिल्ली सु फेरि दिल्ली गयो वदतु कित्ति अनमिति बर ॥ ४६० ॥

सिद्धि श्री कवि दयालदास विरचिते महाराजाधिराज महाराणा श्री  
जगतसिंह चरित राना श्री प्रतापसिंह अकबर जुघ वरननं नाम ।

## कवित्त

यो परतापु खुमानु रांनु अमानु तपे यहु ।  
 सेसु गनेसु महेसु जपै जसु जासु वार वहु ॥  
 अमरु अमरु अवतारु कुंवरु हुव तरुनु अरुनु द्विग ।  
 आन पुरख दवि जाहि देखि मृगराजु जेमि म्रिग ॥  
 द्वे पुरस देह आजानु भुज, दुज दरिद दुख दूरि करु ।  
 अग्या सु तात ततपर सदा, सदासीस तेतीस वरु ॥ ४६१ ॥

## दोहा

सवरु सपूतु सपूतु लखि उर आंनि परतापु ।  
 अब बम कुंठु बसाइये जिय जपि अजपाजापु ॥ ४६२ ॥

## कवित्त

यह विचारि सुरसरी, वारि मजनु तन कीनो ।  
 पदमासन पव वेठि, पदम पाइनि मन दीनो ॥  
 त्रिकुटी अकुटी वीच अष्ट आवध घरु घायो ।  
 सजल जलद दुति स्याम, स्याम सुंदरु अभि भायो ॥  
 आकरखि अजनी कत कहु, परम हरखि मनमोहु तजि ।  
 उडि चलयो हसु सुमिरतु हरि परमहस जैह जाहि सजि ॥ ४६३ ॥  
 परमहस गति लहो, रांन परताप सस विनु ।  
 पुहप विण्टि वहु भई, व्योम मारग सुछद छिनु ॥  
 श्रुति सुंअति सब सोधि, कियो सनु उत्तर कारजु ।  
 परम पुराननि सारिव, भाखि ज्यो गम आचारजु ॥  
 उज्जरी कित्ति आभरनसजि, तीनि लोक विस्तरि रही ।  
 धनि धन्नि धन्नि गुनवान मुरव, सुख सुख मडित मही ॥ ४६४ ॥

## सारांश

राणा उदयसिंह की सोनगिरी (चौहान) रानी के गर्भ से प्रताप, भट्टियानी के गर्भ से सफतसिंह व राठौड रानी के गर्भ से पांच पुत्र—सगर, अगर सीहा व पंचायन उत्पन्न हुए। उदयसिंह अपने इन बलवान व योग्य पुत्रों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न रहते।

अपने पुत्रों को योग्य समझ कर राणा उदयसिंह ने योग ले लिया तथा योग विधि से प्राण-त्याग दिए। प्रताप उसका उत्तराधिकारी हुआ। प्रताप के दरबार में निम्न सामन्त थे—पाण्डव-वंशी स्वातियर नरेश रामसाह, उसका पुत्र शालिवाहन, मंभरी नरेश सप्रामसिंह, (सादडी का जागीरदार) बीदा भाला, मानसिंह भाला, डू गरसी, वीर कूपा का पुत्र, वीरम-देव राठौड का पुत्र प्रतापसिंह, (बदनोर के) जयमाल का पुत्र रामदास राठौड, बागड प्रदेश का वीर चौहान नाया, सिसोदिया रावत नेतसिंह, मुमारख का पुत्र पहाडसिंह पवार, सांडा का पुत्र भीमसिंह डोडिया, मुहम्मद पठान, शेरखान चौहान, खडा पवार के पुत्र ताराचन्द व सूरज, विजयराज चौहान, पूरबिया राठौड आलमसी, परिहार (प्रतिहार) सेहू, अचलदास, गोपालदाम, कल्याणदास, मानसिंह, मानसिंह सोनगिरा (प्रताप का मामा), व युवराज अमरसिंह।

गुजरात विजय के बाद जब अकबर वापस लौटा, उस समय उसका बुद्धिमान मन्त्री खत्री टोडरमल प्रताप से मिलने भेवाड आया। खुमान प्रताप ने उसका सम्मान किया। भोजन करवाया। प्रताप ने उसे एक हाथी भेंट करना चाहा, लेकिन उसने नहीं लिया। जब वह लौटने लगा तो प्रताप उसे पांच फीस पहुँचा कर चला आया। अकबर के पास पहुँचने पर खत्री ने प्रताप की प्रशंसा करते हुए कहा कि प्रताप जैसा राजा न तो हुआ और न होगा। वह अत्यन्त प्रतापी है। इस पर अकबर ने कहा कि यदि प्रताप को पराजित न कर दूँ तो मैं हुमायूँ का पुत्र नहीं। सारे राजा मेरे आधीन हैं सिर्फ प्रताप ही नहीं है। यह घटना सवत् १६३० में हुई।

अकबर ने सुना कि प्रताप ने शाही इलाके जला दिए हैं व जालोर को जला कर उसकी दशा दयनीय कर दी है। इसी प्रकार सिरोज को भी घेर कर जला दिया। इस पर क्रुद्ध हो अकबर ने कहा, कि मैं चौहानों को कुचल दूँगा व रामसाह तब तक को गज सेना भेज कर नष्ट करवा दूँगा। प्रताप के गले से धनुष प्रत्यंचा डाल कर पकड़ लूँगा। मैंने रूमी सू-भाग, भाड खण्ड (उडीसा) पूर्वी एवं पश्चिमी प्रदेश, पंजाब, अंग, बंग, कलिंग, तेलंग, मथर, मारवाड़, मुलतान, मालवा, मडोवर, उड़ीसा, गोडवाना, मालावार, गकवर, सौराष्ट्र,



महाराष्ट्र, पेठण, कम्बोज, करनाटक, कच्छ, कदली (नेपाल की तराई का प्रदेश), विध्य, गुजरात व गौड आदि प्रदेशों को जीता है ।

अकबर ने अपनी सेना को तैयार किया । इससे सर्वत्र खलवली मच गई । अकबर की सेना में कवारी, खुरासानी, मुलतानी, रूहिल्ले, रूमी, फिरगस्थानी, हुन्सी आदि अनेक जातियों के योद्धा थे । अकबर ने अजमेर में आकर डेरे दिये । वहाँ उसने ख्वाजा मोइनुद्दीन की दरगाह में वदना की ।

अकबर ने सम्बन् १६२४ में उदयसिंह से युद्ध किया था । उसके बाद संवत् १६३४ में उसने प्रताप पर चढ़ाई की । राणा प्रताप के सामन्तों को जब अकबर के सैन्य पहुँचने की सूचना मिली तो शालिवाहन तैवर ने कहा—अब हमें गाफिल नहीं रहना है । जो भी प्रयत्न करने हो शीघ्र कर लेने चाहिए । सब ने मिल कर कहा कि आप राणा प्रताप के पास जाएँ व उन्हें परिस्थिति से अवगत करा कर आदेश प्राप्त कर लौटें । रामसिंह खीची ने कहा—आपके पिता की भुजाओं पर ही युद्ध का सारा भार है । दो सवारों को साथ लेकर शालिवाहन राणा प्रताप के पास पहुँचा । राणा उस समय रनिवास में थे । कुमार [शालिवाहन] के आगमन की सूचना पाकर प्रताप ने रानियों को संकेत कर विदा दी व कुमार को सम्मान सहित भीतर बुलवाया । कुमार ने प्रताप को अकबर के चढ़ाई की सूचना दी । इस पर राणा ने हंस कर कहा—अकबर शक्तिसिंह, मानसिंह सहित करोड़ों मुगलों को लेकर भी आवें तो भी हम उससे युद्ध करेंगे ।

राणा प्रताप रामसाह के निवास स्थान पर पहुँचा । रामसाह ने प्रताप का स्वागत किया व कहा—आपने मुझे ही क्यों न बुलवा लिया । आपका जो आदेश होगा, मैं उसे सिर पर धारण करूँगा ।

चोपदारों ने समस्त सामन्तों को सूचित किया । सूचना पाते ही समस्त सामन्त रामसाह के यहाँ पहुँचे । इस सभा में राव संग्रामसिंह, बीदाभाला, मानसिंह भाला, भीमसिंह डोडिया, डूंगरसी पवार, शेरखान चौहान, पत्ता का पुत्र कल्याणसिंह, दुर्गादास, हरिदास चौहान, नाथा चौहान प्रयागदास भाखरोत, जालम राठीड़, नन्दा प्रतिहार, सेडू, महमूद खाँ, महाराणा का माना मानसिंह सोनगिरा, कूपा का पुत्र जयमल व मन्त्री भामासाह आदि योद्धा उपस्थित हुए । राणा प्रताप ने रामसाह से सलाह पूछी । रामसाह ने कहा हमें पहाड़ों का आश्रय लेकर यवनों को घेर लेना चाहिए और उन्हें नष्ट कर देना चाहिए । रामसाह की यह राय सुन कर सब हँसे व बोले कि आप हमारे साथी होकर इस प्रकार मुगलों से डरते हैं । इस पर

नवयुवको ने कहा—यह युद्ध तो बहुत जीवित रहना चाहता है । हम युवक तो अज्ञानी व अवोध ही हैं, पर हमने यह निश्चय किया है, कि मुगलों से आमने-सामने रह कर ही युद्ध करने । राजा राम यदि न चाहें तो हरावल की बजाय चंदावल में रह कर युद्ध करें । इस पर राजा रामसाह ने कहा कि मैंने अपने अनुभव के आधार पर ही यह राय दी है । युद्ध का निश्चय करने पर राणा प्रताप ने सामन्तों का जुहार स्वीकार किया और उन्हें ताम्बूल दिये ।

प्रातःकाल युद्ध के नगाड़े बजने लगे । राणा की फौज चली । ~~अनेकों~~ योद्धा सेना में सम्मिलित हुए । भाला बीदा भी फौज में आ मिला । राणा का वह भयंकर दल खमणोर के मैदान में आ पहुँचा । इस युद्ध में महाराणा प्रताप की ओर से निम्न योद्धाओं ने भाग लिया—रामसाह, शालिवाहन, जावला, भाऊ, चारण कवि रामा, सप्रामसिंह, भाला बीदा, माना ( मानसिंह ), भीमसिंह के पुत्र हमीर व गोविन्द, सोनगिरा मानसिंह, सेढू, गोपालदास, रामसिंह राठौड, झूरसिंह चौहान, दुर्गावास राठौड, प्रयागदास भाखरोत, नगा, चूडा का वंशज जगा, मेरा का वंशज, मानसिंह सिसोदिया, शेरखा, नेतसी, भीमसिंह साढा का पुत्र भीमसिंह डोडिया, चूडा का वंशज वीर सांगा, नाया, कीर्तिसिंह व अभयचन्द । इनमें से रामसाह, शालिवाहन व जावला के युद्ध में काम आने का उल्लेख भी कवि ने किया है ।

## दीहा

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप ।

अकबर सूतौ ओभकै, जाण सिराण सांप ॥

धर बांकी दिन पाधरा, मरव न भूकै माण ।

घणा नरिबां घेरियो, रहे गिरंवां राण ॥

—पृथ्वीराज राठीढ़

राजस्थानी-काव्य

---

किसोरदास कृत

राजप्रकास

## परिचय

‘राज-प्रकाश’ के रचयिता किसोरदास हैं। ये दसौंवी शाखा के राव थे। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह [वि० सं० १७०६-३७] की इन पर बड़ी कृपा थी। ‘राज-प्रकाश’ के अतिरिक्त इनके अनेक फुटकर गीत भी मिलते हैं।

‘राजप्रकाश’ का रचनाकाल वि० सं० १७१६ है। इसकी एक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। ग्रन्थ में कुल ६१ पत्र तथा १३२ छन्द हैं। प्रथम ५६ छन्दों में प्रारंभ से लेकर महाराणा जगतसिंह [वि० सं० १६८४-१७०६] तक के मेवाड़ के महाराणाओं की वंशावली दी गई है, साथ में संक्षिप्त वर्णन भी है। शेष ७६ छन्दों में महाराणा राजसिंह के राज्य-प्रबन्ध, वंभव-विलास और शौर्य का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में अधिकतर कवि की आखों देखी घटनाओं का उल्लेख है, अतः इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भाषा डिगल है।

प्रस्तुत महाराणा प्रताप संबंधी अंश राजप्रकाश के पत्र संख्या १८ से पत्र संख्या २१ अर्थात् छन्द संख्या १५ से छन्द संख्या १८ तक आया है।

## राजप्रकाश

छंद : विद्रंममाल

उदो उदैपुरि आम गढपति गढ कीय गांम ।  
उदैम सागर ऊद : महि आठमो मकसूद ।  
तं ऊद रे परताप : खगि अगिनि राखै खाप ।  
तं तेज बलि तुरकाण : कसिया रहै केकाण ।  
इसिया रहै जमडाढ . गसिया रहै अवगाढ ।  
हमोया रहै हिन्दवाण काई सगा है तुरकाण ।  
घर काजि काई दे घोह जा जनम ध्रिग ध्रिग जीह ।  
तिणि समै अकवर तपि : थिर भजिया थिर थप्पि ।  
हिन्दवाण अकवर हथि नर एक पातल नथि ।  
जाड आवता गुजरात : बलि मान कूरंम वात ।  
थिर उदैपुर निज थान : मिलियांस पातल मान ।  
रसि राण रे रासोय कलि सकल जीमों कोय ।  
महिराण को के मान ध्रंम अम रो ल्यो धान ।  
मानै कहि प्रम मंन . तै धान निर्मल तन ।  
सिध पाक थई यो सम : महिमान तेडि कुरम ।  
पख दोय लाँवी पाँति : भोजन अठ नी भाति ।  
पडिहार त्यार पखसि : ताई वाज इद्रंह तूसि ।  
पै कहे मान प्रताप : ईक वाज बैठो आप ।  
परताप किणिरी पाँति : भूपति जीमै भाँति ।  
राजा स मान रिसाय : उठियो सरोस अघाय ।

सुणि हसै राणी सोह : असुरां सबीह अबीह ।  
जगि मान की मरजाद : बलि करै मो सम वाद ।

महि बाजि तजि उठि मान : सुज छूटै बाजां स्वान ।  
पै मान अकबर पासि : सुज गयो भरियो सासि ।

सुज कहै मान दिलीस : सीसोद अनमो सीस ।  
इम कहै अकबर आन : महि राण की सुणि मान ।

महि पाट बणि मेवाड़ि : घर थाट मालव घाड़ि ।  
लड़ि नयर सारग लूटि : किलबांस कल बल कूटि ।  
दल अनल बल जगि दद्वि : परताप बात प्रसिद्धि ॥१५॥

प्रसिद्ध राण परताप, छाप परताप छछाला ।  
प्रसिद्ध खाग परताप, भाग परताप भुवाला ।  
इसा हूत आराण माम, नहँ कीजे मछर ।  
वदे मान मो बिदा, अवसी करी साहि अकबर ॥

होय बिदा मान चलीयो हमस, घर घसमस अहि घड़घड़ ।  
दल सबल चले हय गय रथी, पैदल बहल ऊपड़े ॥ १६ ॥

ईसो मान ऊपड़े, मउ जिण भजी मरदां ।  
ईसो मान ऊपड़े, सच प्राची की सरदा ।  
ईसो मान ऊपड़े, जेणि उसमानह जीतौ ।  
ईसो मान ऊपड़े, बले कतलू दल बीतौ ॥  
कूरंम मान चढतै कटक, तर घर गिर होय रलतलौ ।  
परताप पूर सायर परै, मान नदी आए मिली ॥ १७ ॥

### छंद कविता

मिली नदी आय मान दान छूटा दताला ।  
मिली नहि आय मान भड़ां लोध भूपाला ।

मिली नदी आय मान तुरि लोधा तेजालां ।  
मिली नदी आय मान कठठ दल बदल काला ।

मिली नदी आय मान पूर परताप विचालै ।  
मिली नदी आय मान होह गरकाव हठालै ।

परै पूर परताप जेणि परताप बखाणौ ।  
भवर कृत दल फेर जोष वर मगर जाणौ ।

मछ खग ऊछलै कच्छ जिमि ढालह ऊड़ै ।  
नाव दिया नहै चलै जोड़ भेला होय बूड़ै ।

गै हर लहर आगरांज नंद वजि सद नीसांणां ।  
नरा गजा नीछटै राज दल सबल राणां ।

पड़ै गज घज सहित तुंग गिर तरवश तूटै ।  
पड़ी हैमर पाखरां जोष हाथूका बूटै ।

कमल कमल तिरि चले भ्रुह तिणि भमर बिलगा ।  
मलमल सीसोद सगा धीय सगा असगा ।

कुरमा ऊरम सम धिय दमन चढै ।  
भरम मान भरमियो करम है पछा कढै ।

रणा जीती परताप तेज आमाप असमर ।  
मान समर मूकियो सुणै सोई साह अकबर ।

सरवर समर सुष विवि विपरीति बखाणै ।  
नीर रुहिय पणिहारि दिठो चवसठि भषाणै ।

नर तुरा गजा पाड़ै निहस झड़ खग लग्गी ओझड़ां ।  
परताप तणां छर ऊपड़ै छर लग्गी बूढाहड़ा ॥ १८ ॥



## सारांश

महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नगर व गढ़ का निर्माण कराया। पृथ्वी पर आठवें सागर के रूप में उदयसागर बंधवाया। इसी उदयसिंह के प्रताप नाम का पुत्र था जो हमेशा मुगलों के विरुद्ध लड़ने के लिये शत्रु-सज्जित अश्वारोही के रूप में तैयार रहता था। इस समय प्रताप को छोड़ कर समस्त हिन्दू राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

गुजरात से लौटता हुआ मानसिंह उदयपुर में प्रताप से मिला। आठ-नौ तरह का भोजन बनाया गया। दो पंक्तियों में बैठने का आयोजन हुआ। मानसिंह ने प्रताप से कहा कि एक पातल पर (भोजन के लिये) आप आकर विराजिये। किन्तु एक भूपति की भाँति भोजन करने के लिये वहाँ कोई पंक्ति नहीं थी अतः प्रताप ने भोजन नहीं किया। इस पर मानसिंह क्रोधित होकर बिना खाये ही उठ गया और अकबर के पास जाकर उसे मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये उत्तेजित किया। आज्ञा पाकर मानसिंह हाथी, घोड़ा, पैदल सहित सेना लेकर युद्ध के लिये इस प्रकार चला कि पृथ्वी कपायमान होने लगी। (दोनों सेनाओं के मध्य) भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में प्रताप विजयी रहा तथा अकबर ने भी यह सुना कि मानसिंह युद्ध में हार गया है।

राजस्थानी-काव्य

गिरधर आसिया

सगतरासो

## परिचय

‘सगतरासो’ के रचयिता मेवाड निवासी आशिया शाखा के चारण गिरधर थे। इनका रचना-काल वि० स० १७२० के लगभग माना जाता है।

इसमें वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह का चरित्र-वर्णन है। वर्णन दोहा, भुजगी, कवित्त आदि कुल मिलाकर लगभग ५०० छन्दों में हुआ है। भाषा शुद्ध उर्दू है।

ग्रन्थ में कुल ८८ पत्र हैं। महाराणा प्रताप संबंधी प्रस्तुत अंश पत्र संख्या १ से पत्र संख्या ६ तक अर्थात् छन्द संख्या १६ से छन्द संख्या ८६ तक आया है।

## सगतरासो

दूहा

तिण घर रांण प्रतापसी, वीरैही वर वीर ।  
ऊधरियो हींदू घरम, हठ दूसरे हमीर ॥१६॥

तिण अकवर खीटावियो, सुज जीतो सूरतांण ।  
रेह न लागी रायगुर, एहो पाताल रांण ॥१७॥

पातल सकता वीर रुद्र, मदा अगर सम्रसाह ।  
जगा नगा कान्ह जेतसी, रायसिघ रिमराह ॥१८॥

ऊदल राणो एक दिन, सम पूछिया सकोइ ।  
अणी सिरे कर आहणै, हूं सारे हूं सोइ ॥१९॥

मैंगल मैंगल सारिखो, सिंह सारिखो सीह ।  
सगतो उदयासिघ तण, अंग पित जिसो अबोह ॥२०॥

चख रत्त मुख रत्तई, वेस जिही कुल वग्ग ।  
सकते जमदाढा सिरे, आफालियो करग ॥२१॥

कीय हुकम नहँ कारि की, एवट एक अवट ।  
ऊदल राण कमखियो, पह दो सीख प्रगट्ट ॥२२॥

पिता हुकम लिखियो परम, अंग अहंकार अथाह ।  
सगतो उदयासिघ तण, सु वसियो पतिसाह ॥२३॥

सगते उदयासिघ तण, अंग ग्रहे अहंकार ।  
तेण महा गह पूरियो, वसीयो साह दुवार ॥२४॥

साह जलाल सगत्तसी, सनमानियो असंख ।  
सिंह वरीयो सु पख्ख रो, पखालो जटपंख ॥२५॥

दीधा हुकम जलालदी, अवर न मडै ओड़ ।  
 साह कहै सगतेस सूँ, तो ले गढ़ चीतोड़ ॥ २६ ॥  
 सगते साह जलाल सूँ, केलपुरे या कथ्य ।  
 अवर सूर न ऊगमे, हूँ माझ जे हथ्य ॥ २७ ॥  
 पालग नहँ पाली प्रिथी, जीह कहै इम जग ।  
 सगतसिध चीतोड़ सिर, बीड़ो ग्रहे करग ॥ २८ ॥  
 सगतौ साह जलाल सूँ, आप जणावै ईम ।  
 तेग उभारे नीसरे, नहँ कोधी तसलीम ॥ २९ ॥

### सोरठा

पातिसाह पहलोड़, सगतसिह बुलावीयो ।  
 हालो मुहरे होइ, देस उदेपुर देखिवा ॥ ३० ॥  
 सकतो सिरजणहार, एक गिरौ सिर ऊपरे ।  
 अन करड़ा असवार, मेवाड़ो मानी नही ॥ ३१ ॥

### दोहरा

खुरसाणा मुलतानखां, मारे रण वे बीर ।  
 साम उगारे साकड़ै, सगतो पतो सधीर ॥ ३२ ॥  
 ग्रासी वेधज आंगमे, धारे चित खिन्न घोड़ ।  
 मूहरि पिता देवा मरण, चलि आयो चीतोड़ ॥ ३३ ॥  
 मरवा जे लाधै मरम, ठवै न बीजे ठौड़ ।  
 आयो सकतो आंहचै, चढ़वा गढ़ चीतोड़ ॥ ३४ ॥  
 जैमल पातल यूँ जपे, साईदास सबूझ ।  
 राण हुकम है रावता, तो चाढा गढ़ तूझ ॥ ३५ ॥  
 पिता तरौ आयो पगे, हित चित लीघो हेल ।  
 सिरजणहार न सिरजियो, अनै हुवो दिल मेल ॥ ३६ ॥  
 पनहँ रहियो पगे, आत्म थयो उदास ।  
 सगतौ साहसमाल सूँ, वसे गिरीपुर वास ॥ ३७ ॥

वसि गिरपुर कस बांधियो, पणियो जगत्र प्रमाण ।  
सकतो व्याई कसी, बांसी सांगण रांग ॥३८॥

मिटै न भावो महिमडल, चलै नही कुल चाल ।  
सकतै जोतां सहसमल, मारी जियो जगमाल ॥३९॥

मारि जगो चढियो मछर, किरमर हाथ कियेह ।  
साभि न सकियो सकतसी, विरतो बागडिएह ॥४०॥

बलियो देतो वीद वग, मछर ग्रहे खग मूठ ।  
चित्त सुहामै चालियो, प्रिसण न चांपै पूठ ॥४१॥

वहै जगौ जस बांधियो, सकतसिंह असहास ।  
महि बापी की माभली, वैण तणो गढ बास ॥४२॥

सकते बास परठियो, महावेण गढ माहि ।  
पह बीजा पाड़ोसियो, मन माहि न समाहि ॥४३॥

ढील सरव्वस ठूकड़ो, भीडर हू खुल भाण ।  
अमरो सुख राखे असख, खिन्न जोये खु माण ॥४४॥

घर धूसे धन धूपटै, सोनिगरो छल सार ।  
सारा देस दसोर रा, प्रज आविया पुकार ॥४५॥

बूँव सुणै मीया बले, भांजण खला भटकक ।  
सुणतां ही साजत करै, किलवे घरे खटकक ॥४६॥

अमरो रोदां ऊपरे, चाले कलि चहुवाण ।  
दल अविया दसोर रा, भीडर ऊगै भांण ॥४७॥

मारे भीडर माल ले, घर धूपट दे धक्क ।  
आथ लेइ अमरा तणी, किलवे खडे कटकक ॥४८॥

बाधे सापत बाल त्री, रजपूतां दे रैस ।  
करे रहचि कणियागरा, दर बलिया दरवैस ॥४९॥

बरदे बूँबारव हुवा, प्रज पीडै न विण पार ।  
साहुल सोनिगरा तरणी, सुणि सकतां सिरदार ॥५०॥

कुक ऊक कणिआगरै, मोहर सकत मेल्हेह ।  
राखै तो तेहीज रहाँ, ताणी तां नुरकेह ॥५१॥

पाताल राणो परवते, नह को अवर नरेस ।  
ऊदाउत, तै ऊगरा, सुण साहुल सकतेस ॥५२॥

सकते साहुल सांभली, वैसंद्र मिलि घत खाई ।  
कज ऊपर कणआगरां, सकतो एम सुहाइ ॥५३॥

आडी वाहर ऊपड़े, अंग बांधे ऊँघाण ।  
किलवा दल कैलिपुरा, भीडर ऊगे भाण ॥५४॥

### छंद रोमकंध

तो प्रगटते भाण खला दल  
प्रगट हाक भड़ा के कारण हुवे ।  
धमजगर सार पहार घसमर  
धूज घरा नीसांण धुवै ।  
छणकार खतग दवग विछुट्टे  
हेतै हीदू हूंकलिया ।  
किलवा इण पूर अडूर कटक्का  
सूर सकतो साफलिया ॥ जी अ० ॥ ५५ ॥

सर सोकां भोकां भलभ साबल  
सार भडभड सामहिया ।  
वहतां घस रुक भवक्कै बीजल  
सार पहार नरे सहिया ।  
त्रुट कघा वध विछुट्टे तंडल  
आवघ सूरं आफलिया ।

किलवा इण पूर अडूर कटक्का  
सूर सकत्तो साफलिया ॥ जी अ० ॥ ५६ ॥

दहवट पवट विनट्टे दूजण  
घाए अघट कटक्का घडै ।  
रिणवट प्रगट ग्रहे चट रावत  
मीर कटै ढिग अग मुडै

रिण तट मसट दपट मासचर  
भारथ भार भुजे भिलिया ।

किलवा इण पूर अडूर कटक्का  
सूर सकत्तो साफलिया ॥ जी अ० ॥ ५७ ॥

डर वल कंगल सहिता डोंगल  
मीर मुगल्ल अलल्ल मरै ।

पडि जूटा मल्ल उथल्ल पुथल्लां  
क्रोध विहल्ल विहल्ल करै ।

हल हल्ल जुडै रिण हे वे हीदू  
जार्णै पांढव जा मिलिया ।

किलवा इण पूर अडूर कटक्का  
सूर सकत्ता साफलिया ॥ जी अ० ॥ ५८ ॥

### कवित्त

सांफलिया सकतेस, वियो मिरजो बाहादर ।  
सार मरि साभिया, घगड़ घड़किया पडै घर ।  
रिण भड़िया राउत्त, सूर सकता रा संमर ।  
वैडो सुतन हमीर, वडो गहिलौत अछर वर ।

देव सी वाघ देदो दुगम, कमघज त्रिणहै मुक्ति कर ।  
पतिसाह फौज रिण पदरै, सकतसिंह जीतै समर ॥ ५९ ॥



### दूहा

समहर जीती सकतसी, रोदा सरसी राड़ि ।  
सार उवारे अमरसी, मोटिम चढ़ि मेवाड़ ॥६०॥

तेरा प्रवाडे पूरियौ, भुज ग्रहियै खिन्न भार  
साह तरो दल साभियै, वसियौ साह दुवार ॥६१॥

सूरातन सगता तणा, आड़ो बलियो अंक ।  
ऊसर किसी न ऊगमै, सकता हिये निसक ॥६२॥

साह सराहे सकतसी, पौरस देखि अपाल ।  
सकता वड नह को सुहड़, जफे साह जलाल ॥६३॥

दीघा हुकम जलोल दी, पेखे असख पहाड़ ।  
मोहरे कुरभ मान सा, सभेवा मेवाड़ ॥६४॥

दिल्लीपति दीघा हुकम, कटकां सख्या न काई ।  
कुरभ मान कड़खिया, सकता वले सहाई ॥६५॥

अत न दल अकवर तणा, सहुं जाणै ससार ।  
पौरस राण प्रताप का, पुहवि न लभै पार ॥६६॥

अ वे वे चढीया अडप, खूंमाणा खुरसाण ।  
अकवर रोस न ओहटै, रोस न छडे राण ॥६७॥

पौढे विहूँ परखियौ, देख कटक्कां दौर ।  
कुरम केलपुरै, खेत्र रचे खंभणीर ॥६८॥

### छंद जाती सिंहाश्रवलोकन

तो खमणोर खसाण घण मघि रिण खेहण  
खहण दुअण घण एम खसी ।  
जोमणि सुर जोअण सुर जण जण

हण हण हथवाह सूर हँसै ।  
 ग्रीधण मण ग्रहण ग्रहण मुणखर गुण  
 जिण रुख अरजुन कन जुडिया ।  
 परताप निवड भड दल पतिसाही  
 आवि रणंगण आवडिया ॥६६॥

सहु बल दल सबल सबल दल सहु बल  
 सारल बल भल सालुलिया ।  
 हँकल होइ कलल कलल होइ हँकल  
 असुर अने सुर आफलिया ।  
 बलि लोह भलल बल बल भल लोह बल ।  
 अभग विन्है दल आथडिया ।  
 परताप निवड भड दल पतिसाही ।  
 आवि रिणगण आवडिया ॥७०॥

खल खट होइ विकट विकट होइ खल खट  
 खाग विकट भट खल खटिया ।  
 आवट चट अरट अरट चट आवट  
 असल थटे वट आवटिया ।  
 साहट थट सुभट सुभट थट साहट  
 पट चट वट होइ रण पडिया ।  
 परताप निवड भड दल पतिसाही  
 आवि रणंगण आवडिया ॥७१॥

धजवड ग्रहि धवड धवड ग्रहि धजवड  
 सार सुजड भड सामहिया ।  
 लडथड घड मडड मडड होइ लउथडि  
 दडड रहिर जड वाजविया ।  
 घाइ घडे अघड घड अरि उक्रड  
 मरगड वीछड घड घड मुडिया ।  
 परताप निवड भड दल पतिसाही  
 आवि रिणगण आवडिया ॥७२॥

### कवित्त

पतिसाही दल सरिस, राण पातल चढ्ढै शिण ।  
 राजा रांम नरेस, तुअर दस सुहड़ पड़े तण ।  
 रहे मेड़तियो राम, रहे मानो कणिआगर ।  
 रहे भीम ढोडियो, साथ दोई लियाँ सहोवर ।  
 रण रहे मेर दूलाहरी, सुकवि राम खग सगतसी ।  
 अमुरेस फोज जीती अभँग, पाधर राण प्रतापसी ॥ ७३ ॥

### दोहरा

पाधर जुडे प्रतापसी, पोरस तणै प्रमाण ।  
 राण विलूधो वीर रस, खग वाहे खुंमाण ॥ ७४ ॥

सभालियो सकतसी, पातल राण अपल्ल ।  
 पूठ विचारी बिरुद पति, साह बड़ा उरसल्ल ॥ ७५ ॥

ते रज ध्रम ते राज धन, सयल धरम तूँ सार ।  
 मानीजे कहियौ अम्हाँ, अस नीले असवार ॥ ७६ ॥

राजा मान सकतसी, चतुरगणी चढेह ।  
 घोघुंदे घर देखवा, खभणोर हूँ खडेह ॥ ७७ ॥

ईखै घर ऊदल तणा, सपेखे असहास ।  
 विसकरमा रचियो वलै, करि बीजो कैलास ॥ ७८ ॥

सपेखे घर घर सहर, अति ऊतम आराम ।  
 आखाडी भाडा तणौ, चीतवीयी चित्राम ॥ ७९ ॥

सोई चित्राम सपेखियो, तवियो कूरभ तांम  
 मान कहै सकतेस सूँ, चितवी घर चित्राम ॥ ८० ॥

सकते राजा मान सूँ, उत्तर दीध अवल्ल ।  
 एका चहिरी चित्ररी, एका सांच सहल्ल ॥ ८१ ॥

एकारै चित्रामरा, भूँडा दीसै भडे ।  
एकां नाचै सांपरति, बीचारै न वितंड ॥८२॥

भकबर वाली आपरै, आगै लागी भग ।  
देखी बलती हुंगरां, प्रथम न देखै परग ॥८३॥

वाचा एह लूषा वचन, हींदू हमति मयाह ।  
केवाणै पड़िया करग, कूरम कावलियाह ॥८४॥

मांती मेवाड़ां सरिस, आखै वचन उरेब ।  
साइ न सुहावै सकतसी, जीवै एह कुजेब ॥८५॥

कावलिया वलिया कटक, जीवै अंतर जाण ।  
आया मांन सकतसी, आपांणै आथांण ॥८६॥

राजा मांन सकतसी, चित्त बहु लगै चटनक ।  
भड़ आयो भाद्रावतो क्रमि है वाट कटकक ॥८७॥

भैसरोड़ दिन भोगवै, सकतो इन्द्र समान ।  
हाड़ां अनिऐ चन्द्रहर, थरहरिया आथांन ॥८८॥

सकतो सुरथानक हुवी, मेवाड़ो महिरांण ।  
तैण पाट सकता तणे, भोइण प्रतपे भांण ॥८९॥

## सारांश

इसी सूर्य वंश में प्रताप पैदा हुआ, जो वीरो का वीर, हिन्दू धर्म का उद्धारक और हठ में दूसरा हमीर था। प्रताप, शक्तिसिंह, अग्रर, सगर, जगा, नगो, कान्ह, जेतसी, रामसिंह सभी वीर भाई थे। एक दिन दरबार में उदयसिंह ने कहा कि जो शत्रुओं को फतह करके आवेगा, मैं उसी को सम्मान दूंगा। इस पर शक्तिसिंह ने कटार पर हाथ पटककर कहा कि उदयसिंह ने शक्तिसिंह के इस वक्तव्य को दरबार की मर्यादा के विपरीत समझा और नाराज होकर शक्तिसिंह को सीख देदी। शक्तिसिंह अकबर के पास चला गया। अकबर ने उसका बहुत सम्मान किया और चित्तौड़ लेने का हुक्म दिया। शक्तिसिंह ने अकबर की यह बात नहीं मानी। उदयपुर देखने के बहाने अकबर ने शक्तिसिंह को साथ लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई की। किन्तु शक्तिसिंह ने खुरसाण खां और मुलतान खां को मार कर पिता की रक्षार्थ चित्तौड़ चला आया। चित्तौड़ पहुँचने पर शक्तिसिंह ने गढ़ पर चढ़ना चाहा किन्तु जयमल, पत्ता और साई दास ने कहा कि महाराणा के हुक्म से ही आप गढ़ में प्रवेश कर सकेंगे। शक्तिसिंह अपने प्रयोजन में असफल होकर डूंगरपुर के रावल सहस्रमल के पास चला गया। वहाँ पर किसी कारण से कलह हो जाने पर शक्तिसिंह ने सहस्रमल के देखते-देखते [वहाँ के एक सरदार] जगमल को मार दिया। शक्तिसिंह वहाँ से निकल कर भोंडर के निकट वृणगढ़ आकर रहने लगा। भोंडर पर मन्दसोर की ओर से आक्रमण होने पर भोंडर के सोनगरा मानसिंह का लड़का अमरसिंह, शक्तिसिंह से मदद मागने आया। शक्तिसिंह ने मिर्जा बहादुर की फौज को पराजित कर भोंडर की रक्षा की।

इस घटना के बाद शक्तिसिंह दिल्ली गया। अकबर उसकी वीरता से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने बख्शवाहा मानसिंह के सेनापतित्व में अपनी सेना को मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये भेजा। साथ में शक्तिसिंह सहायता के लिये था। खमणोर नामक स्थान पर युद्ध हुआ। प्रताप की ओर से राजा रामसाह तवर और उसके दस सरदार, रामसिंह मेडनिया, मान कणियागर, भीम टोडिया और उसके दो भाई, कवि रामा [साढ़ चारण] आदि योद्धा काम आये। अकबर की फौज विजयी रही। शक्तिसिंह ने प्रताप को समझाया किन्तु वह माना नहीं। खमणोर से मानसिंह ने शक्तिसिंह को साथ लेकर गोगुन्दा पर चढ़ाई की। गोगुन्दा में मानसिंह भाड़ों व अखाड़ों के नृत्य-चित्र देख कर हसा। इससे शक्तिसिंह नाराज होगया और भंमरोडगढ़ चला आया। वहीं पर वह अपनी राजधानी बना कर रहने लगा। यहीं उसकी मृत्यु हुई और उसका पुत्र भाण उत्तराधिकारी हुआ।

राजस्थानी-काव्य

दौलत विजय

खुमाशा-रासो

## परिचय

‘खुमाण-रासो’ के रचयिता श्वेताम्बर जैन तपागच्छीय साधु शान्ति विजय के शिष्य दीलत विजय हैं । दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व इनका नाम दलपत था । इनका रचनाकाल वि०सं० १७६१-१७९० के मध्य माना जाता है ।

‘खुमाण-रासो’ की एक ही हस्तलिखित प्रति मिली है, जो ‘मंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट’ पूना के संग्रहालय में सुरक्षित है । इसमें बप्पा रावल ( वि०सं० ७९१ ) से लेकर महाराणा राजसिंह ( वि०सं० १७०९-३७ ) तक के मेवाड़ के महाराणाओं का वर्णन है । ऐसा प्रतीत होता है कि मेवाड़ के महाराणाओं की ‘खुमाण’ उपाधि होने के कारण इसका नाम ‘खुमाण-रासो’ रखा गया है ।

इस ग्रन्थ के छन्द संख्या ३४१८ से छन्द संख्या ३४८६ तक में महाराणा प्रताप सम्बन्धी प्रस्तुत वर्णन आया है । वर्णन दोहा, चौपई, सोरठा कवित्त आदि में हुआ है । भाषा हिगल है ।

## खुमानरासो

बूहा

वरस असो नै बीस दिन, अधिपति ऊदल रांण  
पाट प्रतप्या हिंदुपति, पोंहता इद्र विमाण ॥३४१८॥

चोपड़

पाट प्रतप्ये पातल रांण । दुस्सासन जोसे दीवांण ।  
हिम्मत खगवाहो रिणवार । रोसीलो रायगुर रिमराय ॥३४१९॥  
घजवडि घर चिहुँवल धूपटे । अरियां सिर खागां आछटे ।  
घाणा असपति रा थरहरै । रात दिवस नै रोला करै ॥ ३४२० ॥  
घडकै दल्ली नै अजमेर । घडकै दूँढाडह अजमेर ।  
अलगारै धूजें आगरो । लोक थरकें लाहोर रो ॥ ३४२१ ॥  
घडके आदू मरुघर देस । गूजर सोरठ कच्छ विसैस ।  
बुंदीपति रठ छोडि करी । करै प्रताप तणी चाकरी ॥ ३४२२ ॥  
सीधु सया लख नै सो वीर । तसै प्रताप थो गंगा तीर ।  
ककण कछई नर पचाल । पत्ता थरहरीया भूपाल ॥ ३४२३ ॥  
तोड्या थाणा असपति तणा । सोहा मुह लीधा सांधणा ।  
चित्रगढ रा थाणा पाड़िया । जाए आलम सू पुकारिया ॥ ३४२४ ॥  
अकवर मूछा बल घालिया । हीदू अजें नही समझिया ।  
मन मांहे मा निकालै दिया । मोटी खोड हम खोसे लिया ॥ ३४२५ ॥  
अजें नही हीदू नें लाज । अणरस काहीकूँ बेकाज ।  
घर प्रताप कछवाही थती । रांणी ते अणमानी हती ॥ ३४२६ ॥  
तिण दुख देता राण प्रताप । सांम दोह मन आण्यो पाप ।  
अधव मान थकी बिनतो । तूफ बहिनेवो दुख दे अती ॥३४२७॥



तिण कारण मुझ आवो भीर । बाहर करीजै माहरी वीर ।  
 वहिनेवी नैं तुमें मारीइं । अगति सनांन अमे कीजीइं ॥३४२८॥  
 माने आलम सूं करियाद । पातल नैं तुम कीजे याद ।  
 अकबर साह पकड़ो तरवार । मेदपाट ऊपर असवार ॥३४२९॥  
 मेदपाट घर आलिम खड़े । चोज करीने आयो चढ़ें ।  
 खबर हुई तन पातल राण । रोस चढ्यो जोधो जमरांण ॥३४३०॥

दूहा

करै कोप नृप कलह कज, कोरम पातल राण ।  
 चढ्यो छोह छछाल छल, जुडण जुद्ध जमरांण ॥३४३१॥  
 मांणस मगरा मुं किया, सह जोरावर भट्ट ।  
 आयो अकबर इहा पड़े, देखा रावत वट्ट ॥३४३२॥  
 कलह हिवे इहां कोपियो, घेरि रिमां सिर घाव ।  
 जो हू ऊदल जाइयो, द्यू अकबर सिर दाव ॥३४३३॥  
 घड़ि पतिसाही बीदणी, मद योवन मयवत ।  
 पातल ऊदल रांण रो, कहर मित्यो एकत ॥३४३४॥  
 चचल तिय जोरे चढी, जपै तुमीणां जाप ॥  
 परणे घड़ि पतिसाह रो, पुह भिड़ राण प्रताप ॥३४३५॥  
 सहणाया सीधू-गवै, नद सीधू नोबत्त ।  
 सुभट, सह सलही-सझ्या, पातळ हीदू पत्त ॥३४३६॥  
 वट भरिया वानैत वर, रोस भर्या शवत्त ।  
 सूरवीर साखेत सभि, सहड भिड़ सावत्त ॥३४३७॥  
 अनड माहा भिडण कज्ज, धुकै धकावै धीग ।  
 टोडेर ब्रद घर टालिमा, त्रिजड हया तरसीव ॥३४३८॥  
 पट्ठा पातल रांण रे, पनर सहस पख रेत ।  
 धेटन चचल पर चढ्यो, खडि आयो रण खेत ॥३४३९॥

सिर कुंदग रो सेहरो, भिड़ विहु भुज गजगाह ।  
चचल रे चोरासियां, अधोपति रण अथाह ॥३४४०॥

सभे सूर सामत, तरुण तेज रण रत्ता ।  
भिड़ पाड़े रण भेल, उरटि रस रुक उमत्ता ।  
ठेलै बधि रिम थाट, वाह अलवत्त विचारै ।  
भाडे अरियां भट्ट, विढण गज कुंभ विडार ॥

रिण रहचै लख दल रोलवै, एक एक अगो अनड़ ।  
परताप पनर हजार रा, तीस तुंग कीधा सुहड़ ॥३४४१॥

तुग तुग गहि तिजड़, तेख जुव जोय ऋट्कै ।  
पकड़ि साग परताप, कड़िक आलिम कट्कै ।  
वाहै लोह विहदद, पिसुण वाढतो पट्कै ।  
सुण लीधा महु मुगल, भाड़ चमराल भट्कै ।

निव्वाव खान कीधा निलग, पातल मुगल पछाडिया ।  
लाज रो थभ ऊदोत लडि, सिध चाढी सीसोदिया ॥३४४२॥

डम आखी आलम, जुलम कीनी हिंदवाणह ।  
कीध कलह इह कहर, महु कीनी मुगलाणह ।  
साह कीन मन सोच, सुहड़ हिंदू सिर जोरह ।  
ए पातल अग जीत, इस्यो हीदू नहि ओरह ॥

नर वाह वाह नाहर नृपति, लड़ भडै लोखा दला ।  
जुभुए तुग भारथ भुड़ै, खगा डला करतो खला ॥३४४३॥

है को इसडा, हिंदु, द्विहु पातल दिखरावै ।  
दरसावै सो दुरस, ताही म्हे बहुत बधानै ।  
जग जपै सगतेस, इहा पातल किहां आवै ।  
आवै सुहड़ अनेक, सोही पातल पठानै ॥

दरसाय केम दुनियाण पति, है हीदू वह वकड़ा ।  
भारथ आया रिम लज्जसी, धावै पति सांहा घड़ा ॥३४४४॥

### दूहा

सीसोदो सगतेस नृप, मन चितइ महाराज ।  
 अकल बहादर ऊदवत, चितो एहवो काज ॥३४४५॥  
 अड कीनी असुराण पति, पेखण हीद्वपस ।  
 दूध दुहंणी दोय रहै, एवही करुं उगति ॥३४४६॥  
 दरस उरस देखवसि तो, रहसि नहीं रजवट ।  
 पातल ने पड़ताल ने, मारै माह मरट ॥३४४७॥  
 अधिपति पातल ऊपरै, खल भाजूं खुरसाण ।  
 अकल कोई इसड़ी करुं, हृद रहै हिंदवाण ॥३४४८॥

### कवित्त

सुहृद आलम सगतेस, मन करी मतो उपायो ।  
 प्रीत करे परछन्न, वंधु संदेस पठायो ।  
 अकबर आखै एम, दरस पातल देखावो ।  
 चढि चंचल चौगान, साह तुम लोह बतावो ।  
 सै हस्थ लोह सावल करो, उरडो असपति ऊपरै ।  
 कीजीइ लोह कुभा दलां, गजां दंत तोडो तरै ॥३४४९॥  
 पाण पकर पातल, चढ्यो चंचल चेटककह ।  
 आठ सहस असवार, उरी असपती कटककह ।  
 भाक भाक भटकेह, भड़ी खग भाड भपट्टे ।  
 लोहां अकबर साह, लियो रणवार लपट्टे ।  
 गजदत खंग खुरियां ठगै, कुत घोव कुंभांथल ।  
 घनघोर जाण भाद्रघटा, वाह सलकै वीजले ॥३४५०॥  
 उडे आग ब्रजाग, दहकि रिम सीस दडकै ।  
 हिंदू असुर लयवत्य, पड़े धमकि घड़ पटकै ।

कालिभ वुक्क कटार, करडि कहियाल कटक्के ।  
 वहै वांण पंखाल, उदल रिण अग थरक्के ।  
 गणणाट वारण गोला गडिक, असुर सुभट रण ऊछली ।  
 कुरुवेत केरव पांडव जिहो, पह युध कीयो पातली ॥३४५१॥

घडकीयो आलम, लोह लग्गी असपत्ती ।  
 खुदा खुदा मुख खुरम, पार कीनो चित्रपत्ती ।  
 वयण वदत असुरेस, हिंदू हम लोह लगाया ।  
 ऐसा कोन अरान, अनड-हम लग-इहाँ आया ॥  
 सगतेस कने असपति मुणहु, नयणां सुहृ निरीखइ ।  
 ऊदोत एह हीदूपति, पातल एह हो परीखइ ॥३४५२॥

आलम दुय उजवक्क, विदा कीना उण वारह ।  
 पाडो जाए पातल, तलपि वाही तरवारह ।  
 गूडा ए अग जीम, हिंदू मारो इह ठोरह ।  
 कट्टीए कफरान, जोर यह है सिर जोरह ॥  
 कव्वाण गोस पातल गहै, करहु कुदि आगे घरहु ।  
 गज राज देस घोडा दियूं हम तुम कू वड्डा करिहु ॥३४५३॥

सगत सीह सामत, राण पातल पधराया ।  
 जुध कर किलेवा जीप, आप कुसल घर आया ।  
 जपे इम परतोष, आव भाई आपण घर ।  
 असुर छांडी अलग, वीर इहा रहे वीरवर ।  
 अणभग विरुद आप्यो सगत, खुरसाणां मुलतांन री ।  
 सीसोद वंस चाढी सिखा, राखो पत हिंदवाण री ॥३४५४॥

### सोरठा

परखे पातल राण, समप्यो ब्रद सगतेस नै ।  
 खुरसाणां मुलतांन, आगल भिंड ऊदो तणह ॥३४५५॥

दूहा

भुय चित्रगढ तो सालवी, पुह भिड़ पातल रांण ।  
सांम धम्म सगतेस नृप, हो तुभ भुज हिंदवाण ॥३४६०॥

धम रख्यो रख्यो धणी, पुहवी भिड़ां पहाड़ ।  
आहाड़ो उदय नरिंद रो, उछैछ सगत ऊनाड़ ॥३४६१॥

भागी सगता तो भुजां, पंचाइण परदेस ।  
अधिपति उदय नरींद रा, नाहर जेम नरेस ॥३४६२॥

महासुभट मेवाड़ धर, राखी तें राजांन ।  
सगता उदया सीध रा, वस वधारणवान ॥३४६३॥

चौपाई

हिंदू असुर हल्दीबाटियां । जुद्ध कियो तेगां भालियां ।  
कियो पवाड़ो पातल राण । पेड़ियालग बधी परमांण ॥३४६४॥

दूहा

पातल सगत थकी कहै, इहाँ तुम उरहा आव ।  
ओलग मूँको असुर रो, भाई सू करि भाव ॥३४६५॥

प्रभण सगत सनेह-सूँ सुणि साहिब परताप ।  
अध विच ओलग मूँकता, वसै सिर कूछाप ॥३४६६॥

काइक छल बल केलवी, आवेस्युं इण ठोड़ ।  
मुह सोम्हे मेवाड़ सूँ, पूठै अभ चीतोड़ ॥३४६७॥

चौपाई

इम कहि सगते मागी सीख । परगट कीनी ए पारीख ।  
मायो सगत असपति रे पास । कहे कूड दीधो वेसास ॥३४६८॥

पातल आवै केहने हाथ । मार्या अजबुझ एकै साथ ।  
पातल कुसलं घर पहुँचिया । नवि पाया म्हे इहाँ आविया ॥३४६६॥

### दूहा

एक वरस असपति तणी, पूव करी खजमत्त ।  
कोइक छल बल केलवी, आया सकत नृपत्त ॥३४७०॥

पातल रांण तणा पगा, सुह प्रमणम्यां सगतेस ।  
हीदू पत ह्वि आदरै, दियां अस्व गज देस ॥३४७१॥

सुवस देस वसियो सहू, दल्ली गयो दुभल्ल ।  
अकबर गज सिर ऊपरै, अकुस नृप पातल्ल ॥३४७२॥

अढपायत ऊदल तणो, अधिपति अवलो वारण ।  
पूर पवाड पातलो, दाखे जस दुनियांण ॥३४७३॥

अहिड हृत्य तरसिघ तस, हेलावान हमीर ।  
लुवे लाप वरीसणो, षडो दुवाहो वीर ॥३४७४॥

दलां रूप ठावो दुनी, दाता दिल दरियाव ।  
अदतारा अंकुस दिई, सुज पातल्ल सुभाव ॥३४७५॥

### सोरठा

अखूँ दे अंघाह, राजवियो अकबर रहै ।  
करणूँ मां कघाह, ऊ हीडानै ऊदवत ॥३४७६॥

अकबर समुद अथाग, छायो नवखंड छोलिया ।  
खाग लडेत प्रयाग, अंबरा लागो ऊदवत ॥३४७७॥

अकबर समुद अथाह, साह उजल उजली सिखर ।  
मेवाडो तिण मांह, पोयण कमल प्रतापसी ॥३४७८॥

पातल पाघ प्रमांण, साची सांगाहर घणी ।  
 रही सदालग रांण. अकबर सूं ऊभे अणी ॥३४७६॥  
 अकबर घोर अंधार, आयमिया हीदू अवर ।  
 जागे जागणहार, पोहरै राण प्रतापसी ॥३४८०॥

### दूहा

माई एहा पूत जण, जेहा रांण प्रताप ।  
 अकबर सूता ओभकै जाण सिराणे सांप ॥३४८१॥  
 दीधी हार हमीर, पंचाइण न रियो पगे ।  
 तिण नेपत रा नीर, अचरिज केही ऊदवत ॥३४८२॥  
 पोखे खत्री घणाह, खडियातां लागी खतां ।  
 तोने ऊद तराह, अमला मारिग एहडा ॥३४८३॥  
 राणी नीजां रांम ओहें ले अकबर तरा ।  
 चौसी चीतोडाह, पणे तूभ प्रतापसी ॥३४८८॥

### दूहा

धजवड अहि धर धूपटी, पुहवी पातल राण ।  
 वरस सतावन बीस दिन, ईला वरती आंण ॥३४८५॥  
 वार वजाई पानले, वैकुठ कीया वास ।  
 पाट प्रतप्पे अमरसी, अधिक तेज उल्लास ॥३४८६॥

## सारांश

महाराणा उदयसिंह के स्वर्गवास के बाद प्रतापसिंह सिंहासनाख्त हुए, इससे शत्रुदल में खलबली मच गई। दिल्ली, आगरा, अजमेर, मारवाड़, लाहोर, भावू, गुजरात व सौराष्ट्र के शासक नयमीत हुए। बूंदो के शासक ने प्रताप की सेवा में रहना स्वीकार कर लिया। प्रताप का इस तरह प्रभाव बढ़ना हुआ देख कर अकबर चिन्तित हुआ और उसे अपने अधीन करने के लिये कटिबद्ध हुआ।

महाराणा प्रताप की एक रानी जयपुर के कछवाहा वंश की थी, जिसे (कछवाहा वंश की होने के कारण) प्रताप कष्ट देते थे। इस पर कछवाही रानी ने अपने भाई मानसिंह से (अपने पति) प्रताप को मार डालन की विनती की और कहा कि उनकी मृत्यु के बाद मैं उनके साथ ही सती हो जाऊंगी। मानसिंह ने इस कारण अकबर को मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। प्रताप भी पन्द्रह हजार सैनिकों को लेकर युद्ध के लिये चल पड़े। दोनों (सेनाओं) के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। प्रताप ने अपनी समस्त सेना को तीस टुकड़ियों में विभाजित कर दिया, प्रत्येक टुकड़ी भयंकर रूप से रणक्षेत्र का परिचय दे रही थी राजपूतों के इस शौर्य को देख कर अकबर ने कहा कि हिन्दुओं ने मेरे पर जुल्म कर दिया है। इस हिन्दू (प्रताप) के सम्मान तो कोई हिन्दू शायद नहीं है। अगर कोई ऐसा हिन्दू है जो प्रताप को दृष्टि दिखा (आँख दिखा) सके अर्थात् उसे पराजित कर सके तो मैं उसका बहुत सम्मान करूँगा। शक्ति-सिंह ने कहा कि प्रताप यूँ हाथ आने वाला नहीं है, उसके सामने जो भी वीर जाता है उसे प्रताप मार डालता है।

शक्तिसिंह के मन में प्रताप का शौर्य अकबर को बताने की ईच्छा जाग्रत हुई और इस विषयक एक मन्देश प्रताप के पास भेजा। प्रताप ने आठ हजार सवारों को लेकर भयंकर आक्रमण किया। प्रताप ने ठीक वैसा ही भयंकर युद्ध किया जैसा कि कुरुक्षेत्र के मैदान में पांडवों एवं कौरवों के मध्य हुआ था। युद्ध के दौरान प्रताप ने अकबर पर भी वार किया, यह देख कर अकबर पूछने लगा कि ऐसा कौन हिन्दू है जिसने मेरे पर वार किया है। शक्तिसिंह ने बताया कि यही प्रताप है। अकबर ने दो उज्ज्वेलों को प्रताप को समाप्त करने के लिये भेजा।

युद्ध की समाप्ति पर शक्तिसिंह ने प्रताप को कहलाया कि आप मुगलों को जीत कर सकुशल घर लौट आये हैं (अतः बधाई है)। प्रताप ने भी प्रत्युत्तर में कहलाया कि उसे मुगलों का साथ छोड़ कर यहाँ आ जाना चाहिये साथ ही उसे विरुद्ध प्रदान कर सम्मानित किया। शक्तिसिंह ने वापस कहलाया कि अभी आना ठीक नहीं है, समय आने पर आ जाऊँगा।

शक्तिसिंह ने अकबर को बताया कि प्रताप हाथ आने वाला नहीं है। उसने दोनों उज्ज्वेलों को भी मार दिया है। कुछ समय बाद समय देख कर शक्तिसिंह मेवाड़ लौट आया। प्रताप ने उसे हाथी, घोड़ा और ठिकाना दे दिया। अवशिष्ट सोरठों व दोहों में प्रताप की महिमा का वर्णन है। अन्त में बताया गया है कि प्रताप की मृत्यु के बाद अमरसिंह गद्दी पर बैठा।



भागै सागै भाम, अमृत लागै ऊमरा ।

अकबर तल आराम, पैलै जहर प्रतापसी ॥

राजस्थानी-काव्य

अज्ञात

पतायरा

## परिचय

‘पतायण’ ग्रन्थ की पूर्ण प्रति उपलब्ध नहीं है। इसके दो अंश प्राप्त हुए हैं, उनके आधार पर इसके रचयिता का नाम, स्थान, लिपिकाल, कुल छन्द सख्या आदि का कुछ भी पता नहीं लगता है। यहाँ प्रकाशित दोनों अंश सूरत के देवन्द लाला माई पुस्तकोद्धार फण्ड के संग्रह से प्रेस कॉपियों के रजिस्टर से श्री मवरलालजी नाहटा (वीकानेर) को मिले हैं। इनकी नकल भी उन्हीं के पास हैं। श्री नाहटाजी का ‘शोध-पत्रिका’ वर्ष १२ अंक १ में “महाराणा प्रताप सम्बन्धी एक अज्ञात (पर अपूर्ण) काव्य” शीर्षक लेख छपा है। उनके अनुसार उपरोक्त रजिस्टर में ये अंश गुजराती लिपि में लिखे हुए हैं तथा उन पर ‘घटाइणि’ शीर्षक दिया हुआ है। प्राप्त प्रथम अंश के आरंभ में ‘पतायण’ नाम आया है तथा इस नामकरण का कारण भी दिया है।

शीर्षक-रूप में ‘पतायण’ नाम ही सही है।

प्रथम अंश छन्द सख्या १ से छन्द संख्या १४ तक है। चौदहवें अंश की एक पंक्ति श्रुति है, इस कारण इस अंश में कितने छन्द और हैं, यह कहना कठिन है। दूसरे अंश में छन्द सख्या १ से ५ तथा छन्द संख्या ६ की प्रथम पंक्ति श्रुति है। इस कारण प्रथम छन्दों की विषय सामग्री का पता नहीं है। यह अंश भी छन्द सख्या १७ तक ही मिलता है, सत्रहवें छन्द की अन्तिम पंक्ति भी श्रुति है फलस्वरूप इन छन्दों में चल रहा युद्ध प्रसंग कितना लम्बा है? ज्ञान नहीं होता है।

इन दोनों अंशों के आधार पर इस काव्य की मापा ढिङ्गल है। वर्णन बड़ा सजीव एवं नवीन उपमाओं से युक्त है। मूख और सेना के प्रयाण के लिये कवि की उपमाएं आकर्षक हैं।

## पतायण

( १ )

देवे देवामुर कीउ, रामयण कीउ राम ।  
भारथ कीउ कुर पडवे, सरखा वेद सग्राम ॥१॥

देवासुर रामायणह, भारथ परगड भेद ।  
विहै त्रीजु चुहु पचमु, जिम बंचाइ वेद ॥२॥

कृत युग त्रेता द्वापरे, नवा नवातिहां नाम ।  
कलियुग चुथु ए, कहुं रोके रण सग्राम ॥३॥

मांतल सोम हमीरदे, कान्हडदे कूलि एह ।  
परिगउ ति प्रतापसिह, हिन्दू हाथा देउ ॥४॥

ग्रीस मास जीणि अटि चडो, अग ओडव्यु साप ।  
राउल रढि छाडि नही, स्पू पातशाह प्रताप ॥५॥

नित ढोलाख ढग ढगिइ, नित ढो लाख ढोय ।  
हवि दल हीदू 'हउ, खोहिणि मत्ता खोह ॥६॥

खोहिणि मिलि कल बह कट्ठा, आवी दल पावइ आवरया ।  
हवि राउल ए हीदूयाण समोवडि बाद विहु सुरतारण ॥ ७ ॥

कृत युग छसठि कोटि परायण, माहि निवड़ मा की नारायण ।  
वेनट दंत्य कीउ विष्णु परायण, तिम करि प्रतापसिह बताइण ॥८॥

पदम अठार अिता युग मेंली, वाली सीत लक गढ मेली ।  
रथु जेम राम रामायण, तिम करि प्रतापसिह पाताइण ॥ ९ ॥

द्वापर अंनि अठार खोहिणि, आवट्या कुरुक्षेत्र महारणि ।  
भारत भीम कीउ भीमायण, तिम करि प्रतापसिह पाताइण ॥ १० ॥

जव रणथम्भ अलां सिरि लींघु, राड हमीर जेणि वल कीघु ।  
हमीरा सरिस कीउ हमीरायण, तिम करि प्रतापसिंह पताइण ॥ ११ ॥

जव सुरताण ग्रही सोनगिर, समप्या भेद चढया असुरां सरि ।  
कलही कन्हडी कीउ कन्हायण, जिम करि प्रतापसिंह पताइण ॥ १२ ॥

सांतल राउ रहिउ समीयाणो, चहुयावट कीघ चहुयाणो ।  
ओडी विर कीघ आपायण, तिम करि प्रतापसिंह पतायण ॥ १३ ॥

पह पतसाह मंडोवरि मगिइ, अभग सोमहु गढपति अगिइ ।

॥१४॥

× . . . × . . . × . . . ×

(२)

—————मज समह को जपिइ ।

सवि दीह सूरपखे पूरु, पुहुवि पातल परि तपिइ ॥६॥

सूरु संभलेजी (२) वाजिअ घाष मिलेजी (२) ।

मोर महा मिले जी (२), हमथट हुकले जी (२) ।

जे हुकले हय थट सूरसु रूत होइ हव हालो हाउं ।

भाद्रव मासं घण विकासं, मचे कंठलि मेहला ।

जित घटा हरखं सख सरख, हवे हय थठ हुकले ।

सूमाण वंसं राजहंसं सवर पातल संभले ॥७॥

आभूषण सजिजी (२) नल व्रत नी मजिइ जी (२) ।

घार अणी घजि घी (२) भल जोड़ी भजि जी (२) ।

कटि जोडि वधि तेगो कधिइ सपन सि हथि ।

फरसी कुहाड़ी विध फाड़ी, कलह हरिरिवअ कधि ।

मद गहजी सकल सरजी वेष जोडि कती भजिइ ।

कातो अ-कतो डव रत्ती स ताण आभूषण सजिइ ॥८॥

वस महावणी जी (२) श्री काविल तरणी जी (२) ।

आइति अति घणी जी (२) भणि जोती घणीजी (२) ।

जे धाँण घणी जोतोधार घरीइ भरि जोवणि भूमली ।  
न हसती हसती कसण कसती अवल निर्मल ऊजली ।  
घणी यालि घूरति चरत घरती घणू आयत भति घणी ।  
आगरा काविल हुति आविइ वेस लाडी बहु वणी ॥६॥

चिहूँ दिशि चमकती जी (२) ठणहरा ठमकती जी (२) ।  
भाभर भमकती जी (२) घूघर घमकती जी (२) ।  
जे घमकते घूघर भमक नेपुर ठमक नेडर ठमकती ।  
बट राग कछू जख कसीइ खडग हाथलि खडगती ।  
सरागार सार छत्रीस सजिइ भरे जोरे अण भती ।  
राखड़ी हाथी सिरिविराजी तेण्णि च्यारि दिशि थै चमकती ॥१०॥

लाडी लोडती जी (२) सवली सोभती जी (२) ।  
नख दल लुवती जी (२) माती उमती जी (२) ।  
जे माती उमत्ती रोस राती, गीत गाती गोरणी ।  
खबर हमाउ विरद बोलि, जगत्र जीप्यु जोरणी ।  
सामला साथे मोर माथे महा भत्ती उमती ।  
खमणोरह लही मांडि हय बल घडा आवि घूमती ॥११॥

वधाउ वहि जी (२) पातलि नि कहि जी (२) ।  
समु आवी समुहि जी (२) रुश (रुडुं) हो रहि जी (२) ।  
हो रहे रुडां वडा हीदू हठी भल्ले सांगाहरा ।  
कहि हीदू आणि सू रग रसाल खरा ।  
ति शाह सरसो तेग साही सहासु आवी समुहे ।  
जलाल अकबर घडा जपि वातइ वधाउ वहे ॥१२॥

वधाउ कहि जी (२) ति मुखि तु तू वहिजी (२) ।  
नर कोई न रहिजी (२) साहामी तुज्जण सहिजी (२) ।  
कुण सहि साहामी सामि सभलि कद्र घड रुद्रामणी ।  
सामली सूरी गात्रि गोरी भेखि भेखि बीहामणी ।  
भति चोल मुखी आप रखी साहामी जन को न सहिइ ।

आपणा स्वामी प्रताप आगिइ वात इम वाधाउ कहिइ ॥१३॥

शात्र घड़ सभली जी (२) वोरति वलकली जी (२) ।  
 अणीआं जमली जी (२) मुँछ भुहा मिली (२) ।  
 जेमलि मुँछ भुहां चन्द्र भत्ती बहूय अत्तीए वही ।  
 पावक घृत राय वग पूरो जगत्र जोता जे वही ।  
 वामन बलिरा छलणि वाघे मुँछ एम भुहां मिली ।  
 आदीत द्वादश कमल या सत्रघड़ आवी सभली ॥१४॥

वेगि वणावीइ जी (२) भल चिति भावीइ जी (२) ।  
 सामि सोहावीइ जी (२) अगि ओपावीइ जी (२) ।  
 ओपावीइ साब वर मोजा, वेग जीण वणावीइ ।  
 आणिउ वगतर अम्म उजल, सामि सब सोहावीइ ।  
 हाथ थे हथोटा टोप उपे अरक कोटि उगामीइ ।  
 पतशाह घड़स्यूं वढणि पातल वेगि जीण वणावीइ ॥१५॥

खत्रि मारगि खड़ि जी (२) द्रुजे वहि घड़ि जी (२) ।  
 भूपति भगे पड़ि जी (२) घड़ पड़ घड़ हड़ि जी (२) ।  
 जो घड़ हडे घड़ पड़ भवे धूंधलि सैन अकबर सम वढिइ ।  
 डोलि दहग पग भग डगि डूगर सर दडिइ ।  
 खूदि ते हय खर सक वेसर घूजिइ घड़ पड़ ।

————— ॥१७॥

X

X

X

X

## सारांश

छन्द संख्या १ से छन्द संख्या १३ वाले प्रथम अंश में 'पतायण' के निर्माण का कारण दिया है। बताया गया है कि देवताओं व असुरों के बीच, राम व रावण के बीच तथा कौरव एवं पाण्डव के बीच संग्राम हुए हैं। कृतयुग, त्रेतायुग व द्वापरयुग में भी संग्राम हुए हैं, तो फिर कलियुग में संग्रामों को कैसे रोका जा सकता है? सातल, सोमदेव, हमीर व कान्हडदेव के समान ही कुल रक्षक प्रतापसिंह भी हुए हैं। जिस प्रकार राम-रावण युद्ध के आधार पर 'रामायण' की, महाभारत काल में भीम-कौरव युद्ध के आधार पर 'भीमार्जव का, रणथम्भोर के राव हमीरदेव व अल्लाउद्दीन के बीच हुए युद्ध के आधार पर 'हमीरायण' की स्वर्णगिरी जालोर के कान्हडदेव एवं बादशाह के बीच हुए युद्ध के आधार पर 'कान्हायण' की रचना की गई है, उसी प्रकार प्रताप अकबर युद्ध के आधार पर 'पतायण' की रचना की गई है। तेरहवें छन्द की प्रथम पंक्ति में मोमगढपति से बादशाह मडोवर मांगता है, इसके बाद का अंश युद्धित है।

छन्द संख्या ६ से छन्द संख्या १७ वाले दूसरे अंश में प्रताप व अकबर के मध्य हुए मयंकुर युद्ध का वर्णन है। महाराणा प्रताप की सेना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिये चली। उनकी सेना में हाथी व घोड़े का दल इस प्रकार से चल रहा था मानो भाद्र-पद मास की घनघोर घटा उमड़ आई हो। इस सेना रूनी सागर में खुमाण वशी प्रताप राजहम के समान सुशोभित था। सैनिकों को कमर में तलवारें, कंधों पर माले, फरसी और कुल्हाड़ी थी। वे सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण धारण किये हर्षोल्लास से युद्ध हेतु प्रयाण कर रहे थे। वीरगिनाओं ने गीत गा कर पतियों को विदा किया, रास्ते में अन्य स्त्रियों ने भी 'वधावा' गा कर वीरों का सम्मान किया। सेना घूमती भूमती खमणोर के मैदान में पहुँची। प्रताप के रंग-रंग में शौर्य भर गया [ यहाँ मूर्छों का तनना व उसकी उपमाओं का सुन्दर वर्णन है ] युद्ध आरम्भ हुआ। प्रताप भी हाथ में 'हथोटा' लेकर सूर्य के समान चमकता सिरस्त्राण धारण कर आगे बढ़ा, ऐसा मयंकुर युद्ध हुआ कि पर्वत तथा सागर भी धरने लगे। घोड़े कट-कट कर गिरने लगे ————— ।



.....It is to his [Pratap's] credit that he perfected the strategy of guerilla warfare exploiting in full the geographical advantage of the hills and ravines. It was from him that later on Shivaji learnt that strategy which foiled all attempts of Aurangzeb to subdue the Deccan.

—J.M. Shelat

राजस्थानी-काव्य

---

सूर्यमल्ल मिश्रणा

---

वंश-भास्कर

## परिचय

‘वंश-मास्कर’ के रचयिता वीर रसावतार महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण हैं। इनका जन्म कार्तिक वदी १ विक्रम संवत् १८७२ में तथा स्वर्गवास आषाढ वदी ११ विक्रम संवत् १९२५ को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री चंडीदानजी एवं माता का नाम भवानी बाई था। चंडीदानजी स्वयं डिगल व पिगल के विद्वान व वूंदी नरेश महाराव रामसिंह के आश्रित कवि थे। सूर्यमल्लजी बचपन से ही बड़े प्रतिभा-सम्पन्न थे, इनके गुरु दादूपंथी साधु श्री स्वरूपदासजी महाराज थे। इन्होंने अपने जीवनकाल में छः विवाह किये किन्तु सन्तान एक भी नहीं हुई। अन्त में श्री मुरारीदानजी को गोद लिया। स्वामिमानी श्री सूर्यमल्लजी को संगीत और शराव से बहुत प्रेम था। अपने पिता के बाद महाराव रामसिंह के दरबारी कवि के रूप में इन्होंने प्रसिद्धि पाई। इनके द्वारा लिखे हुए निम्न ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं:—

वंश-मास्कर, वीर-सतसई, बलवदिलास, छंदोममूल, रामरंजाट, सती-रासो, घातु-रूपावली तथा फुटकर कवित्त, सबैये।

महाराव रामसिंहजी महाभारत की कथा से प्रेरणा पाकर चढासि चौहान वंश (अपने वंश) का इतिहास लिखाना चाहते थे। महाराव की इच्छा एवं उनकी आज्ञा पाकर सूर्यमल्लजी ने ‘वंश-मास्कर’ के रूप में उसे विक्रम संवत् १८९७ में लिखना आरंभ किया, किन्तु महाराव से अनवन हो जाने के परिणाम स्वरूप विक्रम संवत् १९१३ में लिखना बन्द कर दिया, बाद में इनके दत्तक पुत्र श्री मुरारिदानजी ने इसे सम्पूर्ण किया। मूल ग्रन्थ प्रायः २५०० पृष्ठों का है। इसमें वूंदी राज्य के वर्णन के साथ-साथ गीण रूप से अनेकानेक विषयों, कथाओं एवं राजपूत राजाओं का भी वर्णन हुआ है। यह ग्रन्थ महाचम्पू प्रकार का है। इसकी भाषा न तो शुद्ध रूप से डिगल है और न शुद्ध रूप से पिगल। संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश के साथ-साथ अरबी एवं फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा गूढ़ और क्लिष्ट है, कहीं कहीं तो इन्होंने अपने निज के बहुत से शब्द गढ़ लिये हैं।

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित विवरण इस ग्रन्थ में षष्ठराशि, पचम मयूख में छन्द संख्या ७६ से ८०, षष्ठराशि-सप्तममयूख में छन्द संख्या ५ से ९ तथा षष्ठराशि-चतुर्थमयूख में छन्द संख्या १ से ५० तक में उपलब्ध होता है।

## वंश—भास्कर

कति जयमल्ल प्रताप को, समय विभावो सोस ।  
छितिपति रान प्रताप छत, अक्खहि दुगं अधोस ॥७६॥

इम भगवंत रु मान रन, जनक सुतन उत जाइ ।  
सह भोजन टार्यो समुक्ति, खल नच्छर अनखाइ ॥७७॥

रान कुलहु निज सम करन, पिसुन भार मन पूरि ।  
अकबर को चितौर इम, भनि आन्यो फल भूरि ॥७८॥

रान तदपि कुल रक्खिबे, छिति पुर दुगन छोरि ।  
वनचरणन घरिलिय बिपति, जीवन धर्महि जोरि ॥७९॥

सतति दैवे प्रमुख सब, दिल्ली अभिमत दाहि ।  
सुख तजि स्वभट कुंडव सह, उदय गह्यो दुख आहि ॥८०॥

( पण्ठराशि-पंचममयूख, सुरजन के चरित्र मे अकबर का  
चितोड लेना, छंद सख्या ७६ से ८० )

× × × × ×

उदयरान के सुत उदित, बीस प्रमित बरबीर ।  
जैठो कुमार प्रताप जह, धर्म सहायक धीर ॥८१॥

सगतसिंह जगमाल सम, अति धृति मित सुत ओर ।  
अट्ट भये कुलधर अडर, जिनमें रन घनजोर ॥८२॥

सगत जग अगार रु सगर, पचायन गन नाम  
कन्ह रु लवनादिक करन, कुलतानक जसकाम ॥८३॥

कुल तिनके तिन्ह नाम करि, अग कहवत उत्त ।  
सगताउत्त प्रमुख्य सब, जानहु इम जसजुत्त ॥८४॥

किते उदयनृप कै कइत, जेठो सुत जगमाल ।  
पै कछु हेतु अमोघ परि, भयउ प्रताप भुवाल ॥१॥

( षष्ठराशि- सप्तममयूख, सुरजन के चरित्र में राणा उदय-  
सिंह के सतान का वर्णन, छन्द सख्या ५ से ६ )

× × × × ×

पतारान इत उदयपुर अप्पन बिधि अनुसार ॥  
अज्ज घरम प्रेरिय अखिल, भुज घरि सासक भार ॥१॥

दसपुर मुख पत्तन दुलभ, लिय दिल्लिय घर लुठि ॥  
इत उत बहु गजे अडर, करवालन अरि कुटि ॥२॥

कहिय पुब्व तिम कति कहत, यह हुव सब भुव ईस ॥  
बदत किते हुव यह बिदित, अद्धी अवनि अवीस ॥३॥

चितोरहु कति जवन चहि, जसगाहक लिय जित्ति ॥  
जिम तिम तपि मेवार जिहि, किय निज बिक्रम कित्ति ॥४॥

चेटक नाटक मुख प्रचुर, रान लये हय राज ॥  
न दयो पै भ्रातन निजन, इक हु अस्वे बर बाज ॥५॥

इम रठो ताको अनुज, सप्ति न लहि सगतेस ॥  
सेवन अकवर निजन सह, आयो दिल्लिय एश ॥६॥

॥ षट्पात ॥

दिल्ली अकवरद्रग उभय अकवर निवास इम  
कहु यह कहु यह कहिय तदपि समुझहु सभव तिम  
सगत सिंह सीसोद साह आतहि सन मान्यो  
पहु इत रान प्रताप प्रबल प्रतिभट पहिचान्यो  
सजि वरुय बहुरिहु अखिल प्रस्थित हुव मेवार पर  
सीमा प्रवेश पावत समय कहत चलयो असि रान कर ॥७॥

अडर रान इक्क लहि अर्व चेटक चढि आयो  
व्यवहित रहि कछु वेर साह दल मिलित सुहायो  
सरत जबहि निजसीम अंग्रि दुव दिय अकबर इम  
तह भारिय तरवारि नृपति जमकी रसनानिभ  
कछवाह मान गज अग कछु भयद खान वहलोल भट  
हो तह प्रताप तस सिर हरयो कटि पकखर हय जुत प्रकट ॥८॥

बहुत वह वहलोल खग उततेहु चलयो खर  
इक तिहि चेटक अंग्रि अवनि कटि रु प्रकट्यो अर  
मो नृप जानि सक्यो न कढत अति वेग यहै करि  
त्रय पय चेटक तुरग घुरग मारचो सु पटी घरि  
जिहि पिठि बहुत लग्यो जवन जह पहुँचत दुव जानि कै  
कर जोरि अरज सगतेस किय मन अग्रज हित मानिकै ॥९॥

अग्रज जब लिय अस्व याहि तिन में दिय इक्कन  
तव रिसाइ सगतेस मंगि भूखन मातासन  
तसो हो इक तुरग लोल सोदागर ते लहि  
इम अकबर पह आइ रक्खि कछु दाय गयो रहि  
अब जानि त्रिपय हर अग्रज हि चहत बचावन इम चविय  
जो होइ हुकम मै पूगि जिहि जातहि हनि आऊं जविय ॥१०॥

माह कहिय सगतेस जाहु मारहु रानहि जब  
वाजि दपटि यह बीर त्वरित सज्जित, पहुँच्यो तव  
उभय जवन हे अग तिनही हनि अग बढ्यो तिम  
रानहि अखिय रहहु अनुग यह सगत सिंह इम  
पूगतहि जवन तिन्ह मारि पथ कछु अप्पहि आयो कहन  
हयत्रि पथ छोरि चढि जवन हय ब्रजहु आत पन निब्वहन ॥११॥

असभूत सम वत्त यह, बाढत मन न बिसास  
जे अकबर बानेत जिम, पहुँचे इक्क न पास ॥१२॥

हैं ही पहुँचत जानि दूढ, तिनहि हने सगतेस  
पहुँचे यह याकोहि पुनि, अद्भुत सूचक एस ॥१३॥

बिरचै जन टुकरहु अबहु, मन कञ्जन महिपाल  
तनुके कज्ज बने न तिम, बने सु बिरचै बाल ॥१४॥

पिहित साह दल मिलि पता, करिलै पुढव कही सु  
अनुज ही पहुँचै नहि इतर २, रीति अचिज्ज रही सु ॥१५॥

पै धुरधर अब के नृपन, तब हुब रान प्रताप  
बिपिन धर्म हित जो बस्यो, आपत्ति हु सहि आप ॥१६॥

बीरपनहु याकोहि बलि, उधर्यो सब सिर एक  
हठि इम तँहँ सभव - चहन, अद्भुत जसहु अनेक ॥१७॥

### षट्पात

इक आकृति कति कहत हुते उभय हि बंधुन हय ॥  
पहुचि अनुज इम पास रान हय लिय सुत्रि पय रय ॥  
चपल स्व हय अग्रज चढाइ पठयो पन पालन ॥  
अखिलय साहहि आई कटि जवनन करवालन ॥  
पुनि छेदि इक्क मम हय पयहु दुस्सह भय जयखिन दयो ॥  
सो रान प्रबल हजरत सुनहु गजि सबन-बचि इक गयो ॥१८॥

संक्रमि अकबर सुनत पत बल अतुल उदैपुर ॥  
चितोर हि कति चवत धरिय बहुविध जुज्झन धुर ॥  
जिहि बहु दिन लरि जिति पुहवि मेवार लई पुनि ॥  
रक्खन धर्महि रान बसिय वन बलि चित्रन चुनि ॥  
पठई कहाइ दिल्लीस पहु सासन मम कछु अनुसरहु ॥  
नहि और नृपन सम तुम नृपति रहि दिल्लिय सेवन करहु ॥१९॥

### दोहा

हमरे रक्खहु दाग हय, नीचे चिन्ह निसान ॥  
कहिहै हमरे यहि करि, राज्य करहु पहु रान ॥२०॥

तैंक न मश्री रान नटि, सुनहु राम प्रभु सोहु ॥  
पठई कहि रहि है स्वपघ, हम नासहि किन होहु ॥२१॥

इत अकवर हठ अकुर्यो, प्रतिभट उतसु प्रताप ॥  
मन्यों नन दुव घां मिलन, आप मतहि तजि आप ॥२२॥

सूनु रान कै दस सुनें, पै तिहि समय प्रवीर ।  
पट्ट कुमर अमरेस पट्ट, भये जनक मत भीर ॥२३॥

### षट्पात

उभय पिता सुव अत्तुल कट्टि नारिन सगहि करि ॥  
सब भट परिजन सहित धर्म न तजन मन पन धरि ॥  
गहन वरुनदिस गिरिन रहिय पिरलो तह रानाँ ॥  
भोगे हठ सब भाति खुल्लि आपति खजानाँ ॥  
फटकी तरुन आवृति कलित तिहि अतर तृन पत्र तनि ॥  
इम विविध कायमान रु उटज वनवाये नृप वन्य बनि ॥२४॥

तैंहें अतहपुर तिमाहिं रक्खि रानि न कुमरानि न ॥  
अप्प कुमर कछु ओटरहे बाहिर छद छानिन ॥  
आवृति बाहिर अखिल वीर अरु अनुग बसाये ॥  
पिउहर निज पठइ न लाख नारिन कति लाये ॥  
अवरोधतेहु अक्खिय अधिपनिज पुत्रिन सम हित नियत ॥  
साहस अमोघ इहि सकट हु जवन भृत्य न बजै जियत ॥२५॥

रह्यो इत सु भुव रंघि सबल छोरें हठ साह न ॥  
अधिक अधिक दुख देत रोकि अन्ना गम राहन ॥  
दूजे तीजे दिवस स्वजन जुहि अन्न प्रवेशहि ॥  
नटि सबन इक बेर अप्प लै तव्व अवसेसहि ॥  
कोद्रव गवेधु न मिलै कबहु साक फलन व्है तव असन ॥  
कलिह को खिलहु बिच डारि कछु रघिलहहि हेरहि रसन ॥२६॥



### दोहा

पै जब व्है तब पति परि, बिच जिम्महि नृप बैठि ॥  
 निज निज स्वामिन खिल अनुग, पावहि अवसर पैठि ॥२७॥  
 'रीति सु' तैहँ पीठिन रहै, जैहँ बिपदा बढिजाइ ॥  
 पै सह भोजन उदैपुर, होत अबहु यह हाइ ॥२८॥  
 पतारान इम धर्म पर, सधा अबि तथ साहि ॥  
 रोर दुखहु सहि मुरि रह्यो, निज जन सब निर्वहि ॥२९॥

### षट्पदा

जिहि बिपत्ति गर्भ जुत रहत कोउक कुमरानिय ॥  
 वासर तीजे कबहु अन्न स्वजनन, तह आनिय ॥  
 हुव तस रूटी होहि अखिल बट अद्धि अद्धि ॥  
 गुरुपन कारन द्विगुन लाभ ताकन इक लद्धी ॥  
 आहार करन आतापिनी गगन भूपटि तिहि लै गई ॥  
 अमरेस नारि करि आहि वह भय बिहाल क्रंशत भई ॥३०॥  
 स्वसुर सुनत बट रवीय अद्ध, पूपिय तिहि अप्पिय ॥  
 सोहि स्वबट सरसू हु दइत मग रहि बधूहि दिय ॥  
 इम ताकै हुव इक्क जोहु न लगी खावन जैहँ ॥  
 सस्सू तह सह सपथ कठिन भोजी स्वबन्धू कहँ ॥  
 दुख को न सेस अन्नहु दुलभ सूर तदपि संगर रसिक ॥  
 अरि जवन तिमिर भास्यो उदित अज्जनृपन रवि रान इक ॥३१॥

### सौराष्ट्री दोहा

स्व धरम द्रढ सवादि, दे सीस हु को भू द्रविन  
 अगहु लखन आदि, रानहि वह मुररे रहे ॥३२॥  
 या ही ते जन अज्ज, अज्जन इन भाखै इनहि  
 नृपत धर्म कुल लज्ज, तक्की इन इत न न तिम ॥३३॥

जवन कहत लघु जानि, अप्पन अज्जन हिंदु इम  
मति जउ सुहि ढढ मानि, हिंदू हम अज्जहु कहत ॥३४॥

हिंदुस्थान कहंत, अज्जावत्तहि अज्ज इम  
लज्ज न सुनि हु लहत, मिच्छन हिंदुस्तान मित ॥३५॥

भास्यो हिंदुन भानु, जनन इमहि रानन जनन  
सो जेहो ज्वलित कसानु, हुव प्रताप अरि करन हुव ॥३६॥

भोज मान से भूप, सचिव खानखाना दि सब  
रहे स्व स्व अनुरूप, करन सवि समुझाईके ॥३७॥

### षट्पात

पठई कहि मान प्रति रान यह वंत धर्म रत  
दुहिता जवन न दैरु तुमहु सबध उतहि तत  
अकवर जामिअ अग वयों न नत हमहि करावहु  
अव पै सगपन असन पति पैले भव पावहु  
जो पुनि न देहु निखि देहु जब लवकुल पुत्रिन तब लहहु  
हम स्वीय भटन देतहि हरखि रुवत न तो मिरजा रहहु ॥३८॥

### दोहा

करो जवन लवकुल कनी, कहिय अग तुम कुप्पि  
बिगरायो सुन करि वचन, लज्ज धरम कुल लुप्पि ॥३९॥

कनि दूर जवनी करन, फछ वाहहु लै कोहु  
तनया लव कुलजा ततो, हमकों तुम अघ होहु ॥४०॥

### षट्पात

जब प्रताप असु जाइ कुम्म व्याहहु तब मो कुल  
तनया व्याहहि न तनु तनय व्याहहु अतीत तुल

कहा रुद्रि तुम कियउ सिंह इत आनि फेर सम ।  
 हथी समुझे हमहिं तुल्य समुझे न अघ तिम ॥  
 कदरालिय सु बहु मिलि किनहु तिम जो सद्धै हुकम तस ।  
 तो हमहिं धर्म तुम लो तजै बद्धु सिंह कित सिंह बस ॥४१॥

मुख जो रक्खहु मुच्छ साह श्रुति गहि समभावहु ।  
 दग्ग सु हय न दिवाइ चिन्ह ध्वज निजहि चलावहु ॥  
 उत उत्तर यह अप्पि भूप भोज हिं इम अक्खिय ।  
 थिर सुर्जन रन थंभ कोल हम सुनिय सत किय ॥  
 उत्तमै न दैन दुहिता यहहु जो बलि दै सोहु जवन ।  
 दूदा रू तुम हु तनया दई कहहु धर्म रक्खहिं कवन ॥ ४२ ॥

### दोहा

मन्नहु अप्पहु अबहि किम, रक्खत ए छरराह ॥  
 कछवाहन कै जिन करहु, बिनु लिपि पुत्र न व्याह ॥ ४३ ॥  
 अतर मिच्छन बधु इम, ए ठग उप्पर ओर ॥  
 अज्ज कवन धिज्जै इनहिं, चोरें दीसत चोर ॥ ४४ ॥

### षट्पात

इम कहाइ रान इत बस्यो गिरिदुर्ग दुर्ग बन ॥  
 जहैं सके न अरि जाइ जाइ दिन निठि निजहि जन ॥  
 साक पलास१ पलासर पलासन के उटजन पहु ॥  
 रई जलन तहैं रच विसै भर जदपि लगी बहु ॥  
 वरखा अनेह तहैं कछु विघन अमर उटज प्रच्युत उदक ॥  
 कुमरानि सहित अनुताप किय जगिनिस कुमर न पाइ जग ॥४५॥

पिहित सुनत सब पास रजनी विचरें उठि रानहु ॥  
 कुमर उटजठिग कहत कथन परिगो वह कानहु ॥  
 अमर दुखित उच्चरिय अहो हम स्म न अभागे ॥  
 वन मह सहत विपति जलहिं टारन निस जागे ॥

सब अधिप धन्य हमरे सगे महलन वितवत यह समय  
 प्रवलहिं बुलाइ पद करि प्रहत न क्यो गहत नृप सधि नय ॥४६॥  
 छदन निलय निज छन्न आइ सुतो मृनि नृप यह  
 परिकर बुल्लि रु प्रात सवन प्रति भनिय सूनु सह  
 तुमहिं सधि जो रुचत करहु तो ह्वै अनुमत किल  
 इक मो सठ अपराध बसहु क्यो सब कारा बिल  
 यह मुनत भीत विस्मित अखिल कहत भये यह अज्ज किम  
 प्रभु सग दुख न सुख परिजनन जानहु हमहिं स्वछाँहँ जिम ॥४७॥

कहिय रान जल कनन कुमर अनुताप रति किय  
 छिज्जि मिलहु पीछैहिं जु अब किन गिनहु उचित जिय  
 करन राज्य नमि कुमर बुरे बलि हमहिं बतावै  
 हम छत सादर मिलहु जिम न अरि अरुचि जतावै  
 तब हीत मोत अविषय अमर गति दरिद्र आढ्यन गदत  
 मिलि वोहि मन्नि किम प्रभु कहहु निज पर परदासहु नदत ॥४८॥

### दोहा

कुमर लजानो इम कहि रु रह्यो सदा तिहिं राह  
 जुग २ न रिपुन नैन जिमहि, पैने तिमहि सिपाह ॥ ४९ ॥

### षट्पात

अकवर पाउम अंत गयो तँहें धरि रच्छ कगन  
 इम प्रताप असु अवधि प्रथित निवस्यो स्वधर्मपन  
 स्वकुल समप्पन सुजस धर्म अप्पन थप्पन धुर  
 स्वामि सुनहु जिहिं समय इक्क १ हुव यह हि उदैपुर  
 विपदाह सहि रु अन्दन बहून बिहित बहि रु थिति चहि विपिन  
 वितयो स्व आयु तस देस १ बसुर अमल गयो करि साह इन ॥५०॥

## सारांश

कितने ही लोग जयमल और पत्ता को महाराणा प्रताप के समय में किले का ( चित्तोडगढ़ का ) किलेदार होना कहते हैं ।

महाराणा प्रताप ने राजा भगवंतसिंह व उसके पुत्र मानसिंह द्वारा मुगलों का अन्न खाने के कारण उनके साथ बैठ कर भोजन करने से मना कर दिया । इससे मानसिंह व प्रताप के मध्य वैमनस्य स्थापित हो गया । अकबर ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया । प्रताप राज्य, नगर व किला छोड़ कर अपने परिवार व योद्धाओं के साथ वन में रह कर कष्ट सहन करने लगे ।

[ षष्ठ राशि-पंचम मसूख, छन्द सं० ७६ से ८० ]

$\times$ 
 $\times$ 
 $\times$ 
 $\times$

ॐदयसिंह के चौसठ ब्रह्मवान पुत्र थे । धर्म रक्षक प्रताप उनमें सबसे बड़ा था ।  
शक्तिसिंह व जगमाल सहित आठ पुत्र थे । सगत, जगा, अगार, सगर, पचायन, कान्ह, करन  
आदि बड़े निमय थे । इनके नाम के आगे उक्त शब्द लगने के बाद बनने वाला शब्द इनके  
वश का परिचायक है ।

कुछ लोग जगमाल को ज्येष्ठ पुत्र बतलाते हैं, किन्तु कुछ कारण वश प्रताप ही  
शामक बना ।

[ पष्ठ राशि-सप्तम मयूख, छन्द सं० ५ से ९ ]

✕                      ✕                      ✕                      ✕

महाराणा प्रताप ने राज्यासन प्राप्त होने पर दसपुर (मंदसौर) आदि मुगलों के अधीन प्रदेशों को अपने अधिकार में लेना आरंभ कर दिया ।

[ एक बार ] प्रताप ने चेटक, नाटक आदि कई घोड़े खरीदे लेकिन अपने भाईयों को एक भी घोड़ा नहीं दिया। इस पर उसका छोटा भाई शक्तिसिंह रुष्ट होकर अपने लोगों सहित अकबर की मेवा में दिल्ली चला आया। अकबर ने उनका स्वागत किया और अपनी मेवा नैर मेवाड़ पर चढ़ आया। शाही सेना के मेवाड़ की सीमा में प्रवेश करते ही युद्ध आरंभ

हो गया । वहलोल खा मानसिंह के हाथी के आगे था । प्रताप की तलवार से वहलोल मारा गया, वहलोल की तलवार से चेटक का एक पैर कट गया । मुगल सैनिकों ने प्रताप को घेर लिया । शक्तिसिंह के मन में आने वाले भाई के प्रति महानुभूति उमड़ आई । उसने पूर्व वैमनस्य को भुला कर प्रताप को बचाने का विचार किया ।

प्रताप के भागने की सूचना अकबर देते हुए शक्तिसिंह ने कहा कि अगर आप आज्ञा दें तो मैं प्रताप का पीछा कर उसे समाप्त कर दूँ । अकबर ने आज्ञा दे दी । उस समय दो यवन प्रताप का पीछा कर रहे थे, उन्हें मार कर शक्तिसिंह प्रताप के पास पहुँचा । शक्तिसिंह ने प्रताप को अपना घोड़ा दे दिया और प्रताप का घोड़ा (चेटक) लेकर अकबर के पास लौट आया और कहा कि मेरे घोड़े का पैर कट जाने में मैं कुछ नहीं कर सका और प्रताप सब सैनिकों को मारते हुए अकेला बच कर भाग गया ।

अकबर ने प्रताप के पास यह संदेश भेजा कि तुम मेरा कुछ शासन मान लो । तुम्हें अन्य राजाओं की भाँति दरबार में रह कर मेरी सेवा करने की जरूरत न रहेगी । केवल घोड़े पर दाग लगाने पड़ेंगे और शाही चिन्ह व निशान रखने पड़ेंगे । किन्तु प्रताप ने एक बात नहीं मानी और जयाव में कहा कि चाहे हम नष्ट हो जाय लेकिन हम अपना माग नहीं छोड़ेंगे । प्रताप ने अपने परिवार, सम्बन्धियों व योद्धाओं सहित यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि वे किसी भी स्थिति में धर्म का त्याग नहीं करेंगे । वे जंगल में आकर रहने लगे ।

अकबर ने मेवाड़ को घेर कर रसद के मार्ग बन्द कर दिये । प्रताप को दूसरे तीसरे दिन कुछ भोज्य-सामग्री प्राप्त हो जाती, जिसे वे सबको एक बार बाँट देते और जो कुछ बाद में बच रहती उसे खाकर संतोष कर लेते । जब कभी कोदो और गेहूँ नहीं मिलते तो जंगली फल फूल खा कर तुष्टि कर लेते और जब ये मिलते तो पक्ति बनती, बीच में प्रताप बैठते और एक साथ भोजन करते । एक बार भोजन करते समय एक चील झपट कर अमरसिंह की पत्नी के हाथ से भोजन ले कर उड़ गई । वह मयमात होकर रोने लगी, उसका क्रन्दन सुन कर प्रताप ने अपने हिस्से की रोटी में से आधी रोटी उसे दे दी ।

प्रताप ने मानसिंह के पास स्वधर्म पर दृढ़ रहने के आशय का एक संदेश भेजा और समझाया कि वह मुगलों से सम्बन्ध तोड़ ले, किन्तु मानसिंह नहीं माना ।

जंगल की आपत्तियों से घबरा कर तथा अकबर से अधीन राजाओं के आनन्दपूर्ण जीवन को देख कर अमरसिंह ने कहा कि अकबर से संधि क्यों न करली जाय ? यह सुन कर प्रताप

अपनी भोपड़ी से बाहर निकल आये और अपने समस्त सरदारों की उपस्थिति में अमरसिंह से कहा कि यदि तुम्हें सन्धि पसन्द है तो कर लो, अपराधी तो मैं हूँ तो फिर तुम मेरे साथ क्यों दुःख भोग रहे हो ? इस पर सरदारों ने भयभीत एवं विस्मित हो कर कहा कि आर्य ! आप यह क्या कर रहे हैं ? हम तो दुःख और सुख में निरन्तर आपके ही साथ रहना चाहते हैं । अमरसिंह इस पर बहुत लज्जित हुआ ।

इस प्रकार अपने कुल की समृद्धि करने वाला प्रताप वर्षों तक आपत्तियाँ सहन करता रहा और अन्त में अकबर ने प्रताप की महत्ता स्वीकार करली ।

[ षष्ठ्याष्टाशि-चतुर्दश सूख, छन्द सख्या १ से ५० ]

राजस्थानी-काव्य

---

विविध समकालीन एवं परवर्ती कवि

---

फुटकर-काव्य



## परिचय

महाराणा प्रताप के जीवन और कृतित्व से सम्बन्धित विभिन्न संग्रहालयों में अनेक फुटकर गीत, कवित्त, छप्पय, निसाणी, दूहा, सोरठा आदि उपलब्ध हुए हैं । उन सब को यहाँ दिया जा रहा है । इन विविध छन्दों में प्रताप के शौर्य, साहस, स्वाभिमान, युद्ध-कौशल, कुल-रक्षा, धर्म-रक्षा, अस्त्र-शस्त्र आदि की प्रशंसा तथा प्रताप के सहयोगी वीरों के बलिदान आदि का सजीव वर्णन किया गया है । कहीं-कहीं घटनाओं का संक्षिप्त उल्लेख भी मिलता है । इस समस्त फुटकर-काव्य के रचयिता प्रताप के समकालीन व परवर्तीकाल के हैं । समकालीन कवियों में पृथ्वीराज राठौड़, दुर्रामा आढा, रामा सादू, माला सादू, गोरधन बोगसा, सूरायन्न टापरिया, जहाँ मेहदू आदि हैं । रामा सादू और गोरधन बोगसा तो हल्दीघाटी के युद्ध में प्रताप की सेना में विद्यमान थे । पीरा आमिया, कान्हा चारण, गणेशपुरी, बारहट बालावक्स, ठाकुरसी बारहठ, मुनि हेम, बाघजीराव आदि परवर्तीकाल के कवि हैं । कुछ छन्दों के रचयिता अज्ञात हैं, प्रयत्न करने के बाद भी उनके नामों का पता नहीं लग सका, ऐसे समस्त गीत, कवित्त, निसाणी, सोरठे, आदि एक साथ दे दिये गये हैं । जिन छन्दों की भाषा दुरूह है, उनका सारांश उनके साथ दे दिया गया है । बहु-प्रचलित व सरल भाषा के छन्दों का सारांश देना आवश्यक नहीं समझा गया है ।

# क्षत्र-धर्म की रक्षा

पृथ्वीराज राठौड़

नर जेय निमाराणा निलजी नारी

अकबर गाहक बट भवट ।

चौहटै तिण जायर चीतोड़ी

वेचै किम रजपूत बट ॥१॥

रोजायतां तणी नवरोजे

जेय मुसांणी घणी जणी ।

होदूनाथ दिली चै हाटे

पतो न खरचै खत्रीपणी ॥२॥

परपंच लाज दोठ नहँ व्यापण

खोटो लाभ अलाभ खरो ।

रज वेववा न आवै रारणी

हाटे मोर हमीरहरी ॥३॥

पेसै प्राप तणा पुरुषोत्तम

रह अणियाल तणै बल राण ।

खत्र वेंचिया अनेक खत्रियां

खत्रबट थिर राख्यो खूमाण ॥४॥

जासी हाट बात रहसी जग

अकबर ठग जासी एकार

रह राखियो खत्रीघ्नम राणी

सारा ले वरतै संसार ॥५॥

## सारांश

षादशाह अकबर पुरुषो का गौरव, स्त्रियों की लज्जा और क्षत्रियों के क्षत्रियत्व का ग्राहक है । कई क्षत्रिय राजाओं ने क्षत्रियत्व वेच कर अकबर की आधीनता स्वीकार करली, किन्तु हिन्दू पति राणा प्रताप ने क्षत्र-धर्म एवं वंश-गौरव की रक्षा की ।

१ डा० देवीलाल पालीवाल के अनुसार इस गीत का रचयिता पृथ्वीराज राठौड़ है [ प्राचीन डिगल काव्य में महाराणा प्रताप, पृष्ठ ५ ] । श्री ब्रजमोहन जावलिया के अनुसार राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय के ग्रन्थ संख्या ७१७-७१९ (हिन्दी) में इस गीत का रचयिता का नाम डुरसा आढ़ा दिया गया है ।

# रक्त-रंजित चन्द्रहास

पृथ्वीराज राठोड़

ऊगां दन समै करै अखाड़ा  
चोरंग भुवन हसत अणचूक ।  
रोदां तणा रगत सूं राणा  
रगियो रहै तुहालो रुक ॥१॥

मोकलहरा महाजुघ मचतै  
बाजतां सार नश्रीठ बहै ।  
पातल तूभ तणो पड़ियालग  
रुधर चरचियो सदा रहे ॥२॥

खित कारणी करै नित खलवट  
खेटै कटक तणा खुरसाण ।  
प्रसणां सोण अहोनस पातल  
खग सावरत रहे खूमाण ॥३॥

ऊगां सूर समो ऊदावत  
वढै बसू छल बोल-विरोल ।  
चलुअल अरी तणै चीतीड़ा  
चन्दरहास रहै नत चोल ॥४॥

## सारांश

हे राणा प्रताप ! तू प्रतिदिन सूर्योदय होते ही मातृ-भूमि की रक्षार्थ मुगल सेना से युद्ध करने लग जाना है इससे तेरी तलवार शत्रु के रक्त से सदैव लिप्त ही रहती है ।

# रामा साँदू का बलिदान

पृथ्वीराज राठोड़

गयी तू भलां भलां तू न गयी  
घिन घिन तू साँदवां घणी ।  
जाठ अणी मां हेडी जा कल  
अणी करण पातला अणी ॥१॥

तै लिय आहव राण प्रजड़ हथ  
तै लांघण मासण न लिया ।  
मोहै ससत्र सालिया सात्रत्र  
कठ सोहै न खालिया किया ॥२॥

दल आभरी नञीठी दीनी  
घायै लीना प्रसण घणा ।  
आंवाहरा न बीजा ओपम  
तागा वाला नसा तणा ॥३॥

चारण जाणै मांय चारणा  
अवै समे विच नथ अनथ ।  
घरमां तणी न बैठो घरणै  
रामो बंठो रभ रथ ॥४॥

## सारांश

हे घरमां के पुत्र रामा साँदू ! तू घन्य है तू मले हो [मारवाड के मोटा राजा उदयसिंह के विरुद्ध] घरणै मे नही बैठा किन्तु तू अपने साथियों सहित मेवाड़ आकर महाराणा प्रताप के लिये लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ और इस तरह अक्सराखों के साथ रथ मे बैठ कर वैकुण्ठ को गया ।

## प्रताप के नाम पृथ्वीराज राठौड़ का पत्र

पातल जो पतसाह, बोले मुख हूँतां बयण ।

मिहर पछम दिस माह, ऊँ कासप राव-उत ॥

पटकूँ मूँछां पाण, कै पटकूँ निज तन करद ।

दीजै लिख दीवांण, इण दो महली बात इक ॥

### प्रताप का उत्तर

तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूँ इकलिंग ।

ऊँ जाही ऊगसी, प्राचा बीच पतग ॥

खुसी हूँत पीथल कमध, पटकी मूँछा पाण ।

पछटण है जेतै पतो, कलमां सिर केवांण ॥

सांग मूँड सहसी सकी, समजस जहर-सवाद ।

भड़ पीथल जीतो भला, बैण तुरक सूँ बाद ॥

### अकबर का अनुताप

बुरसा आढ़ा

अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी ।

गी आढा गवढाय, जिको बहतो घुर वामां ।

नवरोजे नहूँ गयी, न गी आवसां नवल्ली ।

न गी भरोखा हेट, जेठ दुनियाण दहल्ली ॥

गंहलीत राण जीती गयी, दसण मूँद रसणा ढसी ।

नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रतापसी ॥

# कुल मर्यादा का निर्वह

दुरस्ता आढ़ा

सीसोदां तणी लाज सीसोदे  
असपत सूं धरि मछर अग ।  
राणो रहै गिरवरे राखी  
दारि थकै राखी दुरग ॥१॥

ऊदावत अनिये अचलावत  
साका वे राखै सबल ।  
नाया तिए नावी नवरोजै  
आयो पण नावी अवल ॥२॥

जुड़ै नवरोजै जोगणीपुर  
जुगत जूपतो हुआ अजूत ।  
रजवट अघट बडे घर राखण  
राणो राव बडा रजपूत ॥३॥

वास वाद जुड़ै वसि अंतर वाद  
.....वीरहाँ वर ।  
हांसा हरो जेम सांगाहर  
हुआ सिरै सहां रायहर ॥४॥

## सारांश

राणा प्रताप ने सिसोदिया वंश की कुल-मर्यादा का सदैव निर्वह किया । वह न तो कभी नौरोजे में, अन्य राजपूतों की भांति सम्मिलित हुआ व न अकबर के सम्मुख झुका । इस प्रकार उसने अपने घराने के बड़प्पन को कायम रखा ।

# कुंभलगढ़ का युद्ध : भाण का बलिदान

दुरसा आड़ा

आखै इण भाँण राँण अहाड़ा  
कथन किसा कहि अवर कहूं ।  
हाथी सहर हालते हालूं  
रहते हाथस सहर रहूं ॥१॥

में मांडिया खरा मेवाड़ा  
भाँण पयपै महा भड़ ।  
आबू साथ कहै आखावत  
आगल जोधा ए अनह ॥२॥  
पातल किसा प्रधान परठवै  
सोनिगरो उवचरै समाथ ।  
करै साथ गढ गिर केलपुरा  
सहि होवै ते माने साथ ॥३॥

फिरते दल मछरीक न फिरियो  
फरिया सोहड़ करै फरफेर ।  
माथा सू दीघी मिल काने  
माल कलोधर कु मलमेर ॥४॥

## सारांश

सोनिगरा अखेराज के गंशज वार योद्धा भाण को महाराणा प्रताप कुंभलगढ़ की रक्षा का भार देता है वह विशाल मुगल दल को देख कर मुड़ा नहीं बल्कि, वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए उसने गढ़ की रक्षार्थ अपने प्राण अर्पित कर दिये ।

# हिन्दू धर्म की रक्षा

बुरसा आढा

आयां दल सबल सामही आवै  
रंगियो खग खप्रवाट रती ।  
ओ नरनाह नमै नहं आवै  
पतसाहण दरगाह पती ॥१॥  
दाटक अनड़ दण्ड नहं दीधी  
दोषण घड़ सिर दाव दियी ।  
मेल न कियो जाय विच महला  
कैलपुरं खग-मेल कियो ॥२॥  
कलमा वांग न सुणियै कानां  
सुणियै वेद पुराण सुभं ।  
अहड़ी सूर मसीत न अरचै  
अरचै देवल गाय उभं ॥३॥  
असपत इन्द्र अवनि आल्हड़ियां  
घारा भड़ियां सहे घका ।  
घण पड़िया सांकड़ियां घड़ियां  
ना घीहड़ियां पठी नका ॥४॥  
आखी अणी रहै ऊदावत  
साखी आलम कलम सणी ।  
राणो अकबर वार राखियो  
पातल हिन्दू घरम पणी ॥५॥

## सारांश

अकबर के विशाल सैन्य—दल के आक्रमण से भूमि रक्तमय हो गई है किन्तु महाराणा प्रताप अकबर के सन्मुख न तो झुका और न उसको दंड दिया । उसने अकबर से सन्धि करने के बनिस्वत युद्ध करना अथेस्कर समझा । शीघ्र संकट काल में भी उसने अपने धर्म और मान को कायम रखा तथा अपनी पुत्रियां अकबर के पास नहीं भेजी ।



# कलियुग में धर्म की रक्षा

दुरसा आढा

सौहजिलियै पाप धरम संभलियौ  
आतम बिलकुलियौ अंतर  
दुख टलियौ वलियौ दीहाड़ी  
अणक लियौ मिलियौ अमर ॥१॥

कलजुग ता पतणी कल करतां  
जाप संतापस टलै जूवा  
आप प्रताप तणी मुख ईखै  
हनुमाई बाप निपाप हुवा ॥२॥

डरिये देख दालिदची डरिय  
सुधरम पांगुरियौ सुतण  
भवु समरियौ श्रिया घर भरियौ  
रांणो संभरियौ रसण ॥३॥

अनकुण भात गात ई खतां  
जी वैई घात न काय जुई  
हिंदवा छात्र वात सौह हुई  
हुवा पात्र मुख जात हुई (हुत) ॥४॥

## सारांश

कलियुग के कारण पापाचार बढ़ गया, इससे धर्म अत्यन्त व्याकुल हुआ, लेकिन महाराणा प्रताप के कारण धर्म पुनः पल्लवित हुआ व पाप का नाश होने लगा ।

# सोनगरा मान का प्राणोत्सर्ग

दुसरा भाड़ा

निजड़ भांजि सात्रव हिये खाग नीजांमिये

खाग भागां पछां अचढ़ खेली ।

धाट रे रूप गज रूप कुंभाथलां

मान असमान जमदाढ मेली ॥१॥

सेल उर तोड़ि करि रूक सावाहियो

रूक सिर तोड़ि अखियात राखी ।

अखावत मैंगलां सीध आचा गले

दात पग परठि जमदाढ दाखी । २॥

रहचि अणियाल धाराल जुघ रहचिया

रहचि धाराल प्रभता रहाई ।

कोपर्ये मान मछरीक हाथी कमल

वेग संभालि प्रतिमाल वाई ॥३॥

अभिनमो मालदे आचत्रिअहुँ आवधो

खत्री श्रीपवी मुओ चाड़ खूमाण ।

सेल ऊवर उचरि तेग खुरसाण सर

सिंधुरां कटारी तरा सहिनाण ॥४॥

## सारांश

सोनगरा अखेराज का वंशज धीर योद्धा मानसिंह भीषण शस्त्र प्रहार करते हुए युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ । उसने तलवार से शत्रुओं के सिर तोड़े कटार से हाथी का संहार किया और भाले से शत्रुओं के घक्ष चीर डाले ।

## अकबर का गर्व-भंजन

रामा सांझ

किलम लाख केकाण गज खभ छेड़ कुमख  
वावरे पख बल दाख वलियो ।  
आभ खूमाण चौ माग श्रीहाड़तां  
गुरड अकबर तणो गरब गलियो ॥१॥

फोज बाजू तुरी गयद दामण फिरै  
पांण सू पडै परियाण पाकी ।  
पात ब्रह्मंड चा पार लाधा पख  
थाग दल विहग सुरताण थाकी ॥२॥

दल सवल खाग भड़पख बल दाखवै  
फिरै पण नोगमै पडै फोकी ।  
ऊदउत गयण पुड तेणा थग आणता  
सीकरी सुपह धकपख सीकी ॥३॥

हिये बल दाखवै वाद धीरो हुआ  
सरीखी बड़ी परहस सहियो ।  
विहद आकास पुड राण पौरस विहद  
रोद पंखराव हद मांहि रहियो ॥४॥

### सारांश

लाखों मुगल सैनिकों, अश्वों और हाथियों को लेकर अकबर युद्ध छेड़ता है। प्रताप चारों ओर से नड़ता हुआ अकबर के गर्व का भंजन करता है। अकबर रूपी पक्षी ने प्रताप रूपी आकाश का पार पाने के लिये उड़ान भरी किन्तु वह पार न पा सका और उसको अपनी हद में ही रहना पड़ा।

# प्रताप का युद्ध-कौशल और कवि

रतन वरसड़ा

वधियो वासाव तरो वड़ पातां

राणा अजूवालता रह ।

एक नहँ कलह जितें गुण आखां

करे जितो वोजोय कलह ॥ १ ॥

आखर तणो हांम तिम ऊजम

घर छल वलें हुवै घकचाल ।

रेणव वलें चीतवें रूपग

राणो वलें करे रिणताल ॥ २ ॥

माफियां मार मयक कुल मडण

मछर इती दाखनी मंन ।

पुणे जितो कवि एक प्रवाड़ी

ऊभी प्रवाड़ा करे अंनि ॥ ३ ॥

ए वासाव वधैं ऊदावत

मटै न निसवासुर तिलमात ।

पार न पातल तणां प्रवाड़ा

पार न गुण कहतां कवि पात ॥ ४ ॥

## सारांश

महाराणा प्रताप एक के बाद दूसरा युद्ध इतनी शीघ्रता से छेड़ रहा है कि कविगण एक युद्ध का गुण-गान पूर्ण नहीं कर पाते, तब तक वह दूसरा युद्ध आरम्भ कर देता है। इस प्रकार बापा रावल के वंशज प्रताप की युद्ध-गति कवियों के काव्य-सृजन की गति से भी अधिक तीव्र है।

# प्रताप के दर्शन से पाप-मुक्ति

माला साँद

मह लागी पाप अभनमा मोकल

पिढ अदतार भेटतां पाप ।

आज हुआ निकलंक अहाड़ा

पेखै मुख तांहरौ प्रताप ॥१॥

चढतां कल जुग जोर चढती-

घणा असत जाचती घणी ।

मिल तां समै राण मेवाड़ा

टलियौ प्राछत देह तणी ॥२॥

सग अतलोक मुणै सीसोदा

पाप गया ऊजमै परा ।

होतां भेट समै राव हीदू

हुवा पवित्र संग्रामहरा ॥३॥

ईखे तूभ कमल ऊदावत

जनम तणों गो पाप जुवौ ।

हैकश वार ऊजला हीदू

हर सँ जाण जुहार हुवौ ॥४॥

## सारांश

हे महाराणा प्रताप ! कलियुग के जोर से मिथ्यावादी एवं अधर्मी राजाओं से याचना करने एवं मिलने से मुक्त पर पाप चढ गया था, लेकिन तेरे 'उज्ज्वल मस्तक का एक बार दर्शन करने मात्र से ही ईश्वर के दर्शन करने की तरह मैं उस पाप से मुक्त हो गया हूँ ।

# मरसिया

[माला सांद्र]

सामो आवियो सुर साथ सहेतो  
ऊंच वहा ऊदाणा ।  
अकवर साह सरस अणमिलियां  
राम कहै मिल राणा ॥ १ ॥

प्रमगुर कहै पधारो पातल  
प्राप्ता करण पवाड़ा ।  
हेवं सरस अमिलि या हीदू  
मोसू मिल मेवाड़ा ॥ २ ॥

नागद्रहा जिण सू नहँ भिड़ियो  
रावल राजा राया ।  
तिण कज कोड़ लिया तेतीसां,  
श्रीरंग मिलिया सायां ॥ ३ ॥

एकां कारज रहियो अलगौ  
अकवर सरस अनैसो ।  
विसन भणै रुद्र ब्रह्म विचाले,  
बीजा सांगण वंसो ॥ ४ ॥

## सारांश

मृत्योपरान्त जब प्रताप स्वर्गलोक में पहुँचा तो परमेश्वर ने अनेक देवताओं के साथ राणा का स्वागत किया और कहा—“हे अकवर से नहीं मिलने वाले प्रताप तू मुझ से मिलो । विष्णु ने स्वामिमान, एवं दृढ प्रतिज्ञ प्रताप को ब्रह्मा व शिव के बीच में बैठने के लिए कहा ।

# अकबर के अधीन राजपूत नरेश : प्रताप का दृष्टिकोण

जाड़ा मेहडू

हाथी वंघ घणां घणां हैवर वंघ  
कसूं हजारो गरब करो ।  
पातल राण हमै त्यां पुरसा  
आड़ै महलां पेट भरो ॥१॥

सिधुर किसान किसान तो साहण  
सोना किसान किसान सर सूत ।  
महा सबल लै अवल समापै  
राणो कहै कसा राजपूत ॥ २ ॥

बाजा कसा कसा त्यां बाजद  
मदभरं कसा कसा त्या मण ।  
पत गहलोत न गिरां सुपहां  
नरे ते असुरें किया नरमाण ॥३॥

सागाहरा साह अकबर सूं  
सीध खडा कसुं रद खग साय ।  
पत सीसोद न मानै सुपहां  
घो त्रिय ले पग लागै घाय ॥४॥

## सारांश

अकबर के अधीन राजाओं का परिहास करते हुए प्रताप कहता है कि हे अकबर के मनसबदार राजाओं ! हाथी, घोड़े, सोना, आदि प्राप्त कर तुम क्यों मिथ्याभिमान कर रहे हो ? तुम अकबर के चाकर मात्र हो, सच्चे राजपूत नहीं । प्रताप अपनी आन और अपनी मान के लिये निरन्तर लोहा लेता रहा है ।

# तलवार और भाले का आतंक

जाड़ा मेहदू

हठमल्ल माझी हीदुवांणे  
ताइयां सो मूछ तारण ।

जगत सोह जग जेठ जारण ।

इसो रारिणो आप ।

हेकताइ कुल वाट हालं  
भिडण वाघ नेत भालं ।

साह अकवर हियै साल

तूझ तेग प्रताप ॥ १ ॥

राइहरा अनि रूप राखं

दुजड़ मेछां मार दाखं ।

पुली जाए खता पाखी

पेखि मारण प्रमाण ।

भिड़ै रिरिण गज थाट भाने

विढण चाढ सिध वाने ।

मीर साची जोर मानी

खाग ती खूमाण ॥ २ ॥

खघ घनी खघवाट खेली

थाट जोगणि पुरा ठेली ।

जूझ भुजां प्राणि भेली

विढे जूह विडार ।

रांण रिरिण जयथभ रोपी

कूंत करिवाहुणे कोपी ।

लीह नहँ पतसाह लोपी

सींभ सभव सार ॥ ३ ॥

## सारांश

महाराणा प्रताप अत्यन्त हठी योद्धा हैं । अपनी तलवार और भाले के बल पर शत्रु सैनिकों एवं गज-समूहों को नष्ट करता है अथवा खदेड़ देता है, युद्ध में अपना विजय-स्तम्भ स्थापित करता है और पृथ्वी एवं वंश-गौरव की रक्षा करता है । शत्रु भी प्रताप के खड्ग का लोहा मानते हैं ।



## प्रताप द्वारा भूमि-रक्षा

जाड़ा मेहडू

मुहि मुंहि मारकां भडां मेवाड़ां  
गजदल हेड़वता सगह ।  
घणी स न्याइ कहावै घरती  
पता जतो जिम जुड़ै पह ॥ १ ॥

अणि अणि अरि सौं आफलतां  
पाड़ै हसति भुजै करि पांण ।  
रुके मिलै तूभ जिम रांणा  
रेण तियां वसि आवे रांण ॥ २ ॥

फरि फरि फोज फोज फुरल तां  
वयंड हाकतां वीरत वाइ ।  
नल वन हरो लई नागद्रहा  
निधि सुन पहड़ै तिणी नियाइ ॥ ३ ॥

नाग वंगाल असंख नीजामै  
श्रोणि धरि खत्रवाट सहाइ ।  
असिमर तणी इला ऊदाउत  
आवी अगेस एणि उपाइ ॥ ४ ॥

### सारांश

प्रताप तू मयंकर योद्धा है । तलवार से हस्तिदल को काटने में कुशल है । वह तलवार के बल पर भूमि का निर्वाह करना जानता है । उसने स्नान-स्नान पर हूँ-हूँ कर शत्रुओं व हाथियों का मयंकर रूप से मंहार कर अपनी मातृभूमि की रक्षा की है ।

# महाराणा प्रताप सिंह रा जोधारां रा जूना दूहा?

मीजीराम तांदू

सिमरुं हूँ सुरसत सदा, अमल गिरा गुण आख ।  
बढिया रीदां बीजला, सुज सीसीदां साख ॥१॥

सीसीदां समवड़ किसान, वंस छतीस विलोक ।  
जग जाहर इण घर जिसा, कुलवर विरला कोक ॥२॥

कर कर कांकल कटक सू, अकबर आलसि योह ।  
जोस पंचाली चीर ज्यूं, वय रांणी वधि योह ॥३॥

पाण राण धिन पातला, मेवाड़ा तो माय ।  
धाव दरछयां घालिया, अकबर दले पर जाय ॥४॥

वा थाहर अकबर तणी, तरवत दिल्ली हूँतीह ।  
चढियां भोड़ा चापड़, चीतीड़ा चूँपीह ॥५॥

चूँडा रा कहिया वचन, रही नचीता रांण ।  
ऊभां पगा न आवसी, मेदपाट मेछाण ॥६॥

कर सिलहो जडिया कड़ा, मेछ घड़ा मद मौड़ ।  
आज दिखासी ऊजली, चूडावत चीतीड़ ॥७॥

घरम बेच राखी घरा, ज्यां जीतव ध्रग जाण ।  
चीतीड़ा भड़ चापड़, तपिया मूँछां तांण ॥८॥

आदरियो मरणो अठे, सीसीदो सज सार ।  
नह आदरियो नाग द्रह, जवना हूत जुहार ॥९॥

सगतावत पतसाह सूं, खग झडिया रण खेत ।  
जुवा जुवा जूझार जुग, हुवा घणी रै हेत ॥१०॥

रातबर हिंदवांण री, राण कहै दोय राह ।  
रग खन्नीवट राखियो, सक मनाई साह ॥११॥

सकिया कूरम साह सूं, हाडाई जीड़ै हाथ ।  
 ऊं अकबर ही आखियो, नमौ उदैपुर नाथ ॥१२॥  
 चमर मोहछल चौसरां, सिर छाहागीर समाज ।  
 अवेज बरा दीवाण री, रण झड़ पड़िया राज ॥१३॥  
 कइ बारा कोठारियै, खगधारो खुरसाण ।  
 बाढ़ दिखाया बैरियां, चाढ़ धकं चहुवाण ॥१४॥  
 दिली दला सिर बंदले, राण छलां मछरीक ।  
 मुगल हटाया मामले, ताय भडा सिर तीख ॥१५॥  
 उदियापुर ब्रद ऊजला, उदियापुर आचार ।  
 त्याग खाग सारौ जगत, रह्या उदैपुर लार ॥१६॥  
 दुज तुलछो सु मी दुरस, इल लाभत नह अके ।  
 खूंमाणे बल खागरै, कुलवट राखी टेक ॥१७॥  
 खूंमाणे बल खागरै, महि राखी मेवाड़ ।  
 सीचो घर अरि श्रोण सू, नीची करो न नाड़ ॥१८॥  
 रग भडां चित्तीड़ रा, वगतर कड़ा बरग ।  
 स्याम काम रूपिया सुधिर, जवनां करवा जग ॥१९॥  
 पिछम भांण अगे परो, जल उलटै गंग जात ।  
 मेर भुमे प्रथमाघ मग, नमं उदैपुर नाथ ॥२०॥  
 मेवाड़ी मरदा मरद, माण पाण अणमाप ।  
 खूंमाणे खाधी नही, तुरका आगल ताप ॥२१॥  
 मेवाड़ा बाडा मरद, कैलपुरा कठीर ।  
 देसां मालम दीपता, नेसो चादण नीर ॥२२॥  
 सिरोही खग सातरा, असव्है काठीवाड़ ।  
 पदमण निघल दीपरी, मरदां घर मेवाड़ ॥२३॥  
 चू डावत रावत चढै, खग दाहण खुरसाण ।  
 रग दियो जिणवार रा, देख छटा दीवाण ॥२४॥

## कवित्त

गणेश पुरो

बापी दीर हाक हर डाग भुव चाक चढी,  
 ताक ताक रही हूर छाक चहुं कोद में ।  
 बोलिके कुबोल हय तोन बहगोल खाँ पै,  
 बागो ग्यान कत्ता रान पत्ता को वितोद में ।  
 टोप कटि टोपी लात टोना कटि पीत पट,  
 सोस कटि भ्रग मिली उपमा मुमोद में ।  
 राहू गोद मगल की मगल गुरु की गोद,  
 गुरु गोद चन्द की रू चन्द्र रवि गोद में ॥१॥  
 दाश अरु धावा दुर्गदान को दिवावा जग,  
 रान पास आवा साथ पावा सूर सत्तासी ।  
 जावा अमरेग को बखाने सब देस प न,  
 आवा बन्यो मारि मरघो मीर रोम रत्ता सो ॥  
 आवा शिवराज को न जावा बन्यो जैसी विधि,  
 यहै म्नेच्छ मुच्छ काट लावा मोद मता सो ।  
 दाव रान पत्ता सो न धावा रान पत्ता सोन ।  
 जावा रान पत्ता सो न आवा रान पत्ता सो ॥२॥  
 कोल खान खाना के पतापसिह राना पर,  
 वाना हिदवाना को सुहाना तो गया रीत ।  
 दाह के करन पातसाह के उराहने पै,  
 चाह के मरन रनराह के जयागी तै ॥  
 पानि दे के मुच्छन कृपान पुनि पानि दे के,  
 पान ली उड़ावै म्नेच्छ वीरता बयारी तै ।  
 सूरन के हाके होत कूरन के साके होत,  
 हूरन इलाके होत तूरन तयारी तै ॥३॥  
 गेर गेर लाज सब राज रहै पैर परे,  
 जेर भये फेर सुर मेर के सिखर जात ।  
 'एकलिंग' वास में बिलास को निवास जानि,  
 राधिका रमन चहै रमन दिखरि जात ॥

आछी आछी मीरनी के आखिरी उजीरनी के,  
 चीर नीके चीर दृग नीर जी निखरि जात ।  
 बेर बेर घेर उदैनेर कों असुर अरें,  
 हेर हेर परे पत्ता बेर से बिखरी जात ॥४॥

हेरि हेरि हारि हिय हहरि हरिन नैनी,  
 हुरम कहत हट तिय नाह नत्ता है ।  
 दीन सों अदीन व्है कै तेरे नेह पीम व्है के,  
 मीन जल लीन व्है कै, खीन व्है न खत्ता है ॥  
 बब्बर को नातिम अकब्बर सु अब्बर से,  
 मेलहे फरमान मेल कीवे मोद मत्ता है ।  
 बाल सो रू ताल सो पसारिन के जाल जेसो,  
 ज्वाल जैसो काल जैसो पत्ता रन पत्ता है ॥५॥

## छप्पय

गणेशपुरी

नञ्चन बेर निहारि, पुत्त कहि चारू प्यार चहि ।  
 उहि छिन उमंगि उडात, कंघ घर हाथ भात कहि ॥  
 बग्ग उठत रन रूपि, बप्प कहि अप्प विरुदवर ।  
 तात भ्रात सुत सोक, गजव त्रिक परिग अरिग गर ॥  
 कट्टिग न परं कट्टिग यकृत, कट्टिग मान निसान घन ।  
 हय मरिग नहि न चेटक अहह, मरिग रान पत्ता सु मन ॥

## सोरठा

गणेशपुरी

खल बहलोल खपार, पेले दल लाखां प्रसण ।  
 अस चेटक उसटार, पहुँतो उदयाचल पतो ॥

## छप्पय

कवि गङ्ग

‘गुजरेस’ गभीर नीर, नीकर निरभरियो ।  
 श्रांत श्रयाह ‘दाऊद’ बुंद बुंदन उम्बरियो ॥  
 घाम घूट ‘रघुराय जाम जलधर हरि लिन्हव’ ।  
 हिन्दू-तुरक-तलाष को न कदम वस किन्हव ॥  
 कवि ‘गंग’ अकव्वर अक्क भन (अन), नृप निपान सब वस करिय ।  
 राना प्रताप रयनाक मझ, छिन डुव्वत छिन उच्छरिय ॥  
 दल पंलां ऊथपे, तेज ब्रह्म हि उत्थपे ।  
 उत्तर दक्खिण पछिम पूर्व ता पाण पणप्पे ॥  
 अन अनेक भुवपत्त वांग श्रवणां सुण रत्ते ।  
 नमि प्रणाम आधीन करे सेवा बहु भत्ते ॥  
 खत्रियाण माण महि उद्धरण, एक छत्रि आलम कहै ।  
 गायत्रि मंत्र गहलोत गुर, तिहि प्रताप शरण रहै ॥

## सोरठा

कवि गंग

हिन्दू हीन्दू-कार, राणा जे राखत नही ।  
 तो अकवर एकार, पही सही करत प्रतापसी ॥  
 हिन्दूपति परताप, पत राखी हिन्दवाणरी ।  
 सहे विपति संताप सत्य सपथ कर आपणी ॥

## कवित्त

बारहठ बालावक्स पालावत

अज्ज घर्म रच्छ. इतै रु जवनिष्ट उतै,  
 घाट हलदी रन भ्रमावै मट-भालो को ।  
 वीर दोर दण्डन उदग मण्डल गान तै,  
 सध्वुन ज्यों तंति चीरे देत गज ढालों कों ॥  
 प्रहरन ताप कान्दसीक प्रतिपच्छी बवै,

पदग्रस्त बुल्लत विलोकि रक्त नालों कों ।  
 साक पाने वाले रान पत्ता की कृपान पिक्खि,  
 लगत जुलाव सी पुलाव खाने वालों कों ॥  
 म्लेच्छन को नमिबो अयोग्यं लखि खाद्य गने,  
 ॥ समधानुकूल कन्द मूल फल पत्ता कों ।  
 राज्य-द्रुग-दुर्ग-देश-वैभवज सुख होय,  
 ॥ राखी दृढ वश परिणाटी को प्रभत्ता कों ॥  
 खग-वल विस्तरि-अकव्वर-से-शत्रु-अग,  
 इक्कल निवाह्यो जिहू वेद धर्म नत्ता कों ।  
 श्री समुद्र अविवासी अज्ज कृत मन्य देत,  
 ॥ धन्यवाद वीर अग्रगण्य रान पत्ता को ॥

### “मैदपाट देशाधिपति प्रशस्ति वर्णन”

कवि हेम

उदयो उदयसिध के पाट । परतापसिध प्रगटे पुन्य घाट ॥  
 अकवर चमके खिण-खिण आप । छेड़यो सिध जिस्यो परताप ॥  
 सुनो असुर नित ओज के । परताप परताप मुख सू यो बके ॥  
 उदयासर विच पोढ्यो सांह । परताप पंहुतो गगन के राह ॥  
 पगड़ी लेकर पग तल घरी । चरणा चोली सिर दोस करी ॥  
 दाढ़ो मुंछ वे काटी सर्व । चिठि नाम निज लिखिया तवै ॥  
 प्रह उठी जागे सुलतान । चिठी चाँच कापे तव प्राण ॥  
 हे, है अल्ला ने क्या कीया । परतापसिध मोही जीवीत दीया ॥  
 असुरां दल सायर सम कह्यो । ता उपर एक मल सम रह्यो ॥  
 असुर भाग दिली दिस गये । राण परताप मन आनंद भये ॥  
 राण परताप महा बलवन । अमर अमर सम राण कहत ॥  
 जस कोरत समदां लग सही । घाक-पड़तो असुरां मई ॥  
 अमुरां मार कय्या तेण जेर । दिली विच तिण घोड़ा फेर ॥  
 अनमो अडग जमु कति विसाल । तुरकांणीरो पुरी साल ॥  
 भरी कचेरी मार पठाण । से लव मोड़े श्री महाराण ॥  
 चोरासी आणा तिणकाट । असुरां मार कीया दहवाट ॥

रामा सांवू

गयंद मान रं मुहर ऊभो हुती दुरत गत  
सिलहपीसां तणा जूथ साथै ।  
तद वही रुक अणचूक पातल तरणी  
मुगल बहलोलखा तरणै मार्यै ॥१॥

तरणै भ्रमऊद असवार चेटक तरणै  
घराँ मगरूर बहरार घटकी ।  
भाचरे जोर मिरजा तरणै आछटी  
भाचरे चाचरै बीज भटकी ॥२॥

सूरतन रीजता भीभता सैलगुर  
पहा अन दीजतां कदम पाछै ।  
दांत चढतां जवन सीस पछटी दुजड़  
तांत सावण ज्युंही गई आछै ॥३॥

वीर अवसाण केवाण उजवक बहै  
राण हथबाह दुय राह रटियौ ।  
कट भलम सीस वगतर वरंग अग कटै  
कटै पाखट सुरग तुरग कटियौ ॥४॥

## सारांश

उजवेक थोड़ा मिर्जा बहलोलखा सैनिकों के साथ मानसिंह के हाथी के आगे अश्वारूढ खड़ा था ।  
चेटक घोड़े पर सवार प्रताप ने उस पर ऐसा अचूक भीषण खड्ग-प्रहार किया कि उसके सिरस्त्राण,  
कवच, पाखट और घोड़ा सब एक साथ कट गये ।

डा० देवीलाल पालीवाल द्वारा संपादित "प्राचीन डिगल काव्य में महाराणा प्रताप" के अनुसार इस  
गीत के रचयिता गोरधन धोगसा हैं । श्री अगरचन्दजी नाहुटा बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त इसी गीत का  
रचयिता अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की हस्तलिखित ग्रन्थ सं. २६ वस्ता सं. ८ पृ० ५ के अनुसार  
रामा सांवू हैं । श्री ब्रजमोहन जावलिया के अनुसार रा. प्रा. वि. प्र. उदयपुर के संग्रहालय ग्रन्थ सं. ७१७-  
७१८ में इस गीत का रचयिता कविया कविनाथ दिया गया है ।



## युद्ध-वर्णन

अज्ञात

भ्रष्ट करत पमछ भड़ीआ  
पट पोअण नाग पड़ीआ  
चीचले ढग चाल चड़ीया  
नीपजै नेवाण ।

धगचाल पाणां रुघर घरा वर  
सेलगुर मांडीऊ सरोवर  
फोज अकबर भुई वड़ फर  
थापिया अकबरे ठाण ॥ १ ॥

प्रतमाल तेग वाहाण प्रहटे  
नागध्रहै कोरम न हटे  
घाउ पड़ेवा वार घटे  
त्रवद बोल रड़ाक ।

रण तूर दादर ढोल रड़ेआ  
भवस हीदु भाट भड़ेआ  
पातला करहे हसत पड़ेआ  
खड़ग संघ खड़ाक ॥ २ ॥

कीलाल पाणां चे शोर काजी  
मगर मछरंत माभी  
भलहल वाणास जाभी  
भ्रष्ट भड़ जाभी ।

गज गहर करत घरण गाजी  
वेल असमर छूल बाजी  
सँघउत तरवार साजी  
पर खंडे प्राजी ॥ ३ ॥

चतुरग नहै रण चड़े चाचर  
फरेता गुरु तूज वड फर

देव भङ्ग ग्रीध डंमर  
कड़कड़ केवांण ।

खेतपाल चांमड सर खायर  
चरै पल चर कोलू चाचर  
भस्त्र लये खेचरां भूचर  
रमै रामत राण ॥ ४ ॥

व जंवक ग्रीधण सामलां  
वांघला खेले ब्रंमला  
आउवे दरावे अगला  
प्रायरे प्रघला ।

गल लेये वेताल ग्रीधण  
जोड़ पाणी हरा जोगण  
रुंद दल वूडा रंणंगण  
तसु कीध तलाव ॥ ५ ॥

### सारांश

प्रताप ने समर भूमि में शत्रुओं एवं हाथियों को भयकर रूप से काटा है । उसके द्वारा वघ शत्रुओं एवं हाथियों से बहने वाले रुधिर से समर भूमि रक्त-सरोवर के रूप में परिणत हो गई है । बढ़ते हुए मांतसिंह पर उसकी तलवार बज रही है । रणक्षेत्र में सर्वत्र तूने मांस एवं रक्त बिखेर दिया है जिससे क्षेत्रपाल, चामुंडा, मासाहारी पशु-पक्षी तृप्त हो रहे हैं ।

## खमणौर का युद्ध

अज्ञात

खल लीजियै खुमाण राण खमणौर जैतखंभ  
 रुद्रायण तारा रढाल रचतौ गरीठ ।  
 तोडियौ उढाणे डारण तुरी जिम राण डारण तेग  
 खमसाण बीच राण ओरियौ गरीठ ॥१॥

घकाघक हकाहक घरा घोम  
 घमाघम गोम बोम गाजिया गहीर ।  
 खेलियौ उकत्त कथ लाथोबाथ जथा खेल  
 हाथोहाथ बाथोबाथ दूसरा हमीर ॥२॥

पटचट हूल भट खल खट प्रतापसीह  
 तटतट दहवट दली पटतेस ।  
 रामत ऊपट रट घजत्रट रमै राण ।  
 निकट वेकट घट चतौड़वे नरेस ॥३॥

चला पला करै जाती प्रतापसीह  
 गला डला भजीया कुंभ गयद ।  
 सरड़े लेगी उपाड़ धके चाड़ असंमर  
 मुरड़े भुरड़े घड़ा तेवड़ी मयंद ॥४॥

## सारांश

खमणौर के युद्ध में राणा प्रताप ने विकट से विकट योद्धाओं को काट काट कर गिरा दिया । इस युद्ध के समय घरा कापने लग गई थी व गोलो की आवाज भयंकर रूप से हो रही थी । शत्रुओं का संहार करता हुआ प्रताप दूसरे हमीर के समान [वीर योद्धा] प्रतीत हो रहा था । युद्ध का दृश्य अत्यन्त भयंकर था । इसमें राणा प्रताप ने अत्यन्त भयंकर रूप से शत्रुओं, हाथियों आदि को काटा ।

## कुम्भलगढ़ का युद्ध

प्रज्ञात

गिर मांहे कुंभलमेर वड़ो गढ़  
हालै किराहि न विये हर ।  
एकरा राण प्रताप ऊपरा  
आठ लाख पड़िया अमुर ॥१॥

आठू लाख अमुर अकपिया  
घन घोरप मेवाड़ घणी ।  
माण सजाद रखी मेवाड़  
मिजड़ हीदुसथान तणी ॥२॥

अकवर सरस अहाड़ी इधको  
उदयासिध सुतन अणवीह ।  
डड डोकरो न दं जिम दूजां  
लीप लाज न कुलवट लीह ॥३॥

चेटक पमग न दं चोतोड़ो  
किनिया न दिये गिरथ किरोड़ ।  
चकता नहँ कुंभलगढ़ चढिया  
अकवर सूँ परताप अरोड़ ॥४॥

## सारांश

पर्वतों में स्थित कुंभलमेर एक बड़ा गढ़ है । वहाँ पर आठ लाख मुगल सेना ने एकाकी प्रताप पर आक्रमण किया । मेवाड़ पति प्रताप के आगे सभी मुगल सैनिक मयमौत होगये । निहड प्रताप ने अन्य राजाओं की भाँति अकबर को नजराना एवं कन्या नहीं दी, अपना चेटक धोड़ा नहीं छोड़ा और मुगलों को कुंभलगढ़ में नहीं चढ़ने दिया । प्रताप ने अपने कुल-गौरव एवं मर्यादा की रक्षा की ।

## प्रताप का यश

अज्ञात

ओछो तिल नकूँ नकूँ तिल अधकौ  
 मुणता सुकव करौ ले माप ।  
 तूँ ताहरा राण टोडरमल  
 परिया सारीखो परताप ॥१॥

परियाँ अधक कहां किम पातल  
 राया तिलक हीदवा राण ।  
 तैं सिर नहँ नमियाँ सुरताणा  
 सागे गह मूका सुरताणा ॥२॥

ओछो केम कहां ऊदावत  
 अकबर कहस तणो तप ईष ।  
 अकबर सूँ रहियाँ अणनमियाँ  
 सुरताणां गहियाँ सारीष ॥३॥

कुल ऊधोर प्रताप कहता  
 पोढी घणूँ घणा ढ़द पाय ।  
 मणां न तो कुल मणा न तोमैं  
 मणां न सुकव बखाणा माय ॥४॥

## सारांश

शौर्य में महाराणा प्रताप सागा जैसे अपने पूर्वजों से तिल भर न अधिक है न कम । प्रताप का अकबर जैसे शक्तिशाली बादशाह के सम्मुख सिर न झुकाना सांगा के सुल्तान [ मालवा का महमूद खिलजी ] को बन्दी बना लेने के बराबर है । न तो प्रताप के यश में कोई कमी है और न कवि के वर्णन में ।

## प्रताप का युद्ध-कौशल

[ अज्ञात ]

कितरा एक घड़ूँ साभली केसव  
 कधन विधाता एम कहै ।  
 अकवर दल नहं रहै आवता  
 राणो नहें मारता रहै ॥१॥

घणा सोहड़ विथाका घडि घडि  
 फेरै किसन तरां फुरमाण ।  
 घाट रोद आवता न थार्कै  
 रिण रहवती न थार्कै राण ॥२॥

किम हथ चलै कहै ब्रहमा कथ  
 ए हथ अनत चलावी आप ।  
 अकवर सेन तैतला आवै  
 पिंड तेता निर दलै प्रताप ॥३॥

वासुर निस घड़ै थकी विधाता  
 वलै विथाका किसन चिमैक ।  
 आवै जिता तिता ऊदावत  
 अणमारिया न मैलै एक ॥४॥

## सारांश

ब्रह्मा कहते हैं कि हे विष्णु ! मैं तो मनुष्य घड़ते घड़ते थक गया हूँ । अकबर प्रताप से लड़ने के लिये सैनिक भेजने से नहीं रुकता है और प्रताप उनका संहार करके उनमें से एक को भी जीवित नहीं जाने देता है । राणा युद्ध करते हुए थकता नहीं ।

## प्रताप का पराक्रम

[ अज्ञात ]

गज बध पडै गज खाइ गडूथल  
मोहियौ कौतिग गयण मिरिण ।  
घर वाहर नीसाण घीबते  
रागै रथ भेलियौ रिरिण ॥१॥

मीर गुडै कड़ड़ै मोताहल  
निरखै भांण कलह निय नेति ।  
वसुह तणै छलि बबक वाए  
खूमाणी मिलियो रणखेति ॥२॥

मुगल मरै मरै गज मारिणक  
विभ्रमियौ रवि तेणि विचारि ।  
ग्रहते रेणसु छलि रण तूरे  
सिघ सुजाउ वाजियौ सारि ॥३॥

## सारांश

प्रताप के पराक्रम से युद्ध स्थल में शत्रु के हाथी, सैनिक आदि बुरी तरह से मारे जा रहे हैं । प्रतिदिन आकाश में सूर्य प्रताप के नित्य नये युद्ध-कौशल को देख कर चकित रह जाता है ।

## युद्ध-कौशल

[ अज्ञात ]

ग्रहे न सकै ग्रहे उग्रहे ग्रहियां  
 दाखै चंद हु दड हुओ ।  
 सेखड़ा सांम सनाह सरीखो  
 हेक कन्है जो भींच हुओ ॥१॥

अघट मिलै किम सुतरा आपणा  
 कहै किरण पत सोम कथ ।  
 एकाघपत जिसो ऊदावत  
 हेक हुए जो खढ़ग हथ ॥२॥

राह मिलै किम कहै सोम रवि  
 मुड़ै असुर ग्रह तेम मुड़ै ।  
 सुभट रिया रिरामाल सरीखो  
 जुडणहार ओ इसो जुड़ै ॥४॥

ससिहर कहै संपेखी सूरज  
 अघढ़क रहस ग्रहण अनेक ।  
 सूर कलह गुर सिखर सरीखो  
 आया विहूँ न मिलियो एक ॥४॥

## सारांश

राणा प्रताप ने शत्रुओं को मार कर मस्तक रहित देहों का ढेर लगा दिया है जो राहु की भांति प्रतीत हो रहे हैं। यह देख कर सूर्य व चन्द्र विचार कर रहे हैं कि एक ही राहु हमें इतना सताता है, यदि ये सब राहु मिल गये तो हमें अत्यन्त क्लेश होगा।



## प्रताप के खड्ग का पराक्रम

[ अज्ञात ]

विजड़ ताप तो नमां परताप सांगण बिया •  
जगत या अकथकथ बात जांगी ।  
कहर राणां तणी बार मझ एकठा  
प्रसण राखै नको हस पांगी ॥ १ ॥

उदयवत्त आज दुनियाण सह ऊपरा  
सार रो ताप लागी सबाही ।  
हस राखै जिका नीर अलगी हुवै  
नीर राखै जिकां हंस नाहीं ॥ २ ॥

करां खग भाल दुहुँ राह माती कलह  
दूठ लागी खलां येण दावै ।  
जीव री आस तो प्रसण नहुँ गहै जल  
जल गहै - प्रसण तो जीव जावै ॥ ३ ॥

दर्ई ओ दर्ई गत कु भक्रन दूसरा  
चाह गुर आपरै पंथ चालै ।  
राण दइवाण पर हस लागी रिमां  
हंस जल जू जुवै पंथ हालै ॥ ४ ॥

### सारांश

हे महाराणा प्रताप ! तेरी तलवार के तेज को नमस्कार है । जब तू युद्ध करता है, उस समय वह शत्रुओं के प्राणों का हरण करती है और उनके गौरव का भी । जो शत्रु अपने प्राणों की रक्षा चाहता है उसको अपना सम्मान तेरी तेग (तलवार) के सम्मुख समर्पित करना पड़ता है और जो अपना सम्मान रखने का प्रयास करता है उसको प्राण गंवाने पड़ते हैं ।

## प्रताप का खड्ग : यश एवं धन का उपार्जन

[ अज्ञात ]

पारभ गुर तूझ सपेखे पातल  
 वडा सूरद मिलि करे विचार  
 किम खगघार चलावी कीरति  
 धन आविधी स किम खग घार ॥१॥

इणि परि तूझ तणे ऊदाउत  
 रुद्र सुर अचिरज हुवा रहे ।  
 सुजस सपति दे आम्होसाम्हा  
 वाढ खडग ऊपरी वहे ॥२॥

प्रमसुर हुआ अचंभम पातल  
 घर असपति मेवःड़ घणी ।  
 अति जस केम चालियो अणिये  
 अथ आयो किम मुहरि अणी ॥३॥

उत्तिम अधिम देव रज ऊपरि  
 के घट राखे रमै कला ।  
 घार खडग वे मयक कलोघर  
 कीति अनै चलवी कमला ॥४॥

### सारांश

परमेश्वर व अन्य देवताओं ने मिल कर इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि राणा प्रताप ने मात्र तलवार के बल वृत्ते पर धन व यश का उपार्जन कैसे कर लिया ।

## “प्रताप के पराक्रम का आतंक”

[ अज्ञात ]

सुता वाज गजराज सोव्रण समपोहो सुपोहो  
 ओवरण आप ऊपाव आणी ।  
 रोद तावूत सुरतांण रेसी रसत  
 रुक वल मोकले पात राणी ॥ १ ॥

पवग पटवंदणां पूत पोठी परठ  
 पोहोवचा माल अण पर पठावै ।  
 पोहव पडवेसची लोथ पस्तापसी  
 अणगणी खूंद दरबार आवै ॥ २ ॥

तुरग त्री तीय्यार तत लोभ मन तेवडै ।  
 सुपह अन ज्यार सुरताण सूकै ॥  
 अथनवो कु म नरजीत कर आवडै ।  
 मेछ भरभेट खूमाण मूकै ॥ ३ ॥

रव ऊगां समो रोद दल रोलवै ।  
 दांण जौ बुध्रवै मांसरानै ॥  
 घरा तरप तोरथ मोर घोरे घरै ।  
 कूक वेहरो थयो साह कानै ॥ ४ ॥

### सारांश

अन्य राजपूत नरेश भयभीत होकर अकबर के पास हाथी, घोड़े स्वर्ण एवं पुत्रियों को भेंट भेजते हैं । लेकिन प्रताप तो तलवार से मुगलों का भीषण संहार कर रहा है । प्रताप के आक्रमण से भयभीत मुगल इतने जोर से चिल्लाए कि चिल्लाहट सुन कर अकबर बहुरा हो गया ।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर से श्री अजमोहनजी जावलिया, उदयपुर के सौजन्य से प्राप्त ।

## प्रताप का युद्ध पराक्रम

[ अज्ञात ]

इसा बाहारू अते वली सै घरणी ऊदरत  
 हेक तरवार सके हींदवाण ।  
 राजवीया मोहर होई भेलिया राजगुर  
 रोद घड़ उपरा पवंगां राण ॥ १ ॥

हेक-हेकां मौलै भलै जलै ओरीया ।  
 पहर थट-विकट घट नीर भुषपांण ।  
 रहेच खुरासांण घरा घरणु कागी रहै ।  
 रेण पूंगी भली पातलै रांण ॥ २ ॥

रांण रजपूतवट कना अँ राज वट ।  
 पाट पत देख गुरसेल गुरपात ॥  
 आप आगै ई पवंगा अफालिया ।  
 छात बिच घड़ां बीच हीदवे छात ॥ ३ ॥

मिलै घरण घाइ सांगणहर मारिया ।  
 तर्क दीस आगरा वहै तावूत ॥  
 राजवीयाँ जेम प्रताप वांसे रहै ।  
 राण भूमाडिया नई रजपूत ॥ ४ ॥\*

### सारांश

रविगुरु, राजगुरु एवं सेल गुरु के विरुद्धों को धारण करने वाले प्रताप ने पहले की तरह घाटे के बिकट पथ [ हल्दीघाटी ] पर इस बार भी मुगलों को इतना मारा कि उनके जनाजे आगरे की ओर बढ़ने लगे ।

प्राप्त हुआ

\* राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर से श्री ब्रजमोहन जी जावलिया, उदयपुर के सौजन्य से प्राप्त

## प्रताप के योद्धाओं की वीरगति

[ अज्ञात ]

वड़ज बिच हुवौ एक चारण वडो  
सअत लाभ जोतां स ठामां ।  
आविया काम मेवाड़ पोहो आगलो  
राम सामां तिसां रांम रामां ॥१॥

आविया काम अकबर दलां आविया  
भिड़ण प्रताप छल दाख जस भाव ।  
राव एक तूँवरां राव कणियागरां  
राठोड़ एक सांदूवां राव ॥२॥

रांण छल रोंध दल जसो वीकम हरो  
जोध अखेराज रो हुअ्री जिसड़ी ।  
जिसोइज महा जुद हुवौ जेमाल रो  
तूँग घरमा तणा हुवौ जिसड़ी ॥३॥

मचकतै साथ भाराथ दाखै मछर  
मांड पग मुवा सिरदार मुरमेक ।  
आभरण कला रणधीर हर आभरण ।  
आभरण वीर हर व हर एक ॥४॥

### सारांश

मेवाड़पति महाराणा प्रताप के लिये अकबर की सेना से वीरतापूर्वक लड़ते हुए तंवर विक्रम का वंशज राजा रामताह कणियागर अखेराज का पुत्र मानसिंह राठोड़ जयमल का पुत्र रामदास और सांदू चारण घरमा का पुत्र रामा वीरगति को प्राप्त हुए ।

## युद्ध-भूमि में प्रताप का हस्तलाघव

[ प्रजात ]

छे खंड सहस्र दस काल छिलता  
तल भयानक महा सताप ।  
राण पासि गणपति दीठा रिणि  
ऊमया ईम पयपै आप ॥१॥

अंग विणि गज कमल कमल विणि अंग धरि  
पात घाड़ रण ठारि पड़त ।  
सुत पत रण थई तिणि नख सिख  
कहियो गिरधू गिरधू कत ॥२॥

सीस गयद कमंघ मत्री चा  
सवल निजोडि जोडि तिणि सारि ।  
किलवां नेन मिघ सुति कोघा  
उमयानद तणी उणहारि ॥३॥

अनि तन घरे जोडि तन अनि अनि  
रिम मनि करे न तंसौ रीस ।  
सोहियो रिणि ऊभी सीसोदो  
सकर रभ लिघै हस सीस ॥४॥

### सारांश

महाराणा प्रताप ने हाथियों व शत्रुओं के सिर काटे । हाथियों के कटे हुए सिर शत्रुओं की घड़ से मिल गए इससे शिव और पार्वती को गणेश की भ्रान्ति हो गई ।

## राठौड़ रामदास की वीरगति

[ अज्ञात ]

ससि धाइस तप थाइ सूरिज सीतल  
तजै महोदधि वारि तरंग ।  
मृत भै रामदास रण मेलै  
गमरा पछम दिसि मंडै गंग ॥१॥

जळै चन्द्र सीलो थाइ जगचख  
रेणायर सांसतो रहै ।  
जयमल बत जाई छांडै जुव  
वेणी जल उपराठ वहै ॥२॥

आतम इन्दु अरक ताढिम अग  
सायर छडै लहरि सुवाह ।  
पह मेड़ता चले पारोठी  
पमुहै वहै सुरसरो प्रवाह ॥३॥

सौम सूर सामंद प्रता सुघ  
अषट सुभा दाखवै अग ।  
राम किया मृत सामिधरम रसि  
पुनि तोया मिलि पूव प्रसंग ॥४॥

### सारांश

मृत्यु के भय से यदि राठौड़ रामदास युद्ध स्थल त्याग दे तो चंद्रमा तापयुक्त हो जाय, सूर्य शीतल हो जाय, समुद्र स्थिर हो जाय व गंगा विपरीत दिशा में प्रवाहित होने लग जाय । लेकिन वीर रामदास ने तो अपने पूर्वजों की भांति युद्ध क्षेत्र में वीर गति प्राप्त की ।

## राठौड़ योद्धा हिंगोल द्वारा गो-रक्षा

[ अज्ञात ]

बड़ो भोछ राणा तणी घरा आढी वसे  
 राउ राठौड़ पाखर खद रोल ।  
 फौज अकबर तणी जिती आयै फरं  
 ग्रहे तेर्ता सरिस खडग हिंगोल ॥१॥

पाघरं देसि राठौड़ वाको पुरुष  
 वसे सूरताण राणा विचाल ।  
 विचित्र लोडे वसुह वित वाल बले  
 विहं ताद बीत हियोल वाल ॥२॥

अस्त्राउत वाड वाहर चडं व्यापड़  
 सामि रे काम स सनेह समराय ।  
 छड़ं कूते भड़ा गउत्री छोड़वे  
 भादहर आभरण करं भाराय ॥३॥

### सारांश

हे अखेराज के पुत्र हिंगोलदास ! तू महाराणा की भूमि की रक्षा करने, गाँवों की रक्षा करने तथा अकबर के मुगल दल का भयंकर रूप से संहार करने में सदैव अग्रणी रहा ।



## मेड़तिया राठौड़ों की सेवा

[ अज्ञात ]

रहियो जंमाल उदैसिघ राखै  
 रामे पातल रहियो ।  
 मुकुन तरौ साठे मेवाड़ी  
 अमर वलै अग्रहियो ॥ १ ॥

हेट हेट हेवे पति हूँता  
 पह रछपाल पहाड़ा ।  
 रचता समर माल्वा रावा  
 ओडण हुआ अहाड़ा ॥ २ ॥

वड जेही जुधवार विढंतां  
 वडा पिसण घाय वहिया ।  
 मचतां समर सरण मेड़तियां  
 राण सदा लग रहिया ॥ ३ ॥

सांगो ऊदो पतो रखै सुज  
 राखै अमरी राणो ।  
 जेमल पिता बांधव रामाजिम  
 मुकनो चद मडाणो ॥ ४ ॥

### सारांश

मेड़तिया राठौड़ों ने सदा सिसोदिया राणाओं की सेवा और रक्षा की । जयमल ने महाराणा उदयसिंह, रामदास [जयमल का पुत्र] ने महाराणा प्रताप और झुकुन्ददास (जयमल का पुत्र और रामदास का भ्राता) ने महाराणा अमरसिंह के लिये समरांगण में बड़ी वीरता के साथ युद्ध करते हुए प्राण त्यागे ।

## प्रताप और चन्द्रसेन

[ अज्ञात ]

अण दगिया तुरी ऊजला असमर  
चाकर ह्वण न घरिया चीत ।  
सारां हिंदुमयांन तणे सिर  
पातल नै, चन्द्रसेन प्रवीत ॥ १ ॥

पमंग अदग सजसा पडिया लग  
खटखंड तणी न लागी खेह ।  
राण उदैसिध तणो अरेहण  
राव मालदे तणे अणारेह ॥ २ ॥

तुरिये वगत खत्रीवट अजड़े  
असपति दल इहिया आगण ।  
कलंक विना कूंभेण कलोधर  
वाग कलोधर कलंक वण ॥ ३ ॥

असवाला डिडूर घर असमर  
दीनो दहं न हीणो दाव ।  
रवि सरिसो मेवाडो राणो  
रवि सरिमोइ जोधपुर राव ॥ ४ ॥

### सारांश

राणा प्रताप और जोधपुर के राजा मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन दोनों भारत के सिर मोर हैं । दोनों ही सूर्य के समान तेजस्वी हैं । उन्होंने अपने घोड़ों पर वादशाही चिन्ह नहीं लगने दिया, उनकी तलवार सदा शत्रुओं पर चमकती रही, और वे अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुए ।

## प्रताप का मीणा-संहार

[ अज्ञात ]

उचरतु वाट वाणियो आखै  
कतवारी बाखाण करै ।  
माहरो घणी हुओ मारखणो  
ताक रया चोरड़ा तरै ॥१॥

अंग पहरै लो तू आंगरडू  
घोड़लडे पाखरडू घाल ।  
पातल राण चढे परबातै  
भटकु बाद भड्डकु भाल ॥२॥

भाल भड्डकु जीखू मार  
पीपू मारग बड्डकु पाड़ ।  
ठाकरड़ गही, ठीगाई  
धीगाई कुण मांडै घाड़ ॥३॥

भौ भागी है कांकस भाभत  
सुणी बात सेणां री ।  
खूभाणें जागवियूं खाँड़  
मरांडू मीणां री ॥४॥

## सारांश

बनिया बार बार कहता है कि मेरा स्वामी भयंकर मार काट मचाने वाला हो गया है उससे चोरी करने वाले मीणे भयभीत हो गए हैं । इस से चोरी का भय अब नहीं रहा है ।

## “प्रताप का पौरुष”

[ अज्ञात ]

सहर प्राजल तरंग चतरंग नुरक्षारणी ।  
तांण रो पाणसी चांण रो तुप ॥  
महण नुरतांण रो धकै लाती मही ।  
राण रो त्वाग बड़वा अगन रूप ॥१॥

घट हटें जगें तलगें उवरधियागां ।  
कलम घट दगें जर देत काली ॥  
हुवै अण चूक उज वक मह मंदहियै ।  
उक जिम रुक संग्रामवाली ॥२॥

मीर वंध ऐमरदात मररात मंगल ।  
पलै नह समर रा जक पेशक ॥  
जवन दल भमर रो महण उरमभुजलै ।  
अमर रातणी जल दहण ऐराक ॥३॥

दुवाड़ें भमक महमंद वजव कहियै ।  
दुजड़ नर धीम पापक तरौ दाह ॥  
उपटै निरधर जाद नह ऊभजै ।  
समंद मरजाद लीपे नही साह ॥४॥

### सारांश

अकबर की सेना भीषण उदधि के समान उमड़ कर आ रही है, जिसे प्रताप की बड़वाग्नि रूपी तलवार भस्मीभूत कर देती है । प्रताप की तलवार मुगलों को भयंकर रूप से काट रही है ।

अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, हस्तलिखित प्रति संख्या ३० पृ० १३ से श्री अजरचन्द जी नाहटा बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त ।

## तलवार से पृथ्वी की सुरक्षा

[ अज्ञात ]

खल खट सूं खलां सावरत खांडे  
खांडा कैद न राखे खांप ।  
खांडा बल राखे खूमाणो  
प्रथमी खांडा तणे प्रताप ॥ १ ॥

खदा सू रुक अचूक रातड़ै  
पल नहँ रुक बछूटे पांण ।  
रुके कुंभकलो धर राखे  
रेणां रुक तणी जिम रांण ॥ २ ॥

सत्रहर सूं अणपाण सुरगे  
जूट सार घर राखण जोघ ।  
सार मार राखे खल सहंसो  
सार तणी अवनी सीसोद ॥ ३ ॥

अस धमरोल चील व्रन आवघ  
आवघ ग्रह आतम अरीयां ।  
आवघ घम घरती ऊदावत  
आवघ धारै ऊनरीया ॥ ४ ॥

### सारांश

महाराणा प्रताप अपनी तलवार को म्यान में नहीं रखता, वरन् अनवरत युद्ध-रत रहते हुए शत्रु के शोणित से अपनी तलवार को लिप्त रखता है । इस प्रकार प्रताप अपनी तलवार से शत्रुओं का विनाश करते हुए पृथ्वी एवं धर्म की रक्षा करता है ।

## “दृढ मंरूपी प्रताप”

[ अगत ]

तीस भरावे विचार वाता कव दो रगला तयार, किताने दरार वाता जीमरी कहाड़ ।  
 डाकी कांकी जाया न पुराना होण चाहै दूग, पत्नी काकी जाया आडी लीहरो पहाड़ ॥१॥

नाणा देणा सताऊ ठिभाणा दानगरी नीन, चापडें भतीचां भायां चाश्वारी चाह ।  
 पेखी वीर विधीरती दमनी न पालें पखी, दूजो भयौ जीव रखें वसरो दुवाह ॥२॥

सामं दाम वे भेष्टे चाल मिली सूवा, आठू दिमा चीथो लागी उपाय ।  
 कोई धोहा घसी हाथ गोन रो न तूटें कडी, गोन रे गहाय ऊभो पनी गाठ राव ॥३॥

घाली जिला छीटा भीटा बाछें दूदाण रो वाटी, कुनधी जागिया खीटा दूदा माहैकस ।  
 दांत पाडें जिवारी अगानी निघवाली इठ, विगई जे मात सोभा चाडें दूदावस ॥४॥

## सारांश

अकबर ने अपनी प्रशिक्षित सेना एवं तोपखाने से कई राजाओं को भयभीत किया, लेकिन प्रताप तो उसके मार्ग में लोह पर्वत की भांति अटिग खड़ा रहा । अकबर साम, दाम, दण्ड और भेद द्वारा हिन्दू राजाओं को हटाने लगा, लेकिन हिंदुत्व का रक्षक प्रताप उसके मार्ग में बाधा बन कर खड़ा रहा ।

---

ग्रन्थ मंस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, हस्तलिखित प्रति २३ पृ० ३ से श्री अमरचन्द्रजी नाहटा, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त ।

## साहस और त्याग

[ अज्ञात ]

गढपति गांज जै महिपती मलोजै  
 घुर अकबर रै घाड़ै ।  
 उदयासिंघ तणो अतुली बल  
 चहरै चढ्यो न चाड़ै ॥ १ ॥

साथर चोकी तणो न सूती  
 दीन न हुआ दरबारी ।  
 मेछां री मिजलस मेवाड़ी  
 हुवी न रांण हजारी ॥ २ ॥

हेवर गैवर हेम हुरम्मां  
 धरी न आड़ी घोया ।  
 अकबर साह तणा दल आगल  
 नजर गुजार न दीया ॥ ३ ॥

मैछां मलण मिलण पौ भेटै  
 पातल आयो पाणै ।  
 साहा दाह दियण सांगाहर  
 राह विलुधा राणै ॥ ४ ॥

## सारांश

महाराणा प्रताप निरन्तर अकबर से संघर्ष रत रहा । यह मुगल दरबार में हाजिर होकर 'हजारी' भन्तव्यदार न बना । वह अकबर से हाथों, घोड़े, स्वर्ण एवं अस्त्राण प्राप्त करने के लिये नहीं ललचाया और शत्रुओं के विनाश में लगा रहा ।

## ‘अनम्र प्रताप’

[ अज्ञात ]

उरट माच घोडां भडां छडां निमनाऊणी, धरर धर चवालां डका थावे ।  
छक भुजा उपटे निहग छिवती छती, इसीविध पती दरवार आवे ॥१॥

साकुरां रूपट मोहडां गरट नांमठा किया भालां खिमरा चहूँ काने ।  
अरहरां तोड़ डिगनी गगण अधारं, खाटरां पधारं दरीखाने ॥२॥

धरा चल चल फलल धमल हुव घाटिया, कूत भल भल अकल भडां काटे ।  
कधरं चाचरं दहे घमती उरम, इसीविध घणारा दरस आटे ॥३॥

हुव छट प्रगड हडडट उरड हजारा, जीम तडकरे भड अनम जेरी ।  
रिमा जाड़ा बड़ड़ ऊवटे देस छव, करं मुजरी अनम खूंद केरी ॥४॥

अवा छल प्रगट रजवट भुजा ऊफरो, सत पुरस भीम वाली अ .....खीच ।  
ती ज्युही दीवता दरवार आवे तिके, भलाई पटा पावे जिके भीच ॥५॥

## सारांश

महाराणा प्रताप छकवर के दरवार मे [ सम्मुख ] अन्य राजाओं की भांति हीनता पूर्वक नहीं आता बरन् मुगल सैनिकों एवं अश्वों पर तलवार का चार करते हुए भीषण रूप से [ सम्मुख ] आता है ।

---

अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर हस्तलिखित प्रति स० २३ पृ० स० २ से श्री अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त ।



## नीसाणी—महाराणा अतापसिंहजी री

[ अज्ञात ]

गिर वंका विच राजगढ रच मडस हरका ।  
 कर थह मडीसारे दूल वन राव पघरका ॥  
 पोहमी समवड़ नह गणत आया जुध परका ।  
 हाक विड़ाणी सह न थो गाजत धण हरका ॥  
 अगू आया निज वखां खजगज वह हरका ।  
 लड गढ ललमण मुड गया तज तेज समरका ॥  
 वल वल जंग जडाग लीध नल बरस भयरका ।  
 भलवल माहल गाड कीध अलवर गढ घरका ॥  
 जीध अनम्मी जोरदार सेवक निजगुरका ।  
 मेलं वसी हजार रीक महमत मुरघरका ॥  
 ऐक पतारी जीम लख आतष कर भरका ।  
 दिली मतारी डरव्है कढै दल डरका ॥  
 जरा नथै महागज की प्रली धार करहरका ।  
 कवि सिधुमल धूधली घह पहण पुरका ॥  
 काय नरसिध गजाडियौ औघस अवरका ।  
 काय तारख उड़ाडियौ मथै मरण घरका ॥  
 काय वेता सुर सिर चले वांणस वजरका ।  
 वज वीराणी हाक डाक वंवागल नरका ॥  
 चमू लड़ गामा लुले तुटै तरगिर का ।  
 गज मत्था घज फरहरै घूघल नभ घरका ॥  
 कडी वरभमा वाज धौक पमगां परवर का ।  
 पानां लागा सीरमी जमी थर हरका ॥  
 भाला वाढ पलूल सूल अणिया छव भरका ।  
 जाणक गगा पुरवरस रस मूदन करका ॥  
 तौवां मात गांहली हला जुध मरका ।  
 दल चतुंगी ऊमदै नहगा जल घरका ॥  
 उडै वही रुर जदकै तुरगा पगर का ।

आयुक्त कुरंगां विहंग सूक्त जल सरका ॥  
 गज वाजाराय वण वरुथ डम्भर चम्भर का ।  
 कर विवुंघा हलै विभाण वसुधा श्रम्बर का ॥  
 वेला जग उमडडिया वीरु वपछर का ।  
 मेला तिहंगा मडिया खेला अयछर का ॥  
 वण कीलक जट घर विनीद नारद तूंदर का ।  
 भुड भेरै ववावन वजत कर भांक डंबरका ॥  
 जगी डाल कराल कोप वेताल वतरका ।  
 चवसठ चामडा चलै करपुर पतरका ॥  
 वट वोभायण वाज सौ क ग्रीधायण परका ।  
 पठसांदा गाजंगिरद वाजै वबरका ॥  
 सुण सद भाजी राव मद जीभ मकरका ।  
 रावांणी कर जीड वह जाणी उरमर का ॥  
 काटण वस कवाडिया विप्रू वध घर का ।  
 उत्तमग भार उपाडिया श्रीयण अथर का ।  
 साड सुं मगरांम का करण दुख भर की ॥  
 सरण मुरलीकां नही तरण समदर का ॥  
 अपंमन मत्ता चल्ला मतरां नसतरका ।  
 परमुव सामी घरम कदेवांन पतरकां ॥  
 दोली पवना निरंद कोप वेसंदर हरका ।  
 तदर जडाणी हीमणे लगा दुसतरका ॥  
 करवी लखाया वदन पड कद भुपत नरका ।  
 काय केवांणी धारलै पाया सुपुसका ॥  
 आपताप छत्र हिन्द का सया रूध वरका ।  
 ऐ आया परताप भूप जाया मघकर का ॥

## राजराणा छत्रसाल व कल्याणसिंह

[ अज्ञात ]

छवित्त

राज छांड राण सूं, गयो छत्रसाल जोधारो ।  
 कलो रहे चीरवे, प्रभु फिर लेख प्रमारो ।  
 आय कुंवर अमरेस, आप ले गयो कर आदर ।  
 मिलतां पातल राण, राज ने दियो दुरंग घर ।  
 आवे दल पतसाह, कलै भगड़ा कई कीधा ।  
 सुणो फरियाद नवाव, दूठ आड़ा हय दीधा ॥  
 केवाण भाट बागी कहर, सरब दूर बखरे सुभट ।  
 मान नद तरणी देखै तरण, वाह कला रजपूत वट ॥

राजस्थानी-गद्य  
पुरातात्त्विक सामग्री

---

अज्ञात

ख्यात एवं वात  
वंशावलियाँ  
ताम्र पत्र  
शिलालेख

## परिचय

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित मौलिक सामग्री तीन ख्यातो, दो वातो और छः वंशावलियों में मिली है।

### ख्यात —

मुहणोत नैणसी री ख्यात (सीसोदियां री ख्यात), 'बांकीदास री ख्यात', और 'उदयपुर री ख्यात' के प्रताप सम्बन्धी अंश यहाँ दिये जा रहे हैं। मुहणोत नैणसी ( वि० सं० १६६७-१७२७ ) जोधपुर के महाराजा जसवतसिंह (१६६६-१७३५) का दीवान था। इस ख्यात में विभिन्न राजवंशों के इतिहास के साथ साथ 'सिसोदिया री ख्यात' शीर्षक में मेवाड़ के गुहिल-वंशीय शासकों का भी इतिहास है। 'सीसोदिया री ख्यात' साहित्य-संस्थान, रा० वि०, उदयपुर के संग्रहालय में हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में संग्रहीत है। यहाँ इसी ग्रन्थ के आधार पर प्रताप सम्बन्धी अंश प्रस्तुत किया जा रहा है।

बांकीदास आशिया जोधपुर के महाराजा मानसिंह (वि०सं० १८६१-१८९९) के आश्रित कवि थे। 'बांकीदास री ख्यात' इनकी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है जिनमें अनेकों बातों का छोटे छोटे फुटकर नोटों के रूप में संग्रह है। उन्हें श्री नरोत्तमदास स्वामी, बीकानेर ने वर्गीकृत कर २७७६ बातों में सम्पादित कर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर से प्रकाशित कराया है। प्रस्तुत अंश इस पुस्तक की 'गहलोता री वाता' शीर्षक से लिया गया है।

'उदयपुर री ख्यात' अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसके लेखक का पता नहीं लगता है। इसमें कुल ६३ पत्र हैं, बीच में से कई पत्र अनुपलब्ध हैं।

### वाता: —

प्रताप से सम्बन्धित अब तक दो बातें उपलब्ध हुई हैं। 'रावल राणा री वात' राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। 'राणा प्रताप री वात' मुनि पुण्य विजयजी के संग्रह से श्री मवरलालजी नाहटा, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। दोनों ही बातों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इनके लेखक अज्ञात हैं।

### वंशावलियाँ —

मान विभिन्न वंशावलियों में से प्रताप सम्बन्धी अंश यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। प्रथम पाँच वंशावलियाँ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय में हैं। राजावली, श्री मावलदान आशिया, उदयपुर के व्यक्तिगत संग्रह में तथा सीसोद वंशावली साहित्य-संस्थान, रा० वि० उदयपुर के संग्रहालय में विद्यमान है। इन वंशावलियों में वंशक्रम के साथ-साथ सक्षिप्त घटनाओं का उल्लेख भी मिलता है। लेखक अज्ञात हैं।



## प्रताप उदैसिघोत

- १०२४ राणो प्रताप सोनगरा अखैराज रणधीरोतरो दोहितो ।
- १०२५ राणो प्रताप सं० १५६६ रा जेठ सुद ३ जनम, राणा प्रताप रै वेटा अमरसिध १, सेखो २, सहसो ३, पूरो ४, मानसिध ५, कल्याण ६ ।
- १०२६ सवत १६३२ सावण वद ७ कछवाहो मान भगवतदासोत अकवर री फौज ले आयो । हलदी घाटे राणै प्रताप वेढ कीवी । पातसाह री उमराव तीन काम आया । राजारामसाह ग्वालेर री घणी १, रामसाहरो वेढो सालवाहण २, राजावीठलदास ३ ।
- १०२७ हलदीघाटी राणा प्रताप रा चाकर काम आया ज्यारी विगत—कान्ह १, कलो २, दोय भाई प्रताप रा काम आया ।
- १०२८ मेढतियो रामदास जैमलोत जणा ६ सून काम आयो ।
- १०२९ सोनगरो मानसिह अखैराजोत जणा ११ सून काम आयो ।
- १०३० राठोड साईदास पचायणोत जैतमाल जणा १३ सून काम आयो, सीघलवागो १, नै जैमल २, चहुवाण दुरगो ३, वागडियो ४, मेघो खावडियो ५ ।
- १०३१ सं० १६३२ पातसाह अकवर रै उमराव सहवाज खा गढ कुंमलमेर लियो जद सीघल सूजो सीहावत, सीघल कूपो भाडावत, सोनगरो भाण अखैराजोत, मुहतो नरवद, गढरो सिलैदार, मांगलियो जैतो जैमल काको नै मतीजो इत्यादीक काम आया ।
- १०३२ सं० १६१३ पातसाह अकवर री फौज कुंमलमेर लियो । सीघल कूपो भाडावत, सीघल सूजो सीहावत, सोनगरो भाण अखैराजोत काम आया ।
- १०६२ राणा प्रताप रा वंश रा मामला विगत—अमरसिध १ पूरविया परमार मयारख खा असोकम-लोतरो दोहितो ।
- १०७१ सीहोराणा प्रताप री भोपतसाहोत राणा जगतसिध री मेलियो । पातसाह जीरी हजूर रहतो । घटो दातार बढो गालवरो सिरदार हुवो । उणरै वेटा केसरीसिध ।
- १०७२ कचरो वेदतै पुरविया चहुवाण परवतसिध रूपसिधोत रो दोहितो ।
- १०७३ सठमो गोगाजदास तोटे मोलंकी रामचंद प्रधीराजोतरा दोहितो ।
- १०७४ पूगे होपी जोषपुर नोनराज राव माल मालदेवोतरा दोहितो ।

- १०७५ पूरणमल राणा प्रताप रो जिण तूँ हजूर सूँ संवत १६६४ मेडता रो गांव डोमड़े पांचां सूँ दीवी सं० १६६६ गाव ढाही मेडता रो गावा पाचा सूँ हजूर वगसियो ।
- १०७६ कल्याण दास मालपुरै परमार पचायण करभचंदोतरो दोहितो ।
- ११३७ सहर सूरत में राणो प्रताप गोसरे हियो विरवा में उमरावां कुवरा समेत सूरत-रा सूवेदारतूँ मार घोडा चलाया । राणा रा हाथी री बरखी सूँ सूवेदार रा अंग रही । कोठारिया रै राव जायनै आणी । ऊ दिन दसरावारो गहणा समेत सिरपाव राणो जी कोठारियारा घणी तूँ दियो । जिण सूँ हर दसरावें राणो जी दसरावारो सिरपाव गहणा समेत कोठारियारा रावतूँ वगसै ।

[ बाकीदास री ख्यात सम्पादक नरोत्तम स्वामी, राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर से उद्धृत ]



## उदयपुर की ख्यात<sup>1</sup>

महाराणा श्री प्रतापसंह जी राणी मोनगरी जैवंतावाई रा पुत्र । वाम गोघुदै तथा चामड । समत १६२८ राज बैठा । सेना अश्व १५०००, हस्ती १००, पदादित २००००, वाजंत्र १००, राजा १, राव राव ३, रावत ७ । कुवरपणे वागड रा चहुवाणा थी जुध जीता खेत्र नरी स्याम । दलो रो पातसाह अजमेर आयो यो । माह अकबर साथै हीदु मुमलेमान सहखाजै पीर री जात आयो । जठाथी राजा मानसघ कछवाही घायो । जठै राणो जी राजा मान री पगत बैठा नही । सरीर अस्वासरो विपदेस कीधी । राजा तो सरल चित थी जीमे गयो । राजा गया पछै जठै गोठ हुइती, सो जायगा सुत्र नीधी । एक हाथ प्रथा खोदे नाखी । गंगा जल गोमुख थी लीपाई, नै सुध गंगा जल थी घुवाई । मृनमय भाडा काढ नाख्या । धातु रा अग्नि सु सुध कीधा । एग मुख करे पछै रसाई वीराजा । इसी बात सुण राजा मान अतक्रोध पायो । पातसाह नै खीजाय फोज लायो । चत्रकोट थी राणी जी मगरावास कीधो । मनख कुमलमेर गया तथा कैलवाडै पछै धरती में दोरा कीधा । लुटता फिरा । पछै बाणु लख मालवारो दंड लीधो । पातसाही फोज सु राजा मान राणाजी रो वामो लीधो । पछै जुध हुवो । कछवाहै कहो, 'आचार पालो छो तो रजपुन रो आचार दीखाडो ।' राणी प्रतापसंह जी कछवाहै मान नै रजपुताचार रो आचार मली भात दीखाल्यो । महाजुध हुवो । अकबर पातसा चढ आयो । बार दूजी हरोल । राजा मानमीह हुवो । राणीजी मगरा मे बसी राखी । दीवाण जी दोगा नीधा । राता फर-२ धरती ठाम-ठाम थाणा मलाया । जठा पछै थाणा ५ कुंवर अमरसीहजी एक दिन में डठाया । इसी तरै यी मेराड मे थाणा ३६ उठाया । दान सस्या गाम ७, ग्रास १५, गाय १०००, म्हगी ८००, अश्व १०००, हस्ती २ दीधा । नीत दान हेम मासो १, रूपो तो०५, ब्राह्मण भोजन ६ कराता । पचोनी गोरो प्रधान । माझाराणा जी रै पुत्र स्त्री री वीगत अमरसिह जी पवार राणी अजायवदे रा पुत्र, भगवान जी मोनगरी पुर वाइ रा पुत्र, सहमोजी गोपालजी झालीचम्पावाइ रा पुत्र, कचरो जी, सावलदास जी, दुर्जराणीजी चटुवाण जसोदावाइ रा पुत्र, बल्याणजी राठोड फुलवाइ रा पुत्र, चादोजी, सुखोजी गार्धी सैनामाड रा पुत्र, पुरोजी खीचण आमवाइ रा पुत्र, हाथी जी, रामो जी आलमदे चहुवाणी रा पुत्र, नाथी जी राठोड अमरवाइ रा पुत्र, नाथोजी रायमाण जी राणी राठोड लखा वाई रा पुत्र, राणाजी रै राखलोत राणी ससाम पात्र पुत्र ।

वय २४ मा० १० दि० २६ राज कीधो ।

[ जेठा-अश्व नमूना नावनेने राजत्वानी विभाग प्रति. न० १२२ पत्र सस्या ४२-४३ ]

<sup>1</sup> उदयपुर की 'ख्यात' का रस अश्व श्री अमरसिंहजी नाइटा, बीरानेर के मौज्ज्य से प्राप्त हुआ ।

## रावल राणा री बात

(उदयसिंह) वरस पांच मै सोलैसै उगणतीसे वैकुंठ पधारचा । राणा, जगमाल जी मट्याणी रा है राज दे ने देह छोडी थी । पुनी म होली रे दीन सारा हि ठाकुराँ दाग गया । जगमाल जी दरीपाने बैठा था । दुजा सारा ही दाग गया था । जठे राजा रामसाहा तुवर पूछ्यो सगर जी सो, 'जो जगमाल जी न आया,' जद सगर जी कही, 'सो आप न जाणो है । जगमाल जी तो न आया ।' जिणी उपर सगला ठाकुराँ वी-च्यार कीघो । सो ठाकुरा काई करणो । या बात आछी नही । जिणी उपर परलोक करे ने उठ्या, जदे भवैराज जी सोनीगरे रावत कीसना जी सुने सागा जी सु कही, 'सो चोडा जी रा पाट वीराजीया हो, ने मेवाड री थाप उथाप तो राज सु है । सागोजी गरडा है । आप काई कहो हो ? जदी सनी रावत बोल्या, 'सो ठाकुरा आपरो चित काई है ?' जदी भवैराज जी कह्यो, 'सो सनी पाल्यो दुध मागे तो काई देणो ।' कह्यो, 'परताप सरीषो तो रजपूत है, ने सोनीगरा रो गाणेज, अर पाटवी जी थी मे तो परतापसिध भेला है ।' जदी सारा ही ठाकुरा पवर कराई । सोदेवा दरीपाने तो जगमाल है बैठा है, ने परतापसिध जी रे घोडा जीण हुवा है । ने असी पवर है, सो जगमाल जी है ठाकुर रसोडे पदरावे ने आपे पराँ नीसरा । जदी ठाकुर सारा ही बदले बदले ने परतापसिध जी नर्प गया, ने परतापसिधजी सू रावत किमनो जी राजा साह तुवर आ अरज कीघी । सो दीवाण दरीपाने पधारज्यै । जदी पाच ठाकुरा बाह पकडै ने दरीपाने ले आया । सो आगे देवै तो जगमाल जी दरीपाने गादी करे बैठा है सो उठ्या नही । जदी रावत किसने जी बाह पकडै ने उठाया । ने असी कही, 'सो माहाराजा या बैठक, थारी नही ।' 'थारी तो या बैठक सामी है । जठे विराज जै । राणा प्रतापसिध जी हे गादी बैठाया । जद जगमाल जी पलो भाटके ने परा उठ्या, ने नीसरघा, ने दीवाण जी है पछे रसोडे पधराया, ने अरज कीघी 'सो होली रो दीन है सो ग्रहेडे पधारज्यै ने नगारो करावज्यै । होली जसो तेवार मझ रो भार्यो नही जासी, ने ओव रहे जासी । नगारो करावे ने असवार होज्यै ।' नगारो करावे ने असवार कीघा । ग्रहेडे सीकार पेल्या । होली री गोठ अरोगे ने होली मगलाइ । ने जगमाल जी परा नीसर्या । सो जाजपुर रो परगणो मुकाते विराज्या । सोगर कुंभलमेर जाए ने पटामोक्षेप कीघो । ने उठे ही जाए ने राजधान जमायो । घरती माहै सारे ही अमन हुवो । अतरा माँहै राजा मानसिग कछावो दक्षण गयो । सो पाछो आयो । दक्षण री फने करे, मोलापुर याणो भेले ने पाछा आगरे पातसाह री हजुर जातो थो । पातिसाहा आगरे थो । ने दीवाँण कागद दोड्याया । मो बागद उजीण जाए पोहोच्या । कागदा माहै लीण्यो, 'सो एक वेला म्हामु मोनता पधारज्यो ने, प्रडे गोठे री तयारी कीघी है, सो अरोगे ने अठामु पछै साछा पधारज्यो । असी कहीयाए मोरुनी । जो राजा उठा थो पाचरो हजुर आयो । दीवाँण पण कुंभलमेर धी उदेसागर पधार्या । ने उठा थो राजा आनो । दीवाँण जी सादामा पधार्या, मित्त्या, उदेसागर रा भेला मे गोठ तयारी कीघी । राजाजी हे गोठ अरोगे माहै पधार्या ।

ने पात्या कीधा । कुवर जी सुं कह्यो थे जावता करो, ने परसकारी करावो, ने मु पीण  
 अगयो करे ने परवारे ने आवु । मु जदी अमरमिष जी परस कारी कराई । सारा साथ मे  
 जायतो करायो । जदी दीवाँण जी सु राजा जी अरज कराई सो अरोगवा पधार जाँ । अठे तयारी हुई है ।  
 कुँवर अमरमि जी थे कहो । जदी कुवर जी दीवाँण हजुर अरज कीधी । सो राजाजी बैठे रह्या हैं । बाजा  
 गणके है । अब ढील कु करावै है । जदी दीवाण जी भीमा डोळ्यो है मोकले ने असी केवाई, 'सो राजाजी  
 अरोगज्यो मारे अवारु माथै का इक घमकचटी सें, जणी थी माने अवारु पसार हीज होवे ।' या आवे ने  
 राजा जी मु भीम डोळ्यो कही । जद राजा जी साँमलेने पूछ्यो, 'सो था कुण हो ?' जदी भीम बोल्यो, 'सो  
 ह तो डोळ्यो ह ।' जदी राजाजी अमी कही, 'सो थाका ठाकुर है एक वैला जाए ने कहो, 'सो घमको चढ्यो  
 गो तो मे जाणा मा पिण माह मे वाक कोई है ? सो मा भेलां रोटा क्यु नही पावो हो ।' आ बात भीम ने  
 कही । बाही पाछी दीवाण जी सु जाए ने कही । जदी दीवाँण पाछो हुकम कीधो । 'सो थे तो पातसाहा रा  
 मगा ही । ने पातिमाहा भेला रोटा पावो हो । सो म्हारी तो आसग नही चालै । आपरे अरोगणो ती  
 अरोगज्ये ।' आ बात भी (म) पाछी जाए राजा सुं कही । जदी राजा असी कही, 'मारा मुडा आनै ठीकरो  
 आप हीज मेट्यो । पिण मो मानसिध जी सू करो हो सो ठीक पडे ही गो ।' जद भीम, बोल्यो, 'सो आप  
 रा पडपण सू, पधार्या हो तो मालपुरे आणे भेलाहा फुकाजी रा पडपण सू, आ आ हो तो म्हारा देस में  
 लोटी मरा हीगा, । 'जरा बोल्या, 'सो वपे घोतो ।' मानसिध भीम कही, 'ज्यो रजपूत हां तो हाथी चढ्यो है  
 तो बाहे ने पेजार रो दाँ ज्यो रजपूत हां आप वेगा पवारज्ये ।' आ सामले सो राजा कह्यो, सोभाइ अन था  
 रे चामते घेन वेटी नुरकाने दिया हा, ने ठाम ठाम भोप पीण दीया हा, जिणी सू पाच करणुका बादे ने वेठो  
 ह । ओचट तो कहे अक्के विपे रह । बीपेरे देउ तो मानसिध । दिवाँण हुकम कीधो ज्यो आह ढील मत  
 पयो । फुकाजी ने ले गताव सू पवारज्यो माँहरी रजपुती आछी करे देपा वोणा । दिवाँण घोडो चढे उभा  
 रणा । साथ मारो ही ममावै उभा रह्या । जठे राजा उमो थो । अर वेठो थो । जीतरी जाएगा बैलदारा है  
 दुनावे गोदावै नपाई । हड्या ईनलाय मे ल्पा मोना रा ठाम मेणा एाजणी सुधो न पाए दीधा । गंगाजल  
 मो जाणा छटाघे, ने फेर मपाटो कीधो गंगाजल रो चरवीया माथा उपरे  
 फुडाई । माग ही ठाकुरां है हुकम कीधो, ज्यो सपाडा टाल र होमती छोटा मोटा  
 मारा ही ज्यो गडग उगल्या पटे मापहीज्ये । हे ज्यो साराही सांपडे ने जीमण जीम्या । राजा सु मील्या रो  
 जापोन दान कीधो । पट्टे चोम्या । आ बात मारी पानमाहा साँमली । राजा हजूर गया । जदी पूछ्यो,  
 'जा कदा दुरा ?' जदी हुई मो कही । जदी पातमाह मुहम कीधो । मानसिध हरोल मारी पातसाही  
 ममाज्यो ने दाली । पानमाह जी मजमेर रह्या हनदुवाटी राट हुई । मो राट पाधरी न घाई । ठाकुर  
 भाटा घाटा नाम माया । बाधीन हजार अमरारां सु चढ्या मो आठ हजार बंघ्या, ने उदेपुर आए ने पाटा  
 जमान । जद कुमरनेर पट्या उठे फोज पट्टी । राट हुई । गढ टुटतां नही, पण गढ बदल्यो । नीगण मे

जीनाथर पड्या ने देव डोड परवाडे फोज ले चढ्यो । जदी दीवाँण जी नीसरघा । भाण सोनीगरो काम आयो । दिवाँण चावड पघार्या । घरती मे थाणा जमाया । गोघुदे मानसिघ रह्यो । पानोडे अमीसाह रह्यो । उदेपुर मोबत पान रह्यो । चीतोड मोहबत पान हो । ठाम ठाम थाणा रह्या । आकर नामे रहे फरीदवाँ मारघो । जठा पाछै फौज मुसलमानो की आधी घरती नही । वरस दस रो वषो हूवो । सोलेसे पैतालीसे राणो परतापसिघ जी बैकुंठ पघार्या । अमरसिंह जी पाट बैठा ।

[ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थ संख्या ८७६, पत्र सं० १०१  
(अ) से १०८ (अ) तक ]

## राणा प्रताप री बात<sup>1</sup>

[क] “राजा राम साहतुअर । ग्वालेर रा घणी । राणा प्रताप कने था सो विखै माहे रूपीया ५०० रोज १ रोक पावता । हलदरी घाटी वेढ एक हूवो तठे काम आया । सवत् १६३२ श्रावण वदि ७ राणे प्रताप कद्यावा मानसिध सु सोनीगरो नरसीध अखेराजोत, राठोड रामदास जैमलोत राजा रामसाह ग्वालेर रो घणी, डोहीयो मीव साडावत, पडिहार सेहू, सादु रामो घरमावत ।”

×

×

×

×

[ख] राणा प्रताप नू विखामाहे पातीसाह री फोजा, जोर दवायो तिको खांवणनू, की हुई पोहोचे नही, तरे राणे कह्यो हें अहमदावाद रे पातिसा कने जाईस । तरे साह मांमे कह्यो— बारे वरस ताई तो पांच हजार घोडा नू तेल ने साबुताइ सजसी सो हूं दावे जुई करेने पूर देसु । दीवाण ईसरी मत बीचारो पछै फोज रो ठेरो गावरोहडीये हूवो । सोदीवाण भाडा माहे सेल करण नू गया । आगे रैन माहे देखे तो जोगेश्वर १ माहासिद्ध पाहोडारी खोहला माहे बैठे थो । राणो जाय पगे लागो । जोगी रो नाम रूपनाथ । निण राणा नु देखी दलासा कीनी । कह्यो, ‘दलगीर मत हूवो ।’ तरे राणे आपरो दुख कह्यो । तरे जोगी कह्यो ‘अ मगरा छोट ने कु मलनेर दिमा जावो । अठो नाथ छै ।’ पछै राणे प्रतापसिध ईरो मगरे आयो । नुरनाण चनतोपातिसाहरो नाई थो । गाव देवरे थारो थो । तिको राणा उपर आयो । तठे वेढ हुई । राणा न गाव री गाली १ मुलताण सगता रे लागो । वेढ राणे जीती । बीजी तरफ साहवाजखा नु कोपी थो सो पिल गाग गया । घरती राणा रे वली । सवत् १५६६ रा जेठ सुदि ३ राणा प्रताप रो जन्म । सवत् १६५७ न गोम माहे नाणु प्रताप मालपुरो मारीयो । सवत् १६५७ दिन ३ लुंठ हुई । संवत् १६५७ रा वैशाख षोड माहिजादो गनेममह राजा मानसिध राणा उपर आयो ।”

×

×

×

×

ऐकण भात रा आदमी दी सु दीवाण मत मीलो । मेमानी मत करो । पिण राँगे वात मानी नही । गोगुन्दे मानसिध नजीक आयो तठे राणो आदमी भला मेलीया ने उदेसागर मेहमानी कीवी । राणो उदेसागर आयो । तठे मानसिध पटरड़ा थी कोस २ उदेसागर छै तठे आया । मीलीया, मेमानी हुई । मानसिध आगे थाली मेली । तरे मानसिध कह्यो, दीवाण पधारो । तरे कहो दीवाण सापडीया नही छै । तरे कह्यो सपिरने वेगा पधारो । वले मांतू दीवाण भेला जीमणो दुलम छै । घणी वीनती कीवी । पीण काई दुवण हार । तिण सु जोर कोइ नही । तरे मानसिध कह्यो— भाई बेटा ने हुक्म करो ज्यु' मारी पाखती जीमण नू वेसै । तरे राजा कवा २ लेने परो उठीयो । ने राठोड़ प्रतापसिध नुं भाला वीदा नू तेर ने राणा नु कहाडीयो— सो भाण डोडीयो भीव दरगा आयो । तद मांतू परणावण रो कहो । तरे दीवाण कह्यो— मे तो कण ही नू द ह्यो नही । मे थानु देवा नही । थे पातीसाहा रा सगा छो । तरे मानसीध नगारो दे नीसरीयो । पातिसाह कने जाय मेवार उपर आयो । राणा रो डेरो प्राभणोर री वारी हुवो । मानसिध रा डेरा कोस १ नदी रो बीच छै । राणा ५ घोडा ७००० छै । मानसिध रे घोडा हजार ४०००० छै । संवत् १६३२ श्रावण वदि ७ वेढ हुई । उत्तर दषण था वेहु फौज आई । राणा रो साथ काम आयो । पीण राणो नीपट सखरो हुवो । राणा रे लोह ७ लागा । बरछी ३ तीर १ लागो । राणो नीसरीयो । मानसिध हाथी चढीयो थो विण ने राठोड़ रामदास जेमलोत डोडीयो भीव री .. बरछी लागी । राजा रामसाह आदमी ३५० तुवर बेटा खंडेराव सुधो काम आयो । भाला वीदा रा रजपूत १६० काम आया । राजा राव संग्रामसिंह नीसरीयो । आदमी १३० राणा रा काम आया । राजा रामसाह तुवर ग्वालेर रो घणी राणा प्रताप कने था सो बिखा माहे रूपीया ८०० रोज १ रोक पावतो सो काम आया । ग्वालेर रो घणी । सोनीगरो मानसीध अखेरानोत । राठोड़ रामदास जेमलोत डोडीयो भीवा साढावत । पड़ीहार सोहू सादु रामो घरमावत, लराई संवत् १६३२ रा सावण बद ७ हुई हलदरी घाटी वेढ १ तठे राँगा रो साथ काम आयो । कछवाहा मानसिध सु । “संवत् १६३३ वर्षे महा सुद ७ गढ कुमलनेर कवे साहबाज खान लीयो तद राणा रो साथ काम आयो ।”

1 राणा प्रताप सम्बन्धी यह बात श्री भवरलाल नाहटा, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई ।

[ मुनि पुष्पविजयजी के संग्रह से ]

## वंशावली संख्या १<sup>१</sup>

“महाराजधिरान श्री प्रतापसीध राणो जी” जैवंता वाई सोनगरा रा वेटा । गोगुन्दै वास्त । चावड वास्त । सवत १६२८, वरष ३२ से राज्य वैठा । वर्ष चौवीस, मास १०, दिन २६ राज्य कीधो । वरष ५७ । १५००० अमवार, १०१ हस्ती, २००० पायक, १ राजा, तीन राव, ७ रावत । कुवर परौ थका वागड जुध जीता । चहुवाण मुं पेत्र चाम नंदी राणे थके एह पंवाडा कीधा । पातिसाह अकबर ऊमराव, दिली रा हंडु तुरक, मोही साथे ल्याया था । राजा मानसीध कछवाहा सु जुध कीधो, पेत्र पमणोर । मालवदेस, बाणु नण्य टट वनीया मेरपुर मारयो । फरहर पान वीवी आणे, धारवाह देवाडा रे मेलही । २०० वाजिन्न । दवेर पेत्र जुध जीता । मुरताण मुगल मिरदार, आमेट रो थाणदार, मोलेसर रो थाणदार, चुडामण रो थाणदार, ५ थाणा रा सिरदार, ५ उवराव चढे आया था । सुदेवर पेत्र माज्या । ५ थाण ए १ दिन कडाथा । मुरताण मिरदार मारयो । कुंवर श्री अमरसीध जी ईसा छतीस ३६ थाणा मेवाड़ माहे दीदा था, सु उठाव्या । जात चीग तो दीली रो अकबर पतिमाह ४ दीम जीत्या ? हिंदु तुरक अनमनया ॥१॥ अनम राणो प्रतापसीध जी रह्या ॥ पातल पाध परमाण, साचो तो सागाहर धणी ॥

रही सदा लग रांण, अकबर सु ऊर्भे अणी ॥१॥

पातिल पहे लूणा, अहे लूणा ऊदवत ।

राणा सहाराणा, सिध चोहोडे सीसोदीये ॥२॥

हिंदुवा सिर पघडी, सुत से सारो जांण ।

हीदुये रांण प्रतापसीध, अकबर तुरकाण ॥३॥

दान मेठ्या ग्राम ७, डोहली १५, गऊ १००० सहस्र, महिपी ८००, अस्थ १०००, हस्ती २, रूपो तोया ५, हेन मागो १, आम्हण मोजन नीत्य ६, पचोली गोरो । महाराजधीराज श्री प्रतापसिध जी वेटारी मोजन । वाई अजदादे पन्मार वेटा श्री अमरसिध राणो जी, गगवानदासजी । पुरवाई सोलकणी रा वेटा सन्मोजी, गोपानजी । चापावाह काली रा वेटा, फचरोजी, सावलदामजी, दुरजणसिधजी । जसोदावाई गह्वाण सन्माणजी रो माता । फनुवाई राठोड रा वेटा चादोजी, सेपोजी । साहमती वाई हाडी रा वेटा पुरोजी । घानावाई पीचण, हापीजी रो, रामजी रो माता । आलमदे चहुवाण वाई रा वेटा जसवतजी । अणायजी पन्मानदाई रा वेटा मानोजा । अमरावाई राठोड रा वेटा नायोजी । लपावाई राठोड रा वेटा राव माणजी ।

[ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, के हस्तनिखित ग्रन्थ (हिन्दी) संख्या ८२७ में पत्र-संख्या ५४-५५ ]

१. यह वंशावली न महाराणा राजसिंह प्रथम (वि०सं० १७०८ से १७३७) तक का वंश वर्णन मिलता है ।

## वंशावली संख्या २<sup>१</sup>

राणा उदेसिध जी ना वेटारी विगत १ प्रतापसिध राणो जेवंतीबाई सोनगरी रा वेटा १, शक्तिसिध  
संध्याबाई रा वेटा, २ । जेतसिह, जेवताबाई मोदढेचोना वेटा । ३ कान्हजी लालबाई परमार ना वेटा ४ ।  
रायसिध वीरबाई भाली ना वेटा । ५ सार्दूल जी ६, । रुद्रसिह ७, लषाबाई राठोड़ ना वेटा ८ ।  
सुलतानजी धारबाई भट्ट्याणी ना वेटा । १ जगमाल सगर १ अगर १ शाह १, पंचाण ५ गणेशदे लाढी  
चहुँआण ना वेटा । ५ कान्हजी १ नेतोजी १ साहबखान कनका बाई महेची ना वेटा । महेशजी १ वीरमदेवजी १  
गोपालदेव १ भाउजी खीचण रा वेटा । राणा उदेसिध --- . . . . .  
..... . . . . .

महाराजा राणा श्री परतापसिधजी जेवताबाई सोनगरी रा वेटा । वास गोगुन्दे तथा चामुंड । संवत  
१६२८ राज्य बैठा । वर्ष २४ मास १० दिन २६ राज्य कीधुँ । अश्व २५०००, हस्ती १००, पदाति  
२००००, वाजित्र १००, राजा १, राव ३, रावत ७ । कुवरपणे वागडिया चहुवाण थी युद्ध जीत्या क्षेत्र शाम  
नरी तीर । दिल्ली नो पातशाह अकबर शाह उमराव हिंदू मुमलमान सर्व सहित अजमेर आव्यो हतो ।  
त्य हाथी कछवाहो राजा मानसिध आव्यो । राणो परतापसिध राजा मानसिध नी पक्ति वेठो नही । शरीर  
अस्वस्त नो व्यपदेश कीधो । राजा तो सरल चित थी आरोगी गयो गोठ । राज मानसिध गया पाछे, जे  
स्थानक गोठ थी हती, त्यहाँ राणेजी ये स्थान शुद्ध करावी । एक हाथ पृथ्वी पोदावी, ने गगाजल युक्त  
गोमये लीपावी, पछे शुद्ध गगाजल की घोवा रावी । मृच्छुमय भांड काढी नारियाँ । धातु पात्र अंगारी शुद्ध  
कर्या । ए शुद्धता करावी न, राणोजी पछे रमोडे आरोग्या । ए वृत्तान्त हलकारे राजा मानसिध ने कछावा ने  
के ह्यु । ते साँमलो ने राजा मानसिह घणा शोध पाग्या । पातसाह पासे जई ने फोज लेई चित्रकूट उपर  
आव्यो । राणोजी गढ थी टालो दीधी मगरे गया । मनुष्य कु मलमेर केलवाडे मेहत्या । पछे घरती महा दोडो  
कीधो । पातशाही घरती लूटता फरया । बाँणु लक्ष मालवो नो दड लीधो । पातसाह फोजा लेई ने राजा  
मानसिध राणा जी ने केडे लागो । पछे युद्ध थयु । कछावा हो के हेतो हतो, जे आचार पालो छो, तो रजपूत  
नो आचार पालो छो, तो रजपूत नो आचार देखाओ । ते राणे जी ये श्री प्रतापसिह जी ये कछवाहा ठाकुर  
रने रजपूताचार भली भाते देखाओ । महायुद्ध कीधुँ । दिल्ली नो पानसाह अकबर चिकनो मुगल पटी  
आव्यो । हगेल राजा मानसिध कछावो थयो । राणोजी चित्रकूट छोटी ने मगरा में बजी राग्यो । दियाण जी  
पोटा करता कर्या । घरती मे ठाँम ठाँम याणा मेजाया । याणा ५ कुवर अमरसिधजी ये एक दिवस में उठाव  
योधा । एम याणा ३६ उठावया । दान नग्या ७, ग्राम १५, गाय १००००, भट्टियाँ ८०० मय्य १०००,

१ इस वंशावली में महाराणा जयानसिंह ( १५० सं० १८८५-१८९५ ) तक का संज्ञा वर्षान मिलता है ।



हस्ती २ । नित्य दान हेम तोलो १, रूपो तोला ५, ब्राह्मण भोजन ६, पचोला गोरो प्रधान । राणा प्रताप ने स्त्रीया नी विगत । १ अमरसिंघ जी बाई अजबादे परमार ना वेटा १, भगवानदासजी पूरबाई सोलकीनी ना वेटा १; सहेमोजी, १ गोपाल, चपाबाई झाली ना वेटा; कचरोजी १, सामजदास, १ दुर्जनसिंघजी, यशोबाई पुवारना वेटा १; कल्याणजी, शेषोजी, बाई साहमती ना वेटा १ । पूरोजी आशाबाई खीचणी ना वेटा १, हाथीजी, रामजी, आलमदे चहुआण ना वेटा १, जमवतबाई रत्नावती ना वेटा १; नाथोजी, १ रायमाणजी लाखीबाई राठोड ना वेटा, महाराजा राणाजी श्री अमरसिंघजी बाई अजबादे परमाना वेटा दास चामड तथा उदेपुर ।

( राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के हस्तलिखित ( हिन्दी ) ग्रन्थ सख्या ८२८ पत्र सख्या ६५ से ६८ तक )

## वंशावली संख्या ३<sup>३</sup>

उदयसीगजी रा बेटा

(१) बडा परतापसीगजी	(२) सगतसीगजी	(३) अग्रजजी
(४) सगरजी	(५) सीआजी	(६) पचाराजी
(७) जगमालजी	(८) कानजी	(९) नगजी
(१०) ईंदरसीगजी	(११) सादुलजी	(१२) वीरमदेजी
(१३) महेमजी	(१४) राअेमल	(१५) मुणताणजी
(१६) भोजराजजी	(१७) _____	(१८) _____
(१९) _____	(२०) _____	(२१) _____
(२२) _____	(२३) _____	(२४) _____

२४

२३१ महाराणाजी श्री परतावसीग जी गादी बैठे समत १६२६ और चेत मुद १ समत १६३३ गड कुंमलमेर दुटो । महाराणा परतावसीगजी बडा रोला कीदा । जगडा मे बेटा १२ भाई २४ तो सात जगडा मे चडता । पातसा अकवर, अजमेर सुदी सीदकर पाछा, आ, अर सगतसीगजी ऊपर बेराजी वे काढ दीदा । सो पातसा तीर रेता । पवासी-मे, बैठता । कमलमेर, तीर हेलदी गाटी पातसारी फोज में जगडो कर नीकला । ऊठे चेटक घोडा रो पग उडर । सगतसीग जी पातसारा हातीरा मुडा आगे चटा ऊवा हा । सो पातसा अकवर कुरागान मुलतान हेक कही 'परतावसीग कु कुवाण का गोसामे पकड हाजर करो ।' नो देवलेर चडा । पाछे सु सगतसीगजी कही 'हजुर मरोसा नाही' जद पातसा कही, 'परतावसीग पकडकर तुम लावो तो मेवाड का राज तरे तो ही दवै ।' जद पातसा ने कही, 'हमारा तो दुसमण है, सो जीता पकड नहीं आवे तो मार कर लावे' । जद कही, 'जल्दी जावो' । या गोडा नाटक ऊपर सगतसीगजी चटा हा, अर वहीर हुपा । सो आगे जाग्र देपे, श्री दरबार के पुरासान मुलतान के छेटी थोडी । कुवाण मु सडाई वेती जावे । चला जावे । सो पाछे मु कुरागान मुलतान है नगत मारे । श्री दरबार के आगे जावे आला करा कही, 'दुसमण है, मारा है' श्री हजुर पागडो छाड जे चेटक तीन पगो है । जद कही, 'पुरामाण मुलतान रा गोडा ने मुगेले वाद आ अर हू सो मु चट जाऊगा आप नाटक ऊपर चढले ।' नाटक चेटक एक मरीपा हा । श्री दरबार कही, 'मारो अतबार नहीं आवे नुरक रो घन जन पावें है ।' जद नात जोद पडा हुया । श्री दरबार नाटक ऊपर चटा । जद कही, 'मरे लाऊ । कही घये मोच पाओ हवे जो मोक तो हुगा

---

१ इस वंशावली मे महाराणा रा गित प्रपन ( वि० सं० १७०८ मे १७३७ ) तक का वक्त दर्शन मिलता है ।

है । काचवेता देपोक भागा रजपुत को मुडो कसो वे । जद कही २ कोल पुछाऊ । काहो बोलेह पेण न उतवारो चाकर हे । जिस बोल हे । जेद सगतसीग जी पाछा फरा, अर हदेरावाद रा नवाव मीलो । कही 'सगतसीग तेरा गोडा काहा हे, परतावसीघ काहा हे ।' जद कही जापना मेरा गोड़ा कुमारा । पेली कुरासाण मुलतान कुमारा । मे दम् आगली मुडा मेली दी । कही के, 'मुजे धरम लेपे छोड़ो ।' जद काल पुछा कह केर छोटा । आप पदारो ओ थोड़ी दुर हे । जद नवाव रा भाई वेटा ने उतरा । ओ गोड़ा पर सगतसीघजी ने चडा आ । सो जगाहो पडो जइजा अऊ वारावा कोस दो कोस करे दोड़े र पाछा आ, अर पातसा ने नवाव जगहा रा ममाचार कहा के, 'परतावसीग तो कुरासान मुलतान कुमार । सगतसीग का गोडा के कुवाण का तीर लागा । पात्र १ पर तरवार लागी, अर कुवाण का तीर गेले वीणता आ, अर एतो परतावसीगजी रावा कुगमाण मुलतान का जडे । पातसा ने बता, अर पातसा कही 'तरो कला मे चीतोड नहीं ।' जद सगतसीगजी कही, 'हजुर मगरा मे पदारजजो परतावसीग वेगा ।' जद मेलजेर ओ रघुगा जद आवरे क राजा मान कही, 'राज ने कारण वेटा वापने मारता आ आहे ।' जद पातसा ने ससरा केत वावडरो कीदा । छडी फोज सु सगतसीगजी प्रावेर म्हाराज, जोघपुर म्हाराज, लार वेरे असवार दाम हजार सु मगरा मेय राड । सो सातर मोवडा ओक दीन मे छडा । गाटो भारो, सो पातसा पाछो फरो । सो ही ठाप मेडे रोवे आअर नतरे पातसा रो लागे घरजा रजपुत, मोर, वजीर, पातसा ने पावा ने मीला नहीं । देस उजड वेग ओ, सो मीला नहीं । पाणी पी दीन काटा । जद पातसा राजा मान सु कही, 'परतावसीग कैसे जीवता वेगा ?' जद कही, 'वपा हे, रजपुत का घपा अमाही वेता हे । जमीदार हे, सो कदमुल पाए दीन तरे करता वेगा ।'..... जावर रा म्हेन मे वेकुट पदारा मासता हुई राज बरस २४ कीदा समत १६५२ वेकुट पदारा वेटा १२ हुवा जारा नाम

(१) पाटवी अमरसीगजी	(२) सोसीडी	(३) पुराजीरा पुराबल
(४) मेघोजी रा सेपावत	(५) यतीजी	(६) बलाणजी
(७) कषरोजी	(८) मेगराजजी	(९) नगजी
(१०) चंदोजी	(११)	(१२)

## वंशावली संख्या ४<sup>१</sup>

॥ ..... राणा श्री उदयसिंग जी रे कवर प्रतापसिंगजी सोनगरी जेवताबाई रा पुत्र; २ कवर सगतोजी सोलकणी बाई सु जा रा पुत्र, जयसिंगजी, पुवारबाई जेवता रा पुत्र; १ पचाण गणेश दे चहुवाण लाठी रा पुत्र; कानजी, नतोजी सहषहेची कनकबाई रा पुत्र; महेशजी, विरमदेजी, गोपालदेवजी, खींचण बाइरा पुत्र । राण श्री उदयसिंगजी रे दलीरा पातसाह थी युद्ध कीदो । गढ भागो जदी उमराव काम आया चूंडावत पतोजी, राव साईदास जी, राठोड जयमलजी राठोड ईसरदासजी,..... ।

॥ ————राणोजी प्रतापसिंगजी राणी बाइ सोनगराई जेवता रा पुत्र वास गोगुन्दे तथा चावड । सवत् १६२६ राज बेठा । सेना संख्या अश्व १५०००, हस्ती १००, प्यादल २००००, वाजत्र ७००, राजा १, राव ३, रावत ७ । कवरपणी वागड रा चहुआण थी युद्ध जीत्या ॥ क्षेत्र नदी सीम दली रो पातसाह अजमेर आयो । ओर साह कवर साथे हिन्दू मुगलमान लेर खाजे पीर जी रो जात्रा आया । अठा मी, राजा मानसिंह कछवाहा थी युद्ध जीत्या । लाय करा वे रसोडो करावे आरोग्या । ये समाचार राजा सामल आयो ते क्रोध कीघो । पातसाह तीरे जावेर फोज लेर चित्रकोट उपरे चढे आयो । राणोजी गढ थी टालो लीदो । मगरा मे वासो कीदो । मनख कु सलमेर गया । पछे धरती मे दोडा कीदा । लूटता फरया । मालवा रो डढ लादो । पातसाह री फोज लेर राणा जी रो पीछो कीदो । जठे युद्ध हुवो । महायुद्ध वीघो । कछवायो केतो. “था सो आचार पालो तो रजपूता आचार बतावो ।” सो आढी पमात रजपूताचार दीखावे । पातसाह डोला चढेर आयो । जठे दूजीवार राजा हरोल हुवो । महायुद्ध कीदो । वसती मगरा मे राखी धरती में ठाम ठाम थाण जरा थाण । एक दिन माही कु वर अमरसिंग जी उठाया । इमी मांत रार करे थाणा ३६ उठाय दीदा । ने सख्या गाम ७ आस १५, गाय १०००, मेहकी ६००, अश्व १०००, हस्ती २ दीघा । नित्यदान हेम तोला १, रुपो तोला ५ ब्रह्मण मोजन २ करता । पूंचोली गोरी प्रधान । राणाजी रे पुत्र ७, अमरसिंगजी राणी पुआर रा । बाई अजविदे रा पुत्र २ भगवानदामजी । बाई सोलकणी पुग्वाद रा पुत्र ३ सहेमजी ४ गोपालजी बाई भाली चांदवाइ रा पुत्र । ५ कचरोजी ६, मामलदामजी, दुरजणसिंगजी, ७ राणी चुवाण नसोदबाई रा पुत्र । ८ कलसिंगजी राणी राठोड फूलाबाई रा पुत्र । एक पूरोजी राणी मीनण बाई रा पुत्र । एक ऊदेसिंगजी रामबाई आनलदे चहुआण रा बेटा ५ । जसवत राणी अमरावती रा पुत्र । ७६ मानोजी राठोड बाई अमरबाई रा बेटा । १७ नाथोजी, रायमनजी राठोड लावा बाई रा पुत्र । राजलोक राणी खवासण पान पुत्र । यरस २४ मास १० दन २२ राज तीघो ॥ राणी श्री अमरसिंग जी ।

१ इस वंशावली में महाराणा जगमोह (वि०स० १६१८-१६३१) तक का वंश वर्णन मिलता है ।  
( राजस्थान प्रांतीय विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थ सं० ८३२ पृ० सं० १३६ से १४६ )

## वंशावली संख्या ५

### राणावली<sup>१</sup>

सं० १६२४ रा चेत बीद ११ रवे चीवकोट मागो । सं० १६१६ ऊदेसागर बदायो थो, ने स० १६२४ रा चेत मुद ११ रे दीन ऊदेपुर वसायो । आर बल व्रम ५० स, ३६ मास, २ दीन राज कीदो । स १६२६ रा कागुण सुद १५ देवलोक पदार्या । वेटा २५ पचीस

- १ प्रतापमीघजी गादी वीराज्या
- २ सगतसीघजी, ज्यांरा सगतावत
- ३ कानजी, ज्यांरा कानावत
- ४ जेतसीघजी ज्यांरा
- ५ वीरमदेवजी

लागच हमीरगढ भावा केरावाद  
महुवो मणवाढ मडयो चोगामडी

- ६ राएसीघजी, ज्यांरा पगरो मालवे
- ७ जगमालजी, ज्यांरा जाजपुर
- ८ सगरजी, ज्यांरा ऊमरी मदोडो गुणेम गड गडोली
- ९ अगरजी टोडा कीडा वर अगरावत रा राणावत सीमोदा बाजे
- १० मीरथाजी ज्यांरा छापरेंड
- ११ पचाणजी ज्यांरा पचाणपुर, ऊलांरा, पजुरी, हाजीवास
- १२ सुजाणजी रे रेडवास
- १३ लुणकरणजी गुणेम री बालोर पेडो दीवो
- १४ म्हेमदामजी ज्यांरा टाटोन श्री जी दुवारा तीरे
- १५ मादुनजी ज्यांरा गोडवाढ म्हे साडेढा
- १६ म्हरमीघजी ज्यांरा मीरोई री धती में पीडवाडो मेणवासे
- १७ मगोली ज्यांरा मालवे रोर गाव धावढ्या पापद रो ८ वेटा ८ रो नुत गयो

२४

महाराणा श्री प्रतापमीघ जी जेवताबाई

महाराणा श्री प्रतापमीघ जी जेवताबाई सोनगरी रा वेटा । वास गोमुदे सवा खावंड । सं० १६२४ रा चेत ११ रे दीन ऊदेपुर वसायो । आर बल व्रम ५० स, ३६ मास, २ दीन राज कीदो । स १६२६ रा कागुण सुद १५ देवलोक पदार्या । वेटा २५ पचीस

१. इन वंशावली में महाराणा मरवाहविह (वि०स० १८६५-१८६६) तक का वंश वर्णन मिलता है ।

सेवा करता । कुवर पणो जादा भुगत्यो, अरजुद कीदा, अर राठ २२ बाईस जात्या । अर राज कीदा जत्रे  
बेटा थी, बुगत्र गला म्हे थी काख्यो नही । पातस्हा अकवर ती जुद जीता । दली रा ऊमराव हीहु तुरक  
था । ज्याहे अपणाऐ लारे लाय्या । बावन लष मालवा थी डंडे लीघो । आर वल व्रम २४ मास १० दीन  
२६ राज कीदो । राणा, पवासण,

बेटा री वीगत—

- १ अमरसीघजी पाट बीराण्या
- २ नाजी ज्यारा मगवानदासजी
- ३ कचरूजी ज्यारा गोगुदा तीरे जोलावास
- ४ सेसमलजी ज्यारा धर्यावद
- ५ रामजी ज्यारा ऊदर्यावास मुन करी
- ६ चंदोजी ज्यारा दरीबा तीरे आजणों
- ७ हाथी जी ज्यारा बोढावास (दात) ठो गेदर्यो
- ८ सावरदासजी ज्यारा सलुवर तीरे जामुडा
- ९ जसुतसीघजी ज्यारा कारूडो जलोदो
- १० सेषोजी ज्यारा नाणो पेढो बीजापुर गोरवाड में
- ११ कल्याणदास जी ज्यारा पुलसाद
- १२ पूरा जी ज्यारा पुरावत मगरोप गुरला गाढरमालो
- आरज्यो ओर दाम पुरावत

[ वही में पत्र सख्या नहीं दी गई है । ]

## वंशावली संख्या ६

### सीसोद वंशावली

२११ म्हाराणाजी श्री प्रतापसीध जी गादी बैठा समत १६२६ और चेत सुद १ समत १६३३ गढ कुमलमेर दुटो । म्हाराणा प्रतापसीधजी वडा रोला कीदा । भगडा म्ह वेटा १२ गाई २४-तो सात भगडा ने चहना । पातमा अकवर अजमेर सु दीमी पाछा आया । सगतसीधजी ऊपर वेराजी वे काड दीदा । सो पातमा तीरे रेंता पवासी म्ह, वे । कुमलमेर तीर हलदीगाटी पातमा री फोज मे भगडो कर तीकला । उठे चेटक घोडा रो पग भडो । सगतसीध जी पातसा का हानी रा मुडा आगे चडा ऊदा हा । सो पानमा अकवर कुरामन मुलतान से कही 'प्रतापसीध कू कवाण रा गोसा मे पकड हाजर करो ।' सो मुबोनेर चटा पाछे । मु सगतसीधजी ने पातमा पूछी, (के) 'प्रतापसीध पकडा आवेगा' जस

पातमा ने कही, 'हमारा तो-दुसमण हे, सो जीता पकडा (नही) तों मार कर लावे' । जद कही, 'जलदी जावो पछे घोडा' । सुप सगतसीधजी चडा, घर वहीर हुवा । सो आगे जाए देवे, तो श्री द्वार के पुरासाण मुनतान रे-छेटी थोडी । सुवाण सु लडाई वेती जावे । चला जावे मे । पाछे सु कुरासान मुलतान है सगतसीधजी मारे । श्री द्वार के आगे जावे आडा परा । कही, 'दुसमण टे, मारा हे' श्री हजुर पागखो छाड के चेटक तीन पगो हे । जद कही, 'पुरासाण मुनतान रा घोडा ने मुगेने वाद आयो ह । सो मु चड जाऊगा । आप नाटक उप चडजे । नाटक चेटक एक मरीखा हा । श्री द्वार कही, 'मारो अतवार नी आवे तुरक रो अन-जन-पावे हे ।' जद हाथ जोड पडा हुवा । श्री द्वार नाटक ऊपर चडा । जद कही, 'अवे जाऊ, कई अवे सोच । कही हे, हजी लोग तो दुरो हे । बाघ वे तो रीपाऊ, नागा रजपुत को मुहो कमो वे । जद कही, 'रे काल पुछाऊ कही बोले हे ।' पण मारी खाकर हे त्रिमु बोले हे ।' जद सगत (सीध)

रा घोडा कुमारा परी पुरासाण मुनतान कू दस पागली मुटा मे लीदी कही मुजे घम लेवे छोडी, जद काल पुछा कह कर छोटी, आप पशरी ए थोडी हु हे ज ।' इन खावरा नाटी पेटा ने ऊनराए घोडा प्र सगतसीधजी ने पटाया । सो उठे घोडी पटो उठे जाए ऊदा गया । कोस दा कोस फेर दोडे र पाछा आया । पातसा ने गदाव जगसा का स्वावान क्या के, 'प्रतापसीध तों कुरसान मुलतान कू मारा । सगतसीध का घोडा के मुदाल का नीर मगा, पाव १ प्र तरवार लगे अर कुवाण का तोर गेले वीणता आया । सो, प्रतापसीधजी मारा कुरासान मुलतान रा जो पानमा ने बताया । पानसा कही, 'तेरा कलाम मे चीतीव नही जद सगतसीध जी कही हट्ट मगरा हे पधारै । उदा प्रतापसीधजी वेगा ज्या' मे ले जाके रुपगा । जद आवैर के राजा

1 इस वंशावली में महाराणा जयसिंह ( वि० सं० १६१८-१६३१ ) तक का वंश वर्णन मिलता है ।

मान कही राज रे कारण वेतो बापने मार (ए) आया — जद पातसा ने मे सरा  
 जार । मगरा म्हे धसा । सो सातर सोवडा एके दीन राणाजी श्री प्रतापसींग जी आवा आवली  
 री नाल । आगे घाटो भारा सो पातसा पाछो [म] रोसो दीनी । म्हे डेरापे आया, जतरे पातसा री लार  
 गया । ज्या रजपूत मोर वजीर पातसा ने धावा ने मलो नहीं । देस उजड वे गया ।  
 सो मल नही । पातसी पी दीन काडा । जद पातसा राजा मान सु कही, 'प्रतापसीध केमे जीवता  
 वेगा ।' जद कही 'बषा हे । रजपूत का वषा असा ही वेता हे । जमींदार हे, सो जद कंद मुल पाए दीन ते  
 रकता वेगा ।' पछे पातसा सेसरा का तलाव म्हे मेल करायो । राते सोवे दोलु जेलरी धाही । सो श्री द्वार  
 रात रे स्मे नीसरा । सो रातो रात मेवाड मे आवे, सेमरा म्हे कुमार के धरा घोडो वादो । सो मोर दीदी ।  
 रात पडवा देन तैलाव री कुण मे गया । सो देपे तो लुगाई १ वैठी हे । जद कही 'शु कुण हे ?' जद वी  
 कही, 'मु सकोत्री हू ।' अठे कुं आई ?' जद (क)ही, 'पातसा री फोज देखवा आई ।' जद कही, 'पातसा  
 कठे हे ?' जद सकोत्री बोली, 'टा में हे कही, गई  
 मो आप उतरे नही, ने कही के, 'मु आऊ जने राजे मो माए जाए देपे, तो ऊडवा वेगणा और  
 नाजरा की चौका लाग रही है । ऊपर तो नीदरा पडी पाच चो फिराक म्हे पदारा । सो पातसा एकवर अर  
 हुरमा होला पर पोडा हे । ज्याने देष तरवार काडी, के पातसा ने मार नाकू । असा ओसर फेर नी मीलेगा ।  
 दुसमण ने तो मारा ही चावे । जद तरवार बावा लाग । सो हात नही कई मत । जद पूछा, 'थे कुण हो  
 कही मे चौईम पीर चौकी देवा हा ।' जद कही, 'मारे पण कुण हे ?' जद कही, पाछे नान देपे तो, श्री  
 एकलींगजी ऊवाहे । चार मुख सु द्रष्टा दीदो । कही, 'पातसा री सरकी पागडी मुछ ऊरो ने । सो मोजाहीण  
 ने परी जावेगा । थारो जग सरहेगा, नही तो यो थारो मारो मरे नही । तु इरो मारो मरे नही । जद हुकम  
 प्रमाणे कर पाछा वावडा । सो कुण मे जाए उतरा । सकोत्री ने कही मागे जो देऊ । जद उणी कही,

कण सकोत्री नाले नही । आपने तो देवता चौकी देवे है, अर कही, 'मु मेडी के पडे  
 रेऊ हू । आपने काम पडे जट, मने याद कीजो ।' । पछे सकोत्री ने हीरा को हार दीदो । अर ईडर प्रणाहा,  
 सो उठे रणसीजा हा, सो तीज रे दीन पावणा पदारा । पातसा री फोज बाईमी ईडर जाए डेरो दीदो । सो  
 श्री राणा जी ने ले फोज मु भगडो कर चावड पधारा । प्रमात हुवो । पातसा जागा । देपे तो ठाही मृछ  
 ऐक आही री नही । सरकी पाग नही । अर हुरमारी चोटी नही । अर मोत उप्र अपर माडा के 'हमारा नाम  
 प्रतापसीध है, अवे रेवोगा तो मार नाकूगा । लापा आदमा री ठाकुर हे । जीसु छोडो हे ।' जद प्रमाते पुच  
 करा । सो फोज तो वदा करी । आप मगतसीधजी ने बुलाया के, 'यु प्रतापसीध मे छाने मोन प्राव की जे ।  
 पातसा रा कुष हुवा । नपलेड रा नवाध पानापान आप मु मोनवाने धावे हे । मो पचीम घोडा मे मोत  
 जावेगा । अमी कहुर मेला । पछे सगतसीध श्री द्वार नणया का मगरा म्हे ठावा पीदा । घेहड़ी जगा

अ मु जी वे के कई कणगा ? श्री ऐकनीन जी ने ममरा । सो ममरा  
 में कई, 'आम रा तिसरा जामरी पोठी ले'द म्हाजन आवेगा, सो मु दुरो जावे मे भावने । ज्या श्रीज रम्य



बावे जो काड लीजे । गुण भडावो मनी । पातसा झीला आवेगा, सो मजमानी आझी कीजे । पछे दोपेरा को पातसा अकबर, नषलेऊ, हेदरावाद दोई राजा जेपुर, जोदपुर, दोई राव ओर मीर, वजीर, सगतसीध जी लारे आया । पातसा फकीर रो साग कर आया । सारा श्री द्वार सु मला पातसा ऊवो रयो दूरो । सो प्रतापसीधजी गादी तार कराई । कई, 'वीराजजे नछरावल करी । माणक, मोती, सोना, रूपा रा फुल ऊछाला । गोठरी तीयारी मलोमात सु करी । सो पातसा वा सारा सारका जीमा । पातसा रे नजर हाती ५, घोडा २०, सोना रूपारी सागतरा तरवार, कुटारी जडाऊ, पोसाग, गेणो, मारो दस्तुर मुजव करा । लारका ने सारा ने सरोपाव, घोडा, गेहूणा दीदा । सो पातसा देपता गोया । अर देना गया । पछे पातसा कही, 'बडा अनमीपद राजा हे ' जेपुर जोदपुर का राजा ने कही, 'ए देवता का कीया राज हे मन .. .. .

तेग तरवार अनमीपद गाम चावड मेल बणाया । गाम वसायो मगरा म्ह । ठाम ठाम मेल जगा बणाई । रमा पछे चावड रा महेला म्ह वैकुट पदारा । मासती हुई । राज वरस २४ कीदो । समस १६५२ वैकुट पघाग । घेटा रा नाम— १ पाटवी अन्नसीगजी २ सोसीजी ३ पुराजी रा पुरावत ४ सेषोजी ५ हातीजी ६ मलाणजी ७ कचरोजी ८ भेगराज जी ९ नगजी १० चदोजी ११ .. .. १२ .. .. .

[ माहिश्य सस्यान, राजस्यान विद्यापीठ, उदयपुर, हस्तलिखित ग्रन्थ मंख्या २६२ पत्र स० २१ से २५ तक ]

## संथाणा<sup>1</sup> का ताम्र-पत्र

इस ताम्र पत्र का छाया-चित्र [ Photograph No 26/133 ] कमिश्नर कार्यालय उदयपुर में सुरक्षित है । इसकी प्रतिलिपि डा० गोपीनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक Mewar and the Mughal Emperors में प्रकाशित की है । प्रस्तुत ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रताप के आदेश से मामाशाह द्वारा प्राचार्य वालाजी वा किसनदास बलभद्र को एक ग्राम संथाणा माद्रपद शुक्ला ५ रविवार सवत १६३३ को प्रदान किया गया । यह आदेश महाराणा ने कुंमलगढ में रहते हुए दिया था । ताम्र पत्र की अन्तिम पंक्तियों से ज्ञात होता है कि सम्बन्धित व्यक्ति का मूल ताम्रपत्र चोरी चला गया था अतः उसका पुनर्नवीकरण कर यह ताम्रपत्र प्रदान किया गया । ताम्रपत्र का मूल पाठ निम्न प्रकार से है:—

श्री रामोजयति

श्री गणेशप्रसादात्

श्री एकलि [गप्रसादात्]

[ भाला ]

सही

१. महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप—
२. स्यंघ जी आदेशात् प्राचार्य वालाजी वा
३. कीसनदास बलभद्र कस्य ग्राम १ सया—
४. एगो मया कीघो उदके आघाटे दत्ता [फू]—
५. [भ] लमेर मध्ये संवत १६३३ वर्षे भा—
६. द्रवा शुदी ५ रीचो दुए थो मुपे प्रतीडु—
७. ए दादो रायजी साह भांमा पहन्ना प—
८. तर बले गयो लुट्यो गया चु नयो करे
९. मया कीघो साम पीपली चरा हे— —
१०. —वं— तो सीम पी सु — — मुयो दो है

---

1 उदयपुर से उत्तर-पूर्व में काकरोली स्टेशन से लगभग १२ मील की दूरी पर स्थित गाँव ।

## मही<sup>१</sup> का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्र-पत्र का छायाचित्र श्री जगदीश प्रसाद आचार्य, उदयपुर से प्राप्त हुआ । इस ताम्र-पत्र में कहा गया है कि महाराजाधिराज महाराणा प्रताप सिंह ने कुभलमेर में रहते हुए आचार्य बालाजी वा कीशनदास बलभद्र को मही [ मोही ] नामक ग्राम में संवत् १६३३ के आश्विन कृष्ण पष्ठि मंगलवार को तीन रहट प्रदान किए । अन्य ताम्र-पत्रों की भांति इस ताम्र-पत्र में भी भामाशाह का नामोल्लेख है । अन्तिम पक्तियों से प्रकट होता है कि पूर्व दत्त ताम्र-पत्र के खो जाने से यह नया ताम्र-पत्र प्रदान किया गया । ताम्र-पत्र का मूल पाठ निम्न प्रकार से है:—

श्री रामोजयति

श्री गणेश प्रसादाय

श्री एकलिंग प्रसादाय

[ भाला ]

सही

- १ महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापस्य
- २ आदेशात् आचार्य बालाजी वा कीशनदास
- ३ बलभद्र कस्य गान् महीम् । हेरहद ३ अग
- ४ री क व्है नु गया कीधा दुइ उदक आवाट द—
- ५ ता संवत् १६३३ वर्षे आसोज वदी ६ भुमे
- ६ फूलमेर मध्ये हुए श्री मुपे प्रती हुए
- ७ नाह भामो पुर्वा रीत व्है सु मया कीधो प
- ८ ले गुठो नु प्रो त्ठे पतर गया था सु नवो
- ९ करे मया कीधो

## पीपली<sup>1</sup> का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्रपत्र का छायाचित्र हमें श्री जगदीशप्रसाद आचार्य उदयपुर से प्राप्त हुआ । ताम्रपत्र में कहा गया है कि आचार्य वालाजी वा किसनदास बलभद्र को, महाराणा प्रताप ने कुंभलमेर में रहते हुए रविवार, भाद्रपद शुक्ला ११ सवत् १६३३ को, पीपली नामक ग्राम प्रदान किया । मूल ताम्र पत्र खो गया था अतः यह नया ताम्रपत्र प्रदान किया गया । अन्य ताम्रपत्रों की भांति इस ताम्रपत्र में भी मामाशाह का नामोल्लेख है । ताम्र-पत्र का मूल पाठ निम्नानुसार है:—

[ श्री रामजी ]

॥ गणेश प्रसादात् [ श्री एकनिग प्रसादात् ]

[ भाला ]

सही

१. महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप स्यं—
२. घ आदेशात् आचार्य वालाजी वा कीत्त दा—
३. स बलभद्र कस्य ग्राम १ पीपली मया [ कीघो ]
४. उदके आघाटे दत्ता कुंभलमेर मध्ये सं—
५. वत् १६३३ वर्ष भाद्रवासुदि ११ रीचो [ बुए ]
६. श्री मुख प्रती बुए दादागमजी साह भाभो
७. पहला पतर बले गुठो जुद्यो त गा पा सु
८. नयो फरे मया कीघो

---

1 पीपली ग्राम उदयपुर से उत्तर-पूर्व में कांकराली स्टेशन से लगभग पार नीम की झरी पर है ।

## मृगेश्वर<sup>१</sup> का ताम्र-पत्र

महाराणा प्रताप द्वारा प्रदत्त प्रस्तुत ताम्रपत्र मुंशी देवीप्रसाद को प्राप्त हुआ था। जिसको उन्होंने मरस्वती, भाग १८ पृष्ठ ६५-६८ पर प्रकाशित करवाया। ताम्रपत्र में कुल ७ पंक्तियाँ हैं। ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि महाराणा प्रताप के आदेश से, भामाशाह द्वारा कान्हा नामक चारण को फाल्गुन शुक्ला ५ संवत् १६३६ को मीरघेसर (मृगेश्वर) नाम ग्राम प्रदान किया गया था। कान्हा सात चारण था व चित्तौड़ के निकट हुप्प खेड़ी नामक ग्राम का निवासी था। हल्दीघाटी के युद्ध में यह महाराणा के साथ था।<sup>२</sup> उस युद्ध का ओजस्वी दण्डन इसने अपने एक गीत में किया है।<sup>३</sup> इस ताम्रपत्र का दन्ताल पत्र भी मुंशी देवी-प्रसाद जी ने प्राप्त किया था। ताम्रपत्र के मसविदे को कंठस्थ करने हेतु उसे पद्यबद्ध कर लिया जाता था, उसी पद्य को दन्ताल पत्र कहा जाता है। दन्ताल पत्र में ताम्रपत्र के विषय को समाविष्ट करते हुए उक्त तिथि को गुरुवार भी बताया गया है। लेकिन तिथि पत्रक से ज्ञात होता है कि उक्त तिथि को गुरुवार नहीं बरन् शनिवार था। ताम्र पत्र का मूल पाठ निम्नानुसार है—

१. महाराजधिराज महारा—
२. रण श्री प्रताप स्वधजी आदे
३. सातु चारण कान्हा हे गाम
४. मीरघेसर दत्त मया कीघो
५. घाघाट करे दीघो संवत् १६३६ वर्षे
६. फाल्गुण सुदी ५ बुध श्री
७. मुख दीवमान साह भामासाह

१. तत्कालीन गोरखा जेय एवं वर्तमान पाली जिले में स्थित गाँव।

२. गाम्भजी, भाग १८, पृ० ६५

३. प्राचीन हिन्दु काव्य में महाराणा प्रताप— डा० देवीनान पालीवाल गीत नं० ३६

## बांधण का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्रपत्र प० श्री रामकिशनजी जोशी, किशनगढ से प्राप्त हुआ था । इस ताम्रपत्र की प्रतिलिपि आर्ये आर० सी० तिवारी ने Journal of the University of Bombay, Vol. 31, part 4 में पृष्ठ ५० पर प्रकाशित करवाया है । ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि महाराणा प्रतापसिंह के आदेश से आयस आणंदनाथ को सीदरी के ग्राम बांधण में आश्विन कृष्ण ७ संवत् १६४५ को ४हल [हल = लगभग ३ बीघा ] भूमि प्रदान की । ताम्रपत्र में पूर्व ताम्रपत्रों की भांति मामाशाह का नाम दर्ज है । मूल पाठ निम्नानुसार है:—

श्री रामोजयति

श्री गणेश प्रसादात

श्री एकलिंग प्रसादात

भाला

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंह आदेशतुं आयस आणंदनाथ कस्य हल ४ कुरी घरती गांन बांधण सीधरी माहे पली छै समव कीदी स १६४५ बर्ये आसोजन्द ७ दुबै श्री मुख प्रति दवै साह मामो

## पडेर<sup>1</sup> का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्र पत्र का छाया चित्र भी उदयपुर के कमिश्नर कार्यालय में उपलब्ध है (Photograph No 368) । इसको डा० गोपीनाथ शर्मा ने 'Mewar and the Mughal Emperors' ग्रन्थ में पृष्ठ २३८ पर प्रकाशित किया है । इसमें महाराणा प्रतापसिंह द्वारा तिवाड़ी ( ब्राह्मण ) सादुलनाथ, कानागोपाल को ग्राम पडेर में ११ हल भूमि कार्तिक शुक्ला १५ संवत् १६४५ को प्रदान करने का उल्लेख है । पत्र की अन्तिम पंक्ति से ज्ञात होता है कि यह भूमि सम्भवतः महाराणा उदयसिंह ने ही दान में प्रदान कर दी थी जिसका कि पुनर्नवीकरण महाराणा प्रताप के समय हुआ । ताम्रपत्र का मूल पाठ निम्नानुसार है:-

श्री रामोजयति

श्री गणेश प्रसादातु

श्री एकलिंगजी प्रसादातु

भाला

सही

सिध श्री महाराजाधिराज महाराणाजी श्री प्रतापसौंघ जी आदेशातु तिवाड़ी सादुलनाथरां भवान  
भाना गोपाल टीला घरती उदक आगे राणाजीं श्री जी ताम्रपत्र करावे दीघी थो प्रणाले जाजपुर रा गाम  
पडेर महे हल ११ घरती वीगा गारा करे दीघी श्री मुख हुकम हुआ साह भाना संवत् १६४५ काती सुव १५  
महाराणा जी श्री उदेसिंघजी रो वत्त

---

1. ताम्रपत्र के शरणांगीन जहाजपुर परगने तथा वर्तमान जहाजपुर तहसील का गाँव ।

## डाइलाणा<sup>1</sup> का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्र-पत्र शिवसिंह चौयल ने राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४ पृष्ठ ३५-३६ पर प्रकाशित करवाया है। इस ताम्रपत्र में चौधरी रोहीतास को महाराणा प्रताप द्वारा डाइलाणा ग्राम में ४ खेत १ एक रहट आश्विन शुक्ला १५ सवत १६५१ को दिये जाने का उल्लेख हुआ है। खेतों व रहट का विवरण भी दिया गया है। इस भूमि का भोग (भूमिकर) भी 4½ कलसी निश्चित किये जाने का उल्लेख भी मूल पाठ में है। कलसी शब्द ताप के पात्र विशेष के लिये प्रयुक्त हुआ है।<sup>2</sup> ताम्रपत्र का मूल पाठ इस प्रकार है—

श्री रामो जयति

श्री गुरोस प्रसादात्

एकलिंग प्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंह आवेशातु चौधरी रोहीतास कस्य प्राप्त मघ कीघो ग्राम डाहीलाणा घडा माहे खेत ४ वरसाली रा उदक आघाट

१ खेत वडपाला १ खेत राजावो १ खेत ५१ पत्तो १ पाज्येजवा<sup>30</sup> ४ भोगकलसी ४॥  
अ (र) हट १ साणवे भोग कलसी ४॥ देसी स १६५१ ब्रह्म आसोज सु० १५ दव श्री मुष घीदमान  
सा भामा ।

1 प्राचीन गोडवाड इलाके तथा वर्तमान पाली जिले में स्थित गांव ।

2 गोडवाड के चौड़ानों के शिलालेखों में भी पापला, पायनी ( पत्तिनरा ) आदि नामों के पात्रों के नाम 'कलसी' का भी उल्लेख मिलता है । ( डॉ० चार० नगरकर का लेख, 'The Chahamanas of Marwar' Epigraphia Indica, Vol XI )



## देल्वाड़ा<sup>1</sup> का पट्टा

प्रस्तुत पट्टे की प्रतिलिपि मु श्री देवीप्रसाद ने सरस्वती ( मार्च १९१४, भाग १५, खण्ड १, पृष्ठ १२४-२५ ) में प्रकाशित करवाई थी । इस पट्टे से कतिपय ऐतिहासिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं । हल्दीघाटी के युद्ध में भाला माना ने आत्माहुति देकर महाराणा प्रताप की रक्षा की थी । उस भाला सरदार के तीन पुत्र— छत्रसाल, कल्याणसिंह व आसकराण थे । इस पट्टे से ज्ञात होता है कि छत्रसाल महाराणा का साथ छोड़कर जोधपुर चला गया था, लेकिन जब बादशाह के साथ राणा प्रताप का आबरा-सावरा की नाल में युद्ध हुआ उस समय छत्रसाल लौट आया ।<sup>2</sup> इस युद्ध में छत्रसाल घायल हो गया व कुछ समय बाद मर गया । इस युद्ध में छत्रसाल का काका भोपतसिंह भी काम आया । महाराणा प्रताप द्वारा छत्रसाल के छोटे भाई कल्याणसिंह को देल्वाड़ा ग्राम प्रदान किया गया व उसके भतीजे कानसिंह ( छत्रसाल का पुत्र ) को गोगुदा ग्राम प्रदान किया गया । प्रताप ने उन्हें एकलिंगजी की नाल में चीरवे के घाटे में अच्छा प्रबन्ध रखने का आदेश दिया । अन्त में पट्टा जारी करने वाले का नाम पचोली गोरो व तिथि आश्विन शुक्ला ६ सवत् १६३६ दिया गया है ।<sup>3</sup> मूल पाठ निम्न प्रकार से है —

श्री एकलिंग जी प्रसादात

श्री रामो जयति

सही

और भाले का चित्र

स्वस्ती श्री विजय कटक रा डेरा सुभ सुयाने

महाराजाधिराज महारानाजी श्री प्रतापसिंहजी आदेसात

देल्वाड़ा मुयाने राजरणा कल्याणसिंह सु प्रसाद बचजे ।

- 1 उदयपुर से १७ मील उत्तर में स्थित कल्वा ।
- 2 छत्रसाल सम्बन्धी इस घटना का वर्णन एक प्राचीन हिगल कवित्त में भी मिलता है । दृष्टव्य डा० देवीनान पालीवाल द्वारा संपादित, 'प्राचीन हिगल काव्य में महाराणा प्रताप' पृ० ५६
- 3 श्री गीरीशंकर हीराचंद घोभा के अनुसार आबरा-सावरा का युद्ध प्रताप के उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल में हुआ । वे उनके अनुसार छत्रसाल के मारवाड़ चले जाने पर प्रताप ने देल्वाड़े का पट्टा दशगोर के राठोड सरदार मनमनदास को दे दिया था । अमरसिंह ने कल्याणसिंह की गोरखा में प्रसन्न होकर मनमनदास की मृत्यु के बाद देल्वाड़ा का पट्टा वापस कर दिया और छत्रसाल के लड़के कानसिंह को गोगुन्दे का पट्टा प्रदान किया ।

( उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ८६७-८६८ )

अठारा समाचार भला है थाहरा केहवावजो अप्रंच रणा  
 चत्रसाल छडीनो कर जोधपुर गया आवरा सावरा री  
 नाल मांहे श्री पातशाहजी री फौज पड़ी जठे भगड़ो  
 हुवो जिणी भगडा मांहे थारे काका भोपतसिंह काम  
 आया शोर चत्रसाल रे लोह लागो सो घणा दिन पछे  
 काल कीधो कल्याणसिंह पकडन में गया जठे बोली  
 चाली री सुफारिश दिखाणी जी खुशी सूं करने  
 थाने देलवाडो मया हुवो रेख टका डोड  
 लाख री है खातरी सू जमीत राख जो थारे  
 भतीज कान्तसिंह ने गोघूं दो मया हुवो थारा दो ही  
 ठिकाणा माहे नालरी कोडी पेशकशी लागे सो  
 ब्रद पेडियां दर पेडिया तक नहीं लागेगा गेरवाजवी  
 धोस खालसो नहीं आवेगा यो माहरो वचन है  
 श्री एकलिंग जी री नाल माहे चीरवा रा घाटा माहे  
 आछो बदोवसत राखज्यो विगाड़ उजाड़ हुवेगा  
 सो थांहे पूछियो जावेगा परवानगी पंचोली  
 गीरो एव संवत् १६३६ रा आसोज सुदि ६— 4

---

4 इस पट्टे की माया प्रताप के ग्रन्थ पट्टों से मिलन है तथा पट्टे में उल्लिखित घटनाओं का शासक का ऐतिहासिक स्रोतों से मेल नहीं खाता ।

## परवाना

प्रस्तुत परवाने की मूल प्रति श्री जगदीशप्रसाद आचार्य, उदयपुर, से प्राप्त हुई। प्रस्तुत पत्र महाराणा प्रताप की ओर से आचार्य बाबा बलमदर को लिखा गया है। इसमें कहा गया है कि वेणीदास तो यहाँ युद्ध में मारा गया है, उसकी चिन्ता मत करना। रूग्नाथ (वेणीदास का पुत्र) की देखभाल रखी जायगी, एक बार उसे यहाँ भेज दो। रूग्नाथ के पिता श्री हजूर (महाराणा प्रताप) हैं। पत्र भामाशाह द्वारा संवत् १६३४ के पीप शुक्ला १० को लिखा गया। पत्र का मूल पाठ निम्न प्रकार से है—

श्री रामोजयती

श्री गुणेश प्रसादातु

श्री ऐकलीग प्रसादातु

[भाला]

सही

१. स्वस्ति श्री कटक दल का डेरा सुयाने महाराजाधीराज म—
२. महाराणा श्री प्रतापसौंघ जी आदेशातु आचारज बाबा बल—
३. भद्र कस्य। अप्रवे० वेणीदास तो जगडा में काम आ—
४. यो ने थे कड़ी चंता करो मती रूग्नाथ री धात्री रेवे—
५. गा ऐक दाण रूग्नाथ ने पेटावा भेजजो थे पी जमा धात्री
६. रापजो रूग्नाथ रे बाप श्री हजूर हे थे कड़ी चंता करो मती
७. दुषे श्री भुष माहा भामा संमत १६३४ को पीप सुद १०

## खण्डित शिलालेख

प्रस्तुत शिलालेख उदमपुर के विक्टोरिया हॉल संग्रहालय में सुरक्षित है। लेख शिलालेख के १६" × १३" आकार पर १२ पक्तियों में उत्कीर्ण है। इनमें से प्रथम चार पक्तियाँ स्पष्ट रूप से पढ़ने में आती हैं। अवशिष्ट भाग अस्पष्ट है जिसमें कि किसी ब्राह्मण को भूमि दान देने का संकेत मिलता है। लेख की तिथि ज्येष्ठ शुक्ला ५ सोमवार संवत् १६३० दी गई है व महाराणा प्रताप का नाम भी उत्कीर्ण है। भारतीय तिथि पत्रक के अनुसार सोमवार के स्थान पर बुधवार होना चाहिए। (Indian Ephemerics V.S. 1922 P.P. 348) लेख का मूल पाठ निम्न प्रकार से है:—

१. सं० १६३० ज्य ज्येष्ठ
२. मासे सुकल पये महा ।
३. पवणी पचमी समवा
४. रे राज श्री राणा प्रताप

# सूरखण्ड<sup>1</sup> का शिलालेख

प्रस्तुत अभिलेख विक्टोरिया हाल मग्नहालय उदयपुर में सुरक्षित है । इस लेख का संकेत डा० गोपीनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक *Mewar and the mughal Emperors* में किया व इसका सम्पादन श्री रत्नचन्द्र ग्रगवाल ने शोधपत्रिका ( भाग अंक पृष्ठ ) में किया हैं । शिलालेख का विषय दो भागों में विभक्त है प्रथम भाग ( पंक्ति संख्या १ से ५ ) में कहा गया है कि संवत् १६४२ में राणा प्रताप ने राठोड राजा को पराजित कर सिसोदियों का राज्य ( पुनः ) प्राप्त किया । लेकिन इस तथ्य की पुष्टि मारवाड अथवा मेवाड राज्य के अब तक उपलब्ध किसी भी ऐतिहासिक श्रोत से नहीं होती । द्वितीय भाग ( पंक्ति संख्या ६ से १६ तक ) में कहा गया है कि अकबर के विख्यात सेनापति मानसिंह के साथ राणा प्रताप का युद्ध हुआ । उसमें महाराणा ने विजय पाई और उसकी खुशी में रणछोड जी के मन्दिर के पुजारी कुशर को ४ हल भूमि ज्येष्ठ शुक्ला ११ को प्रदान की । यह तथ्य भी इतिहास विरुद्ध है । नेत्र की भाषा भी यह प्रगट करती है कि वह प्रताप का समकालीन न होकर बहुत बाद का है । और अविश्वमनीय है । मूलपाठ इस प्रकार है:—

१. महाराणाधराज प्रता
२. प सींगजी ने राठड का रा
३. ज पराजि कर सिसोदीय
४. रा का राजसवत १६४२
५. मं राज प्रताप की—
६. आ सूरखंड नगेर पर
७. राज काद उस समे
८. मुगल अकबर
९. के विषात सेनापती रा
१०. मानसेह को सात जुद
११. या महाराणाजी अस वज
१२. पड ठ पसी में रनसड
१३. जी का मदीरा डोरी थ उ
१४. सका प्रमद कीआ जु
१५. दी हल ४ पुजारी कुव—
१६. र को दा जेठ सुकल ११

## रक्तताल<sup>1</sup> का शिलालेख

प्रस्तुत लेख खमनोर ग्राम के निकट रक्तताल नामक युद्ध स्थल में स्थित एक छतरी के स्तम्भ पर उत्कीर्ण है, शिलालेख में ग्वालियर के राजा रामशाह के पुत्र शालिवाहन के मृत्युस्थल पर महाराणा प्रताप के पौत्र महाराणा कर्णसिंह द्वारा संवत् १६८१ में स्मारक बनवाने का उल्लेख है । ग्वालियर के राजा रामशाह ने हल्दीघाटी के युद्ध में अपने पुत्रों सहित महाराणा प्रताप की ओर से भाग लिया था । युद्ध में वह अपने पुत्रों सहित काम आया । लेख के अन्त में स्मारक के निर्माता का नाम सिलावट मदीजत दिया गया है । लेख का मूल पाठ निम्न प्रकार से है:—

समत् १६८१ वरषे

रना करणसिंघ जी

ने कराई छतरी

गलेरक रज की

रजरमस. वेटी

सलबहण जरी

सीलवट [मदीजत]

[जत बतालीम] ने

फम कीघो

---

1 हल्दीघाटी और खमनोर ग्राम के बीच का वह पुराना मैदानी स्थल जहाँ महाराणा प्रताप की सेना और मुगल सेना के बीच युद्ध हुआ था । हल्दीघाटी और खमनोर उदयपुर से खमनोर लगभग ३० और ३२ मील की दूरी पर उत्तर में हैं ।

## सोरठा

गिर घुर देस गैनाइ,  
नमिया पग पग भाखरां ।  
मह भजसे मेघाड,  
सह भजसे सीसोदिया ॥

—मानसिंह [कोषपुर-महाराजा]

